सबै सयाने एकमत

प्रवचन-क्रम

1. तुम बिन कहिं न समाहिं...2
2. प्रार्थना क्या है?...27
3. मेरे आगे मैं खड़ा..52
4. मृत्यु श्रेष्ठतम है...69
5. समरथ सब विधि साइयां..94
6. तथागत जीता है तथाता में...113
7. इसक अलह का अंग..136
8. प्रेम जीवन है...155
9. भीतर के मल धोई..175 10...नीतिः कागज का फूल 200

सबै सयाने एकमत
पहला प्रवचन

तुम बिन कहिं न समाहिं

सूत्र

तिल-तिल का अपराधी तेरा, रती-रती का चोर।
पल-पल का मैं गुनही तेरा, बक्सौ औगुन मोर।।

गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहां हम जाहिं।
दादू देखा सोधि सब, तुम बिन कहिं न समाहिं।।

आदि अंत लौ आई करि, सुकिरत कछू न कीन्ह।
माया मोह मद मंछरा, स्वाद सबै चित दीन्ह।।

दादू बंदीवान है, तू बंदी छोड़ दिवान।
अब जनि राखौं बंदि मैं, मीरा मेहरबान।।

दिन-दिन नौतन भगति दे, दिन-दिन नौतन नांव।
दिन-दिन नौतन नेह दे, मैं बलिहारी जांव।।

साईं सत संतोष दे, भाव भगति बेसास।
सिदक सबूरी सांच दे, मांगे दादू दास।।

आंखें हैं, पर दिखाई नहीं पड़ता। आंखें खुली भी हैं, फिर भी दिखाई नहीं पड़ता। कोई गहरा अंधेरा भीतर छिपा है। होश है, समझ में आता हुआ मालूम पड़ता है, फिर भी जीवन में कोई क्रांति नहीं होती। बीमारी गहरी है; समझ उतनी गहरी नहीं। प्रयास भी करते हैं, दो कदम भी उठा कर चलते हैं परमात्मा के मंदिर की तरफ, लेकिन मंदिर पास आता मालूम नहीं पड़ता। पैर गलत दिशा में जाते हैं। उठते भी हैं तो भी कहीं पहुंचते नहीं।
शायद स्वयं किए कुछ हो भी न सकेगा। अगर अंधेरा गहरा हो, अगर भीतर बेहोशी हो, तो हम जहां भी चलेंगे, जहां भी जाएंगे, वहीं हम अंधेरे को पाएंगे, वहीं हम बेहोशी को पाएंगे। हमारे प्रयास से मंदिर परमात्मा का पास आ भी न सकेगा।
संसार में दो तरह के धर्म हैं। एक धर्म की प्रणाली है जो मानती है कि व्यक्ति के संकल्प से परमात्मा निकट आता है।
दूसरी प्रणाली है जो मानती है कि स्वयं के समर्पण से ही वह निकट आता है। क्योंकि संकल्प तो अज्ञान से भरा हुआ व्यक्ति ही करेगा। संकल्प भी अज्ञान से ही निकलेगा। ज्ञान तक पहुंचना कैसे होगा? तुम्हारी चेष्टा भी तो अंधेरी रात से ही शुरू होगी। उस चेष्टा का जन्म ही अंधकार में है, तो उसका अंत प्रकाशपूर्ण कैसे होगा? तुम जो करोगे, तुम ही करोगे। अहंकार की छाया पड़ेगी उस पर। तुम्हारी छाया से तुम्हारा कृत्य मुक्त न हो सकेगा। इसलिए दूसरी प्रणाली कहती है, हम केवल अपने को छोड़ सकते हैं उसके हाथों में। करना हमारा सवाल नहीं है, वही करे। हम समर्पण कर सकते हैं। संकल्प हमारे वश के बाहर है। संकल्प सिर्फ परमात्मा ही कर सकता है। हम सोए हुए हैं, उसके चरणों में अपने को छोड़ दें, इतना ही काफी है।
और चरणों में छोड़ने के लिए उसके चरण खोजने की जरूरत नहीं है, सिर्फ चरणों में छोड़ने का भाव काफी है। यह भाव असहाय से असहाय व्यक्ति भी कर सकता है। यह भाव अज्ञानी से अज्ञानी चित्त भी कर सकता है। कितनी ही गहन बेहोशी हो, चलना न हो सके, गिरना तो हो ही सकता है। यात्रा न हो सके, असहाय प्रार्थना और पुकार तो हो ही सकती है। उठने का बल न हो, चलने का बल न हो, तो भी आंखों में आंसू तो भर ही सकते हैं।

तो एक मार्ग है, जो मान कर चलता है कि तुम्हारी शक्ति से तुम पहुंचोगे। उस मार्ग से कभी करोड़ में कोई एकाध व्यक्ति पहुंचता हो, उसे अपवाद समझ लें। वह नियम नहीं है। उस मार्ग पर लाखों चलते हैं, कभी कोई एकाध पहुंचता है। वह भी शायद भूले-भटके ही पहुंच जाता है। वह भी शायद टटोलते- टटोलते ही पहुंच जाता है। शायद वह भी अपने श्रम से नहीं पहुंचता, उसके श्रम की आत्यंतिकता देख कर ही परमात्मा की करुणा उस पर हो जाती है। वह भी शायद अपने संकल्प से नहीं पहुंचता, लेकिन उसके संकल्प का बल देख कर, उसका उठना और गिरना देख कर, हर चेष्टा में उसके चलने की चेष्टा देख कर, खोज देख कर अनंत की करुणा उस पर बरस जाती है, इसलिए वह भी पहुंच जाता है।
लेकिन दूसरा मार्ग, जिसको संतों ने भक्ति का मार्ग कहा है, उस पर जो भी चलता है, पहुंच जाता है। क्योंकि उस पर चलना चलना है ही नहीं; उस पर तो गिरना है। मंजिल भक्त के लिए दूर नहीं है; जहां भक्त गिरा, वहीं मंजिल है। जहां उसने सिर झुकाया, वहीं मंदिर है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना, तो दादू को समझना आसान हो जाएगा।
संकल्पवान परमात्मा को खोजेगा, फिर झुकेगा। पहले उसके चरण खोज लेगा, फिर सिर झुकाएगा। समर्पण से भरा हुआ व्यक्ति, भक्त, सिर झुकाता है; और जहां सिर झुका देता है, वहीं उसके चरण पाता है। गिर पड़ता है, आंखें आंसू से भर जाती हैं। रोता है, चीखता है, पुकारता है, विरह की वेदना उसे घेर लेती है। और जहां उसके विरह का गीत पैदा होता है, वहीं परमात्मा प्रकट हो जाता है। तुम्हारी मर्जी! जैसे चलना हो। लेकिन दादू दूसरे मार्ग के अनुयायी हैं। उन्हें समझना हो तो एक शब्द है--समर्पण। उसे ही ठीक से समझ लिया तो दादू समझ में आ जाएंगे।
इसलिए दादू कहते हैं, सबै सयाने एकमत।
वह एकमत समर्पण का है। और जिन्होंने भी जाना है उन्होंने वही कहा है।
कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि संकल्प से चलने वाले लोगों ने भी अंत में यही कहा है। चले संकल्प से, पहुंचे समर्पण से।
बुद्ध के साथ यही हुआ। क्षत्रिय का खून था, समर्पण आसान नहीं।
क्षत्रिय को संकल्प आसान है। लड़ सकता है, मिट सकता है; झुकना उसे नहीं आता।
टूट जाना सुगम है, झुकना बड़ा दुर्गम। सारी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार क्षत्रिय के--वह भी राजपुत्र के! संघर्ष के। समर्पण के नहीं हो सकते, संघर्ष के ही होंगे।
तो बुद्ध ने छह वर्ष तक अथक तपश्चर्या की। जो-जो कहा है शास्त्रों में, सब पूरा किया। थोड़ा ज्यादा ही पूरा किया। जितना कहा था, उससे भी अति की। क्योंकि कहीं चूक न जाएं, कहीं यात्रा अधूरी न रह जाए। गुरु थक गए। जिन गुरुओं के पास बुद्ध गए, उन्हीं गुरुओं ने कहा कि हम तुमसे अब कुछ भी कह नहीं सकते। क्योंकि जो भी तुमसे हमने कहा करने को, तुमने उसे जरूरत से ज्यादा किया। ऐसा शिष्य पाना दुर्लभ है।
साधारणतः गुरुओं को कठिनाई नहीं आती, क्योंकि शिष्य कभी वह करते ही नहीं जो गुरु कहता है। करते भी हैं, तो उतना नहीं करते, जितना गुरु कहता है। इसलिए सुविधा बनी रहती है गुरु को, कि तुमने किया ही नहीं। अगर नहीं पाया, तो विधि गलत है, यह मत समझना। जब किया ही नहीं तो तुम्हीं गलत हो। बुद्ध से यह कहना आसान न था। जो कहा था, उसे उन्होंने रत्ती-रत्ती, जरूरत से ज्यादा पूरा किया था। गुरुओं ने हाथ जोड़ लिए। उन्होंने कहा कि इससे ज्यादा अब हमारे पास कुछ है नहीं।
और बुद्ध सस्ते में राजी न थे। छोटी-मोटी उपलब्धि को कोई मूल्य न देते थे। परमात्मा को ही जानना था। और परमात्मा को भी ऐसे नहीं जानना था कि वह दूर खड़ा हो और हम दूर खड़े हों। उसे भी ऐसा जानना था कि वह हमारा अंतरतम हो! तभी तो जानना जानना है। ऐसा देख लिया आंख भर कर, कौन जाने सपना हो! आंख तो सपने को भी सच मान लेती है। उसकी आवाज सुन ली कानों से, कौन जाने सपना हो! क्योंकि सपने में भी तो आवाज सुनी जाती है। नहीं, यह कोई जानना जानना न हुआ, यह तो परमात्मा भी माया का ही हिस्सा हुआ।
जानना है अंतरतम की भांति। बाहर नहीं; इंच भर की दूरी को सुविधा नहीं है। अपने स्वरूप की तरह जानना है, तभी जानने पर भरोसा होगा। जो आंख के पीछे

छिपा है और देखने वाला है--देखने वाले की तरह जानना है। दृश्य की तरह नहीं, द्रष्टा की तरह जानना है।
थक गए गुरु, उन्होंने हाथ जोड़ लिए। उन्होंने कहा, तुम अपने मार्ग पर जाओ। अब हम और कुछ कह नहीं सकते।
कुंडलिनी जागरण के अनुभव हुए। बुद्ध ने कहा, इससे क्या होगा? अगर रीढ़ में विद्युत कीशृंखला उठने लगी तो इससे क्या होगा? जब शरीर ही छूट जाना है, तो शरीर में जागी कुंडलिनियों का हिसाब रख कर क्या करेंगे? प्रकाश दिखाई पड़े। बुद्ध ने कहा, इनको देख कर भी क्या होगा? बच्चों के खेल-खिलौने हैं। क्योंकि प्रकाश को देखने से भी तो मैं प्रकाश नहीं हो गया। यह भी सब मन का ही खेल है। प्रतिमाएं उठी होंगी परमात्मा की। लेकिन बुद्ध ने कहा कि नहीं, प्रतिमाएं नहीं चाहिए। रूप-आकार नहीं चाहिए। नाम-रूप नहीं चाहिए। वह परम सागर ही जानना है, जिसका न कोई अंत है, न कोई आदि है।
थक गए गुरु। आखिर बुद्ध अकेले विचरण करने लगे। मान-मान कर बहुत से प्रयोग किए थे, अब सोच-सोच कर प्रयोग करने लगे; लेकिन संकल्प की यात्रा जारी रही। छह वर्ष एक पल भी नहीं खोया, हर पल का उपयोग किया; लेकिन कहीं न पहुंचे। थक गए, बुरी तरह थक गए। हताश हो गए, असहाय हो गए। ऐसी गहन हताशा ने पकड़ लिया कि राज्य भी छोड़ा, संसार भी छोड़ा, वह व्यर्थ था। अब यह साधना, तप, योग, यह भी व्यर्थ है, यह भी छोड़ा। छोड़ना उस दिन पूरा हो गया।
उस रात विश्राम किया उन्होंने। वह पहली रात थी जीवन में जब विश्राम किया। जब कुछ करने को ही न बचा, तभी कोई विश्राम कर सकता है। और विश्राम में भक्ति का जन्म है। सोचा भी न था, ख्याल में भी न था कि जिसे श्रम करके न पा सके, उसे विश्राम में पा लेंगे। उस रात वे सिर्फ सो गए। कुछ भी न बचा करने को, तो कोई सपना भी न उठा रात। क्योंकि सपने भी तुम्हारे कृत्य के ही अधूरे हिस्से हैं। जो दिन में छूट गया है, नहीं पूरा हो पाया, वही सपने में पूरा होने की कोशिश करता है। जो महल बनाने चाहे थे और नहीं बना पाए, वे ही सपने में बन जाते हैं। जो धन की राशि इकट्ठी करनी चाही थी, नहीं हो पाई, उसे ही सपने में मन अपने को समझा लेता है।
कोई सपना नहीं, कोई विचार की तरंग नहीं। सुबह नींद खुली, आखिरी तारा डूबता था। उस आखिरी तारे को डूबता बुद्ध देखते रहे और परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए।
बाद में जब लोग बुद्ध से पूछते थे कि कैसे पाया? तो बुद्ध कहते, बड़ी मुश्किल है बात। जब तक पाने की कोशिश की, तब तक तो पाया ही नहीं। पाया तब, जब हताशा परिपूर्ण हो गई थी, असहाय हो गए थे।
भक्त कहता है, असहाय होना ही उसके सहारे को पाने का उपाय है। जब तुम्हारी असहाय अवस्था ऐसी हो गई कि तुम जानते हो कि रत्ती भर भी मेरे किए कुछ न होगा...
ध्यान रखना, यह जानना पड़ेगा, कहने की बात नहीं है। ऐसे तो तुम अपने को
कह सकते हो कि बिल्कुल हताश हो गया हूं। लेकिन भीतर तुम जानते हो, अभी अहंकार जीवित है। अभी भरोसा अपने पर खोया नहीं। अभी अहंकार का सहारा जारी है। अभी तुम जानते हो कि अभी पूरे प्रयास नहीं किए, कुछ और करेंगे तो मिल ही जाएगा। अभी अपने पर भरोसा नहीं खोया है, समर्पण हो नहीं सकता।
लेकिन जब तुम जान ही लोगे, जब यह जानना ऐसे चुभ जाएगा, तीर की तरह हृदय में आर-पार बेध देगा, तब तुम गिरोगे; वही गिरना समर्पण है। तब तुम्हारी आंखों से आंसुओं की धारा बहेगी। वही आंसुओं की धारा प्रार्थना है, पूजा है। बाकी सब धोखा है जो तुम कर रहे हो। मंदिर गए, फूल चढ़ा आए, आंसू न गिरे-- पूजा नहीं हुई। रोए नहीं--प्रार्थना नहीं हुई। प्रार्थना शब्दों से नहीं, आंसुओं से। आंसू इसलिए कि उन्हीं आंसुओं में तुम्हारी हताशा प्रकट होगी। उन्हीं आंसुओं में तुम कहोगे कि मैं काफी नहीं हूं। तेरे बिना कुछ भी न होगा। मैं गिरता हूं। और मुझे तेरे चरणों का कोई पता नहीं, मैं यहीं गिरता हूं जहां खड़ा हूं। जाने का कोई उपाय भी नहीं है। सब तरफ भटक कर देख लिया, तेरा मंदिर कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। अब मैं गिरता हूं।
और जिस दिन तुम ऐसे गिर पड़ोगे, जैसे कोई खाली थैले को छोड़ दे और थैला गिर जाए... ध्यान रखना, खाली थैले को कोई छोड़ दे, तो खाली थैला गिरता भी नहीं, क्योंकि गिरने का भी कोई खाली थैला निर्णय नहीं लेता। कोई संकल्प

नहीं करता कि अब मैं गिरूंगा। क्योंकि जब तक तुम निर्णय कर रहे हो मैं गिरूंगा, तब तक गिरना अधूरा होगा। तुम बाकी रहोगे। गिरना धोखा रहेगा। जहां मैं नहीं बचता और थैले का सब सहारा छूट जाता है, कोई पकड़ नहीं रह जाती, थैला गिर जाता है। उसी क्षण, वहीं परमात्मा के चरण हैं। वहीं उसके मंदिर का शिखर प्रकट हो जाएगा।
सबै सयाने एकमत!
इस संबंध में, दादू कहते हैं, जिन्होंने भी जाना उन्होंने यही कहा है
कि तुम अपने प्रयास से न पा सकोगे, उसके प्रसाद से मिलता है।
तिल-तिल का अपराधी तेरा, रती-रती का चोर।
पल-पल का मैं गुनही तेरा, बक्सौ औगुन मोर।।
तिल-तिल का अपराधी तेरा, रती-रती का चोर।
दादू कहते हैं, मेरा कुछ भी नहीं है। आता हूं खाली हाथ, जाता हूं खाली हाथ; बीच के थोड़े से क्षणों में कितने मेरे का जाल फैला लेता हूं--मेरा मकान, मेरी जमीन, मेरे बेटे, मेरी पत्नी, मेरा धन, पद, प्रतिष्ठा--फैलता जाता है जाल। जब भी तुम कहते हो किसी चीज को मेरा... तिल-तिल का अपराधी तेरा... तो दादू कहते हैं, तुमने अपराध किया। परमात्मा का है सब। उसको तुमने अपना बताया? रती-रती का चोर। तब तुम चोर हो गए।
तुम किसी की चीज चुरा लाते हो, तब तुम चोर होते हो। किसी और की चीज पर दावा कर देते हो, मेरी है, तब तुम चोर होते हो। दादू कहते हैं, तुमने जब भी दावा किया कि मेरा, तभी तुम चोर हो गए। क्योंकि यहां कुछ भी तुम्हारा नहीं है। तुम भी तुम्हारे नहीं हो।
तुम भी कहां से आते हो? तुम स्वयं को लाए नहीं। तुम स्वयं को जिलाए नहीं हो। तुम स्वयं को ले न जाओगे। श्वास पर भी तुम्हारा बल नहीं, अधिकार नहीं। चलती है, चलती है। रुक जाए, रुक जाए। श्वास रुकेगी तो तुम एक श्वास भी ज्यादा न ले सकोगे। और यदि तुम पैदा न होते, तो कहां शिकायत करते? किसको कहने जाते कि मुझे पैदा क्यों नहीं किया? तुम पैदा न होते तो तुम होते ही नहीं, शिकायत कौन करता? तुम पैदा होते हो, तुम जीते हो, तुम फिर खो जाते हो। एक लहर उठती है सागर में, नाचती है, झूमती है, आकाश को छूने का अभियान करती है, गिरना शुरू हो जाती है, फिर सागर में खो जाती है। लहर सागर ही है। लहर में ऐसा कुछ भी नहीं है जो सागर में न हो। लहर में एक रत्ती भी कुछ नया नहीं है जो सागर का न हो। लहर सागर की ही अवस्था है। तुममें तुम्हारा कुछ भी नहीं।
कबीर ने कहा है, मेरा मुझमें कुछ नहीं। मैं भी मेरा नहीं हूं। इसलिए कोई भी दावा व्यर्थ है।
तिल-तिल का अपराधी तेरा, रती-रती का चोर।
और जो कुछ भी है मेरे पास, वह सब चोरी है। चोरी उसी दिन मिटती है, जिस दिन तुम्हारा मेरे का भाव मिट जाता है। कानून जिसको चोर कहता है, वह कुछ भी नहीं है बात। धर्म जिसे चोर कहता है, वह बड़ी गहरी बात है। कानून तो चोर कहता है तुम्हें, क्योंकि तुम किसी की चीज चुरा लाते हो। धर्म तुम दोनों को ही चोर कहता है। क्योंकि वह उसकी भी न थी, जिससे तुम चुरा लाए हो। उसने भी दावा किया था, वह भी चोर था। तुम भी दावा कर रहे हो, तुम भी चोर हो।
धर्म की दृष्टि में सांसारिक आदमी चोर है। उसने चोरी की या नहीं, यह सवाल नहीं है। उसने किसी का छीना या नहीं छीना, यह सवाल नहीं है। मेरा है, ऐसा दावा ही चोरी है।
इसलिए ज्ञानियों ने अचौर्य व्रत पर बड़ा बल दिया है। महावीर ने, पतंजलि ने, बुद्ध ने अचौर्य पर बड़ा जोर दिया है। लेकिन अचौर्य का मतलब महावीर के मानने वाले समझे हैं, इसमें संदेह है। क्योंकि महावीर के मानने वाले यही सोचते हैं, किसी दूसरे की चीज न चुराना; बस अचौर्य व्रत हो गया। अचौर्य का अर्थ वह है, जो दादू कह रहे हैं।
जब तक तुम दावा करोगे मेरे का, तुम चोर हो। जिस दिन दावा इस भांति खो जाएगा कि तुम यह भी दावा न करोगे कि मैं भी मेरा हूं, मेरे का भाव ही तिरोहित हो जाएगा। तुम होओगे, मेरे का भाव न होगा, उसी क्षण अचौर्य प्रकट होता है। समस्त परिग्रह चोरी है। परिग्रह का भाव ही चोरी है। परिग्रह के करने वाले में ही सारी चोरी छिपी है।

शायद तुम्हें कभी ख्याल आता हो। जब भी तुम कहते हो मेरा, तभी मैं को गति मिलती है, बल मिलता है। जितना मेरे का विस्तार होता है, उतना ही मैं मजबूत होता है। निश्चित ही सम्राट का अहंकार बड़ा होता है भिखारी के अहंकार से। क्योंकि सम्राट के मैं को बहुत सहारे होते हैं। भिखारी के पास सहारा भी क्या है? एक टूटा-फूटा भिक्षा का पात्र है, गुदड़ी है, बस यही उसका सारा राज्य है। तो मैं की भी यही सीमा है। मेरे की सीमा ही मैं की भी सीमा है। जितना तुम्हारा मेरा बढ़ता जाता है, उतना तुम्हारा मैं बढ़ता जाता है। इसीलिए तो हम पागल होते हैं कि वस्तुएं बढ़ती जाएं।
कोई ठीक से सोचता नहीं कि आदमी वस्तुओं को बढ़ाने के लिए इतना पागल क्यों होता है? कुछ गहरा कारण होगा। वस्तुओं को बढ़ाने में किसी की उत्सुकता नहीं है, लेकिन वस्तुओं के बिना बढ़े मैं के बढ़ने की सुविधा नहीं है। तो जितनी बड़ी जमीन होगी, उसके बीच में उतने ही बड़े मैं का सिंहासन होगा। जितने धन की राशि होगी, उतना ही ऊपर मैं का सिंहासन होगा। कोई वस्तुओं के लिए वस्तुओं को प्रेम नहीं करता।
उपनिषदों ने कहा है, कोई धन के लिए धन को प्रेम नहीं करता, मैं के लिए
धन को प्रेम करता है। कोई पत्नियों के लिए पत्नियों को प्रेम नहीं करता, मैं के लिए पत्नियों को प्रेम करता है। गहरे में एक ही आकांक्षा है कि मैं कुछ हूं।
अगर सारा मेरे का भाव छिन जाए, गिर जाए, तो मैं बचेगा? बैसाखी अलग हो गई, मैं लंगड़ा जाएगा, वहीं गिर पड़ेगा।
त्याग का अगर कोई अर्थ था तो इतना ही था कि तुम उन सब सहारों को अलग कर लेना, जो मैं को मजबूत करते हैं, बल देते हैं, भोजन देते हैं। सहारे अलग हो जाएंगे, मैं गिर जाएगा।
लेकिन मैं बड़ा कुशल है। वह त्याग को भी अपनी बैसाखी बना लेता है। वह कहता है, मैंने इतना त्याग किया! तब मैं लंगड़ाया नहीं, उसने नये सहारे खोज लिए। मेरे पास लाखों रुपये थे, तब मेरे पास एक बैसाखी थी--लाखों रुपये की। अब मैंने लाखों रुपयों को लात मार दी, अब मेरे पास एक नई बैसाखी है--पुराने से भी ज्यादा मजबूत--कि मैंने लाखों का त्याग कर दिया है। तुम भोग करो तो मैं को बनाते हो, तुम त्याग करो तो मैं को बनाते हो। तुम धन को पकड़ो तो मैं निर्मित होता है, तुम धन को छोड़ो तो मैं निर्मित होता है। और मैं ही असली रोग है, महारोग है। और जब तक मैं है, तब तक तुम चोर हो।
यहूदियों में एक कहावत है कि मैं कहने का अधिकार केवल परमात्मा को है,
और किसी को नहीं।
बात ठीक मालूम पड़ती है। क्योंकि जिसका सब है, उसको ही मैं कहने का अधिकार होना चाहिए। हमारा तो कुछ भी नहीं है। अगर यह बात तुम्हें ठीक-ठीक दिखाई पड़ जाए कि मेरा कुछ भी नहीं है, तो ही दादू का वचन साफ होगाः
तिल-तिल का अपराधी तेरा...
जहां-जहां मैंने दावा किया, वहीं अपराध हुआ।
जहां मैंने कहा मेरा, तिल को भी कहा हो मेरा, वहीं अपराध हुआ।
तिल-तिल का अपराधी तेरा, रती-रती का चोर।
और जो कुछ भी है मेरे पास, सब चोरी है।
है सब तेरा और मैं दावा किए चला जाता हूं कि मेरा है।
पल-पल का मैं गुनही तेरा, बक्सौ औगुन मोर।।
और प्रतिपल सिवाय इसके मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं।
गुनाह कर रहा हूं, पाप कर रहा हूं।
तुम पाप से यह मत समझ लेना कि तुम पुण्य भी कर रहे हो--कुछ पाप, कुछ पुण्य। नहीं; जब तक करने वाला मैं है, तब तक सभी पाप है। तुम दान दो तो पाप; तुम चोरी करो तो पाप; तुम किसी को मार डालो तो पाप और तुम किसी को दवा दो तो पाप। क्योंकि पुण्य तो वहीं घटता है जहां तुम नहीं होते; वह तुम्हारे अभाव में प्रकट होता है। क्योंकि पुण्य का अर्थ है परमात्मा का आविर्भाव। जहां तुम हट जाते हो, जगह खाली कर देते हो और तुम्हारे भीतर परमात्मा आविर्भूत होता है, उस क्षण ही पुण्य है। सब पुण्य परमात्मा का, सब पाप आदमी के। आदमी पुण्य कर ही नहीं सकता।

इसे थोड़ा समझना। क्योंकि तथाकथित धर्म तुम्हें यही समझाए जाते हैंः पाप छोड़ो, पुण्य करो। लेकिन जो जानते हैं, वे कहते हैं कि तुम पाप ही करोगे, तुम पुण्य कर ही नहीं सकते। क्योंकि तुम्हारे होने में ही महापाप छिपा है। तुम ही करोगे न! तुम्हारा मैं ही मजबूत होगा।

तुम एक मंदिर बनाओगे तो उसमें परमात्मा की स्थापना तो गौण है, मंदिर
के द्वार पर जो तुम अपने नाम का पत्थर लगाओगे, वही असली बात है। मंदिर तो तुम बनाते हो उस नाम के पत्थर के लिए। प्रतिमा भी रखनी पड़ती है, क्योंकि बिना प्रतिमा के कोई उस मंदिर में आएगा नहीं। प्रतिमा भी तुम्हारे नाम के पत्थर के लिए सहारा है। तुम ऐसा मत सोचना कि मंदिर तुमने बनाया परमात्मा का और अपना पत्थर लगाया है। मंदिर तुमने बनाया अपना और परमात्मा की प्रतिमा वहां रख दी है। वह केवल सजावट है मंदिर की। मंदिर तुम्हारे अहंकार का है।
जिस दिन यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा, उस दिन यह बात भी समझ में आ जाएगी कि मेरे रहते पुण्य नहीं हो सकता; कि मैं जो भी करूंगा, उसी पर पाप की छाया पड़ जाएगी। चूंकि मैंने किया, मैं सघनीभूत है, वहीं चारों तरफ पाप फैल जाएगा।
पल-पल का मैं गुनही तेरा, बक्सौ औगुन मोर।
मेरे अपराधों को, मेरे दुर्गुणों को, मेरे अवगुणों को क्षमा कर दो। भक्त क्षमा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर सकता, क्षमा मांगने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर सकता।
यही फर्क है। भक्त साधक नहीं है। भक्त कहता है, मैं तो साधना भी करूंगा तो पाप हो जाएगा। मैं तो ध्यान भी करने बैठूंगा तो अकड़ आ जाएगी कि मैं ध्यानी। मैं तो दान भी दूंगा तो भी अहंकार ही उससे सजेगा, संवरेगा। वे अहंकार के ही आभूषण सिद्ध होंगे। मैं सिर्फ क्षमा ही मांग सकता हूं, कोई और उपाय नहीं है, असहाय हूं।
साधक का अर्थ ही होता हैः वह, जो अभी उपाय में लगा है। जो कहता है, मैं कुछ करूंगा। पाप किया है? कोई फिक्र नहीं, पुण्य करके पाप को काटूंगा। बुरा किया है? कोई फिक्र नहीं, अच्छा करूंगा। चोरी की थी, दान कर दूंगा। लेकिन करने वाला दोनों के भीतर मौजूद है, एक सा मौजूद है। ऊपर-ऊपर फर्क हो जाएंगे, काले वस्त्रों की जगह सफेद वस्त्र आ जाएंगे, लेकिन हृदय की कालिख न मिटेगी। दुनिया भला कहेगी, सम्मान मिलेगा, कोई अपमान न करेगा। लेकिन भीतर? भीतर अवस्था पहले से भी बुरी हो गई। क्योंकि पहले तो कुछ पीड़ा भी होती थी, स्वयं को भी अनुभव होता था, कांटा चुभता था, कि बुरा कर रहा हूं। अब तो भीतर अकड़ और बढ़ गई कि भला कर रहा हूं। अब तो फूल ही फूल खिल गए, सब कांटे खो गए। अब तो भीतर, संभावना भी थी क्रांति की, वह भी समाप्त हो गई। इसीलिए कभी-कभी बुरा आदमी भी परमात्मा को पा लेता है, भले आदमी मुश्किल से पाते हैं। दुर्जन भी पहुंच जाते हैं, सज्जन का पहुंचना बड़ा मुश्किल हो जाता है। क्योंकि सज्जन यह मानता ही है कि अगर परमात्मा को मिलना हो तो खुद ही आ जाए। सज्जन तो यह मानता है कि वह परमात्मा पर थोड़ी कृपा ही कर रहा है--इतने पुण्य कर्म कर रहा है!
कभी-कभी पापी भी पहुंच जाते हैं, लेकिन पुण्यात्मा नहीं। क्योंकि पुण्य तो तुम करोगे ही कैसे? तुम जो भी करोगे, पाप होगा।
पाप की परिभाषा समझ लोः अहंकार से जो भी होगा, वह पाप।
पाप का संबंध परिणाम से नहीं है, पाप का संबंध स्रोत से है।
लोग कहते हैं पाप, अगर उसका परिणाम बुरा हो। तुमने किसी को मार डाला; क्योंकि वह मर गया, इसलिए पाप। तुम गए, और एक बीमार आदमी की सेवा की और वह बच गया, इसलिए पुण्य। परिणाम तुम्हारे कृत्य का अगर बुरा हुआ तो पाप, अगर भला हुआ तो पुण्य। यह साधारण नैतिक परिभाषा है। इससे कानून जीता है, अदालत जीती है।
धर्म की परिभाषा बहुत गहरी है। धर्म कहता है कि परिणाम से कोई संबंध नहीं है। क्योंकि कभी-कभी ऐसा होता है, तुम बुरा करना चाहते थे और परिणाम अच्छा हो जाता है। और कभी-कभी ऐसा भी होता है, तुम अच्छा करना चाहते थे और परिणाम बुरा हो जाता है। तुमने दवा बड़ी हितेच्छा से दी थी और मरीज मर गया।

और एक आदमी रास्ते पर चला जा रहा था, तुमने क्रोध से पत्थर उठा कर मार दिया, उसकी खोपड़ी में चोट लग गई। उसको मानसिक बीमारी थी, वह चोट लगने से समाप्त हो गई। कभी परिणाम अच्छे हो जाते हैं।
इसलिए परिणाम गौण है, स्रोत! कहां से आता है कृत्य! पाप आता है अहंकार से, पुण्य आता है निरहंकार से। पाप तुम करते हो, पुण्य परमात्मा करता है। तो पुण्य करने का उपाय क्या है? एक ही उपाय है कि तुम उसे करने दो, तुम कर्ता न रह जाओ। तुम छोड़ दो अपने को उसके हाथों में। वह जहां ले जाए। कृष्ण की सारी गीता इस एक छोटी सी बात को समझाने के लिए कही गई है। अर्जुन नैतिक परिभाषा से उलझा है। वह कहता है, ये मेरे हैं। इनको मारूंगा, पाप लगेगा। इतने लोगों को मारूंगा, सारे प्रियजन मर जाएंगे, साम्राज्य भी मिल जाएगा तो क्या फायदा है? कौन सुखी होगा उस साम्राज्य को देख कर? मैं बैठ जाऊंगा, मरघट पर सिंहासन रख लूंगा।
लेकिन वह कहता है, ये मेरे हैं। इसलिए मारने से डरता है। अगर ये मेरे न होते, तो अर्जुन को जरा भी चिंता न थी। अगर इनमें प्रियजन न होते, भीष्म न होते, द्रोण न होते, भाई-बंधु न होते, तो अर्जुन को जरा चिंता न होती। उसने घास-पात की तरह इनको काट दिया होता। ये मेरे हैं; इनका मुझसे अहंकार का संबंध है।
और यह बात जरूर सच है कि अगर अपने ही सब जो हैं, वे मर जाएं, तो साम्राज्य तुमने जीत लिया, यह किसको दिखाओगे--झाड़ों को, वृक्षों को? आदमी प्रतिष्ठित होता है तो चाहता है कि परिवार के लोग जान लें, मित्र-प्रियजन पहचान लें। अगर तुम चले जाओ दूर अफ्रीका के किसी एकांत कोने में और वहां तुम्हारी पूजा भी होने लगे, तो भी तुम्हारे मन में आकांक्षा यही होगी कि पूना के लोगों को खबर हो जाए। क्योंकि वहां पूजा का मतलब भी क्या है? जो तुम्हें सदा से जानते हैं, निकट हैं, प्रिय हैं, उनके सामने ही तुम्हारी पूजा हो, तो ही अहंकार को कुछ मजा है। अगर जंगल में तुम चले जाओ और आकाश से फूल भी बरसने लगें, देवी-देवता भी तुम्हारी पूजा करें, तुम्हें कुछ मजा न आएगा। क्योंकि झाड़, वृक्ष, जंगली जानवर देखेंगे, आदमी तो कोई होगा नहीं। आदमी कम से कम देख ले। क्योंकि आदमी से चाहे कितना ही अपरिचय हो, फिर भी आदमी तुम्हारा है, समान-जातीय है, एक-गुणधर्मा है।
अर्जुन कह रहा है, मेरे हैं, इसलिए मारने से डरता हूं, पाप होगा। और कृष्ण उसे यही समझा रहे हैं कि मेरे का ख्याल ही पाप है। तू मेरे के ख्याल को छोड़ दे, तू निमित्त मात्र हो जा। तू कर्ता मत रह, परमात्मा को करने दे। फिर जो परमात्मा को करना हो। तू बीच में मत आ। फिर जो भी होगा, वह पुण्य होगा।
चूंकि अर्जुन बन सका निमित्त, इसलिए व्यास ने कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र कहा है। वह युद्ध धर्मयुद्ध हो गया; क्योंकि वह फिर अर्जुन ने नहीं लड़ा, परमात्मा ही अर्जुन के माध्यम से लड़ा। अर्जुन सिर्फ खूंटी हो गया। परमात्मा ने अपने को उस खूंटी पर टांग दिया। अर्जुन कोई भी न रहा, वह बीच में बाधा न बना। वह बांसुरी हो गया, स्वर उसके गूंजने लगे, गीत उसका उतरने लगा।
पल-पल का मैं गुनही तेरा, बक्सौ औगुन मोर।।
पल-पल गुनाह किया है, तिल-तिल अपराध किया है, रत्ती-रत्ती चोरी की है,
और मुझे कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता सिवाय इसके कि तुम क्षमा कर दो। मेरे बस में कुछ भी नहीं है कि मैं इसका प्रतिकार करूं। तो मैं जो भी करूंगा, वह फिर इसी में ही जोड़ होगा।
इस घड़ी में भक्ति का जन्म होता है। भक्ति बहुत अनूठा फूल है। साधक होना साधारण बात है, अहंकार का हिस्सा है। भक्त होना बड़ी असाधारण बात है। उससे बड़ी कोई क्रांति नहीं है।
गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहां हम जाहिं।
कहां भागूं? भाग कर जाऊंगा कहां? कुछ भी करूं, कोई बचाव नहीं है। कहीं
भी जाऊं, कोई बचाव नहीं है, क्योंकि मैं तो मैं ही रहूंगा। हिमालय चला जाऊंगा तो भी मैं तो मैं ही रहूंगा। मैं जहां भी रहूंगा वहीं पाप होता रहेगा, वहीं गुनाह होता रहेगा। मेरे होने में ही समाया है।

संसार को छोड़ कर भक्त नहीं भागता। क्योंकि भक्त कहता है, भाग कर जाऊंगा कहां? इसलिए भक्ति के जितने संप्रदाय हैं, वे कोई भी त्यागवादी और भगोड़े नहीं हैं। उन्होंने पलायन नहीं सिखाया है। भक्त कहता है, भाग कर कहां जाऊंगा? भाग कर किससे जाऊंगा? अगर किसी और के कारण पाप हो रहा था, तो भागने से बच जाता। पाप अपने कारण हो रहा है।
तो जंगल में तुम अकेले बैठोगे तो भी तुम विचार तो वही करोगे जो तुम यहां करते थे। हो सकता है करने का भी मौका न मिले, तो सपने देखोगे, सपनों में करोगे। लेकिन धारा तो जारी रहेगी। अनवरतशृंखला वही बहती रहेगी। बाजार जारी रहेगा। तुम भला एकांत में बैठे रहो, भीड़ मौजूद रहेगी। तुम वही करते रहोगे भीतर, जो तुम यहां कर रहे थे। अगर तुम क्रोध यहां कर रहे थे, तो वहां भी तुम क्रोध करोगे। हो सकता है आदमी न मिलेंगे क्रोध करने को, तो कौआ बीट कर देगा वृक्ष के ऊपर से, सिर पर बीट गिर जाएगी, क्रोध आ जाएगा। परिस्थिति तो कुछ न कुछ मौजूद रहेगी। अगर परिस्थिति से तुम आविष्ट हो जाते हो, क्रोध आ जाता है, दुख आ जाता है, पीड़ा आ जाती है, तो परिस्थिति तो मिटेगी नहीं, हिमालय पर भी रहेगी। अगर कोई भी क्रांति होनी है, तो वह मनःस्थिति की है। परिस्थिति की क्रांति से कोई प्रयोजन नहीं है। गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहां हम जाहिं।
भाग भी लिया होगा दादू ने। पहले आदमी कोशिश करता है सब। अपने से हो जाए तो अच्छा। जब नहीं होता; जब पाता है, यह होना असंभव है; यह स्वभाव का सिद्धांत ही नहीं; तभी यह बोध उठता है कि भाजि कहां हम जाहिं? भाग कर देख लिया होगा। काशी-काबा भटक लिए होंगे, तीर्थयात्रा कर ली होगी, मंदिर-मस्जिद झांक लिए होंगे, शास्त्रों में प्रवेश कर लिया होगा, एकांत गुफाओं में निवास कर लिया होगा, पाप छोड़ कर पुण्य कर लिया होगा, चोरी छोड़ कर दान कर लिया होगा, गाली-गलौज छोड़ कर प्रार्थना कर ली होगी, लेकिन पाया होगा, कुछ होता नहीं। जिस हृदय से गाली-गलौज उठती थी, उसी से प्रार्थना उठ रही है, तो प्रार्थना में भी कोई मौलिक भेद नहीं हो सकता।
वेदों में इस तरह की प्रार्थनाएं हैं जो मन को घबड़ाती हैं। वेद बहुत ईमानदार शास्त्र हैं। उन्होंने आदमी को वैसा ही चित्रित किया है जैसा आदमी है। और यह अच्छा है, क्योंकि आदमी की सही तस्वीर होनी चाहिए। तो वेदों में ऐसी प्रार्थनाएं हैं जिनको हम प्रार्थना भी नहीं कह सकते। एक किसान प्रार्थना करता है कि हे परमात्मा, हे इंद्र देवता, वर्षा हो तो मेरे खेत में हो, मेरे दुश्मन के खेत में न हो। यह प्रार्थना है! मेरी गाय के थनों में तो दुगुना दूध हो जाए, पड़ोसी की गाय के थन सूख जाएं। यह प्रार्थना है! वेद बहुत ईमानदार शास्त्र हैं। उन्होंने इनको भी संगृहीत किया है। क्योंकि आदमी के हृदय को साफ करने की जरूरत है। आदमी का हृदय ऐसा है। वह गाली बके तो गाली भी वहीं से आती है, प्रार्थना भी वहीं से आती है। दादू ने प्रार्थना भी कर ली होगी और पाया होगा कि गाली से उस प्रार्थना के गुण में कोई फर्क नहीं पड़ता। वह वही की वही है। शब्द बदल जाते हैं, ज्यादा सौष्ठव, सुसंस्कृत, लेकिन उनका मूल आधार वही है। गुनहगार अपराधी तेरा, भाजि कहां हम जाहिं।
यह बहुत बड़ी क्रांति का क्षण है जब तुम्हें समझ में आ जाए कि भाजि कहां हम जाहिं? कहां भाग कर जाएंगे? नहीं, कोई शरण नहीं है, कोई बचाव नहीं है, कोई सुरक्षा नहीं है। गिरना ही पड़ेगा। छोड़ना ही पड़ेगा अस्मिता को। वह जो भाग-भाग कर बच रहा है, वह भी अहंकार है। वह आखिरी कोशिश में लगा है कि कोई उपाय खोज लेंगे। पुण्य का आवरण बना लेंगे, प्रार्थना के वस्त्र बना लेंगे, पूजा के आभूषण बना लेंगे। संसार बुरा है, बुराई हो जाती है। मंदिर में छुप कर बैठ रहेंगे, बाहर निकलेंगे ही न।
लेकिन ध्यान रखना, जब तक तुम पलायन करोगे, तब तक तुम रूपांतरित न होओगे। पलायन का अर्थ ही है कि तुम रूपांतरण से बचने की कोशिश कर रहे हो। किसी तरह जैसे हो वैसे ही रह जाओ, परिस्थिति भर बदल जाए। यही तो हर आदमी कर रहा है। गरीब आदमी से पूछो। वह कहता है, मैं दुखी हूं, क्योंकि धन नहीं है।
धन की तलाश कर रहा हूं, धन मिलते ही सुखी हो जाऊंगा।
धनी आदमी से पूछो। वह कहता है, धन तो मिल गया, लेकिन मैं सुखी नहीं हूं। मैं पद की तलाश कर रहा हूं। क्योंकि धन से अकेले क्या होगा? जब तक

राष्ट्रपति न हो जाऊं, प्रधानमंत्री न हो जाऊं, कुछ भी धन से न होगा। तो लुटा दूंगा सारा धन चाहे चुनाव में, लेकिन प्रधानमंत्री होना है। एक दफा प्रधानमंत्री हो जाऊं, तो सुख ही सुख है।
प्रधानमंत्रियों से पूछो, राष्ट्रपतियों से पूछो। कोई सुख नहीं दिखाई पड़ता। जो जहां है, वहीं दुखी है। लेकिन इस आशा में कि कहीं और सुख होगा, आदमी दुख के मूल को नहीं देख पाता। यह नहीं देख पाता कि मेरे होने के ढंग में दुख है। तो मैं अगर प्रधानमंत्री हो जाऊं तो प्रधानमंत्री होकर दुखी होऊंगा।
गरीब आदमी अपने झोपड़े में दुखी होता है, अमीर आदमी अपने महल में दुखी होता है। दुख में कोई फर्क नहीं पड़ता। गरीब आदमी गरीब ढंग से दुखी होता है, अमीर आदमी अमीर ढंग से दुखी होता है। लेकिन दुख में कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि दुख का कोई संबंध बाहर की किसी स्थिति से नहीं है। दुख पैदा होता है अहंकार के चुभने से, और वह भीतर है।
भाजि कहां हम जाहिं।
फिर ऐसी घड़ी आ जाती है कि संसार भर दुख है, ऐसा भी अनुभव होने लगता है,
तो आदमी संसार को छोड़ कर भागता है। फिर भी अहंकार को नहीं छोड़ता, संसार को छोड़ता है। पहले गरीबी को छोड़ता था, अमीरी को पकड़ता था; अब संसार को छोड़ता है, संन्यास को पकड़ता है। लेकिन अभी भी यात्रा बाहर ही होती है। संसार और संन्यास दोनों बाहर हैं। अभी भी वह घड़ी नहीं आई जहां उसको समझ में आ जाए-- भाजि कहां हम जाहिं।
जब यह समझ में आ जाता है कि भाग कर कहीं भी नहीं जा सकते। भागने का कोई उपाय ही नहीं है, हम बिल्कुल निरुपाय हैं, असहाय हैं।
दादू देखा सोधि सब...
सब शोध लिया, सब अनुभव कर लिया।
... तुम बिन कहिं न समाहिं।
और कोई जगह नहीं है, जहां छुटकारा हो सके। तुम बिन कहिं न समाहिं! बस तुम्हीं हो एक, जहां समाना हो सकता है; और कहीं समाएंगे न।
दादू देखा सोधि सब...
जल्दी मत करना। क्योंकि अगर तुमने जल्दी की तो पके नहीं रहोगे तुम।
एक तो पके फल का गिरना है। न तो वृक्ष को चोट लगती है, कानों-कान किसी को खबर भी नहीं होती, पका फल चुपचाप गिर जाता है। एक कच्चे फल का गिरना है। पत्थर मारो, लकड़ी से चोट करो, तब भी कच्चा फल प्रतिरोध करता है, रुकने की कोशिश करता है। अभी पका ही नहीं है, गिराने की कोशिश शुरू हो गई। फिर तुम उसे गिरा भी लो, तो वह कच्चा है, किसी योग्यता का नहीं है। फिर उसे तुम गर्मी में रख कर किसी तरह पका भी लो, तो उसमें स्वाद नहीं है, सुगंध नहीं है। वह अपनी नैसर्गिक निष्पत्ति को उपलब्ध नहीं हुआ।
जल्दी मत करना। अगर दादू को भी सब शोध कर देखना पड़ा, तो तुम दादू से ज्यादा कुशल होने की कोशिश मत करना। क्योंकि जब सब शोध कर कोई देख लेता है, जीवन के सब अनुभव जी लेता है, तब एक पकान, एक परिपक्वता आती है। तब तुम गिर पड़ते हो पके फल की भांति।
दादू देखा सोधि सब...
जरा सी भी रेखा नहीं रहती भीतर कोई--कि शायद थोड़ी देर और वृक्ष पर रह जाते तो सुख मिलता; कि शायद इस वर्षा और टिक जाते तो सुख मिलता; कि शायद हवा का एक झोंका आने को था और सुख की वर्षा हो जाती और पहले ही छूट गए। अगर जरा सी भी रेखा आशा की शेष रह गई है, तो तुम गिर भला जाओ, वह गिरना समर्पण न होगा। और अगर समर्पण न होगा, तो परमात्मा के चरण उपलब्ध न होंगे।
इसे ठीक से समझ लो। इसे मैं फिर दोहराता हूं। तुम्हारी परिपक्वता से पैदा हुआ जो समर्पण है, वहीं परमात्मा के चरण प्रकट होते हैं। अगर तुम कच्चे गिर गए, तो न तो तुममें स्वाद होगा, न तुममें सुगंध होगी, न परमात्मा के चरण तुम्हें उपलब्ध होंगे।
अनेक बार अनेक लोग मेरे पास आ जाते हैं। वे कहते हैं, सब छोड़ दिया, अभी
तक परमात्मा मिला नहीं।
छोड़ने में कहीं भूल हो गई होगी। छोड़ने के पहले ही भूल हो गई होगी। छोड़ दिया होगा दादुओं को सुन कर। क्योंकि दादू कहते हैं कि सब व्यर्थ। लेकिन

यह दादू का अपना परिपक्व अनुभव है, तुम्हारा नहीं। सुन लिया दादू को, बात जंच गई, छोड़ दिया। बात जंची, अनुभव न था। सुगंध न आई, स्वाद न आया, पके नहीं, अधपके रह गए। इससे बेहतर था वृक्ष पर ही रहते। थोड़ी प्रतीक्षा करते, थोड़ा धैर्य रखते।
प्रत्येक व्यक्ति को सारे अनुभवों से गुजरना पड़ता है। यहां कोई शार्टकट, कोई जल्दी पहुंच जाने का मार्ग नहीं है। परमात्मा शार्टकट में भरोसा ही नहीं करता। क्योंकि जितनी जल्दी घटना घट जाए, उतने ही अधपके तुम रह जाओगे।
जैसे कोई बच्चा जल्दी जबरदस्ती मशीन की सहायता से जवान कर दिया जाए। तुम जानते हो कैसी मुसीबत हो जाएगी! हवा भर दी जाए उसके भीतर और उसके शरीर को बड़ा कर दिया जाए। वह रहेगा तो बच्चा ही, दिखने लगेगा जवान। अब और मुश्किल होगी। अगर वह बच्चा ही था, तो लोग उसको माफ भी कर देते, अब लोग उसको माफ भी न कर पाएंगे। अब वह दिखता तो जवान है और भीतर बच्चा है। अगर तुम उसे रास्ते पर खिलौने से खेलते देखोगे, तो हंसोगे। कहोगे, पागल है! छोटा बच्चा था और खिलौने से खेलता, कोई पागल न कहता। वह बिल्कुल योग्य था, तालमेल था, गणित सीधा था। अब यह बच्चा है। दिखता जवान है, दाढ़ी-मूंछ उग गई, खेल रहा है खिलौनों से। लोग हंसेंगे। लोग कहेंगे, तुम पागल हो।
अगर किसी को जबरदस्ती बूढ़ा कर दिया जाए, उसकी जिंदगी तो वहीं अटकी रहेगी जहां तक स्वभाव उसे लाया था। तुमने जबरदस्ती उसे बूढ़ा कर दिया, हार्मोन के इंजेक्शन दे दिए और किसी तरह ठोंक-पीट कर उसको बड़ा कर दिया। वह बूढ़ा भी मूलतः तो बच्चा रहेगा और बड़ी बेचैनी में, दुविधा में पड़ जाएगा। ऐसे मैंने बहुत लोग देखे हैं। संन्यास लेकर बैठ गए, जंगल में कुटी बना ली। मन अभी बाजार में था। मन अभी बच्चे का था। अभी खिलौने और कुछ दिन चाहिए थे। अभी सब शोध कर न देखा था और परमात्मा का लोभ पकड़ गया। यह भी लोभ है, यह समझ नहीं है। क्योंकि परमात्मा की तरफ जब कोई जाता है तो दो तरह से जा सकता है। या तो जीवन के अनुभव ने उसे भेजा, पकाया, पूरा हुआ, वृक्ष छूट गया संसार का। छोड़ा नहीं, छूट गया। फल गिर गया। और एक लोभ के कारण--कि सुना कि संत कहते हैं बड़ा आनंद है; कि परम आनंद है, परमानंद है परमात्मा को पाने में। लोभ जगा; भाग खड़े हुए बाजार से, संसार से; परमात्मा की तलाश में लग गए।
ऐसे आदमियों से परमात्मा भागता है और बचता है। क्योंकि ये अभी योग्यता को अर्जित ही न कर पाए। अभी इनका स्वर्णपात्र तैयार भी न हुआ था और अमृत की खोज में निकल गए। स्वर्णपात्र तैयार हो, तो ही अमृत उस पात्र में गिरेगा। पात्रता न हो, तो अमृत के अवतरण की कोई संभावना नहीं है। दादू देखा सोधि सब...
ऐसा किसी शास्त्र को पढ़ कर दादू ने नहीं कहा है। ऐसा किन्हीं और संतों
को पढ़ कर दादू ने नहीं कहा है। कबीर कहते हैं, लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात। ऐसा कुछ पढ़ा, लिखा और जान लिया, ऐसा नहीं है। देखा! देखा देखी बात।
दादू देखा सोधि सब...
सब देखा, अपनी आंख से देखा। अपने प्राणों से परिचय पाया।
तुम बिन कहिं न समाहिं।
और यह अपने में ही अनुभव उठा है। यह किसी शास्त्र का उधार वचन नहीं है। यह अपने ही प्राणों में उठा है स्वर--तुम बिन कहिं न समाहिं। कहीं भी भाग कर जाएं--भाजि कहां हम जाहिं। कहीं कोई भागने की जगह नहीं है। तुम ही हो एकमात्र शरण। तुममें ही गिरने का, खो जाने का उपाय है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई तृप्त न करेगा। तुम्हारे अतिरिक्त कोई सुख नहीं। तुम्हारे अतिरिक्त कोई शांति नहीं। तुम्हारे अतिरिक्त कोई धन नहीं, कोई पद नहीं। तुम ही सार-सर्वस्व हो।
तुम बिन कहिं न समाहिं।
और कहीं भी समाने की सुविधा नहीं है। लहर वापस सागर में ही समा सकती है; और कहां समाएगी? कितनी ही उठे आकाश की तरफ, आकाश में न समा सकेगी।
हवाओं के साथ थोड़ी देर खेल ले, इठला ले, हवाओं में न समा सकेगी। लहरों का अंतिम गंतव्य सागर ही होगा। क्योंकि जहां से हम आते हैं, वहीं हम समा सकते हैं। स्रोत ही हमें स्वीकार कर सकता है पुनः। और कहीं हम समा नहीं सकते।

जहां से तुम आए हो, वहीं तुम वापस लौटोगे। बाकी यात्रा लंबी हो, छोटी हो, लेकिन उस यात्रा में कहीं भी तुम समा नहीं सकते। और जब तक तुम समा न जाओ, तब तक कैसा सुख! जब तक तुम इतने न समा जाओ कि तुम्हें अपना बोध भी न रह जाए, तब तक कैसी समाधि! तब तक कैसा हर्षोन्माद! नहीं, संभव नहीं। तुम भूल जाओ; इतने भूल जाओ कि तुम्हें यह भी पता न हो कि मैं हूं। सागर ही रह जाए, लहर खो जाए।
तुम बिन कहिं न समाहिं।
आदि अंत लौ आई करि, सुकिरत कछू न कीन्ह।
शुरू से लेकर आज तक कुछ भी पुण्य हमसे न हो सका। अगर तुम्हें थोड़ा भी ख्याल हो कि एकाध पुण्य तुमने किया है, तो तुम अभी भक्त न हो सकोगे।
आदि अंत लौ आई करि...
आदि से अंत तक--आज तक।
... सुकिरत कछू न कीन्ह।
कोई सुकृत्य हमसे हुआ हो, ऐसा नहीं है। पुण्य हुआ ही नहीं, पाप ही पाप हुआ है।
इससे तुम यह मत समझ लेना कि दादू महापापी रहे होंगे। तुमसे तो बहुत सुकृत हुए हैं। यही पुण्य की शुरुआत है--पाप का बोध। पाप का बोध ही पुण्य का जन्म है। और जिस दिन तुम पाते हो कि अपने से कुछ ठीक हुआ ही नहीं। क्योंकि हम ही ठीक न थे, ठीक होता कैसे? कृत्य तो कर्ता से आता है। तुम ही तिरछे थे, तो तुमसे जो भी हुआ वह तिरछा हुआ। तुम ही अंधकार में थे, तुमसे जो पैदा हुआ वह अंधकार से भरा था। तुम बेहोश थे, तुमसे जो आया उससे बेहोशी और संसार की बढ़ी, घटी नहीं।
एक आदमी शराब पीए रास्ते पर जा रहा है; उससे जो भी होगा, वह गलत ही होगा।
मैंने सुना, अकबर निकलता था एक दिन अपने हाथी पर सवार और एक शराबी ने खड़े होकर अपने छप्पर पर मकान के, उसे गालियां देनी शुरू कर दीं।
सम्राटों को गालियां तो कोई भी देना चाहता है, क्योंकि ईर्ष्या पलती है। उन्हीं गालियों को छिपाने के लिए हम सम्राटों की प्रशंसा करते हैं, ताकि किसी को शक न हो जाए कि तुम्हारे भीतर गाली है। जिसके पास ज्यादा धन है, जिसके पास ज्यादा शक्ति है, वह स्वभावतः जिनके पास नहीं है, उनमें गहन ईर्ष्या को पैदा करता है। उस ईर्ष्या का कहीं पता न चल जाए, कहीं तुम पकड़े न जाओ, इसलिए लोग अतिशय दूसरी तरफ झुक जाते हैं--प्रशंसा करते हैं, खुशामद करते हैं। सम्राटों की जो स्तुति करने वाले लोग हैं, अगर तुम उनके हृदय में खोजो तो स्तुति का कण भी न पाओगे, गालियां ही गालियां पाओगे। उन्हीं गालियों को छिपाने के लिए तो स्तुति चल रही है। वे जो भीतर घाव हैं, उनको छिपाने के लिए सुंदर आभूषण बनाए गए हैं।
यह शराब पीए था। इसे होश ही न रहा कि क्या कर रहा है। दिल की सीधी बात निकल गई। शराब का बड़े से बड़ा खतरा यही है कि तुम साफ होश में नहीं रहते। क्या कहना है, वह भूल जाते हो। जो भीतर था, वही बाहर आ जाता है। लोग जानते हैं अच्छी तरह कि शराब जब कोई पी लेता है, तो कम से कम धोखा नहीं दे सकता; ईमानदार और सच्चा हो जाता है। ईमानदार इस अर्थों में कि जो भी है भीतर, वह बाहर आ जाता है। वह छिपाने वाला, ढांकने वाला मौजूद नहीं है। खूब दिल खोल कर गाली दे रहा था। अकबर ने उसे पकड़वा बुलाया। रात भर जेल में रखा, सुबह उसे दरबार में बुलाया और कहा कि यह क्या बदतमीजी है! इस तरह की गालियां तुमने क्यों दीं?
उसने कहा, मैंने गालियां दी ही नहीं। मैं शराब पीए था। मैं तो सदा आपकी स्तुति करता हूं। वह स्तुति करने लगा। उसने सम्राट की प्रशंसा के गीत बनाए थे, वह गीत गाने लगा। उसने कहा कि मैं तो आपकी ही स्तुति के गीत लिखता हूं। शराब पीए था, उसके लिए मैं जिम्मेवार नहीं हूं।
अकबर को भी बात समझ में आई कि शराब पीए था तो आदमी कैसे जिम्मेवार हो सकता है? बेहोशी में जो किया गया है, वह क्षम्य है। और होश में तो आदमी देखो, स्तुति कर रहा है। माफ कर दिया उस आदमी को।
दादू कहते हैं, सुकिरत कछू न कीन्ह! अब तक जो भी हुआ, सब गलत ही हुआ।
होश ही न था। पुण्य करते भी तो कैसे करते? कौन करता पुण्य? पुण्य भी किया

तो पाप ही हुआ। सोने को भी छुआ तो मिट्टी हो गई। हम ही गलत थे, हमारे किए ठीक होने का कोई उपाय ही न था।
यह बात जब किसी को समझ में आती है तो विनम्रता का जन्म होता है। तब आदमी अपनी असलियत को देख पाता है। तब झुकना नहीं पड़ता। झुकने का सवाल ही नहीं उठता। अकड़ कर खड़े रहने का उपाय नहीं रह जाता। तब ऐसा नहीं कि झुकना पड़ता है। इसलिए मैंने कहा कि खाली थैले की तरह। जिस दिन बोध आता है, थैला छूट जाता है, गिर जाता है।
आदि अंत लौ आई करि, सुकिरत कछू न कीन्ह।
माया मोह मद मंछरा, स्वाद सबै चित दीन्ह।।
और इन्हीं चीजों का स्वाद लिया है अब तक--माया का, मोह का, मद का, मत्सर का। तेरा तो कोई स्वाद अब तक लिया नहीं।
स्वाद सबै चित दीन्ह।
इसी तरह की गलत चीजों में भटकते रहे। क्योंकि जब तक भीतर अहंकार हो,
तब तक माया से, मोह से, मद से, मत्सर से ही संबंध हो सकता है। क्योंकि ये सब साथी हैं, सगे-संबंधी हैं। यह परिवार है। अहंकार केंद्र है; माया, मोह, मत्सर उसकी परिधि।
दादू बंदीवान है, तू बंदी छोड़ दिवान।
अब जनि राखौं बंदि मैं, मीरा मेहरबान।।
दादू कहते हैं, मैं तेरे कारागृह में पड़ा हूं। बंदी हूं, पापी हूं, गुनहगार हूं। तू क्षमा करने वाला है। मैंने सिवाय पापों के कुछ भी नहीं किया है, इसलिए क्षमा मांगने का कोई अधिकार मेरा नहीं।
इस बात को ख्याल रखना। क्योंकि तुम अगर अधिकारपूर्वक क्षमा मांगो, तो गलत हो गई। तुम अगर यह कहो कि क्षमा के योग्य हूं इसलिए क्षमा कर, तो बात गलत हो गई। क्षमा तो तभी घट सकती है जब तुम कहो कि मैं क्षमा के योग्य तो नहीं हूं, लेकिन तू क्षमावान है।
इस भेद को ठीक से समझ लेना। तुम अदालत में जाते हो, अगर तुम क्षमा मांगते हो तो तुम्हें सिद्ध करना होता है कि तुम क्षमा-योग्य हो। कहीं भूल-चूक हो गई है कानून की। तुम गलत पकड़े गए हो। लेकिन परमात्मा की अदालत में अगर तुमने यह कोशिश की कि मैं क्षमा-योग्य हूं, तो तुम्हारा अहंकार ही अभी चेष्टा कर रहा है। कि तुमने कहा कि देखो, मैंने कितने व्रत-उपवास किए, कितनी पूजा-प्रार्थना की, कितने करोड़ बार मंत्र-जाप किया, गायत्री पढ़ी, गीता का पाठ किया और फिर भी मुझे क्षमा नहीं किया जा रहा है?
उमर खय्याम ने अपने एक गीत में लिखा है कि गांव का जो मौलवी है वह मुझसे कहता है कि अगर तू शराब पीए ही चला गया तो भगवान तुझे क्षमा न करेगा। और मैं अपने मन में सोचता हूं कि क्या भगवान मुझे तभी क्षमा करेगा जब मैं क्षमा के योग्य होऊंगा? या भगवान इसलिए क्षमा करेगा क्योंकि वह क्षमावान है?
उमर खय्याम ठीक कह रहा है। क्षमा इसलिए नहीं किए जाओगे कि तुम क्षमा
के पात्र थे। क्षमा तुम इसलिए किए जाओगे कि तुमने अपनी अपात्रता स्वीकार की। और जिस दिन तुम अपनी अपात्रता स्वीकार करते हो, परमात्मा तुम्हारी तरफ बहना शुरू हो जाता है। वह क्षमावान है। क्षमा उसका स्वभाव है। जैसे पानी गिरता है तो गड्ढे की तरफ बहता है। पानी का स्वभाव गड्ढे की तरफ बहना है। अगर तुम पहाड़ बने बैठे हो, पानी तुम्हारी तरफ नहीं बहेगा। कुछ ऐसा भी नहीं है कि पानी तुम्हारे से कुछ विरोध में है; कि तुमसे कोई पानी की दुश्मनी है। लेकिन तुम बाधा किए खड़े हो। तुम पहाड़ बने बैठे हो। पानी तुम्हारी तरफ न बह सकेगा। तुम खाई-खड्ड बन जाओ। वही पानी जो कभी तुम्हारी तरफ न बहा था, बहना शुरू हो जाएगा।
परमात्मा क्षमावान है। लेकिन अगर तुम अहंकारी हो, तो तुम पहाड़ की तरह हो; तुम्हारी तरफ क्षमा बह नहीं सकती। अगर तुम एहसास करते हो कि मैं क्षमा- योग्य भी नहीं। सब गुनाह ही गुनाह मेरे हाथ हैं, पाप ही पाप। प्रारंभ से आज तक बुरा ही बुरा मुझसे हुआ है। बेहोश था, सोया था, ठीक होने का कोई उपाय न था। तुम गड्ढा बन गए, तुम विनम्र हुए। क्षमा बहनी शुरू हो जाएगी।
बहुत बड़ा विवाद है पंडितों में, धर्मशास्त्रियों में--कि परमात्मा क्षमावान है या न्याययुक्त? बहुत पुराना विवाद है। भक्त कहते हैं,

क्षमावान है। साधक कहते हैं, न्याययुक्त है। भक्त और साधक में एक बुनियादी फासला सदा बना रहता है।
साधक कहते हैं, न्याययुक्त है। क्योंकि जिसने ठीक किया है, उसे वह सुख देगा। जिसने गलत किया है, उसे वह दंड देगा। न्याय का अर्थ होता है कि ठीक को ठीक परिणाम मिले, गलत को गलत परिणाम मिले। क्षमावान का अर्थ होता है कि गलत को भी क्षमा मिल सकती है। साधक को वह सहनीय नहीं है। साधक कहता है, इसका तो मतलब हुआ कि हम जो बैठे रहे आसन लगाए, शीर्षासन किया, व्रत-उपवास किए, सब व्यर्थ गए? तुम शराब पीते रहे और क्षमा मिल गई? यह बरदाश्त के बाहर है। साधक का अहंकार इसे स्वीकार नहीं कर पाता।
इसलिए जो असली साधकों का वर्ग रहा है, उसने तो परमात्मा को भी इनकार
कर दिया। क्योंकि परमात्मा को मानने की जरूरत ही क्या है? अगर वह न्याययुक्त है, तो न्याय काफी है, परमात्मा के होने की जरूरत क्या है? कानून काफी है।
इसे ऐसा समझो कि परमात्मा पापी को दंड देता है, पुण्यात्मा को पुरस्कार देता है। परमात्मा की जरूरत क्या है अगर इसमें वह कोई फर्क नहीं कर सकता तो? परमात्मा के ऊपर अगर कानून है, तो परमात्मा की जरूरत क्या है? कानून काफी है।
इसलिए जैन, जो कि साधकों का शुद्धतम वर्ग है, वे परमात्मा को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं, परमात्मा को स्वीकार करने का मतलब यह हुआ कि कानून के ऊपर भी कोई है। तो जो कानून के ऊपर है वह कानून में फर्क कर सकता है। जो कानून के ऊपर है वह कानून के विपरीत भी कर सकता है। और अगर परमात्मा ने ही कानून बनाया है तो वह उसमें तरमीम कर सकता है, सुधार कर सकता है। इसलिए परमात्मा खतरनाक है। जैन कहते हैं, परमात्मा को मानना ही मत--नियम, धम्म। धर्म का अर्थ है कानून। संसार कानून से चल रहा है, परमात्मा से नहीं। क्योंकि परमात्मा में थोड़ी क्षमा की संभावना आ जाती है। शायद दया खा जाए। अगर दया संभव ही नहीं है, करुणा संभव ही नहीं है, तो परमात्मा व्यर्थ है। उसके होने की कोई जरूरत नहीं है।
जैन, साधकों का शुद्ध वर्ग है; संकल्प के यात्रियों का शुद्ध वर्ग है। इसलिए जैन धर्म में प्रार्थना के लिए कोई गुंजाइश नहीं है, पूजा के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। व्रत, तपश्चर्या के लिए गुंजाइश है। अपने को शुद्ध करना है। जिस मात्रा में तुम शुद्ध हो जाओगे, उसी मात्रा में तुम्हें सुख की उपलब्धि हो जाएगी। यह सीधा गणित है। इसलिए जैन शास्त्रों में काव्य बिल्कुल नहीं है।
मुझसे बहुत बार लोग आकर कहते हैं, आप कबीर पर बोलते हैं, दादू पर बोलते हैं, कृष्ण पर बोलते हैं, लाओत्सु, न मालूम किन-किन पर बोलते हैं। लेकिन आप जैन शास्त्रों पर क्यों नहीं बोलते--कुंदकुंद, उमास्वाती? उनसे मैं कहता नहीं, वे दुखी होंगे। लेकिन उमास्वाती और कुंदकुंद को पढ़ कर ऐसा लगता है, गणित की कोई किताब पढ़ रहे हैं। काव्य बिल्कुल नहीं। और जहां काव्य न हो, वहां बोलने का कोई उपाय नहीं। गणित की किताब कितनी ही साफ-सुथरी हो, बेरस है। सिर्फ तर्क है; प्राण नहीं है, हृदय की धड़कन नहीं है।
दादू कहते हैंः दादू बंदीवान है, तू बंदी छोड़ दिवान।
मैं बंदी हूं, कारागृह में तेरे पड़ा हूं, पापी हूं, गुनहगार हूं, रत्ती-रत्ती का चोर हूं। अब भरोसा इसका नहीं है कि मेरे पुण्यों के कारण मैं छूटूंगा। वह सवाल नहीं है। पुण्य मैंने किए नहीं हैं। आदि से अब तक कुछ याद नहीं पड़ता कि सुकृत मुझसे हुआ हो। उतना होश ही नहीं है। अब तो एक ही भरोसा हैः तू बंदी छोड़ दिवान। कि तू क्षमा करने वाला है, कि तू महा करुणावान है। तेरी करुणा का ही भरोसा है, अपने कृत्यों का नहीं।
अब जनि राखौं बंदि मैं, मीरा मेहरबान।।
अब और बंदी रखने की कोई जरूरत नहीं। स्वीकार करता हूं कि मैं पापी हूं। अब और दिखाने की कोई जरूरत नहीं। देख लिया। अहंकार की यात्रा देख ली। अहंकार का फल चख लिया। अब और बंदी रखने की कोई जरूरत नहीं है। अब तू क्षमा कर सकता है। अब मैं क्षमा मांग नहीं रहा हूं कि मेरी कोई योग्यता है। अब सारी योग्यता छोड़ दी। अब और क्या कारण है? अब क्या बाधा है? अब मैं गड्ढा बनने को तैयार हूं।

अब जनि राखौं बंदि मैं...
अब और क्या बंदी रखता है? अब तो बात ही खतम हो गई, कोई लड़ाई ही न रही। अपनी तरफ से तो मैं बंदी होने के ही योग्य हूं; वह सवाल नहीं है। अब तेरी क्षमा का सवाल है।
यह भक्त की दृष्टि का भेद है। भक्त दावेदार नहीं है। साधक दावेदार है। भक्त तो केवल प्रार्थना करता है। वह कहता है, प्रसादरूप कुछ मिल जाए तो ठीक। मिल जाए तो धन्यवाद देगा, न मिले तो शिकायत नहीं कर सकता है। साधक, मिल जाए तो धन्यवाद नहीं देगा, क्योंकि मिला अपने सुकृत से; न मिले तो शिकायत करेगा। भक्त की कोई शिकायत नहीं। वह शिकायत-शून्य हृदय है। न मिले तो वह जानता है कि मिलने का कोई कारण ही नहीं है। नहीं मिला, साफ ही है बात, मिलने की मेरी कोई पात्रता न थी। मिल जाए तो वह अहोभाव से नाचता है, धन्यवाद देता है--कि जो नहीं होना था वह हो गया है, प्रसाद उपलब्ध हुआ है। दिन-दिन नौतन भगति दे, दिन-दिन नौतन नांव।
दिन-दिन नौतन नेह दे, मैं बलिहारी जांव।।
दिन-दिन नौतन भगति दे! रोज-रोज नई भक्ति दे। वह भी मैं नहीं कर सकता हूं। मैं करूंगा तो वह पुरानी भक्ति हो जाएगी।
इसे थोड़ा समझें। यह बारीक है। नाजुक ख्याल है। अगर मैं ही करूंगा तो
वह पुरानी हो जाएगी, बासी हो जाएगी; क्योंकि मैं ही पुराना और बासा हूं। अहंकार से ज्यादा बासी कोई चीज संसार में नहीं है। क्यों? क्योंकि अहंकार तुम्हारे अतीत का जोड़ है। तुम जो अब तक थे, जो तुमने किया, जो तुमने जाना, जो तुमने पाया, उस सब का जोड़ तुम्हारा अहंकार है। अहंकार यानी अतीत। अहंकार यानी जो बीत गया, उसका संग्रह। कूड़ा-करकट है अहंकार। ताजा कभी भी नहीं होता अहंकार। अहंकार सदा बासा है। अहंकार सदा मरा हुआ है, जीवित कभी भी नहीं। जीवित तुम हो, अहंकार मुर्दा है। लेकिन तुमने अपने मुर्दे को अपने जीवन पर ओढ़ रखा है। जीवन तो छिप गया है, मुर्दा छा गया है।
तुमसे कोई पूछे कि तुम कौन हो? तो तुम कहां से उत्तर लाओगे? अतीत से उत्तर लाओगे। तुम कहोगे, फलां का बेटा हूं, फलां परिवार से आता हूं, राजघराने से हूं, इतना पढ़ा-लिखा हूं, डाक्टर हूं, इंजीनियर हूं, प्रोफेसर हूं। यह सब अतीत का है। अगर कोई तुमसे पूछे कि अभी और यहां तुम कौन हो? तो तुम्हारे पास कोई भी उत्तर न होगा। अगर तुम पीछे उत्तर न खोजो, तो यहां और अभी तुम एकदम खाली हो जाओगे।
तुम तो नये हो। अहंकार पुराना है, जराजीर्ण है। अहंकार खंडहर है।
इसलिए दादू कहते हैंः दिन-दिन नौतन भगति दे।
नई भक्ति दे रोज-रोज। क्योंकि मैं तो पुराना कर लूंगा।
सभी धार्मिक लोगों ने भक्ति को पुराना कर लिया है। कल भी तुमने बैठ कर घंटी बजाई थी भगवान के सामने। धूप-दीप बाली थी, फूल चढ़ाए थे। आज फिर तुम वही कर रहे हो। कुछ भी नया है उसमें? रत्ती भर भी नया है उसमें? अगर नया नहीं है, तो मुर्दा है। तुम दोहरा रहे हो। तुम बासे को ही खींचे चले जा रहे हो। और जब प्रार्थना भी बासी हो जाए और पूजा भी क्रियाकांड हो जाए, तब व्यर्थ हो गई।
रामकृष्ण के जीवन में ऐसा उल्लेख है। एक शूद्र महिला ने, रानी रासमणि
ने मंदिर बनवाया। चूंकि वह शूद्र थी, उसके मंदिर में कोई ब्राह्मण पूजा करने को राजी न हुआ। हालांकि रासमणि खुद भी कभी मंदिर में अंदर नहीं गई थी, क्योंकि कहीं मंदिर अपवित्र न हो जाए! यह तो ब्राह्मण होने का लक्षण हुआ। जो अपने को शूद्र समझे, वह ब्राह्मण। जो अपने को ब्राह्मण समझे, वह शूद्र। रासमणि कभी मंदिर के पास भी नहीं गई, भीतर भी नहीं गई, बाहर-बाहर से घूम आती थी। दक्षिणेश्वर का विशाल मंदिर उसने बनाया था, लेकिन कोई पुजारी न मिलता था। और रासमणि शूद्र थी, इसलिए वह खुद पूजा न कर सकती थी। मंदिर क्या बिना पूजा के रह जाएगा? वह बड़ी दुखी थी, बड़ी पीड़ित थी। रोती थी, चिल्लाती थी--कि कोई पुजारी भेज दो!
फिर किसी ने खबर दी कि गदाधर नाम का एक ब्राह्मण लड़का है, उसका दिमाग थोड़ा गड़बड़ है, शायद वह राजी हो जाए। क्योंकि यह दुनिया इतनी समझदार है कि इसमें शायद गड़बड़ दिमाग के लोग ही कभी थोड़े से समझदार हों तो हों। यह गदाधर ही बाद में रामकृष्ण बना।

गदाधर को पूछा। उसने कहा कि ठीक है, आ जाएंगे। उसने एक बार भी न कहा कि ब्राह्मण होकर मैं शूद्र के मंदिर में कैसे जाऊं? गदाधर ने कहा, ठीक है। प्रार्थना यहां करते हैं, वहां करेंगे। घर के लोगों ने भी रोका, मित्रों ने भी कहा कि कहीं और नौकरी दिला देंगे। नौकरी के पीछे अपने धर्म को खो रहा है? पर गदाधर ने कहा, नौकरी का सवाल नहीं है; भगवान बिना पूजा के रह जाएं, यह बात जंचती नहीं; करेंगे।
मगर तब खबर रासमणि को मिली कि यह पूजा तो करेगा, लेकिन पूजा में यह दीक्षित नहीं है। इसने कभी पूजा की नहीं है। यह अपने घर ही करता रहा है। इसकी पूजा का कोई शास्त्रीय ढंग, विधि-विधान नहीं है। और इसकी पूजा भी जरा अनूठी है। कभी करता है, कभी नहीं भी करता। कभी दिन भर करता है, कभी महीनों भूल जाता है। और भी इसमें कुछ गड़बड़ हैं; कि यह भी खबर आई है कि यह पूजा करते वक्त पहले खुद भोग लगा लेता है अपने को, फिर भगवान को लगाता है। खुद चख लेता है मिठाई वगैरह हो तो। रासमणि ने कहा, अब आने दो। कम से कम कोई तो आता है।
वह आया, लेकिन ये गड़बड़ें शुरू हो गईं। कभी पूजा होती, कभी मंदिर के द्वार बंद रहते। कभी दिन बीत जाते, घंटा न बजता, दीया न जलता; और कभी ऐसा होता कि सुबह से प्रार्थना चलती तो बारह-बारह घंटे नाचते ही रहते रामकृष्ण।
आखिर रासमणि ने कहा कि यह कैसे होगा? ट्रस्टी हैं मंदिर के, उन्होंने बैठक बुलाई। उन्होंने कहा, यह किस तरह की पूजा है? किस शास्त्र में लिखी है?
रामकृष्ण ने कहा, शास्त्र से पूजा का क्या संबंध है? पूजा प्रेम की है। जब मन ही नहीं होता करने का, तो करना गलत होगा। और वह तो पहचान ही लेगा कि बिना मन के किया जा रहा है। तुम्हारे लिए थोड़े ही पूजा कर रहा हूं। उसको मैं धोखा न दे सकूंगा। जब मन ही करने का नहीं हो रहा, जब भाव ही नहीं उठता, तो झूठे आंसू बहाऊंगा, तो परमात्मा पहचान लेगा। वह तो पूजा न करने से भी बड़ा पाप हो जाएगा कि भगवान को धोखा दे रहा हूं। जब उठता है भाव तो इकट्ठी कर लेता हूं। दो-तीन सप्ताह की एक दिन में निपटा देता हूं। लेकिन बिना भाव के मैं पूजा न करूंगा।
और उन्होंने कहा, तुम्हारा कुछ विधि-विधान नहीं मालूम पड़ता। कहां से शुरू करते, कहां अंत करते।
रामकृष्ण ने कहा, वह जैसा करवाता है, वैसा हम करते हैं। हम अपना विधि- विधान उस पर थोपते नहीं। यह कोई क्रियाकांड नहीं है, पूजा है। यह प्रेम है। रोज जैसी भाव-दशा होती है, वैसा होता है। कभी पहले फूल चढ़ाते हैं, कभी पहले आरती करते हैं। कभी नाचते हैं, कभी शांत बैठते हैं। कभी घंटा बजाते हैं, कभी नहीं भी बजाते। जैसा आविर्भाव होता है भीतर, जैसा वह करवाता है, वैसा करते हैं। हम कोई करने वाले नहीं।
उन्होंने कहा, यह भी जाने दो। लेकिन यह तो बात गुनाह की है कि तुम पहले खुद चख लेते हो, फिर भगवान को भोग लगाते हो! कहीं दुनिया में ऐसा सुना नहीं। पहले भगवान को भोग लगाओ, फिर प्रसाद ग्रहण करो। तुम भोग खुद को लगाते हो, प्रसाद भगवान को देते हो।
रामकृष्ण ने कहा, यह तो मैं कभी न कर सकूंगा। जैसा मैं करता हूं, वैसा
ही करूंगा। मेरी मां भी जब कुछ बनाती थी तो पहले खुद चख लेती थी, फिर मुझे देती थी। पता नहीं, देने योग्य है भी या नहीं। कभी मिठाई में शक्कर ज्यादा होती है, मुझे ही नहीं जंचती, तो मैं उसे नहीं लगाता। कभी शक्कर होती ही नहीं, मुझे ही नहीं जंचती, तो भगवान को कैसे प्रीतिकर लगेगी? जो मेरी मां न कर सकी मेरे लिए, वह मैं परमात्मा के लिए नहीं कर सकता हूं।
ऐसे प्रेम से जो भक्ति उठती है, वह तो रोज-रोज नई होगी। उसका कोई क्रियाकांड नहीं हो सकता। उसका कोई बंधा हुआ ढांचा नहीं हो सकता। प्रेम भी कहीं ढांचे में हुआ है? पूजा का भी कहीं कोई शास्त्र है? प्रार्थना की भी कोई विधि है? वह तो भाव का सहज आवेदन है। भाव की तरंग है।
इसलिए दादू बड़ी मीठी बात कहते हैंः दिन-दिन नौतन भगति दे।
नई भक्ति दे। क्योंकि हम करेंगे तो पुरानी हो जाएगी। अहंकार करेगा तो ढांचा बना लेगा। अहंकार बड़ा यांत्रिक है। वह रोज-रोज व्यवस्था बना लेता

है। क्या करना--पहले जाकर मंदिर में झुकना, साष्टांग दंडवत करना, घंटा बजाना, फूल चढ़ाना--एक व्यवस्था है; मंत्र का पाठ करना, घर वापस लौट आना। एक क्रियाकांड है, जो करना है। एक कर्तव्य है, प्रेम नहीं। प्रेम तो रोज-रोज नये मार्ग खोजता है। प्रेम नित नूतन है।
दिन-दिन नौतन भगति दे...
तो तू ही दे तो ही यह हो सकता है। क्योंकि हम तो रहे मुर्दा। और हम तो
जो करेंगे वह बासा हो जाएगा।
दिन-दिन नौतन नांव।
और रोज तेरा पुराना नाम क्या लें! रोज-रोज नये दे, सभी नाम तेरे हैं।
तो रोज-रोज एक ही नाम क्या जपना! राम-राम जपते-जपते बासा हो जाएगा। कभी अल्लाह भी जप लेंगे। तू ही सुझा देना। क्योंकि हम अगर जपेंगे तो अतीत से आएगा। हिंदू घर में पैदा हुए हैं, राम-राम चलेगा। मुसलमान घर में पैदा हुए हैं, अल्लाह-अल्लाह चलेगा। ईसाई घर में पैदा हुए हैं तो जीसस-जीसस की पुकार उठती रहेगी। जैन घर में पैदा हुए तो नमोकार। लेकिन यह तो अतीत से जुड़ा होगा। सब नाम तेरे हैं, क्योंकि तेरा कोई नाम नहीं। सब रूप तेरे हैं, क्योंकि तेरा कोई रूप नहीं। सब आकारों में तू ही निराकार है।
तो रोज नई-नई झलक देना; रोज नया-नया नाम देना; रोज अपनी नई प्रतिमा दिखाना। कहीं बासी न हो जाए पूजा। बासी, कि व्यर्थ। पुरानी, कि सार्थक नहीं। ऐसा हो, जैसे नई श्वास प्रतिपल ताजी है; सुबह की ओस रोज ताजी है; सुबह का सूरज फिर नया है; रात के तारे फिर उज्ज्वल हैं। बस, ऐसी हो प्रतिपल।
वर्तमान में हो, अतीत से न उपजे।
दिन-दिन नौतन भगति दे, दिन-दिन नौतन नांव।
दिन-दिन नौतन नेह दे, मैं बलिहारी जांव।।
मैं तो इतना ही कर सकता हूं कि तुझ पर न्यौछावर होता रहूं। उससे ज्यादा मेरे बस में नहीं।
दिन-दिन नौतन नेह दे...
रोज नये प्रेम से मुझे भर। रोज मुझे उलीच, रोज मुझे भर। रोज प्रेम से भर, ताकि प्रार्थना में मैं अपने को उलीच सकूं और तुझ पर न्यौछावर हो सकूं। मैं एक ही काम जानता हूं कि न्यौछावर होता रहूंगा। तू जो देगा, तुझी को चढ़ाता रहूंगा।
साईं सत संतोष दे, भाव भगति बेसास।
सिदक सबूरी सांच दे, मांगे दादू दास।।
साईं सत संतोष दे! साईं, परमात्मा का नाम है फकीरों का दिया हुआ। साईं
का अर्थ होता है स्वामी, मालिक। मालिक! जब तक तुमने परमात्मा को मालिक न जाना, तब तक तुम चोर हो। जिस दिन तुमने परमात्मा को मालिक जाना, बात खतम हो गई। चोरी गई। अब तुम भी उसी के हो।
इसलिए फकीर अपने को दास कहते हैं। दादू दास, कबीर दास, सुंदर दास--सब दास हैं। दास की एक बड़ी अनूठी भाव अवस्था है। दास यह कह रहा है कि मैं तेरा हूं। कुछ भी मेरा नहीं है, मैं भी तेरा हूं।
साईं सत संतोष दे...
सत संतोष दे! समझने जैसा है। क्योंकि संतोष--तुम जिसे संतोष कहते हो--
वह झूठ है। वह सत संतोष नहीं है। तुम जिसे संतोष कहते हो, वह सांत्वना है, संतोष नहीं है।
तुम्हारे पास धन नहीं है। तुम कहते हो, क्या रखा है धन में! यह सांत्वना है। अगर अभी कोई धन देने को राजी हो जाए, तो तुम्हें याद भी न रहेगी कि क्षण भर पहले तुम कहते थे, क्या रखा है धन में! तुम कहोगे, ले आओ। तुम भूल ही जाओगे। अगर वह आदमी भी याद दिलाएगा, तुम कहोगे, गलती हो गई, क्षमा करो।
तुम उसी अवस्था में हो, जिसमें ईसप की लोमड़ी। देखा उसने कि अंगूर के झुक्के लटकते हैं वृक्ष से। छलांग लगाई, लेकिन छलांग छोटी पड़ गई, अंगूर पा न सकी। चारों तरफ देखा कि किसी ने देखा तो नहीं है। क्योंकि अहंकार को चोट लगती है कि तुम पा न सके। कोई दिखाई न पड़ता था, तो लोमड़ी अकड़ से चलने लगी। लेकिन एक खरगोश छिपा था। खरगोश सदा ही छिपे हैं। वे देख ही रहे हैं। एक झाड़ी में छिपा बैठा था। उसने कहा, चाची, क्या मामला है? अंगूर दूर पड़ गए?

लोमड़ी ने कहा कि नहीं, अंगूर और दूर क्या पड़ेंगे! खट्टे थे। पकने दे, फिर देखेंगे।
जिन अंगूरों को तुम पा नहीं सकते, वे खट्टे हैं। यह सांत्वना है। जिन
पद को तुम पा नहीं सकते, वे व्यर्थ! दो कौड़ी के! जिस धन को तुम पा नहीं सके, उसमें कुछ सार ही कहां है! सभी गरीब इसी तरह तो अपने को बचाते हैं। नहीं तो बचाना मुश्किल हो जाए। जीवन बड़ा मुश्किल हो जाए। सांत्वना सुरक्षा बन जाती है।
जो नहीं है--तुम कोशिश सब कर चुके हो, तुमने कोशिश कुछ छोड़ी नहीं है, लेकिन न पा सके। न पा सके, यह बात भी कष्ट देती है। अहंकार को दुख होता है कि छलांग छोटी पड़ गई, अंगूर दूर थे। दूसरों ने पा लिए और तुम न पा सके। इसलिए गरीब मुल्कों में सांत्वना खूब चलती है। इस मुल्क में, हमारे
इस देश में, भारत में--जिसको हम धार्मिक देश कहते हैं, जो धार्मिक बिल्कुल नहीं है--संतोष नहीं है, सांत्वना है। लोग इतने दीन-हीन हैं कि बचाव का एक ही उपाय है कि संसार में क्या रखा है!
एक अंग्रेज लेखक ने अपना संस्मरण लिखा है कि वह दिल्ली आया--जार्ज माइक्स उसका नाम है। दिल्ली स्टेशन पर एक सरदार जी ने उसका हाथ पकड़ लिया और जल्दी-जल्दी उसके हाथ की रेखाएं देख कर बोलने लगा भविष्य। जार्ज माइक्स ने कहा कि भाई, मुझे इसमें उत्सुकता नहीं है। मगर वह बोले ही गया। उसने हाथ भी न छोड़ा। शिष्टाचारवश जार्ज माइक्स सुनता रहा। फिर उस सरदार ने कहा, उत्सुकता हो या न हो, लेकिन मैंने तो भविष्यवाणी की; तो दो रुपया फीस। तो उसने दो रुपया फीस दे दी कि चलो झंझट मिटी। लेकिन अभी भी उसने हाथ नहीं छोड़ा, दो रुपया पाकर वह और बोलने लगा। माइक्स ने कहा कि देखो भाई, अब मत बोलो, नहीं तो फिर तुम्हारी फीस हो जाएगी। तो उस सरदार ने कहा, अरे सांसारिक! दो रुपये के पीछे दीवाना हुआ जा रहा है? और फिर वह अपना जारी रखे है बोलना। भौतिकवादी! और बोलना अपना वह जारी रखे है। और बोल कर उसने कहा, दो रुपये फिर फीस हो गई।
अब इसमें भौतिकवादी कौन है?
पूरब पश्चिम को कहता है भौतिकवादी। लेकिन तुम पूरब से ज्यादा भौतिकवादी लोग कहीं भी न पा सकोगे। जैसी धन की पकड़ भारतीयों में है, ऐसी तुम कहीं भी न पा सकोगे। और कारण? कारण साफ है। संतोष होता तो बात दूसरी होती। संतोष नहीं है, सांत्वना है। तुम्हारे पास बड़े मकान नहीं हैं। तुम कहते हो, क्या रखा है मकानों में? जो मजा झोपड़ी में है, वह कहां मकानों में? लेकिन तुम पूरी चेष्टा करते रहते हो कि मकान बड़ा कैसे हो जाए।
बहुत वर्ष हुए, एक जैन साधु के पास मुझे ले जाया गया। वे बड़े जैन मुनि हैं, हजारों उनके शिष्य हैं। उन्होंने एक गीत अपना लिखा हुआ मुझे पढ़ कर सुनाया। गीत का अर्थ था--गीत गुजराती में था--गीत का अर्थ था कि तुम अपने सिंहासनों पर बैठे रहो, मैं अपनी धूल में मस्त हूं। तुम्हारे पद, तुम्हारे महल मेरे लिए व्यर्थ और असार हैं। तुम्हारे हीरे-जवाहरात मेरे लिए कंकड़-पत्थर हैं। तुम्हारा साम्राज्य मेरे लिए सपना है। तुम बैठे रहो अपने सिंहासनों पर, स्वर्ण-सिंहासनों पर, मैं अपनी धूल में मस्त हूं।
जो दस-पचास लोग इकट्ठे हो गए थे हम दोनों का मिलन देखने के लिए, उन सबके सिर हिलने लगे प्रशंसा में।
मैंने उन मुनि को कहा कि अगर आप अपनी धूल में मस्त हैं, तो यह गीत किसी सम्राट को लिखना चाहिए; आप क्यों लिखते हैं? लेकिन कोई सम्राट गीत नहीं लिखता कि रहे आओ तुम मस्त अपनी धूल में, मैं अपने सिंहासन पर मस्त हूं। कोई लिखता ही नहीं यह बात। कि तुम मजे से आनंद लो अपने कंकड़-पत्थरों का, मैं अपने हीरे-जवाहरात में मस्त हूं। कोई सम्राट ऐसा गीत नहीं लिखा कभी, आप क्यों लिखते हैं? जरूर कोई उत्सुकता होगी सोने के सिंहासन में। हीरे- जवाहरातों में कोई छिपा हुआ रस है। धूल में आप मस्त नहीं हैं, ईर्ष्या है। धूल में सांत्वना है, संतोष नहीं है। बड़ी कठिन है यह बात पहचाननी, क्योंकि अहंकार के बड़े विपरीत पड़ती है। और ये जो लोग सिर हिला रहे हैं, इनके सिर हिलाने से यह मत समझ लेना कि आपकी कविता कुछ सच है। ये सिर्फ इतना ही कह रहे हैं कि हम भी राजी हैं। यही हालत हमारी भी है। धूल में हम भी पड़े हैं,

मगर हम भी दो कौड़ी का समझते हैं सिंहासन को। आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। आप हमारी आवाज हो।
गरीब मुल्कों में त्याग का बड़ा महात्म्य हो जाता है। क्योंकि सब गरीबों को उससे सांत्वना मिलती है।
दादू इसलिए सांत्वना नहीं मांगते हैं, वे कहते हैंः साईं सत संतोष दे।
ऐसा संतोष दे, ऐसा सच्चा संतोष दे, जो सांत्वना न हो। जो मेरे पास है, उसमें मैं आनंदित हो सकूं। जो मेरे पास नहीं है, उसका मुझे ख्याल भी न उठे। उसके विरोध में भी ख्याल न उठे, क्योंकि विरोध में भी ख्याल उठना उत्सुकता है। सत संतोष बड़ी अनूठी बात है। वह ऐसी चित्त की दशा है कि तुम्हारे पास जो है उसमें तुम आनंदित हो।
तुम अगर धूल में हो, तो तुम धूल में आनंदित हो। लेकिन धूल की तुलना तुम सिंहासन से नहीं करते हो। क्योंकि अगर तुम सच में ही धूल में आनंदित हो, तो तुम्हें जो सिंहासन पर है उस पर दया आएगी कि बेचारा, सिंहासन पर फंसा है। तुम्हें क्रोध न आएगा। तुम तुलना करके उसका अपमान न करना चाहोगे। क्योंकि तुम कहोगे कि मैं इतने आनंद में हूं धूल में और इस बेचारे को कुछ पता ही नहीं कि धूल का आनंद कैसा है।
तुम अगर हार गए हो, तो तुम पाओगे, हार में ऐसी शांति है कि जो विजेता हो
गए हैं उनको तुमसे ईर्ष्या होगी। लेकिन अगर तुम्हें विजेताओं से ईर्ष्या हो रही है और उनकी निंदा करने का तुम्हारे मन में भाव उठता है, तो तुमने अपनी हार में सत संतोष नहीं पाया। तुम समझे ही नहीं बात। अंगूर खट्टे हैं। छलांग छोटी थी।
साईं सत संतोष दे...
दादू ने भी संतोष करके देख लिया है, सांत्वना करके देख ली है, वह किसी मतलब का नहीं है। उससे आकांक्षाएं मिटती नहीं, केवल छिप जाती हैं। उससे रोग समाप्त नहीं होता, केवल आवृत हो जाता है। सच्चा संतोष दे!
क्या है सच्चा संतोष? सच्चा संतोष है अहोभाव। होना ही इतनी बड़ी बात है
कि और क्या चाहिए? श्वास चल रही है, यह इतनी बड़ी घटना है कि और क्या मांगें? आंख देखती है फूलों को, आकाश के तारों को, अब और देखने को क्या बचा? कान सुनते हैं पक्षियों के गीत को, हवा की आवाज को वृक्षों से गूंजते हुए, अब और क्या संगीत बचा? इस क्षण में जो घट रहा है, वह परम है, ऐसी अनुभूति दे। कि कोई तुलना न रह जाए, तुलना उठे ही न। इसे तुम सूत्र समझ लो, कसौटी। अगर तुलना उठे, तो तुम संतोष में नहीं हो। संतोष अतुलनीय है, सांत्वना तुलना है।
तथाकथित साधु-संन्यासी लोगों को समझाते हैं, ईर्ष्या मत करो। एक साधु
के व्याख्यान को मैं एक बार सुनने गया। वे समझा रहे थे कि ईर्ष्या मत करो, ईर्ष्या से बड़ा दुख होगा। कभी मत देखो कि तुमसे आगे कौन है। हमेशा देखो कि तुमसे पीछे कौन है। उससे संतोष होगा।
उनका आप मतलब समझे? तुम्हारे पास दस हजार रुपये हैं। जिसके पास दस लाख हैं, उस तरफ मत देखो। क्योंकि उसको देखने से पीड़ा उठेगी, सांत्वना टूट जाएगी--कि मेरे पास केवल दस हजार और तेरे पास दस लाख! संतुलन खो जाएगा, दौड़ पैदा हो जाएगी, वैमनस्य होगा, जलन होगी। न; अपने से पीछे देखो, जिसके पास दस हजार भी नहीं हैं, भिखारी है। उसे देख कर बड़ा संतोष आएगा कि कोई हर्जा नहीं, दस हजार तो हैं। इसके पास दस रुपये भी नहीं। इसका मतलब हुआः अगर तुम कनवे हो, तो अंधे को देखो। उसको मत देखो जिसके पास दो आंखें हैं! अगर तुम लंगड़े हो, तो जिसके दोनों पैर टूट गए हैं उसको देखो!
मगर चाहे तुम आगे देखो, चाहे तुम पीछे देखो, सांत्वना में हमेशा ही तुलना मौजूद रहेगी। जिसके पास कम है, उसको देख कर थोड़ी राहत मिलेगी। जिसके पास ज्यादा है, उसको देख कर बेचैनी होगी। और तुम चाहे देखो या न देखो, तुम यह कैसे भूल सकते हो कि तुमसे ज्यादा लोगों के पास है? जब तुम पीछे देखते हो और तुम पाते हो कि तुम्हारे पास दस हजार हैं और दूसरे के पास दस रुपये भी नहीं, और तुम्हें राहत मिलती है, तो इसी राहत में वह ईर्ष्या भी छिपी है। तुम कैसे भूल सकोगे कि इस दुनिया में बहुत हैं जिनके पास दस हजार से

ज्यादा हैं? इसी राहत में बेचैनी भी छिपी है। यह तुम अपने को अंधा कर रहे हो, बात और। लेकिन तुम जागोगे नहीं।
दादू कहते हैंः साईं सत संतोष दे।
तुलना वाला संतोष नहीं--कि कोई अंधा है तो एक आंख में मजा ले रहे हैं,
कि कम से कम एक तो है। नहीं, यह संतोष की कोई जरूरत नहीं। सत संतोष दे! जो मेरे पास है, उसे मैं बिना तुलना किए भोग सकूं। जैसे मैं अकेला हूं।
और तुम जैसा कोई है भी नहीं। तुम हो भी अकेले। सब तुलना व्यर्थ है। दूसरे से तौलने में ही भूल है। तौलते ही अहंकार निर्मित होता है। पीछे देखोगे, तो राहत वाला अहंकार; आगे देखोगे, तो बेचैनी वाला अहंकार। पर तुलना से ही अहंकार पैदा होता है। तौलो ही मत। तुम जैसे हो, वहीं परमात्मा के प्रति अहोभाव उठे। तुम्हें जो दिया है, वह किसी तुलना के कारण ज्यादा नहीं, तुम्हारी अपात्रता के कारण अपार है।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना! किसी की तुलना के कारण ज्यादा नहीं, तुम्हारी अपात्रता के कारण अपार है। जो तुम्हें मिला है, मिलने की कोई योग्यता न थी, कोई कारण न था। तुम शिकायत न कर सकते थे, फिर भी मिला है। उसने लुटाया है, तुम्हें भर दिया है।
साईं सत संतोष दे...
अगर तुम्हें झूठा संतोष चाहिए तो आगे-पीछे देखो। अगर सच्चा संतोष चाहिए तो ऊपर देखो, परमात्मा की तरफ देखो।
... भाव भगति बेसास।
भाव दे। विचार तो बहुत हैं तुम्हारे पास। भक्त भाव मांगता है। भगति दे, प्रेम दे। बेसास। विश्वास दे, आस्था दे। विचार के साथ संदेह है, संदेह के साथ संघर्ष है; वे एक हीशृंखला के सूत्र हैं। भाव के साथ भक्ति है, भक्ति के साथ विश्वास है; वे एकशृंखला के सूत्र हैं। हृदय विश्वास जानता है, बुद्धि संदेह जानती है। बुद्धि लड़ती है, संघर्ष करती है, संकल्प करती है। हृदय समर्पण करता है, विश्वास करता है।
... भाव भगति बेसास।
पर तुम सोच सकते हो, भाव तो मांगना पड़ेगा। तुम्हारे बस के बाहर है।
तुम अपने हृदय को खोल दो और प्रतीक्षा करो। उसके मेघ बरसेंगे, तो तुम भाव और भक्ति और विश्वास से भर जाओगे। नहीं बरसेंगे, तो प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। तुम एक मरुस्थल हो। उसके मेघ आएं, उन्हें पुकारो।
साईं सत संतोष दे, भाव भगति बेसास।
सिदक सबूरी सांच दे...
तुझ पर न्यौछावर हो सकूं, ऐसी हिम्मत दे। सिदक सबूरी--प्रतीक्षा की क्षमता दे। सब्र कर सकूं--सबूरी। क्योंकि मेरे हाथ में तो कुछ भी नहीं है। तू जब देगा, जब देगा। वह "जब" कब आएगा, कहा नहीं जा सकता। आज, कि कल, कि परसों, कि इस जन्म में, कि अगले जन्म में, कि अनंत जन्म प्रतीक्षा करनी पड़ेगी; कुछ कहा नहीं जा सकता। अपने हाथ की बात होती तो जल्दी भी कर लेते। इसलिए भक्त कहता है, सिदक दे! कि तुझ पर अपना सब डाल सकूं; अपने को तुझ पर न्यौछावर कर सकूं। कुछ बच न जाए पीछे। मुझे अपने पर भरोसा नहीं है। कुछ बचा लूं कहीं!
मोहम्मद मरे। मोहम्मद का जीवन एक भक्त का जीवन है। मोहम्मद का नियम
था कि रोज सांझ जो भी कुछ घर में बचे, बांट दिया जाए। क्योंकि कल सुबह फिर परमात्मा से प्रार्थना करेंगे। और उसकी मर्जी होगी तो देगा। इसलिए सब पैसा-लत्ता जो भी सांझ को होता--अनाज, चावल, जो भी होता--सांझ सूरज के ढलते वे बांट देते। क्योंकि रात तो अब इसकी कोई जरूरत नहीं। कल सुबह फिर मांग लेंगे। और जिसने आज सुबह दिया था, वह कल फिर देगा।
मरते वक्त मोहम्मद बीमार थे। पत्नी थोड़ी सोच में पड़ गई। सांझ को सब दे डालना है, कहीं रात दवा की जरूरत पड़ जाए, वैद्य को बुलाना पड़े! और मोहम्मद तो करीब-करीब मरणासन्न अवस्था में हैं। तो उसने पांच दीनार, पांच रुपये बचा लिए। सब बांट दिया, लेकिन पांच रुपये बचा लिए। कहते हैं, आधी रात मोहम्मद बार-बार करवट बदलने लगे। आखिर उन्होंने कहा अपनी पत्नी को बुला कर कि सुन, मुझे लगता है, आज, जो कभी नहीं हुआ था, वह इस घर में हुआ है। तूने कुछ बचा लिया। हम सदा सभी न्यौछावर करते रहे। अब मरते वक्त तू मुझे

नास्तिक बनाएगी? क्योंकि मैं मर नहीं पा रहा हूं, मेरी सांस अटकी है। लगता है, घर में कुछ बचा है।
पत्नी भी घबरा गई, रोने लगी। उसने कहा कि क्षमा करें, इस भय से कि कहीं रात दवा की जरूरत हो, वैद्य बुलाना पड़े, तो पांच दीनार बचा लिए हैं। मोहम्मद ने कहा, मैं मर न सकूंगा। और अगर आज मर जाता तो परमात्मा के सामने क्या जवाब देता? थोड़ा सा बचा लिया। उतना अविश्वास रहा। जो रोज देता था, नासमझ, वह आधी रात नहीं दे सकता? उसके लिए दिन और रात का फर्क है? तू जल्दी किसी को बुला, वे पांच रुपये दान कर दे।
पत्नी ने द्वार खोला, एक भिखारी सामने खड़ा था। आधी रात! उसे भी भरोसा न आया। उसने पूछा, क्या चाहते हो? उसने कहा कि बहुत मजबूरी है, पांच रुपये चाहिए।
मोहम्मद हंसे और उन्होंने कहा, देख, जो पांच रुपये मांगने आधी रात आदमी को भेज देता है, वह देने भी भेज देगा। तो ये पांच रुपये उसको दे दे। जैसे ही रुपये दिए गए, मोहम्मद ने चादर ओढ़ ली और श्वास छोड़ दी।
सिदक सबूरी सांच दे...
तुझ पर पूरा-पूरा न्यौछावर हो जाऊं, कुछ बचा न लूं। क्योंकि मुझे अपने
पर भरोसा नहीं है। थोड़ा बचा लूं, कि पता नहीं जरूरत पड़ जाए। तो समर्पण भी हम अधूरा करते हैं। अधूरा समर्पण तो समर्पण नहीं है। जैसे अधूरा व्रत व्रत नहीं है, ऐसा अधूरा समर्पण समर्पण नहीं है। समर्पण या तो होगा तो पूरा, या नहीं होगा।
सिदक--पूरा हो जाए न्यौछावर। सबूरी--और सब्र दे, प्रतीक्षा की क्षमता दे, कि अनंत काल तक तेरी राह देख सकूं। ऐसा न हो कि धैर्य छूट जाए; कहीं ऐसा न हो कि फिर कोशिश में लग जाऊं और फिर अहंकार के सहारे चलने लगूं।
सिदक सबूरी सांच दे...
सच्चा न्यौछावर होने की क्षमता, सच्ची प्रतीक्षा दे। क्योंकि झूठी प्रतीक्षा हो सकती है। तुम बैठ सकते हो आंख बंद करके और थोड़ी-थोड़ी आंख खोल कर देख लो--कि अभी तक आया या नहीं? फिर आंख बंद कर लो। धोखा तुम किसको दे रहे हो?
मेरे पास लोग आते हैं। उनसे मैं कहता हूं, तुम जल्दी मत करो ध्यान की। होगा, तब होगा। तुम प्रयास करो अपना जो कर सको, लेकिन प्रतीक्षा जारी रखो। वे कहते हैं कुछ दिन बाद आकर, कि दस दिन हो गए ध्यान करते, ऐसी कोई जल्दी नहीं है, मगर अभी तक कुछ हुआ नहीं।
ऐसी कोई जल्दी नहीं है, अभी तक कुछ हुआ नहीं! उन्हें पता ही नहीं, वे क्या कह रहे हैं। अगर जल्दी नहीं है, तो अभी कुछ हुआ नहीं, यह बात कहां से आती है? और दस दिन भी कोई बात हुई--कि दस दिन ध्यान कर लिया, अभी तक परमात्मा के दर्शन नहीं हुए! दस जन्म भी छोटे हैं। यह जल्दी तुम परमात्मा के ऊपर थोपने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हारी चेष्टा यह है कि दस दिन हम आंख बंद करके घंटा भर बैठे रहे रोज, तुम अभी तक नहीं आए? तुम्हारी चेष्टा यह है कि तुम उसमें भी अपराध-भाव पैदा कर दो--कि हमने इतना किया और तुम अभी तक नहीं आए? अन्याय हो रहा है।
सिदक सबूरी सांच दे, मांगे दादू दास।।
और मैं तो एक भिखारी हूं, एक दास हूं, सिर्फ मांग सकता हूं। देने को तो मेरे पास कुछ भी नहीं है।
लेकिन दादू जो मांग रहे हैं, वह मांगने जैसा है। मांगते तुम भी हो परमात्मा से जाकर। कभी पत्नी की तबीयत ठीक नहीं है, उसे ठीक कर दे; कभी बेटा पैदा नहीं हुआ, बेटा दे दे; कभी नौकरी नहीं लगी, नौकरी लगवा दे; कभी मुकदमा हारे जा रहे हैं, मुकदमा जितवा दे। मांगते तुम भी हो उससे। लेकिन तुम ऐसी क्षुद्र चीजें मांगते हो कि तुम्हारी क्षुद्र चीजों के कारण ही पता चलता है कि परमात्मा से तुम्हारा कोई लेना-देना नहीं है। तुम परमात्मा को भी अपनी सेवा में लगाना चाहते हो--कि मुकदमा जिता, पत्नी की तबीयत ठीक कर, बच्चा दे। तुम मालिक बनना चाहते हो, उसको सेवक बनाना चाहते हो। तुम्हारी सब प्रार्थनाएं उसका भी उपयोग कर लेने की चेष्टाएं हैं। मांगना हो तो दादू जैसा मांगो। दादू इतना ही कह रहे हैं कि प्रतीक्षा दे, संतोष दे। तुझ पर पूरा न्यौछावर हो सकूं बिना कुछ बचाए, ऐसा साहस दे।

भाव दे, भक्ति दे, विश्वास दे। दादू यह कह रहे हैं कि उन सब चीजों को दे दे मुझे, जिनके बीच तेरा अवतरण संभव हो जाए।
ये तो खंभे हैं मंदिर के--भक्ति, भाव, विश्वास, प्रतीक्षा, समर्पण, धैर्य--ये तो खंभे हैं मंदिर के। मंदिर बन जाए, ऐसा कर। ताकि फिर तुझे भी निमंत्रण दे सकें। अभी तो तुझे निमंत्रण कैसे भेजें? मंदिर भी तैयार नहीं, तेरा सिंहासन भी तैयार नहीं।
आखिरी प्रार्थना तो परमात्मा को पाने की ही प्रार्थना है। आखिरी प्रार्थना तो परमात्मा में लीन हो जाने की ही प्रार्थना है। परमात्मा को ही मांगना, अगर मांगना ही हो। और अगर देना ही हो कुछ परमात्मा को, तो अपने को पूरा का पूरा दे देना, कुछ बचाना मत। और ये दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस दिन तुम अपने को पूरा दे दोगे, उसको तुम पूरा पा लोगे। दे देना पाने का उपाय है। बूंद जब सागर में खो जाती है तो सागर हो जाती है। आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
दूसरा प्रवचन

प्रार्थना क्या है?

पहला प्रश्नः क्या प्रार्थना ही पर्याप्त है?

प्रार्थना प्रार्थना हो, तो पर्याप्त से भी ज्यादा है। लेकिन असली सवाल है कि प्रार्थना प्रार्थना हो। उधार न हो, हार्दिक हो; सिखाई-पढ़ाई न हो, अंतरतम से उठी हो; तो पर्याप्त ही नहीं, पर्याप्त से भी ज्यादा है। प्रार्थना अगर शुद्धतम हो जाए तो परमात्मा भी आवश्यक नहीं है, प्रार्थना काफी है। परमात्मा रूपांतरित नहीं करता है, प्रार्थना ही रूपांतरित करती है। परमात्मा तो प्रेम का ही गहनभूत अनुभव है। ऐसा नहीं है कि प्रार्थना साधन है और परमात्मा साध्य है। ऐसा है कि प्रार्थना ही जब सघन हो जाती है, तो परमात्मा प्रकट हो जाता है। प्रार्थना का ही सघनीभूत रूप परमात्मा है।
लेकिन तुम जिसे प्रार्थना कहते रहे हो--परमात्मा तो बहुत दूर, वह प्रार्थना भी नहीं है।
ऐसा हुआ, मैं कलकत्ता की यात्रा पर था। एक निपट कंजूस मित्र ने बार-बार आग्रह किया कि उनके घर आऊं; नया घर किराए पर लिया है। घर उनका देखने योग्य होगा नहीं, यह मैं भलीभांति जानता था। जाना व्यर्थ ही होगा--कंजूस, महाकंजूस! फिर भी पीछे पड़े, तो मैं गया।
जाकर पाया कि जाना बेकार नहीं हुआ। एक बड़ा कीमती अनुभव मिला। वे अपना मकान घूम-फिर कर मुझे दिखाने लगे। कुछ भी देखने योग्य न था। पुराने कैलेंडर टांग रखे थे; वे भी पुराने सालों के। सामान भी जो था वह भी सब चोर-बाजार में खरीदा होगा। सब फटा-पुराना, सब ऐतिहासिक। लेकिन जो आखिरी कमरा उन्होंने दिखाया, वह बड़ा उदघाटक सिद्ध हुआ। कहने लगे, यह हमारा संगीत का कमरा है।
चारों तरफ मैंने देखा, न कोई वीणा है, न कोई तबला है। तबला और वीणा तो दूर, कोई रेडियो भी नहीं है। मैंने पूछा कि कोई साज-समान नहीं है? सिर्फ टूटी-फूटी दो-चार पुरानी कुर्सियां पड़ी हैं।
कहने लगे, साज-सामान? साज-सामान की जरूरत भी नहीं है। यहीं बैठ कर हम पड़ोसियों के रेडियो से निकली स्वरलहरी को बड़े आनंद से सुन लेते हैं।
वह इनका संगीत का कमरा है। पड़ोसियों के रेडियो से निकली स्वरलहरी को!
एक तो रेडियो ही उधार, वह भी पड़ोसी का। स्वरलहरी भी बासी, क्योंकि वह भी रेडियो पर बजाया गया रिकार्ड। वहां भी कोई जीवित प्राण स्पंदित नहीं हो रहा है।
प्रार्थना तुम्हारी नहीं है। किसी ने तुम्हें सिखा दी है। मां-बाप ने सिखाई होगी; समाज ने सिखाई होगी। सदियों-सदियों से चली आती हैशृंखला संस्कारों की। जिनसे तुमने सीखी है उनमें से पहले ने भी गाई होगी हृदय से, यह भी संदिग्ध। इस बासे खेल में तुम भागीदार बनोगे और इससे तुम नित-नूतन परमात्मा को पाने की आकांक्षा करोगे।
इसीलिए तो दादू कहते हैंः नित नूतन नेह दे, नित नूतन नाम।
तू ही नया कर। हम तो हर चीज को पुराना कर लेंगे। हमारे तो होने का ढंग
ही जराजीर्ण और बासा है। हमारा तो मन ही उधार है। शब्द कितनी बार ओंठों पर दोहरा लिए गए हैं। उन्हीं बासे शब्दों को तुम दोहराए चले जाओगे। हृदय में कहीं कोई कंपन, कोई लहर भी न उठेगी, कोई सोए प्राण नाचेंगे भी नहीं। और तुम सोचते हो प्रार्थना से सब हो जाएगा, तो गलत सोचते हो।
पहली तो बात है कि प्रार्थना उधार नहीं हो सकती; प्रेम उधार नहीं हो सकता। तुम्हारे बाप-दादों ने कितना ही प्रेम किया हो, इससे तुम प्रेमी न हो जाओगे। और तुम्हारे देश में कितने ही साधु-संत क्यों न हुए हों, इससे तुम भक्त न हो जाओगे। किसी दूसरे से लेना-देना नहीं है। तुम्हें तुम्हारी अपनी निजता को ही खोजना होगा। तुम्हारे ही हृदय के अंतरतम से उठेगी आवाज, तो सार्थक है। वह तुम्हें रूपांतरित करेगी।

प्रार्थना भूल कर भी किसी और से मत सीखना। सीखी सभी प्रार्थनाएं झूठी
हो जाती हैं। जाना मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा; कोई हर्ज नहीं है। लेकिन प्रार्थना अपनी ही करना। कोई हर्ज नहीं शब्द न निकलें। क्योंकि परमात्मा को शब्दों से क्या संबंध है? आंसू ही बहें, मौन ही बैठे रहो, या कि नाचने लगो उन्मत्त पागल की भांति; या कि हंसो खिलखिला कर; या कि बोलो अनर्गल वाणी--ऐसी वाणी का नाम भारत में पड़ गया है सधुक्कड़ी; वह जो साधु बोलता है। वह कुछ हिसाब नहीं रखता।
एक सूफी फकीर के संबंध में उल्लेख है। बड़ा फकीर हुआ बायजीद। बोलता था
तो साफ नहीं होता था, क्या बोलता है! व्याकरण की कभी चिंता नहीं थी। बुद्धि से नहीं बोलता था, हृदय से बोलता था। एक दिन राह से गुजरता था, एक गहरे कुएं से आवाज आई कि बचाओ, मैं मरा!
वह पास गया, अंधेरी रात थी। उसने पूछा, कौन हो भाई? क्या शोरगुल मचाया? क्या कर रहे हो वहां?
उस आदमी ने कहा कि बचाओ, मैं मर रहा हूं। मैं गांव का पंडित हूं, मौलवी हूं।
बायजीद ने कहा कि ठहरो; मैं जाता हूं, लाता हूं अभी रस्सी-बाल्टी, जो
भी जरूरी है; निकाल लूंगा। घबड़ाओ मत। धीरज रखो।
पर बोला वह अपने ही ढंग से; जिसमें न कोई व्याकरण थी, न कोई ढंग था।
जाने को था कि भीतर से आवाज आई कि सुनो! जो भी होओ तुम, लेकिन भाषा तो कम से कम ठीक करो। व्याकरण की भूल तो न हो।
तो बायजीद ने कहा, फिर तुम्हें ज्यादा देर तक रहना पड़ेगा। मैं जाता हूं, व्याकरण सीखूंगा।
कहते हैं, साल भर बायजीद ने व्याकरण सीखी, तब आया। तब तक तो वह व्याकरणाचार्य मर चुका था।
हृदय की भाषा चाहिए; व्याकरण न हो तो चलेगा। क्योंकि वहां तो कोई और डूब कर मर रहा था, अगर तुमने हृदय की भाषा न पकड़ी तो तुम्हीं डूब कर मर रहे हो। भाषा न भी हो तो भी चलेगा। क्योंकि जिससे तुम बोलने चले हो, परमात्मा से--प्रार्थना यानी परमात्मा से एक वार्तालाप, एक गुफ्तगू, कानों की फुसफुसाहट--जिससे तुम बोलने चले हो, वह तुम्हारी भाषा की चिंता नहीं करता, तुम्हारा भाव काफी है।
दादू कहते हैंः भाव भगति बेसास। भाव दे। वही मूल है।
भाव बड़ी और बात है। भाव की कोई व्याकरण है? भाव के कोई शब्द हैं? भाव
तो निशब्द में उठी हुई लहर है। शून्य में गूंज गया हृदय का गीत है। काव्य है, गणित नहीं। तुम्हारे हृदय से उठे। तुम उसे पहले से तैयार मत करना। प्रार्थना कोई रिहर्सल नहीं हो सकती। उसकी कोई तैयारी नहीं हो सकती। वह कोई नाटक नहीं है।
नाटक तो सारा संसार है; फिर मंदिर जाने की कोई जरूरत नहीं। नाटक तो तुम यहीं काफी कुशलता से कर रहे हो। मंदिर जाने का तो अर्थ हैः ऊब गए नाटक से, बहुत खेल लिए नाटक; अब कुछ जीवन के यथार्थ को जानने की तमन्ना उठी। खेल अब रसपूर्ण नहीं रहा। बचपन जा चुका, पक गए, प्रौढ़ता उठी।
तो तुम घर से तैयार करके मत जाना प्रार्थना। अगर तुमने शास्त्रों से प्रार्थना तैयार कर ली तो तुम उस छोटे बच्चे की भांति हो, जो परीक्षा देने तो चला है, लेकिन सब कंठस्थ कर आया है। तुम्हारे कंठस्थ किए गए की थोड़े ही परीक्षा होनी है! हृदयस्थ जो है, उसी की परीक्षा होगी।
अगर तुमने याद कर-कर के प्रार्थना की सब व्यवस्था रट ली है, तो तुम दोहरा दोगे जाकर प्रार्थना, लेकिन तुम ग्रामोफोन के रिकार्ड हो; तुम आदमी नहीं हो। प्रार्थना तो तुम्हारे वास्तविक से उठनी चाहिए। उसकी कोई पूर्व-तैयारी नहीं हो सकती। सभी पूर्व-तैयारियां गलती में डाल देती हैं।
कल ही मैं एक कहानी पढ़ रहा था। एक स्कूल में इंसपेक्टर आने वाला है। शिक्षक ने सारे विद्यार्थियों को समझा दिया, पढ़ा दिया, सब तैयार करवा दिया। क्योंकि पता है, इंसपेक्टर हर स्कूल में क्या सवाल पूछता है। सबसे होशियार बच्चे को--बंटू उसका नाम--उसने बार-बार रटवा दिया कि देख, वह जब पूछे कि बच्चो, तुम्हें संसार में किसने भेजा? तो तू जल्दी से खड़े हो जाना और कहना, जी, भगवान ने! वे बड़े भक्त आदमी हैं, बड़े पूजा-प्रार्थना वाले हैं।

और वे यह प्रश्न सदा ही पूछते हैं बच्चों से। तो यह तू बिल्कुल याद रख। भूल-चूक न हो। कई बार दोहरा लिया।
और दूसरे दिन जब इंसपेक्टर आया, तो शिक्षक ठीक ही कहा था, उसके बंधे हुए प्रश्न थे। उसने यह भी पूछा कि बच्चो, तुम्हें संसार में किसने भेजा? थोड़ी देर सन्नाटा, खामोशी रही। शिक्षक भी थोड़ा बेचैन हुआ कि क्या भूल
गए बच्चे? चारों तरफ नजर डाली। एक दुबला-पतला लड़का खड़ा हुआ। उसने कहा कि जी, भगवान ने जिस बच्चे को भेजा था, वह आज आया नहीं, उसे बुखार आ गया। तुम्हारे रटे हुए उत्तर जीवन के किसी प्रश्न के साथ तालमेल न कर पाएंगे। तुम जितने तैयार होओगे उतने ही हारोगे। तैयार होकर कहीं कोई प्रेम का निवेदन करने गया है!
मुल्ला नसरुद्दीन किसी स्त्री के प्रेम में था। उसने बड़े पत्र लिखे। आभूषण भी भेंट किए, साड़ियां भी दीं। फिर झगड़ा हो गया, बात नहीं बनी, विवाह के पहले ही सब नाता टूट गया। तो वह आकर सब सामान ले जाने लगा जो-जो उसने दिया था।
वह स्त्री तो नाराज थी ही, उसने सब फेंक दिए कपड़े-गहने। तब भी नसरुद्दीन को खड़ा देख कर उसने कहा, अब और क्या बचा है?
नसरुद्दीन ने कहा, जो पत्र मैंने लिखे थे!
उस स्त्री ने कहा, हद हो गई! अंगूठी ले जाओ, ठीक; गहने दिए, ले जाओ; साड़ी... पत्रों का क्या करोगे?
नसरुद्दीन ने कहा, क्या अभी जिंदगी समाप्त हो गई? दूसरी स्त्री को लिखने पड़ेंगे। उन्हीं से काम चला लूंगा। लिखना तो वही है; और फिर लिखने की दुबारा क्या मेहनत करनी! नाम ऊपर बदल देंगे।
तुम्हारी प्रार्थनाएं ऐसी ही झूठी हैं। तुमने पत्र भी नहीं लिखे परमात्मा को। तुम नाम ही बदलते रहे हो। वही तुम्हारे बाप ने लिखा था, वही उनके बाप ने लिखा था। उसमें ही तुम नाम बदल देते हो; दस्तखत अपने मार देते हो। प्रार्थना सब झूठी है।
हृदय का अंतरभाव है प्रार्थना। जाना, छोड़ देना परमात्मा के समक्ष। और
तब तो मंदिर जाने की भी कोई खास जरूरत नहीं है। क्योंकि मंदिर भी क्रियाकांड का हिस्सा है। तब तो एक वृक्ष के पास भी बैठ जाना; बहती नदी-धार के किनारे बैठ जाना; या देखना हिमालय के उत्तुंग शिखरों को, या देखना आकाश के तारों को--वहीं मंदिर है। सभी तरफ उसके मंदिर के स्तंभ खड़े हैं। सभी तरफ उसके मंदिर की चांदनी फैली है। सभी कुछ उसका है। जहां भी तुम हो, वहीं पवित्र भूमि पर खड़े हो। वहीं हृदय को निवेदन करने देना। ऐसा निवेदन कि तुम्हें भी चौंकाए। तुम्हें भी पता नहीं था कि तुम्हारे भीतर से यह भाव उठेगा।
जर्मनी के बहुत बड़े कवि गेटे से किसी ने पूछा कि तुम्हारा जो महाग्रंथ हैः फास्ट, उसका अर्थ क्या है? प्रयोजन क्या है?
गेटे ने अपने कंधे बिचकाए और कहा, तुम तो ऐसे पूछते हो जैसे मुझे पता हो।
लिखा उसी ने है। पूछने वाला भरोसा न कर सका। उसने कहा, कहते क्या हो? तुम्हीं ने लिखा है! उसने कहा, लिखा मैंने है, लिखवाया उसने है। और जब मैंने लिखा था, तो तुम पढ़ कर जितना चौंकते, उससे ज्यादा मैं चौंका था कि मेरे यह भीतर कहां से आता है? ये पंक्तियां कहां से उतरी हैं? यह गीत किसने गाया है? मैं तो बांसुरी की तरह था। जैसे तुम बांसुरी को पूछो गीत के संबंध में। बांसुरी कहेगी, तुम तो ऐसे पूछते हो जैसे मैंने गाया हो। गाने वाले ओंठ कोई और थे।
प्रार्थना तुम थोड़े ही करते हो! परमात्मा ही तुम्हारे द्वारा करता है
और परमात्मा ही तुम्हारे द्वारा लेता है। तुम तो केवल बांसुरी बन जाते हो--बांस की एक पोंगरी। बस तुम राह दे दो, इतना काफी। तुम अवरोध न दो, इतना पर्याप्त। तुम्हारे छिद्र खुले हों, इतना बहुत। परमात्मा ही गाता है अपने गीत को और परमात्मा ही सुनता है। वही प्रतिमा है, वही पुजारी है। वही गायक है, वही श्रोता है।
जिस क्षण तुम्हारे भीतर ऐसी घड़ी आएगी, जहां तुम देख पाओगे कि मैं ही गाने वाला, मैं ही सुनने वाला; मैं ही प्रार्थी, मैं ही पूज्य; जिस दिन

तुम्हारे भीतर प्रार्थना में सब डूब जाएंगे द्वंद्व, द्वैत; एक उठता हुआ अहोभाव, विराट आकाश की तरफ फैलती हुई एक तरंग--उस क्षण प्रार्थना न केवल पर्याप्त है, पर्याप्त से भी ज्यादा है। उस क्षण प्रार्थना ही परमात्मा है।
उधार ने मारा। उधार ने बुरी तरह मारा। सब झूठा हो गया। प्रेम के शब्द
तक बासे! प्रार्थना के शब्द भी पंडितों के सिखाए! छोड़ो उन्हें। मैं तुमसे कहता हूं, छोड़ो ये झूठी प्रार्थनाएं, ताकि सच्ची प्रार्थना का जन्म हो सके। मैं तुमसे कहता हूं, हटो इन मंदिरों से, क्योंकि वे केवल औपचारिक हो गए हैं। और प्रार्थना का मंदिर तो अनौपचारिक ही हो सकता है।
लोगों ने तुमसे कहा है कि प्रार्थना करो जाकर मंदिर में। मैं तुमसे कहता हूं, जहां तुम प्रार्थना करोगे, वहीं मंदिर है। असली सवाल प्रार्थना है; असली सवाल मंदिर नहीं है। लोगों ने कहा है, प्रार्थना करो परमात्मा से। मैं तुमसे कहता हूं, बिना प्रार्थना के तुम परमात्मा को जानोगे कैसे? किसके सामने ले जाओगे अपनी अर्चना? किसके सामने रखोगे नैवेद्य? किसके चरणों में झुकाओगे सिर? अगर वे चरण उपलब्ध ही हैं तो झुकना क्या है, खोजना क्या है, पाने को क्या बचा?
नहीं; मैं तुमसे कहता हूं, तुम प्रार्थना करो। तुम झुको। चरणों की फिक्र मत करो। तुम जहां झुकोगे, वहीं उसके चरण होंगे। तुम जहां प्रार्थना करोगे वहीं तुम उसे पाओगे। प्रार्थना परमात्मा से बड़ी है। कठिन होगा सोचना कि प्रार्थना परमात्मा से बड़ी है। लेकिन होनी ही चाहिए।
कबीर कहते हैंः गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांव।
दोनों सामने खड़े हो गए हैं गुरु गोविंद, किसके पैर छुऊं? अड़चन उठी होगी।
फिर कबीर ने गुरु के ही पैर छू लिए। क्योंकि कबीर ने कहा हैः बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो बताए।
गोविंद का पता ही कैसे चलता? आज दोनों सामने खड़े हैं। गोविंद का तो पता ही न चल सकता था बिना गुरु के। तो गुरु गोविंद से बड़ा है। उसके द्वारा ही जाना।
इसलिए तुमसे कहता हूं, प्रार्थना परमात्मा से बड़ी है। क्योंकि प्रार्थना के बिना पता ही कैसे चलता कि परमात्मा है? तुमने उलटा ही पाठ पढ़ा, इसलिए दुनिया अधार्मिक है।
लोग कहते हैं, पहले सिद्ध कर लो कि परमात्मा है, फिर प्रार्थना करना। उनकी बात गणित-युक्त लगती है। बात साफ लगती है, गणित सीधा है कि जब परमात्मा है ही नहीं, तो प्रार्थना कैसे करनी? लेकिन जीवन के गणित में यह बात ठीक नहीं है। बुद्धि के गणित में ठीक होगी। बुद्धि का कोई गणित गणित है? उसकी कोई गहराई है? सतही है।
जीवन का गहरा गणित कहता है, प्रार्थना होगी तो परमात्मा प्रकट होगा। क्योंकि प्रार्थना परमात्मा को देखने की आंख है। प्रार्थना परमात्मा को जानने का भाव है। प्रार्थना परमात्मा को पाने की पात्रता है। जहां प्रार्थना होती है वहां परमात्मा प्रकट हो जाता है।
अगर तुमने कहा कि पहले परमात्मा मिल जाए फिर प्रार्थना करेंगे, तो बात बड़ी होशियारी की कह रहे हो, पर बड़ी मूढ़ता की। तुम्हें परमात्मा कभी मिलेगा नहीं। परमात्मा मिलेगा नहीं, प्रार्थना कभी होगी नहीं। तुम भटकते ही रहोगे।
इसलिए तो पृथ्वी अधिक मात्रा में नास्तिक है। इसलिए नास्तिक नहीं है
कि लोगों को पक्का पता चल गया है कि परमात्मा नहीं है; इसलिए नास्तिक है कि धर्मगुरुओं ने लोगों को सिखाया है कि प्रार्थना तभी हो सकती है जब परमात्मा हो। गलत ही बात सिखा दी।
जीवन में तुम कभी किसी के प्रेम में पड़ जाते हो। तुमने कभी सोचा, प्रेम पहले है या प्रेमी? अक्सर तुम्हारा गणित भी यही कहता है कि यह स्त्री मिल गई, बड़ी प्रिय है, इसलिए प्रेम हो गया। गलत! अगर प्रेम हृदय में होता ही न, यह स्त्री मिलती ही नहीं। प्रेम पहले है। प्रेम भीतर था। यह स्त्री बहाना बन गई उसे प्रकट होने का। दूसरी स्त्रियां न बन सकीं इतना बहाना, यह स्त्री बहाना बन गई; लेकिन प्रेम भीतर था। इस स्त्री ने सुविधा

दी होगी प्रेम को बहने की, लेकिन इस स्त्री के कारण प्रेम पैदा नहीं हुआ है। प्रेम था ही। धारा मौजूद थी। बहाने के लिए द्वार इस स्त्री ने दे दिया होगा। लेकिन प्रेम पहले है। नहीं तो प्रेमी पैदा ही कैसे हो सकेगा? प्रार्थना पहले है। और अगर प्रार्थना है, तो तुम्हें कहीं से भी द्वार मिल जाएगा। वृक्ष में भी वही खुल जाएगा, चट्टान में भी वही दिख जाएगा। प्रेम चाहिए। प्रेम है प्रमाण परमात्मा का। कोई और प्रमाण नहीं है।
इसलिए तुम मत कहो कि क्या प्रार्थना ही पर्याप्त है? मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा भी जरूरी नहीं है। प्रार्थना एकदम पर्याप्त--पर्याप्त से भी ज्यादा। पा ली प्रार्थना, पा लिया परमात्मा।
उलटी खोज में मत पड़ना। उस खोज से आदमी नास्तिक हो जाता है। जो मैं कह रहा हूं, उसी मार्ग से आदमी आस्तिक हो सकता है। और कोई उपाय आदमी के आस्तिक होने के नहीं हैं।

दूसरा प्रश्नः हम अंधे हैं, अंधकार में जी रहे हैं। प्रकाश की चर्चा
भर सुनी है, लेकिन उसका कुछ अनुभव नहीं। ऐसी अवस्था में हमारी प्रार्थना का क्या रूप हो सकता है? यानी हम प्रार्थना क्या करें?

मुझसे मत पूछो। किसी से मत पूछो। क्योंकि कोई भी रूप दे देगा, प्रार्थना उधार हो जाएगी। उठने दो। इतना डर क्या है? इतनी घबराहट क्या है? रुको, शांत बैठो और उठने दो प्रार्थना को। और तुम पाओगे कि बड़ी अनूठी घटना घटनी शुरू हो जाती है।
लेकिन तुम रिहर्सल के आदी हो। तुम कहते हो--पहले पक्का तो पता चल जाए
कि प्रार्थना क्या करनी है। लेकिन अगर पता ही चल गया कि प्रार्थना क्या करनी है, तुम सदा के लिए प्रार्थना से वंचित रह जाओगे। मत पता लगाओ। छोड़ दो उसके अनजान हाथों में। अंधेरा है? छोड़ दो अंधेरे में। प्रकाश का कोई पता नहीं है? अगर मैं कुछ कह भी दूंगा तो भी पता न हो जाएगा। तो तुम प्रकाश के लिए कहे गए शब्दों को याद कर लोगे। उन्हीं को तुम अंधेरे में दोहराते रहोगे।
शब्दों से अंधेरा मिटता है? तुम कितना ही दोहराओः प्रकाश, प्रकाश, प्रकाश... । अंधेरा मिटेगा? दीया चाहिए! शब्द मैं तुम्हें दे सकता हूं, दीया तुम्हें कौन देगा? दीया तुम्हें ही जलाना पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारे प्राणों के प्राणों का ही दीया है। "प्रकाश" शब्द मैं दे सकता हूं। शब्द का क्या करोगे? शब्द से ज्यादा बेजान कोई चीज संसार में और है?
टाल्सटाय की बड़ी प्रसिद्ध कथा है। मुझे बड़ी प्रीतिकर है। रूस के महापुरोहित को पता चला कि एक झील के पार, पहाड़ों के पीछे छिपे, तीन संतों का आविर्भाव हुआ है। और लोग भागे जा रहे हैं। गरीब ग्रामीणों में बड़ी प्रतिष्ठा है। भोले-भाले लोग भगवान की तरह पूजा कर रहे हैं उन संतों की। यह महापुरोहित को बरदाश्त न हुआ।
पुरोहित को संत कभी बरदाश्त नहीं होते। क्योंकि संत की मौजूदगी, पुरोहित का धंधा टूटता है। संत सभी तरह की औपचारिकता के विरोध में है। संत यानी एक बगावत, एक विद्रोह। संत कभी भी गैर-बगावती नहीं हो सकता--सिर्फ विनोबा भावे को छोड़ कर। वे सरकारी संत हैं--अगर सरकारी संत कोई हो सकता है। संत तो विद्रोही ही होगा। सरकार और समाज और व्यवस्था हमेशा उससे अड़चन में होगी।
पुरोहित घबड़ाया। और फिर उसने कहा कि यह बात समझ में नहीं आती। मेरी बिना स्वीकृति के कोई संत कैसे हो सकता है?
ईसाइयत ने तो हद मूढ़ता कर दी। वे संतत्व के लिए सर्टिफिकेट देते हैं चर्च से। वस्तुतः अंग्रेजी में जो संत है, सेंट, वह एक यूनानी शब्द से बनता है, जिसका अर्थ होता है सैंकटस। जिसको सैंक्शन मिल गया, वह संत। जिसको अधिकारियों के द्वारा स्वीकृति मिल गई, प्रमाणपत्र मिल गया, वह संत। अंग्रेजी का सेंट शब्द एक मजाक है। हिंदी का संत शब्द अंग्रेजी के सेंट शब्द से नहीं आया है और न अंग्रेजी का सेंट शब्द हिंदी के संत शब्द से गया है, यह ध्यान रखना। दोनों एक से लगते हैं। अंग्रेजी का सेंट शब्द आया है

सैंकटस से। उसका मतलब होता हैः अधिकारियों के द्वारा प्राप्त स्वीकृति; राज्य के द्वारा, चर्च के द्वारा, व्यवस्था के द्वारा। हिंदी का संत सत से बना है। जिसने सत्य को जान लिया, जो सत के साथ सत हो गया, वह संत। इसके लिए कोई स्वीकृति नहीं हो सकती, कोई प्रमाण नहीं हो सकता।
पुरोहित नाराज हुआ कि मेरी बिना आज्ञा के? क्योंकि फरमान निकाले जाते हैं ईसाइयत में हर साल कि कितने संत हो गए! फरमान में नाम होते हैं। इनका नाम तो निकला भी नहीं है। मगर खबरें रोज आती गईं, भीड़ बढ़ती गई। शहरों से लोग जाने लगे, चर्चों में लोगों का आना कम हो गया। संतों ने दीवानगी पैदा कर दी। आखिर पुरोहित को भी जाना पड़ा। देखना तो चाहिए!
वह गया अपनी मोटर बोट पर बैठ कर। सीधे-सादे लोग थे, उसको देख कर खड़े हो गए। उसका चोगा, उसके चमकते हुए सोने के सितारे, छाती पर लगे हुए सम्राटों के द्वारा दी गई स्वीकृतियां सम्मान--उसका ढंग प्रभावशाली था।
जिनके भीतर कुछ नहीं होता, वे प्रभावशाली ढंग पैदा कर लेते हैं। जिनके भीतर आत्मा राख की तरह होती है, ज्योति की तरह नहीं, वे पद्मभूषण, भारतभूषण, भारतरत्न और न मालूम क्या-क्या पद-पदवियां इकट्ठी कर लेते हैं।
उन्हीं के सहारे थोड़ी सी आत्मा का अहसास करते हैं। उधार! वह भी दूसरों के द्वारा दी गई आत्मा। दूसरों के द्वारा दिया गया नाम, पद, प्रतिष्ठा।
देख कर तीनों संत खड़े हो गए। तीनों ने झुक कर उसे प्रणाम किया।
संत तो सदा ही झुकने को तैयार है। उसने झुकने की मौज, झुकने का मजा, झुकने की मस्ती जान ली। वह झुकने का राज पकड़ गया है।
पुरोहित पहले तो मन में डरा था कि पता नहीं ये बगावती संत झुकें न झुकें। राजी हों, न राजी हों। लेकिन ये तो सीधे-सादे गांव के किसान थे। इन पर कब्जा करना तो कठिन ही न था। उसने जोर से कड़क आवाज में कहा कि तुमने यह क्या उपद्रव मचा रखा है? यह इतनी भीड़-भाड़ यहां क्यों आ रही है?
उन तीनों ने कहा कि हमने कुछ भी नहीं किया। हमने किसी को बुलाया भी नहीं। सच तो यह है कि लोगों के आने से हमारी प्रार्थना में बड़ी बाधा पड़ रही है। आपकी बड़ी कृपा होगी, आप लोगों को रोक दें। हम बड़े मजे में थे वर्षों तक, कोई जानता न था। यह झील थी, यह पहाड़ था, हम थे। बड़ा मजा था। अब यह भीड़-भड़क्के से हम बड़े परेशान हो रहे हैं। आपकी बड़ी कृपा होगी। और हम कोई संत वगैरह नहीं हैं। मगर हम कितना ही कहें, लोग मानते ही नहीं। जितना हम कहते हैं कि हम नहीं हैं, उतनी भीड़ बढ़ती जा रही है।
महापुरोहित स्वस्थ हुआ। उसने कहा, कोई चिंता के योग्य नहीं हैं। ये
तो बड़े साधारण से लोग हैं। उनको कहा, प्रार्थना में बाधा पड़ती थी? क्या प्रार्थना करते थे?
तो वे तीनों जरा शर्माए। उन्होंने कहा कि अब आप यह मत पूछो। क्योंकि
हम बेपढ़े-लिखे हैं; प्रार्थना करना हमें आता नहीं। और हमने किसी से प्रार्थना सीखी भी नहीं है। हम बिल्कुल गंवार हैं। आप इसमें पक्के रहो। और हमने अपनी ही एक प्रार्थना बना ली है।
तब तो पुरोहित और नाराज हुआ कि यह भी कभी तुमने सुना कि प्रार्थना और
हर कोई बना ले? चर्च की प्रार्थना सुनिश्चित है। तुम ईसाई हो?
उन्होंने कहा कि निश्चित।
तो तुमने कैसी प्रार्थना बनाई है बिना आज्ञा के? तुम अपनी प्रार्थना
का रूप बताओ।
वे बड़े शर्माने लगे। निश्चित ही, प्रार्थना कोई किसी को बता सकता है? प्रार्थना तो हार्दिक है, निजी है, एकांत की है। प्रार्थना किसी को बताना तो ऐसे ही होगा, जैसे कि बीच बाजार में खड़े होकर किसी को प्रेम करने लगना। वह बात बेहूदी होगी, अशोभन होगी। प्रेम तो एकांत चाहता है। प्रार्थना तो और भी एकांत चाहती है। कानों-कान किसी को खबर न होनी चाहिए उसकी। क्योंकि जैसे ही कोई दूसरा सुन लेगा, उसकी निजता खो जाएगी।
इसलिए तो मंत्र को कान में फूंक कर देते हैं कि कोई सुन न ले। और गुरु कहता है कि मंत्र को किसी को बताना नहीं। तुम चकित भी होओगे कि मंत्र कुछ भी खास तो नहीं है। कान में कह दिया कि राम-राम राम-राम जपना। अब यह भी कोई बात है कि किसी को मत बताना! इसमें बताने का क्या सवाल है? यह तो सभी को पता है।

न, यह बात ही नहीं है पता होने का या न होने का। मंत्र इतना निजी और एकांत है, उसे तुम किसी को कहना मत। क्योंकि कहने में थोड़ा प्रदर्शन आ जाएगा। और जहां प्रदर्शन आता है वहां चीजें झूठी हो जाती हैं। जीसस ने कहा है, तुम्हारा बायां हाथ पूजा करे तो दाएं हाथ को पता न चले। तुम्हारा बायां हाथ दान दे, तो दाएं को खबर न मिले। तुम्हारे ही हाथों को खबर न हो पाए, ऐसा चुपचाप देना। जरा भी आवाज न हो।
तो वे कहने लगे, अब आप यह मत पूछें। आप पूछते हैं तो बताना पड़ेगा। लेकिन हम कुछ जानते नहीं, ऐसी ही हमने एक घरेलू ढंग की प्रार्थना बना ली है। और आप हंसेंगे और हमारी बड़ी मजाक होगी। परमात्मा तो झेल लेता है, क्योंकि जानता है--हम नासमझ, अज्ञानी, अपराधी। मगर ये संसार के लोग बहुत हंसेंगे।
पुरोहित तो और अकड़ गया। उसने कहा, बतानी ही पड़ेगी। क्योंकि अगर गलत है, तो मैं सुधार कर दूंगा। अगर बिल्कुल गलत है, तो तुम्हें ठीक-ठीक प्रार्थना--स्वीकृत चर्च के द्वारा--वह मैं तुम्हें दे दूंगा। तुम बोलो! तो वह नहीं माना तो वे बोले। उन्होंने एक छोटी सी प्रार्थना बना ली थी। ईसाइयत मानती है कि परमात्मा के तीन रूप हैं। जैसा कि हिंदू मानते हैं त्रिमूर्ति; ऐसा ही ईसाई मानते हैं ट्रिनिटी। तो उन तीनों ने कहा, हमने एक छोटी सी प्रार्थना बना ली है कि तुम भी तीन हो, हम भी तीन हैं, हम पर कृपा करो। अब यह भी कोई प्रार्थना हुई! यह तो मजाक हो गई। तुम भी तीन, हम भी तीन-- वे भी तीन ही थे--अब और ज्यादा क्या कहना? तुम भी तीन हो और हम भी तीन हैं, बात बन गई। अब तुम हम पर कृपा करो। और तो कुछ कहने को ज्यादा इससे है भी नहीं।
पुरोहित को भी हंसी आ गई। गंभीरता टूट गई। उसने कहा, हद नासमझ हो तुम लोग। अब दुबारा यह मत करना। यह कोई प्रार्थना हुई!
उसने लंबी प्रार्थना, जो चर्च की स्वीकृत प्रार्थना थी, उनको कही। सुनी उन्होंने बड़े भाव से। पर कहा, बहुत लंबी है, हम भूल जाएंगे। आप फिर एक दफा कह दो। फिर उसने कही। फिर भी वे बोले कि कृपा होगी बड़ी, एक दफा और दोहरा दो। क्योंकि हमें याद हो जाए। कहीं कोई शब्द भूल गए, या गड़बड़ हो गई, तो हम फंसेंगे। अभी तक जो भूल हुई, हुई; अब आगे तो न हो। तो तीन बार पुरोहित ने कहा। उसने कहा, ये तो बिल्कुल महामूढ़ हैं। प्रार्थना को भी तीन दफे कहना पड़ रहा है। बिल्कुल ठीक व्यवस्थित करके सब, बड़ा प्रसन्न होकर कि तीन भटकों को मार्ग पर ले आया...
सिर्फ मूढ़ ही भटकों को मार्ग पर लाने का ख्याल रखते हैं। सिर्फ मूढ़ ही सोचते हैं कि लोग भटक रहे हैं, उनको मार्ग पर लाना है। ज्ञानी को जो मिला है, बांटता है; लेकिन किसी को मार्ग पर लाने के लिए नहीं। कौन किसको मार्ग पर ला सकता है? लोग भटकते हैं अपनी स्वतंत्रता से। आते हैं मार्ग पर अपनी स्वतंत्रता से। कौन किसको ला सकता है?
लेकिन पुरोहित अकड़ा हुआ, प्रसन्न चित्त, कि आना व्यर्थ न हुआ। यात्रा सार्थक हुई। अब यह उपद्रव बंद हुआ। जाकर कह देगा कि ये भी कोई संत हैं! ये तो गांव के गंवार हैं।
यही तो उस पुरोहित ने दादू को कहा होता, कबीर को कहा होता। ये भी गांव
के गंवार हैं सब। इनकी प्रार्थना में भी कोई ढंग है! काशी के पंडित कबीर को समझते ही रहे कि यह आदमी गंवार है, बेपढ़ा-लिखा है। ये कोई बातें हैं प्रार्थना करने की?
लेकिन पुरोहित जब मध्य झील में था और बड़े प्रसन्न मन से लौट रहा था, एक बड़ा काम करके। उस प्रार्थना को तीन संतों को सिखा कर लौट रहा था, जिसको करना वह खुद भी नहीं जानता है। जो उसने कभी नहीं की। शब्द दोहराए हैं, कंठस्थ हैं। काश, प्रार्थना शब्दों में होती! बड़ा सरल हो जाता। बीच झील में था कि घबड़ा कर उसने देखाः पीछे एक तूफान की तरह कुछ आ रहा है। समझ में न आया; नाविक भी समझ न पाए कि ऐसा कभी देखा नहीं, इस झील में ऐसा कभी होता नहीं। यह क्या हो रहा है? जब थोड़ा तूफान पास आता मालूम पड़ा, तब उसे दिखाई पड़ा कि वे तीनों संत--गंवार--झील पर भागते हुए चले आ रहे हैं। डूबते नहीं पानी में। पानी पर ऐसे चल रहे हैं जैसे रास्ता हो।

तीनों आकर पास खड़े हो गए। हाथ जोड़ कर कहा कि रुकिए, हम भूल गए वह प्रार्थना। आप कृपा करके एक बार और बता दें!
तब उस पुरोहित की भी आंख खुल गई। अंधों की भी कभी खुल जाती है। यह देख
कर महिमावान रूप उसे समझ में आया कि मूढ़ कौन है। ये गंवार हैं या मैं गंवार हूं! इस बार वह झुका उनके चरणों में। उसने कहा, मुझे माफ कर दो। तुम्हारी प्रार्थना पुरानी ही ठीक है। हमारी स्वीकृति की जरूरत नहीं। उसकी स्वीकृति मिल चुकी है, ऐसा लगता है। हम कौन हैं? बीच के दुकानदार हैं। तुम्हारा उससे सीधा संबंध हो गया, तुम हमें भूल जाओ। और हमारे लिए भी प्रार्थना करना! जब तुम अब कहो कि तुम तीन हो, हम तीन हैं; तो अब कहना, तुम तीन हो, हम चार हैं--मुझे भी जोड़ लेना--हम पर कृपा करो।
नहीं, प्रार्थना कोई किसी को बता नहीं सकता। तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारे जैसी होगी, मेरी प्रार्थना मेरे जैसी होगी। तुम्हारे पड़ोसी की प्रार्थना उसके जैसी होगी। प्रार्थना तो तुम्हारे हृदय की अद्वितीयता से निकलेगी। तुम उसे निकलने दो। तुम छोटे बच्चों की भांति हो जाओ। परमात्मा के सामने भी तैयार होकर क्या जाना! उससे क्या छुपा है? उसके सामने क्या रूप दिखलाने! क्या प्रदर्शन करना है! क्या भाषा और व्याकरण! क्या लय-ताल! कुछ भी तो नहीं है। वहां तो तुम्हारा सीधा भाव ही समझ लिया जाएगा। रोने जैसा लगे, रोना; वही तुम्हारी प्रार्थना होगी। हंसने जैसा लगे, हंसना; वही तुम्हारी प्रार्थना होगी।
झेन फकीर सुबह उठ कर जो प्रार्थना करते हैं, वह सिर्फ हंसने की है। झेन फकीर सुबह उठते हैं, बिस्तर से खड़े होकर सूरज की तरफ देखते हैं, दोनों हाथ अपनी कमर पर रख कर झुक जाते हैं सूरज की तरफ, और हंसना शुरू कर देते हैं। पागलपन है। कभी-कभी घंटों लोट-पोट हो जाते हैं।
एक अमरीकी यात्री एक झेन फकीर के पास जापान में मेहमान था। जब सुबह उसने यह हाल देखा तो उसने कहा कि मैं भी किस पागल के पास आ गया! वह अपना इंतजाम करने लगा, सामान बांधने लगा। लोगों ने पूछा, कल ही तो रात आप आए, कहां जाते हैं?
उसने कहा, मैं तो सोचा था कि कोई ज्ञानी के यहां जा रहा हूं। यह आदमी पागल मालूम होता है। सुबह मैंने इसको देखा, यह सूरज की तरफ देखते-देखते और ऐसा हंसने लगा खिलखिला कर। कोई था ही नहीं, कोई मजाक की बात भी न थी, हंसने का कोई सवाल ही न था। और फिर लोट-पोट हो गया। और घंटे भर तक पसीना-पसीना हो गया। और ऐसा प्रसन्न था कि मैंने कभी ऐसा पागल कोई देखा ही नहीं जो इतना प्रसन्न हो। जो पागल नहीं हैं, वे तो बड़े गंभीर रहते हैं। पागल ही कभी हंसते हैं।
पर उसने कहा, आप रुकें, उनसे पूछ कर जाएं। आपको पता नहीं, ये झेन फकीरों की प्रार्थनाएं हैं। यह एक प्रार्थना का ढंग है।
फकीर से पूछा, तो वह फिर हंसने लगा, लोट-पोट होने लगा। उसने कहा कि तुमने फिर छेड़ दी वही बात। रात हम बामुश्किल से सो पाए। सुबह उठ कर हम हंसे, अब तुमने फिर वही बात छेड़ दी। और वह लोट-पोट होने लगा और वह हंसने लगा। और उसने कहा, हंसना हमारी प्रार्थना है। परमात्मा के सामने हम हंस कर अपने को निवेदन करते हैं। और सुबह का प्रारंभ हंसने से ही होना चाहिए। सुबह क्या रोती हुई सूरत लेकर चलना! और सुबह ही हम उससे नाता जोड़ लेते हैं हंसी का; फिर वह हमें दिन भर हंसाता है, फिर जगह-जगह से वह हंसाता है। हंसो; उससे भी प्रार्थना बन जाएगी। रोओ; उससे भी प्रार्थना बन जाएगी। ध्यान रखना, रोने का कोई संबंध दुख से नहीं है। ये गलत संबंध मनुष्य
ने जोड़ रखे हैं। तुम्हारे मन में, सभी के मन में यह बात बिठा दी गई है कि रोने का संबंध दुख से है। कोई मर जाए, तब तुम रोते हो। कुछ नुकसान हो जाए, हानि हो जाए, तब तुम रोते हो। दिवाला निकल जाए, मकान में आग लग जाए, तब तुम रोते हो। तुम यह भूल ही गए हो कि रोने से कोई संबंध दुख का नहीं है।
कभी तुम ठीक से हंसो, और तुम पाओगे--तब भी आंखों से आंसू बहने लगेंगे। कभी तुम परिपूर्ण रूप से आनंदित होकर नाचो, और तुम पाओगे--आंसुओं की धार लग गई। रोने का कोई लेना-देना दुख से नहीं है। रोने का अनिवार्य संबंध तो अतिशय से है। कोई भी भाव-दशा अतिशय हो जाए, वह आंसू बन जाती है। दुख अतिशय हो जाए तो आंसू बन जाता है; सुख अतिशय हो जाए तो आंसू बन जाता है।

लेकिन मनुष्य-जाति को वंचित कर दिया गया है, कुछ भ्रांत धारणाएं बिठा
दी गई हैं--कि रोओ मत! रोना दुख जाहिर करता है।
तुमने कभी किसी को हंसते हुए और रोते हुए साथ-साथ देखा है? उसकी प्रार्थना में बड़ी गति होगी। वह हंसेगा परमात्मा के लिए, रोएगा अपने लिए। या उसका हंसना इतना अति हो जाएगा कि उसके आंसुओं से हंसी बहने लगेगी। ओवर-फ्लोइंग! आंसुओं का अर्थ है, ऊपर से बह जाना। इतना ज्यादा हो गया है भीतर भाव घना कि अब उसे भीतर सम्हाल रखने का कोई उपाय न रहा। वह पात्र के ऊपर से बह रहा है। आंसू दिव्य हैं। और अगर तुम परमात्मा के लिए रोते हो--चाहे दुख से रोओ, चाहे सुख से रोओ, चाहे आनंद से रोओ, चाहे पीड़ा से रोओ--रोना प्रार्थना हो जाएगी। हंसना प्रार्थना हो जाएगी।
लेकिन बुद्ध न कभी हंसे, न कभी रोए। उनकी प्रार्थना मौन है। वह उनकी प्रार्थना है। तुम्हारे लिए शायद ठीक बैठे, न बैठे। मीरा नाची। तुम महावीर को नाचने कहोगे, जंचेगी न बात। वह व्यक्तित्व नाचने वाला नहीं है। मीरा पर जब प्रार्थना का आघात हुआ, तो मीरा नाची। उसका यंत्र तैयार था नाचने को। हाथ पड़ गए परमात्मा के, स्वर छिड़ गए, तार कंप उठे। चैतन्य महाप्रभु नाचे; नाचते रहे। बुद्ध बैठे रहे, महावीर खड़े रहे। उनके लिए वही प्रार्थना थी।
प्रत्येक व्यक्ति की प्रार्थना ऐसी होगी, जैसे तुम्हारे अंगूठे का निशान है। अलग-अलग होगी। उसका कोई सामूहिक ढंग नहीं हो सकता। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, समूह में प्रार्थना नहीं हो सकती। प्रार्थना निजी निवेदन है, अत्यंत वैयक्तिक है। क्योंकि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व उस पर छाया होगा।
अगर तुम मीरा से कहो कि तू चुप बैठ कर प्रार्थना कर जैसे बुद्ध बैठे हैं! तो तुम मीरा को अड़चन में डाल दोगे। उसकी प्रार्थना हो ही न सकेगी। क्योंकि उसे सतत यह ध्यान रखना पड़ेगा, कहीं शरीर नाचने न लगे। क्योंकि जैसे ही वह भाव-दशा में आएगी, शरीर नाचेगा। नाच उसके लिए श्वास जैसा है।
तुमने अगर कहा कि नाचना नहीं; बस शरीर को सीधा करके, रीढ़ को सीधा करके, बिल्कुल ऐसे बैठ कर जैसे मुर्दा प्रतिमा हो पत्थर की, ऐसे ही प्रार्थना करना! तो मीरा की प्रार्थना ही न हो सकेगी। तुम मीरा को डुबा दोगे। क्योंकि जब भी प्रार्थना आएगी तभी वह नाचने लगेगी।
तुम अगर बुद्ध को कहोगे, नाचो; महावीर को कहोगे, नाचो; पतंजलि को कहोगे
कि नाचो; तभी प्रार्थना होगी! देखो मीरा को, देखो चैतन्य प्रभु को! वे सब सिर हिला देंगे। वे कहेंगे, यह हम से न होगा। और अगर हमें तुमने नाचने को कहा, तो हमारी जो शांति है, सब खो जाएगी।
जब उनके तार छेड़े परमात्मा ने, तो वहां शून्य का संगीत उठा। जब उनके तार छेड़े परमात्मा ने, तो सारी गति शांत हो गई; जैसे झील पर एक भी लहर न रही।
ध्यान रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मीरा ठीक है। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि बुद्ध ठीक हैं। कौन ठीक या गलत है, इसका तुम हिसाब ही मत रखो। तुम्हारे लिए क्या ठीक है, इतना ही भर तुम हिसाब रखना; तो तुम्हारा रास्ता भटकेगा नहीं।
प्रत्येक के लिए धर्म अनूठा होगा। होना ही चाहिए। तुम दूसरे के कपड़े पहनने को राजी नहीं होते; दूसरे के उपयोग किए जूते में पैर नहीं डालते; दूसरे की थाली में भोजन नहीं करते। तुम दूसरे के धर्म को क्यों उधार लेते हो? शरीर पर तुम कपड़े दूसरे के पहनना पसंद नहीं करते, वे दीनता की खबर देते हैं। तुम आत्मा पर क्यों प्रार्थना के वस्त्र दूसरों के ओढ़ना चाहते हो? वे तो महा-दीनता की खबर देंगे। वहां तो तुम्हें ठीक वैसे ही जाना पड़ेगा जैसे तुम हो। परमात्मा पुनरुक्ति नहीं करता।
एक बार ऐसा हुआ, एक मंच पर मैं बैठा था और एक स्वामी का व्याख्यान चलता था। वे क्रोधी आदमी हैं, जैसा कि अक्सर स्वामीगण होते हैं। क्योंकि जिन्होंने भी जीवन की बहुत सी इच्छाओं को दबा लिया, उनके भीतर सारी इच्छाएं दबी हुई क्रोध बन जाती हैं। उनके पास एक ही निकास रह जाता है-- क्रोध का। उन्होंने बोला कुछ, पुनर्जन्म का सिद्धांत समझाया था। एक आदमी बार-बार खड़े होकर उलटे-सीधे प्रश्न पूछने लगा। वह भी पंडित मालूम होता था।

क्योंकि वेद के उल्लेख करता, उपनिषद के सूत्र दोहराता। और स्वामी को उसने अड़चन में डाल दिया था। उसकी पूरी इच्छा उनको परेशान करने की थी। स्वामी क्रोध में आने लगे। आखिर उस आदमी ने पूछा कि स्वामी जी, क्या ऐसा भी हो सकता है कि अगले जन्म में मैं गधे का रूप लूं; जैसा कि आप पुनर्जन्म के सिद्धांत में समझा रहे हैं? स्वामी को मौका मिला। उसने कहा कि नहीं, परमात्मा तुम्हें वही रूप दुबारा कभी नहीं देता। गधे तो तुम अभी हो। अब दुबारा...
स्वामी ने तो क्रोध में कहा था, लेकिन मुझे बात जंची। बात तो ठीक है। परमात्मा दो व्यक्तियों को एक सा नहीं बनाता। और न परमात्मा तुम्हें ही दुबारा ऐसा ही बनाएगा। परमात्मा नित-नूतन है। उसके आविष्कार की कोई सीमा नहीं है। उसके सृजन की कोई सीमा नहीं है। वह रोज नये रंग भरता है, रोज नये गीत जन्माता है, रोज नये प्राण फूंकता है। दोहराता नहीं। थक नहीं गया है, चुक भी नहीं गया है। परमात्मा अथाह है। उसकी सृजनात्मकता असीम है। तुम्हारे जैसा न तो उसने कभी किसी को बनाया था और न तुम्हारे जैसा फिर कभी किसी को बनाएगा। इसलिए कोई बंधी परिपाटी तुम्हारा धर्म नहीं हो सकती। तुम्हारे लिए किसी धर्म में व्यवस्था ही नहीं है। तुम्हें तो अपना धर्म खोजना पड़ेगा।
कृष्ण ने बड़ी मीठी बात अर्जुन से कही हैः स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः। उसका यह मतलब नहीं है कि तुम जिस घर में पैदा हुए हो, उसी धर्म में मरना और दूसरे का धर्म कभी स्वीकार मत करना। उससे कोई हिंदू, मुसलमान, ईसाई के धर्म का सवाल नहीं है। स्वधर्मे निधनं श्रेयः! कृष्ण यह कह रहे हैं कि जो तुम्हारी स्वसत्ता का धर्म है, उसमें अगर खो भी जाओ, मृत्यु भी हो जाए, तो भी श्रेयस्कर है। क्योंकि उसी भांति तुम अपने को पा लोगे। मिट कर भी अपने को पा लोगे।
कृष्ण तुम्हें जीवन का गहनतम सूत्र कह रहे हैं कि तुम तुम जैसे हो, तुम्हारे जैसा कोई नहीं। कोई तुलना नहीं हो सकती। तुम किसी भी लकीर पर ठीक न बैठोगे। लकीर के फकीर मत बनना। क्योंकि तुम्हारे लिए कोई लकीर खींची ही नहीं गई। तुम्हीं को खींचनी है। कोई राजपथ नहीं है, जिस पर तुम चल पड़ना भीड़ के साथ। तुम्हें अपनी पगडंडी बनानी होगी। और पगडंडी भी ऐसी नहीं कि बनी हुई मिल जाए कि कोई तुम्हें बना चुका हो पहले से। नहीं। यह जीवन का क्षेत्र आकाश जैसा है। पक्षी उड़ते तो हैं, लेकिन पदचिह्न नहीं छूट जाते, पगडंडी नहीं बनती। चेतना के आकाश में भी कोई पगडंडी नहीं बनती। बुद्ध चलते हैं, महावीर चलते हैं, मीरा नाचती चलती है, लेकिन कोई पगडंडी नहीं बनती। राजपथ का तो सवाल ही नहीं है, जहां कि सारी भीड़ चल सके और राजनैतिक पार्टियां अपनी रैली कर सकें--यह तो कोई सवाल ही नहीं है। राजपथ तो हैं ही नहीं धर्म में, पगडंडी भी बनी-बनाई नहीं मिलती, रेडीमेड नहीं मिलती।
फिर कैसे रास्ता बनता है? ज्ञानियों ने कहा है, चल-चल कर ही रास्ता बनता है। तुम्हीं चलते हो और थोड़ा सा रास्ता निकालते हो। जैसे तुम जंगल में भटक गए हो, कोई रास्ता नहीं है; क्या करोगे? चलोगे, खोजोगे, झाड़ियां काटोगे, रास्ता बनाओगे।
तुम्हारा रास्ता किसी और के काम आने वाला नहीं है। क्योंकि न तो पहले
से रास्ता तैयार होता है; तुम चलते हो उतना ही तैयार होता है। और दूसरी बात भी याद रखनाः तुम जितना चल चुके उतना शून्य हो जाता है, आकाश में खो जाता है। वह पीछे नहीं रह जाता। इसलिए किसी के पीछे चलने की कोई सुविधा नहीं है।
धर्म स्वयं होने की कला है।
और इसलिए तुम्हारे तथाकथित धर्म धर्म नहीं हैं, राजनीतियां हैं। हिंदू की राजनीति, मुसलमान की राजनीति, ईसाई की राजनीति--सब राजनीतियां हैं। उनका कोई लेना-देना धर्म से नहीं है। धर्म तो व्यक्ति का होता है, राजनीति भीड़ की होती है। भीड़ के पास कोई आत्मा नहीं होती; सिर्फ शोरगुल, नारेबाजी, उपद्रव होता है। व्यक्ति के पास आत्मा होती है।
इस पृथ्वी पर भीड़ ने जैसे पाप किए हैं, वैसे किसी व्यक्ति ने कभी नहीं किए। भीड़ से थोड़े सावधान रहना। जहां भीड़ हो वहां से बचना।

भीड़ के साथ चलने में एक मजा है, क्योंकि सारा उत्तरदायित्व खो जाता है। भीड़ में डूब जाने में एक सुख है--शराब जैसा। इसलिए तुम देखो, जब भीड़ चलती है--हिंदुओं की भीड़ जा रही है मस्जिद में आग लगाने--देखो, कैसी मस्ती मालूम पड़ती है! कि मुसलमान जा रहे हैं मंदिर को तोड़ने--देखो, उनके पैरों में कैसी गति है, कैसा उत्साह है! जैसे जीवन के महा-उत्सव में भाग लेने जाते हों, कि परमात्मा का निमंत्रण मिला हो। उनकी आंखों में चमक देखो। युद्ध-उत्तेजित, हिंसा करने को उतारू, आग-पाट लूट के लिए तैयार--लेकिन तुम जरा उनके आस-पास देखो कैसी लहर चलती है उत्साह की। कोई बड़ा काम करने जा रहे हैं! उस भीड़ में तुम अगर सम्मिलित हुए, तुम्हारी निजता खो जाएगी। तुमने परधर्म को स्वीकार कर लिया।
कृष्ण कहते हैंः परधर्मो भयावहः। वह जो दूसरे का है, उससे भयभीत होना, उससे डरना।
और बड़ा मजा यह है कि सभी लोगों ने दूसरों के धर्म स्वीकार कर लिए हैं। महावीर का धर्म जैन मानते हैं। वह महावीर के लिए बिल्कुल परिपूर्ण था; नहीं तो महावीर पहुंचते कैसे? लेकिन उनके पीछे चलने वाले कहीं पहुंचते नहीं मालूम पड़ते, सिर्फ अपने को तकलीफ देते मालूम पड़ते हैं। दूसरे का धर्म भयावह है।
बुद्ध के धर्म को लाखों लोगों ने स्वीकार कर लिया है, करोड़ों लोगों ने। कहीं पहुंचते नहीं मालूम पड़ते। अन्यथा पृथ्वी बुद्धों से भर जाती।
बौद्ध हो जाना बुद्ध हो जाना नहीं है और जैन हो जाना जिन हो जाना नहीं है।
धोखा है। तुमने झूठे सिक्कों पर भरोसा कर लिया।
तुम्हारी जिनता, तुम्हारा बुद्धत्व, तुम्हारा इस्लाम, तुम्हारा धर्म तुम्हारे भीतर से उठेगा। तुम्हारा वेद प्रतीक्षा कर रहा है लिखे जाने की।
तुम्हीं उसे लिखोगे तो लिखा जाएगा। तुम्हारे उपनिषद प्रतीक्षा करते हैं जन्म लेने की। वे तुम्हारे गर्भ में छिपे हैं। तुम जन्म दोगे तो ही उनका जन्म होगा। तुम्हारी गीता अभी गाई नहीं गई। तुम गाओगे तभी गाई जाएगी। और तुम्हारी गीता तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं गा सकता है।
इसलिए मत पूछो मुझसे। क्योंकि मैं तुम्हें कोई गीता देने नहीं आया। कोई उपनिषद तुम्हें पकड़ाने की मेरी आकांक्षा नहीं है। मैं अपना गीत गा रहा हूं। तुम्हें इससे केवल गीत गाने का ख्याल आ जाए, बस इतना काफी है। गीत तो तुम अपना ही गाना। मैं अपनी प्रार्थना कर रहा हूं, इससे तुम्हें सिर्फ स्वाद लग जाए प्रार्थना का। प्रार्थना तो तुम अपनी ही करना। मैं देने वाला कौन हूं? और मेरी दी गई प्रार्थना बासी हो जाएगी। उसे तुम दोहराओगे, लेकिन उससे वही न हो सकेगा जो मुझे हुआ है। क्योंकि मैंने किसी की प्रार्थना नहीं दोहराई। मैं किसी के राजपथ पर नहीं चला।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम भी ध्यान रखना! न बुद्ध, न महावीर, न कृष्ण--किसी का राजपथ, किसी की बनी पगडंडी तुम्हारे लिए नहीं है। मेरी भी पगडंडी तुम्हारे लिए नहीं है। ऐसे तुम भटकोगे।
प्रार्थना के लिए पूछो ही मत। जब छोटे बच्चे को भूख लगती है तो वह क्या करता है, पूछता है? पूछेगा तो कौन बताएगा उसे? और बता भी देगा कोई, तो वह भाषा नहीं समझता। बच्चा पैदा हुआ मां के पेट से, वह पूछता है डाक्टर को कि अब मैं क्या करूं, मुझे भूख लगी है? वह रोता है। कभी रोया नहीं इसके पहले। मां के पेट में कभी भूख लगने का मौका ही न आया था।
अंतर्निहित है बात--भूख लगेगी, तुम रोओगे। परमात्मा की प्यास जगेगी, तुम प्रार्थना करोगे। सत्य की खोज की जरा सी भी ललक आ जाएगी, आंसू झरने लगेंगे, नाचने लगोगे, हंसने लगोगे--कुछ घटेगा। वह ऐसे ही तुम्हारे भीतर पड़ी है तुम्हारी प्रार्थना, जैसे अजन्मे बच्चे के भीतर रोने की संभावना पड़ी है। तुम्हारी प्रार्थना तुम साथ ही लाए हो। तुम्हारे खून, हड्डी, मांस-मज्जा में छिपी है। बस मौका उसे दो कि वह प्रकट हो सके। दूसरों के द्वारा सिखाई गई प्रार्थनाओं में दबी जा रही है। उसकी गर्दन घुटी जा रही है। तुम उसे मारे डाल रहे हो।
हटाओ दूसरों का कचरा जो तुम्हारे ऊपर हो! ताकि तुम्हारी निपट निजता प्रकट हो सके अपनी परिपूर्ण शुद्धता और नग्नता में। छोटा बच्चा रोता है।

जब भूख लगती है तब रोता है। मां भागी चली आती है। तुम रोओ, परमात्मा भागा चला आएगा। तुम छोटे बच्चे की भांति हो जाओ।
मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि रोना तुम्हें न आता हो तो रोओ। तब तुम चूक जाओगे। हंसो! नाच सकते हो, नाचो। चुप बैठ सकते हो, चुप बैठो। आकाश की तरफ आंख करके कुछ बात करने का मन हो, बात करो; बोलो। जो तुम्हें ठीक लगे, जो तुम्हें सहज मालूम हो, जो सहजस्फूर्त हो, उसी को तुम्हारी प्रार्थना बनने दो। तुम्हारी प्रार्थना तुम लाए हो। मैं तुम्हें प्रार्थना नहीं सिखाता। मैं तुम्हें सिर्फ इतनी याद दिलाता हूं कि कहीं ऐसा न हो कि तुम मर जाओ और तुम्हारी प्रार्थना का जन्म न हो पाए।
तुम्हें मेरी बात कठिन लगेगी। क्योंकि तुम सस्ती बातों के आदी हो गए हो। तुम चाहते हो मैं तुम्हें एक प्रार्थना दे दूं, झंझट मिटे। तुम अपने घर जाकर रोज दोहरा लो और सो जाओ। तुम कुछ भी खोजना नहीं चाहते। तुम परमात्मा के लिए एक कदम भी उठाना नहीं चाहते। यह भाव-दशा ही प्रार्थना के विपरीत है। मेरी बात तुम्हें कठिन लगती है, क्योंकि तुम्हें कुछ खोजना पड़ेगा। तुम्हें लोग चम्मचों से धर्म खिलाते रहे हैं। तुम्हें अपने हाथ ही भूल गए हैं कि इनसे हम भोजन उठा सकते हैं। दूसरे चबा कर तुम्हारे मुंह में डालते रहे हैं। वह जूठा था, लेकिन उसमें श्रम नहीं करना पड़ता।
नहीं, मैं तुम्हारे लिए ऐसा कोई काम करने को तैयार नहीं हूं। मेरे पास कोई बंधी प्रार्थना नहीं है, सिर्फ प्रार्थना की तरफ इशारे हैं। उन इशारों को तुम समझ जाओगे तो तुम अपने ही भीतर छिपे हुए इस हीरे को पा लोगे, जो सदा से वहां तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। मैं तुम्हें चलने को मार्ग नहीं देता, मैं तुम्हें सिर्फ समझ देता हूं, ताकि तुम अपना मार्ग बना सको।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि पाप की स्वीकृति से पात्रता का जन्म होता है। लेकिन उसी से आत्मदीनता का जन्म भी तो हो सकता है। कृपया समझाएं।

पाप की स्वीकृति अगर हो जाए तो आत्मदीनता का जन्म कभी नहीं हो सकता। आत्मदीनता का जन्म होता है, क्योंकि स्वीकार तुम करना नहीं चाहते और स्वीकार करना पड़ता है।
इन दोनों बातों में फर्क समझ लेना। चाहते तो तुम यह थे कि तुम महाज्ञानी होते। चाहते तो तुम यही हो, लेकिन दादू कहते हैं, अपने अज्ञान को स्वीकार कर लो। अज्ञानी तुम हो। चाह तुम्हारी यह है कि दुनिया जाने कि तुम महाज्ञानी हो। अपने मन में तो तुम मानते ही हो कि तुम महाज्ञानी हो। दूसरों को अभी पता नहीं। समय पर पता चल जाएगा। लोग नासमझ हैं, अज्ञानी हैं, इसलिए तुम्हारे महाज्ञान को नहीं समझ पा रहे हैं। अन्यथा ऐसे तो तुम महाज्ञानी हो।
अरब में कहावत है कि परमात्मा हर संसार में भेजने वाले प्राणी को पास बुला कर अंतिम विदा के क्षण में एक मजाक कर देता है। कान में कह देता हैः तुम से महान व्यक्ति मैंने कभी बनाया ही नहीं। और वह हर व्यक्ति अपने मन में जीवन भर ढोता है। किसी से कहे तो लोग हंसते हैं, क्योंकि उनको भी वही मजाक परमात्मा ने किया है। उनको भी कहा है कि तुमसे महाज्ञानी, तुमसे महापुरुष हमने कभी बनाया नहीं। तो वे तुम्हारी मान नहीं सकते कि तुम हो सकते हो; क्योंकि वे पहले से ही हैं। और महापुरुष तो एक ही हो सकता है, दो- दो कैसे हो जाएंगे? तुम डरते भी हो कहने में दूसरों से। क्योंकि तुम जानते हो, कोई स्वीकार न करेगा। दूसरे तुमसे कहते हैं, तो भी तुम स्वीकार नहीं करते। चेष्टा चलती है।
अहंकार मानना नहीं चाहता कि पाप है; अहंकार मानना नहीं चाहता कि चोरी है; अहंकार मानना नहीं चाहता कि अंधकार है, अपराध है। इस न मानने में ही अगर मजबूरी में तुम्हें मानना पड़े, तो दीनता पैदा होती है, आत्मग्लानि पैदा होती है। आत्मग्लानि का अर्थ ही है कि तुम चाहते तो न थे; चाहते तुम अभी भी नहीं हो; लेकिन जीवन की मजबूरी ने मनवा दिया।
या यह भी हो सकता है कि दादू जैसे व्यक्ति को सुन कर कि जो कहे चला जा रहा हैः रती-रती का चोर, पल-पल का अपराधी तेरा। एक लोभ जग सकता है मन में; कि अगर ऐसा स्वीकार करने से परमात्मा का मिलन हो जाता है, तो चलो स्वीकार कर

लेंगे। यह तुम कुशलता दिखला रहे हो। अगर स्वीकार कर लेने से ऐसा परमात्मा मिलता है, तो चलो स्वीकार कर लेते हैं। स्वीकार तुमने किया नहीं। यह परमात्मा को पाने के लोभ के कारण तुम कहते हो, चलो ठीक! लेकिन यह तुम्हारा अंतर्निवेदन न होगा। तो तुम कहोगे चोर, लेकिन जानते तो तुम हो कि यह बात ठीक नहीं।
टाल्सटाय ने लिखा है कि एक दिन सुबह-सुबह वह चर्च गया। गांव का सबसे बड़ा धनपति वहां उससे भी पहले पहुंच चुका था। अंधेरा था चर्च में। कोई विशेष धार्मिक त्यौहार था। वह धनपति हाथ जोड़े, घुटने टेके परमात्मा से कह रहा था कि मैं पापी हूं, चोर हूं, बेईमान हूं। क्या पाप नहीं जो मैंने न किए हों! तू क्षमावान है, तू क्षमा कर।
उसे पता नहीं था कि कोई और भी सुन रहा है। टाल्सटाय अंधेरे में खड़े थे; उन्होंने सुन लिया। जब थोड़ी रोशनी होने लगी और वह आदमी उठा और उसने देखा कि कोई और खड़ा है। और वह पहचान गया कि यह तो टाल्सटाय है। टाल्सटाय तो शाही घराने का व्यक्ति था, ख्यातिनाम, विश्व ख्यातिनाम लेखक था। उसने कहा यह तो झंझट हो गई। लेखक यानी अब यह तो... इससे बचना मुश्किल ही है। यह हजारों से कहेगा जाकर। लेखक का मतलब जो गपशप में भरोसा करता है। यह लिखेगा। यह तो झंझट हो गई। वह आदमी पास आया और उसने कहा, याद रखना, अगर तुमने वह सुन लिया हो जो मैंने परमात्मा से कहा है, तो गलत सुन लिया है। क्योंकि वह मेरा परमात्मा और मेरे बीच बातचीत थी। तुमको बीच में आने की कोई जरूरत न थी। अगर सुन भी लिया हो तो भूल जाना। और अगर याद रखा, या कहीं यह बात पहुंची, तो अदालत में मानहानि का मुकदमा करूंगा। मुश्किल में पड़ जाओगे।

टाल्सटाय ने कहा, मैं समझा नहीं। आप अभी कहते थे--मैं महापापी, महाचोर, अज्ञानी, अपराधी; तू क्षमा कर! तो आप गलत कह रहे थे?
उसने कहा, गलत-सही की तुम फिक्र मत करो। तुमसे नहीं कहा है, इतना याद रखो। और बाजार में यह किसी को पता नहीं चलना चाहिए, अन्यथा तुम मुसीबत में पड़ोगे।
अब यह आदमी क्या कर रहा है? यह वस्तुतः कह रहा है? नहीं! तो अब इसको घबराहट पकड़ी। यह तो परमात्मा के साथ भी जालसाजी कर रहा था। यह तो परमात्मा के साथ भी चालबाजी कर रहा था। यह तो उससे कह रहा था कि सुना है हमने कि संत कहते हैं, ऐसा कहने से तुम मिल जाते हो; चलो, कह कर देख लें। अगर गांव में पता चल जाए तो इसे बड़ी पीड़ा होगी। इसके अहंकार को बड़ी चोट पहुंचेगी।
और ध्यान रखना, जब तक तुम तैयार न होओ कि सबको पता चल जाए, तब तक परमात्मा से कहने का कोई अर्थ नहीं है। जब तक तुम इस सत्य को पहचान ही न लो कि यह मेरी सच्चाई है कि मैं चोर हूं। मैंने जब भी दावा किया, तब मैं चोर हो गया। जब भी मैंने किसी को अपना कहा, तब मैंने परमात्मा की सीमा-रेखा का उल्लंघन किया। सब परमात्मा के हैं, सब परमात्मा का है, मेरा कुछ भी नहीं। तो जब भी मैंने कहीं भी जाने-अनजाने मैं का घेरा बनाया, तभी मैंने गलत रेखा खींची। और मेरी हर खींची गई सीमा परमात्मा की छाती पर बना हुआ घाव है। जिस दिन तुम्हें यह अनुभव हो जाए उस दिन अपराध नहीं पकड़ेगा। उस दिन अपनी असलियत को स्वीकार करने से एक परम शांति... ! क्योंकि संघर्ष बंद हो जाएगा। और तुम इसे ग्लानि न बना लोगे; तुम इसकी वजह से छिपे हुए न रहोगे। वस्तुतः आदमी छिपता है गलत काम करके, क्योंकि वह चाहता नहीं है कि लोगों की नजरों में गलत दिखे। ग्लानि पैदा होती है। जो आदमी स्वीकार कर लेता है कि मैंने गलत किया, गलत ही कर सकता था--बेहोश था, मूर्च्छा में था--छिपाना क्या है? जो अपने को स्वयं ही नग्न कर देता है, उस आदमी की सारी ग्लानि मिट जाती है। वह परम शांति को उपलब्ध हो जाता है।
उस शांति में ही परमात्मा के उतर आने की संभावना है। पात्रता पैदा होती है। पाप की स्वीकृति से पात्रता पैदा होती है। और अगर तुम्हें ऐसा लगता है कि पाप की स्वीकृति से दीनता पैदा होगी, तो उसका अर्थ साफ हैः तुम पाप को स्वीकार नहीं कर रहे हो। स्वीकार करने के लिए स्वीकार कर रहे हो। लेकिन तुमने सत्य को नहीं समझा है--कि बेहोश आदमी कर भी क्या सकता है? जो मुझसे हुआ, वही हो सकता था।

अपराध-भाव का अनुभव भी अहंकार का अनुभव है। तुम जब अनुभव करते हो, मैं अपराधी, तो तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो कि जो मुझे नहीं करना चाहिए था, वह मैंने किया। तुम यह कह रहे हो कि यह मेरे योग्य न था। कहां मेरी प्रतिमा स्वच्छ, उज्ज्वल! और मैंने एक ऐसा काम कर लिया जिससे काली रेखा खिंच गई। तुम्हारी जो कल्पना की अहंकार-प्रतिमा है, उसके विपरीत कुछ हो गया, इसलिए ग्लानि पैदा होती है। ग्लानि भी अहंकार की छाया है।
अगर तुम कहते हो, मैं कुछ और कर भी क्या सकता था? अंधेरे में था, अंधा था, बेहोश था। जो हुआ, वह होना था। अन्यथा कर भी क्या सकता था? जब तुम इतने असहाय अनुभव करते हो कि कुछ और उपाय ही न था, तब स्वीकृति पैदा होती है। स्वीकृति की बड़ी गहरी शांति है।
तुम अंधेरे कमरे में हो, टटोलते हो, कुर्सी से टकरा जाते हो। तुम क्या करते? क्या तुम यह कह सकते हो कि अगर मैं चाहता तो कुर्सी से न टकराता? क्या तुम चाह कर कुर्सी से टकराए? चाह कर तो दुनिया में कोई भी टकराता नहीं।
इसे--बड़ी गहरी बात है--थोड़ा और ध्यानपूर्वक समझने की कोशिश करो। इस पर बहुत कुछ निर्भर है। जब भी तुम अतीत के संबंध में ऐसा सोचते हो कि मैं चाहता तो अन्यथा कर सकता था, तभी तुम गलत सोच रहे हो। तभी अहंकार बीच में आ गया।
कल तुमने क्रोध किया था। आज तुम सोचते हो कि अगर मैं चाहता तो क्रोध न करता। गलती बात है। जो हुआ, उससे अन्यथा नहीं हो सकता था। क्योंकि जो हुआ वह तुमसे हुआ। तुम जैसे थे उससे ऐसा ही हो सकता था। इससे अन्यथा का उपाय न था। अब आज तुम पीछे बड़े बुद्धिमान बन रहे हो। तुम कहते हो, कल अगर मैं चाहता तो क्रोध न करता। अब ग्लानि पैदा हो रही है। अहंकार कह रहा है कि तुम जैसे महापुरुष, सदा शांत रहने वाले, और तुमसे क्रोध हो गया! अहंकार यह कह रहा है कि अगर जरा ही होश रखा होता, सम्हाल की होती, तो न होता। अहंकार कहता है, अब कल के लिए व्रत ले लेते हैं, कसम खा लेते हैं मंदिर में जाकर कि अब क्रोध न करेंगे।
लेकिन तुमसे क्रोध होगा। कल भी होगा, परसों भी होगा। क्योंकि जिस अहंकार के कारण क्रोध पैदा होता है उसे तो तुम बचा ही रहे हो। वस्तुतः, कल जो क्रोध हुआ था, उसके कारण दो घटनाएं संभव थीं। एक तो घटना थी जो दादू कहते हैं; कर ली होती तो क्रांति हो जाती। तुम कहते, मैं कर भी क्या सकता हूं! मैं अपराधी हूं जनम-जनम का। चोर हूं, पापी हूं, मूर्च्छित हूं, प्रमाद से भरा हूं। मैं कर भी क्या सकता था? इतना भी मैं नहीं निवेदन कर सकता हूं कि अगर मैंने चाहा होता तो अन्यथा करता, क्रोध न करता। यह भी मैं आज कैसे कहूं? क्योंकि कल जब मैंने किया था तब मैं बिल्कुल बेहोश था। और अभी भी पक्का नहीं है। अगर कोई गाली दे तो पक्का नहीं है कि मैं फिर बेहोश न हो जाऊंगा। ये सारी समझदारी की बातें तब हो रही हैं, जब क्रोध की स्थिति मौजूद नहीं है।
क्रोध करने के बाद तो सभी लोग समझदार हो जाते हैं। कामवासना में उतरने के बाद सभी लोग ब्रह्मचर्य का विचार करने लगते हैं। लोभ करने के बाद सभी लोगों के मन में पुण्य के विचार उठने लगते हैं। पाप करने के बाद पश्चात्ताप ऐसा ही स्वाभाविक है, जैसे आदमी के पीछे उसकी छाया। लेकिन इससे कुछ पाप रुकता नहीं। पश्चात्ताप वस्तुतः पाप के विपरीत नहीं है। पश्चात्ताप फिर से पाप करने की तैयारी है।
तुमने क्रोध किया, तुम्हारी अपनी आंखों में तुम नीचे गिर गए। क्योंकि
अब तक तुम सोचते थे तुम अक्रोधी हो, क्षमावान हो। पश्चात्ताप करके तुम अपनी प्रतिमा को फिर से पुनः सिंहासन पर विराजमान कर रहे हो--कि देखो, मैंने पश्चात्ताप कर लिया! मिच्छामि दुक्कणम्! तुम गए और क्षमा मांग ली कि देखो मैं कैसा विनम्र आदमी हूं। भूल हो गई थी, सुधार कर लिया। अब तुम्हारी प्रतिमा जो डगमगा गई थी तुम्हारे भीतर, तुम्हारे अहंकार को जो पीड़ा होने लगी थी कि मुझसे क्रोध हो गया, उस क्रोध को सम्हाल लिया। प्रतिमा फिर सिंहासन पर विराजमान हो गई। प्रतिमा फिर उसी स्थिति में आ गई जिस स्थिति में क्रोध करने के पहले थी। पश्चात्ताप क्रोध का संगी-साथी है।

दादू कहते हैं, तुम पश्चात्ताप में मत पड़ो, क्योंकि पश्चात्ताप में पड़-पड़ कर फिर क्रोध की क्षमता, पाप की क्षमता निर्मित होती है। तुम तो यह अनुभव करो कि मुझसे अन्यथा हो न सकेगा। तू कुछ कर, तो बात अलग। मेरे किए न होगा। मैं तो कर चुका बहुत। क्रोध भी किया, पछतावा भी किया; बुरा भी किया, भला भी किया; लेकिन दादू कहते हैं कि आदि से अंत तक--आज तक--सुकृत न हो सका। सब करके देख लिया है। ऐसा भी नहीं है कि भला करके नहीं देखा। भला भी करके देख लिया है। लेकिन मैं भला भी करता हूं, तो भी दुष्कृत ही होता है, सुकृत नहीं होता। मैंने अपनी स्थिति पहचान ली। कर्ता का भाव ही मेरा गिर गया है। अब तो तू कुछ कर, तो हो। अब मैं तुझ पर पूरा छोड़ता हूं।
स्वीकार का मतलब है, मैं अपने पूरे बही-खाते तेरे सामने खोल कर रख देता हूं। मैंने नंबर दो के बही-खाते नहीं रखे हैं। ये सब खोल कर रख देता हूं, अब तू देख ले। मैं सब कर चुका, सब भांति हार चुका, सब शोध कर ली। मैंने जो भी किया--बुरा किया, बुरा हुआ; अच्छा किया, तो भी बुरा हुआ। क्योंकि करने वाला एक ही था।
यह बड़ी गहरी बात है। तुम सोचते हो, अच्छा कर सकते हो, बुरा कर सकते हो; क्योंकि अच्छाई और बुराई का संबंध कृत्य से है।
कृत्य से नहीं है, कर्ता से है। यह तो ऐसे ही है जैसे नीम कहे कि माना
कि मैंने बहुत सी पत्तियां कड़वी निकाली हैं, चाहूं तो एक मीठी पत्ती भी निकाल सकती हूं।
तुम्हारे कृत्य तुम्हारे जीवन को पत्तियों की तरह घेरे हैं। तुम जड़ हो। अगर जड़ ही जहरीली है तो तुम मीठी पत्ती निकालोगे कैसे? हां, यह हो सकता है, कड़वी पत्ती पर मीठी का लेबल लगा दो। यह हो सकता है, इसमें कोई अड़चन नहीं है। भीतर तो कड़वाहट ही होगी। हो सकता है ऊपर शक्कर की पर्त जमा दो। भीतर तो जहर ही होगा। किसको तुम धोखा दोगे? अपने को ही धोखा भला दे लो। लेकिन यह धोखा चलने वाला नहीं है। परमात्मा के समक्ष कैसे धोखा चलेगा?
दादू कहते हैं, सब करके देख लिया; अच्छा भी, बुरा भी। लेकिन मैं चूंकि गलत हूं, मैं चूंकि सोया, बेहोश हूं, चूंकि मैं नीम का झाड़ हूं, जहर मेरी जड़ों में है, हर पत्ती में पहुंच जाता है। अब तो तेरी कृपा हो, तेरी क्षमा हो, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।
इसमें कोई दीनता का भाव नहीं है, इसमें केवल सत्य का स्वीकार है। यही प्रामाणिकता है, आथेंटिसिटी है। दादू समझ गए राज को कि मैं कर रहा था, लेकिन यह मैं फिक्र ही नहीं कर रहा था कि मैं ही गलत हूं, तो जो मैं करूंगा उस पर मेरी गलती की छाया पड़ेगी।
साधारणतः पापी भी सोचता है कि चाहूं तो पुण्य कर सकता हूं। चोर भी सोचता है कि दान दे दूंगा। कहीं न कहीं बाढ़ आएगी, कहीं न कहीं भूकंप होगा। जरूर होगा, दान कर देंगे। कुछ न होगा तो इलेक्शन आएगा, राजनैतिक पार्टियों को दान कर देंगे। फिर पीछे लायसेंस निकाल लेंगे, वह बात और! क्योंकि जो भी आदमी देता है, वह कुछ पाने को देता है। वह अगर दान भी करता है तो भी हिसाब रख लेता है कि परमात्मा से इससे कितना गुना मिलेगा। पंडित-पुजारी लोगों को समझाते हैं कि एक पैसा दान दो, करोड़ गुना पाओगे।
कोई तो हिसाब रखो! इतना ब्याज कहीं भी नहीं मिलता है। एक पैसा दोगे, करोड़ पैसे पाओगे? थोड़ी तो सीमा में बात करो! मगर लोभी अंधा होता है। वह इस आशा में कि एक करोड़ मिलेंगे, एक देता है। मगर वह देता है एक करोड़ की आशा में। इसलिए देता ही नहीं। दान तो तभी है जब बिना आशा के दिया जाता है, बिना फल की आकांक्षा के। देने के आनंद से दिया जाता है, पाने का कोई लेना-देना नहीं है। ऐसा नहीं कि ऐसे व्यक्ति को नहीं मिलता; ऐसे व्यक्ति को करोड़ गुना भी मिलता है। लेकिन वह गौण है बात। वह उसकी बात नहीं है।
इसलिए शास्त्र गलत नहीं कहते हैं कि एक दोगे, करोड़ गुना पाओगे। गलती
तब हो जाती है जब हम एक, करोड़ गुना पाने के लिए देने लगते हैं। जो एक देता है वह करोड़ गुना पाता ही है। लेकिन वह परिणाम है। वह तुम्हारी फलाकांक्षा नहीं है। वह होता है। देने की क्षमता जितनी बढ़ती जाती है, उतनी पाने की क्षमता बढ़ती जाती है। जितना तुम बांटते हो उतना परमात्मा तुम पर बरसाने लगता है। क्योंकि तुम बांटने में कुशल हो गए। जितना तुम रोकते हो, उतना सिकुड़ जाते हो। परमात्मा के द्वार भी बंद हो जाते हैं।

ऐसा ही समझो कि एक कुएं से हम पानी भर लेते हैं, हजार झिरें बह रही हैं,
वे पानी को फिर भर देती हैं। कुएं से पानी मत भरो, झिरें काम नहीं करतीं, पड़ी रहती हैं बंद। धीरे-धीरे मिट्टी जम जाएगी, कचरा जम जाएगा, कुआं सड़ जाएगा, डबरा हो जाएगा। भरा हुआ कुआं, जो कभी खाली नहीं किया जाता, सड़ जाता है।
कृपण व्यक्ति ऐसा ही सड़ा हुआ कुआं है। जो कुआं लुटाता रहता है, नये झरने आते जाते हैं, वह कभी सड़ता नहीं, वह सदा ताजा रहता है। दोगे तो ताजे रहोगे; पकड़ोगे तो मर जाओगे, बासे हो जाओगे। और जो ताजा है उसके लिए हजार-हजार ढंग से जीवन के द्वार खुलते चले जाते हैं।
शास्त्र ठीक कहते हैं, तुम गलत समझ लेते हो। तुम गलत हो, तुम कर भी क्या सकते हो? तुम गीता भी पढ़ोगे, तो भी तुम समझोगे वही जो तुम समझना चाहते हो।
दादू कहते हैं, तुम इस स्थिति को देख लो कि कर्ता का प्रश्न है, कृत्य
का नहीं।
हमारी सबकी मान्यता ऐसी है कि कभी-कभी बुरा आदमी भी अच्छे काम करता है। और इसी कारण हमारी यह भी मान्यता है कि कभी-कभी अच्छा आदमी भी बुरे काम करता है। यह मान्यता एकदम बुनियादी रूप से गलत है।
अगर कोई आदमी अच्छा है, तो बुरा काम करता ही नहीं। भला उसका काम तुम्हें बुरा लगता हो; वह तुम्हारी व्याख्या की बात है। भले आदमी से बुरा काम होता ही नहीं। वह तो ऐसा ही हुआ जैसे कि आम के वृक्ष में नीम लग जाए। वह होता ही नहीं। वह नियम नहीं है।
और बुरे आदमी से भला काम नहीं होता। वह हो ही नहीं सकता है। इसमें ग्लानि कुछ नहीं है। नीम का यह समझ लेना कि मैं नीम हूं, इसमें कोई ग्लानि नहीं है। सिर्फ इससे इतना ही होगा कि वह व्यर्थ शक्कर चढ़ाने की जो कोशिश में लगी थी वह बंद हो जाएगी। और वह परमात्मा के चरणों में समर्पित हो जाएगी--जैसी भी है। परमात्मा तुम्हारे जहर को भी स्वीकार करने को राजी है। हमारी कथा है शिव के संबंध में कि वे नीलकंठ हैं। वह परमात्मा के संबंध की कथा है।
देव और दानवों ने समुद्रमंथन किया। किया तो मंथन उन्होंने इसीलिए था
कि अमृत को निकालना चाहते थे। खबर लग गई कि समुद्र की गहराई में अमृत छिपा है। तो उन्होंने मथ डाला समुद्र। बड़ी कठिन क्रिया थी। लेकिन जो पहला आविर्भाव हुआ, वह जहर था।
जो भी अमृत की खोज में जाएगा, पहला आविर्भाव जहर का होगा। क्योंकि जहर तुम छिपाए हो; जब तक उससे पार न हो जाओ तब तक अमृत मिलेगा भी नहीं। जो व्यक्ति धार्मिक होने चलेगा, पहले उसे अपने भीतर की अधार्मिकता दिखेगी। वह जहर है। जो पुण्यात्मा होने चलेगा, पहले अपने भीतर का पाप दिखाई पड़ेगा। वही तो दादू कह रहे हैंः रती-रती का चोर। तेरा गुनहगार हूं।
संतत्व के उदय के पहले, अमृत के उदय के पहले जहर। क्योंकि इस जहर को ही
हम छिपाते रहे अब तक। अमृत तो भीतर था, उसका हमें पता नहीं था। और जो भी जहर हम बचाना चाहते थे कि किसी को पता न चले, वह अपने भीतर छिपाते गए। और कहीं छिपाते तो कोई न कोई खोज ही लेता। उसे भीतर छिपाते गए। अब जहर की पर्तें इकट्ठी हो गई हैं।
बड़ी मीठी कथा है। जहर पहले मिला। अब घबड़ा गए देव-दानव दोनों। क्योंकि
वे कोई भी उस जहर को तो पीने को राजी न थे। दोनों अमृत की तलाश में थे। यही तो मजा है। यहां बुरे आदमी और भले आदमी में बहुत फर्क नहीं है। देव-दानव दोनों की आकांक्षा एक है। देव ऊपर से अच्छे लगते हैं, दानव ऊपर से बुरे लगते हैं। लेकिन दोनों की तीव्र आकांक्षा एक ही है। दोनों सोए हुए हैं। जहर पीने को कोई राजी न था। वे बहुत घबड़ा गए, अब क्या करना! और समुद्र नाराज होगा, अगर जहर न पीया गया। जब निकाला है तो पीओ! वे घबड़ाए, उन्होंने जाकर शिव को प्रार्थना की कि आप कुछ उपाय करें। शिव जहर पी गए। इसलिए शिव का नाम नीलकंठ हो गया। वह जहर उनके कंठ को नीला कर गया।
इसलिए अब भी नीलकंठ की हम पूजा किए चले जाते हैं। वह मूढ़ता है; उसका कुछ लेना-देना नहीं है। बेचारे नीलकंठ ने न कुछ किया है, न कुछ... उसका किसी

उपद्रव में कोई हाथ नहीं है। लेकिन प्रतीक कीमती है। शिव जहर पी गए। जहर ने कुछ नुकसान न किया; और सुंदर हो गए, नीलकंठ हो गए।
परमात्मा तुम्हारे जहर को पी लेगा। तुम नाहक ग्लानि मत करो। तुम बस खोल दो, सामने रख दो। तुम छिपाओ मत, तुम निवेदन कर दो। जितना छिपाओगे, उतना भटकोगे।
दादू कोई अपराध-भाव पैदा नहीं करवाना चाह रहे हैं। अपराध तो है ही।
लेकिन तुमने सदा यह जाना कि अपराध कृत्यों में है। दादू कहते हैं, अपराध कर्ता में है। बस इतनी पहचान आ गई तो फिर कोई भाव पैदा नहीं होता अपराध का।
अपराध-वृत्ति भी पैदा नहीं होती। दीनता भी नहीं आती।
अगर तुमने समझा कि अपराध कृत्यों में है, तो अपराध की दीनता पैदा होती है--कि मैं तो हूं नहीं अपराधी, लेकिन यह काम बुरा किया, वह काम बुरा किया। मैं तो अच्छा आदमी हूं और बुरे काम कर लिए। इस अच्छे आदमी की प्रतिमा और बुरे काम का मेल नहीं बैठता। उससे बड़ी गिल्ट, बड़ी अपराध-भावना, ग्लानि- भावना पैदा होती है--कि यह मैंने कैसा किया!
महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है... और उस घटना ने उनके जीवन
भर को प्रभावित किया। दादू उससे राजी न होते।... पिता बीमार थे, गांधी उनके पैर दाब रहे थे। फिर आधी रात हुई, वे थक गए, वे अपने कमरे में चले गए। गांधी के चाचा आ गए, वे पिता के पैर दाबने लगे। कोई घड़ी भर बाद गांधी के पिता की मृत्यु हो गई। तब गांधी अपनी पत्नी के पास शय्या पर थे। द्वार किसी ने आकर खटखटाया और कहा कि तुम्हारे पिता चल बसे। उनके मन में एक अपराध-भाव घर कर गया। वह अपराध यह कि पिता मरणासन्न पड़े थे और तब भी मैं कामवासना से दूर न रह सका।
अब यह बात कोई मतलब की नहीं है। क्योंकि पिता उसी रात मरने वाले थे, यह
तय नहीं था। यह तो रोज ही गांधी थोड़ी देर तक पैर दाबते थे, फिर चले जाते थे। वैसे ही आज भी चले गए थे। फिर पिता के बीमार पड़ने से कोई अपनी पत्नी को प्रेम न करेगा, यह भी बात अर्थपूर्ण नहीं है। अगर ऐसा होने लगे कि पिता के बीमार होने से लोग अपनी पत्नी को प्रेम न करें और पिता के मर जाने से प्रेम बंद हो जाए, तो दुनिया में न तो बेटे होंगे और न पिता होंगे।
लेकिन गांधी इसको भूल न सके। उनको अपराध की बड़ी दीन, ग्लानि की भावना पैदा हो गई। इसलिए गांधी जिंदगी भर घूम-फिर कर ब्रह्मचर्य साधने की चेष्टा करते रहे। अपने आश्रमों में भी थोपते रहे दूसरों पर भी ब्रह्मचर्य। क्योंकि उनकी खुद की ग्लानि कष्ट दे रही थी। वे जब भी पत्नी के पास जाते होंगे, उनको फिर पिता की मौत याद आती होगी। संयोग हो गया दोनों बातों का।
और गांधी को ग्लानि क्यों पैदा हुई? क्योंकि गांधी मानते हैंः मैं चाहता तो और पैर दाबता। मैं चाहता तो उस रात पत्नी के पास न जाता।
लेकिन मैं कहता हूं, यह हो ही नहीं सकता था। जो हुआ, वही हो सकता था। यह पीछे का पछतावा है। यह पीछे की समझदारी है, जो कि नासमझ से नासमझ आदमी में भी हो जाती है। गांधी समझते हैं, मैंने गलत किया। गलत ही हो सकता है मूर्च्छित आदमी से। ठीक होता है अमूर्च्छा में। मूर्च्छा में गलत ही होता है। फिर उस मूर्च्छा का घाव पड़ गया। फिर वे जिंदगी भर उस घाव से छूटने की चेष्टा करते रहे--किसी तरह छुटकारा हो जाए। वह मरते दम तक नहीं छूट सका। आत्मग्लानि पैदा हो जाए तो बड़ी पीड़ा देती है और वह घाव कभी छूटता नहीं। क्योंकि आत्मग्लानि का एक गुण है कि घाव को बार-बार देखने की चेष्टा चलती है। क्योंकि उसी घाव को बार-बार कुरेदने से यह अहसास होता है कि कृत्य मैंने गलत किया भला, लेकिन आदमी मैं ऊंचा हूं। आदमी तो मैं महात्मा हूं, एक काम हो गया गलत।
मैंने सुना है, एक सूफी फकीर एक छोटी सी बात कर दिया। कोई भीख मांगने आया था। उसके खीसे में एक दीनार पड़ा था, एक रुपया था। लेकिन उसने कहा, नहीं, मेरे पास कुछ नहीं है; आगे जा! फिर उसे पीछे याद आया कि यह तो पाप हो गया। तो कहते हैं, चालीस साल तक--जब तक वह जिंदा रहा--कोड़े मारता अपने को रोज सुबह उठ कर, क्योंकि उसने एक झूठ बोल दिया। उसकी बड़ी ख्याति हो गई, दूर-दूर से लोग आने लगे। वह बड़ा महात्मा हो गया कि ऐसा कभी देखा नहीं। इतना सा छोटा सा मामला, जिसके संबंध में इतना शोरगुल मचाने की जरूरत भी न थी। बात ही कुछ

बड़ी न थी। पाप भी कुछ ऐसा भारी न था। लोग बिना ही कुछ सोचे-समझे भिखारी से कहते हैं कि आगे जा! यहां कुछ नहीं है।
एक मारवाड़ी यही कह रहा था एक भिखारी से कि आगे जा भाई, यहां कुछ नहीं है। तो उसने कहा कि न हो रुपया, तो एक रोटी मिल जाए। उसने कहा कि रोटी भी नहीं है; आगे जा। तो उसने कहा, कुछ नहीं हो तो पुराना कपड़ा ही मिल जाए। उसने कहा, यहां कोई है ही नहीं और न कोई चीज है; तू आगे जा। तो उसने कहा, फिर आप भीतर बैठे क्या कर रहे हैं? आप मेरे साथ हो जाओ। जो भी शाम तक मिलेगा, बांट लेंगे।
लोग तो यूं ही कहे चले जाते हैं। कोई इसको सोच-विचार कर नहीं कहते। मूर्च्छित चित्त है, टाल रहा है--नहीं है। उसका कोई मतलब नहीं है कि नहीं है।
लेकिन उसने चालीस साल अपने को सताया। और उपवास किए, प्रार्थनाएं, पूजा, तपश्चर्या, हज की यात्रा, कोड़े मारना--अपने को इस तरह सताया।
एक रात, मरने के एक दिन पहले उसने स्वप्न देखा कि वह मर गया है और उसे नरक ले जाया जा रहा है। उसने कहा, हद हो गई! वह एक बात के पीछे--और बात भी कुछ बड़ी न थी--नरक जाना पड़ रहा है। और इतना मैंने सताया, मारा-पीटा।
उसने देवदूतों से कहा, पहले मुझे परमात्मा के सामने निवेदन कर लेने दो, फिर मुझे नरक ले जाना। क्योंकि यह जरा ज्यादती मालूम पड़ती है। और लोग भी मुझसे आकर कहते थे, इतने से छोटे पाप के लिए अगर तुम इतना अपने को सता रहे हो, तो हमारा क्या होगा? हमारा भी तो कुछ ख्याल रखो! दूसरों तक को दया आ गई थी, और परमात्मा को दया नहीं है?
तो वह परमात्मा के सामने मौजूद किया गया। उसने बड़ी भारी शिकायत की, जैसे कि महात्मागण हमेशा करेंगे। क्योंकि वे हमेशा हिसाब रखते हैंः क्या- क्या किया। उसने कहा कि सुनो! चालीस साल तक इतने-इतने कोड़े रोज मारे हैं; रमजान के इतने उपवास किए हैं; एक दिन खाता था, एक दिन खाता नहीं था पूरे साल--चालीस सालों तक। रात सोया नहीं, रोया, प्रार्थना की। जमीन पर सरक-सरक कर हज की यात्रा करके आया। घुटने छिल गए, शरीर अपंग हो गया। और पाप मैंने कुछ ऐसा बहुत बड़ा न किया था। इतना ही कहा था उस भिक्षमंगे से... हद हो गई, वह भी दुर्भाग्य का क्षण कि कहां से वह आ गया, जिंदगी डुबा दी। और अब मैं नरक जा रहा हूं!
परमात्मा ने कहा, उसकी हम फिक्र नहीं करते कि क्या तुमने भिखारी से कहा था। लेकिन तुमने शोरगुल बहुत मचाया। वह बात क्षमा हो सकती थी, लेकिन जो तुमने चालीस साल किया उसे क्षमा करने का कोई उपाय नहीं। भूल किससे नहीं होती? भूल क्षमा हो सकती है। लेकिन तुम क्षमा नहीं मांगना चाहते थे इसलिए इतना उपाय किया।
इस बात को थोड़ा समझ लेना। घबड़ाहट में उसकी नींद खुल गई। वह भरोसा न कर सका कि यह सपना कैसा है! पूरे जीवन की बात साफ हो गई।
तुम्हारे पाप तुम्हें न डुबाएंगे, तुम्हारा पुण्यात्मा होने का प्रयास तुम्हें डुबाएगा। असल में, पाप के विपरीत पुण्य करने की चेष्टा इस बात की चेष्टा है कि तुझसे हम क्षमा न मांगेंगे। हमने बुरा किया है, हम ठीक कर देंगे। मगर हम मौजूद रहेंगे। मैं मालिक हूं। बुरा किया तो, भला किया तो। तुझसे हम कुछ मांगते नहीं। तुझसे हमारी कोई प्रार्थना नहीं है।
तुम प्रार्थना से बचना चाह रहे हो। तो फिर कठिनाई है।
खोल कर रख दो अपनी किताब। उससे यह कह दो कि हम जैसे थे, यही हो सकता था।
अब तुझे जहां भेजना हो, हम राजी हैं। नरक तो नरक; हमारी कोई शिकायत नहीं।
मिलना ही चाहिए। स्वर्ग मिल जाए तो तेरा अनुग्रह; मिलना नहीं चाहिए था और तूने दिया।
इसलिए दादू का जोर है कि मेरी पात्रता के कारण तुझसे नहीं मांग रहा हूं, तेरी क्षमा की क्षमता के कारण मांग रहा हूं।
यही भक्त का और साधक का भेद है। साधक कहता है, बुरा किया है, हम ही निपटारा कर देंगे। भक्त कहता है, हमसे बुरा हुआ है, हम बुरे हैं, हम निपटारे के लिए भी जो करेंगे उसमें और बुरा हो जाएगा। इसलिए हम तेरे सामने ही सब रख देते हैं। तू ही निपटारा कर दे।

आखिरी प्रश्नः दादू देखा सोधि सब, तुम बिन कहिं न समाहिं--दादू की यह बड़ी खोज जिज्ञासु की थी या साधक की या भक्त की?

भक्त की कोई खोज नहीं। जहां जिज्ञासु और साधक की खोज समाप्त हो जाती है, गिर जाती है, वहां भक्ति का आविर्भाव है। भक्त खोजता नहीं, खोता है। वह परमात्मा को खोजने नहीं जाता, अपने को मिटाने चलता है।
जिज्ञासु पूछता है, सत्य क्या है? सिर्फ पूछता है। सोचता है कि सत्य क्या है? परमात्मा क्या है? यह एक प्रश्न है, जिसका कहीं न कहीं किसी बुद्धिमान ने कोई उत्तर दिया होगा। वह सोचता है कि परमात्मा एक प्रश्न है, उत्तर से हल हो जाएगा। वह बुद्धि का भरोसा करता है। जिज्ञासु अगर अपनी ही यात्रा में चलता चला जाए, तो दार्शनिक हो जाएगा, फिलासफर हो जाएगा। धीरे- धीरे वह किसी न किसी प्रश्न को घूम-फिर कर, खोज-खोज कर किसी उत्तर के साथ राजी हो जाएगा। इसलिए नहीं कि उत्तर मिल जाएगा; इसलिए कि आदमी थक जाता है। आखिर खोज की भी एक सीमा है, आदमी थक जाता है। थक जाता है, तो फिर कोई भी उत्तर स्वीकार कर लेता है।
मैंने एक दार्शनिक के संबंध में सुना है कि उन्हें अपने से ही बात करने की आदत थी। किसी मित्र ने पूछा कि यह कुछ समझ में नहीं आता। आप दूसरों से तो बात नहीं करते, मौन रहे आते हैं। लेकिन जब भी अकेले होते हैं, अपने से बात करते हैं। यह आप आदतन करते हैं या इसका कोई कारण है?
उस दार्शनिक ने कहा, इसके दो कारण हैं। एक तो मैं केवल बुद्धिमान आदमी
से ही बात करना पसंद करता हूं; और मैं बुद्धिमान आदमी की ही बात भी सुनना पसंद करता हूं। तो इसका एक ही उपाय है कि अपने से ही बात करूं। बुद्धिमान आदमी की ही बात भी सुनना पसंद करता हूं और बुद्धिमान से ही बात भी करना पसंद करता हूं। अब इसका कोई और उपाय ही नहीं सिवाय इसके कि अपने से ही बात करूं।
तो दार्शनिक धीरे-धीरे अपनी ही बातों से राजी हो जाता है सोच कर कि बुद्धिमान हो गया। बहुत दिन तक पूछते-पूछते थक जाता है प्रश्नों से, क्योंकि प्रश्न बेचैनी देते हैं, फिर किसी न किसी उत्तर पर राजी हो जाता है। इसलिए नहीं कि उत्तर मिल गया; उत्तर तो बुद्धि से कभी किसी को मिला ही नहीं है। दर्शन से ज्यादा असफल कोई यात्रा ही नहीं है। फिलासफी से ज्यादा व्यर्थ इस संसार में कुछ है ही नहीं। लेकिन आदमी कब तक परेशान रहता है? पूछता रहता है, पूछता रहता है, फिर राजी हो जाता है।
इसलिए तुम हर दर्शनशास्त्र में अगर गौर से देखोगे तो तुम पाओगे कि आखिरी प्रश्न वैसा ही का वैसा खड़ा है। उसका कोई हल ही नहीं होता। लेकिन जिसने उस दर्शन को मान लिया है, वह अपने को उतनी जगह देखने को अंधा हो जाता है। बस एक प्रश्न बुनियादी को छोड़ देता है, बाकी सब उत्तर मिल जाते हैं। अगर तुम जैन दार्शनिकों से पूछो कि आत्मा क्यों कष्ट भोग रही है? तो उनके पास उत्तर हैः पाप किए थे। कैसे मुक्त होगी? उनके पास उत्तर हैः पुण्य करे तो मुक्त हो जाएगी। तुम उनसे सब तरह के प्रश्न पूछ लो, एक भर मत पूछना। वह भर उनका अंधापन है।
सभी दार्शनिकों का एक प्रश्न अंधापन होता है। उससे वे खुद ही बचना चाहते हैं, क्योंकि अगर वह फिर शुरू हो गया, तो फिर विचार करना पड़ेगा। वह प्रश्न यह है कि आत्मा संसार में आई कैसे? वह तुम कभी जैनियों से मत पूछना। क्योंकि... क्यों है अभी? इसलिए है कि पिछले जन्मों में पाप किए; ठीक। आगे कभी मोक्ष हो जाएगा, क्योंकि पाप बंद हो जाएंगे, पुण्य हो जाएगा। लेकिन सवाल यह है कि इस संसार में आई ही कैसे? कभी तो आई होगी। करोड़ों- करोड़ों जन्म पहले, लेकिन एक दफा तो पहला जन्म हुआ होगा। वह पहला जन्म बिना पाप के कैसे हुआ? और या कि संसार में बिना आए भी पाप हो सकता है? तो बिना संसार में आए तो पाप कैसे होगा? परिस्थिति चाहिए, तभी पाप होगा। तो पहली आत्मा कैसे उतरी? वह जैन से मत पूछना; अन्यथा वह बेचैन हो जाता है। वह कहता है, तुम नास्तिक हो। फिर वह गाली-गलौज देता है; फिर उत्तर नहीं देता। शंकराचार्य से पूछो, हिंदुओं से पूछो। वे कहते हैं, सब माया है, सब सपना है। इसमें कोई सार नहीं है। यह सब झूठा है। परमात्मा ही, ब्रह्म ही केवल सत्य है। उनसे यह मत पूछना कि अगर ब्रह्म ही केवल सत्य है, तो माया आई

कहां से? क्योंकि सत्य से केवल सत्य ही आ सकता है। उनसे तुम यह मत पूछना कि माया कहां से आई? तब वे नाराज हो जाएंगे। वे कहेंगे, अब तुम जरा ज्यादा हठ दिखला रहे हो, तर्कवादिता दिखला रहे हो। इसका उत्तर उनके पास नहीं है। इसके प्रति वे अंधे हैं।
ऐसा हुआ कि वेदों में, उपनिषदों में कहानी है कि जनक ने एक बहुत बड़े शास्त्रार्थ के लिए एक सभा बुलाई। उसने हजार गौएं खड़ी रखीं। उनके सींगों पर सोना चढ़वा दिया, हीरे लगवा दिए; कि जो भी जीत जाएगा विवाद में, वह इनको ले जाएगा।
बड़े-बड़े पंडित इकट्ठे हुए। ज्ञानी तो वहां कोई भी न आया होगा, क्योंकि ज्ञानी विवाद में भरोसा नहीं करता। शास्त्रार्थ तो मूढ़ों की प्रक्रिया है, बच्चों का खेल है। लेकिन बड़े-बड़े पंडित आ गए। और तब पीछे याज्ञवल्क्य आया। वह महा-पंडित था। वह इतना बड़ा पंडित था कि जब वह आया, तो दोपहर हो गई थी, लोग उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि वह आ जाए तो काम शुरू हो, विवाद शुरू हो। वह अपने शिष्यों के साथ आया। गौओं को पसीना आ रहा था। उसने कहा कि देखो, तुम गौएं ले जाओ अपने आश्रम; मैं विवाद निपटा लूंगा। जो जीतेगा उसी को मिलने वाली हैं, जीत निश्चित है। तुम फिक्र मत करो।
उसने गौएं हंकवा दीं। जनक भी खड़ा रह गया। कहना कुछ मुश्किल था। बात भी ठीक थी कि वह जीतेगा विवाद में। और वह विवाद में करीब-करीब जीत गया था, तभी एक स्त्री ने उसकी हालत खराब कर दी।
और स्त्री ने ही वह हालत खराब की, यह भी थोड़ा सोचने जैसा है। कहानी बड़ी मधुर है। पुरुष से अगर तुम विवाद करो, तो तुम जानते हो ठीक-ठीक कि विवाद किस रास्ते पर चलेगा। दोनों पुरुष हो, एक-दूसरे का मन समझते हो। स्त्री के साथ विवाद मुश्किल है। हर आदमी जानता है, जिसका भी स्त्री से कभी विवाद हुआ। उसका कुछ तर्क समझ में नहीं आता। वह कहां से कहां छलांग लगा ले। तुम कुछ कह रहे हो और वह कुछ सुने। तुम कुछ बताओ, वह कुछ समझे। स्त्री के साथ कोई पुरुष जीत नहीं पाता। सिर ठोंक लेता है, अपना अखबार पढ़ने लगता है। वह सोचता है कि यह बात ही नहीं चल सकती आगे। इसमें कोई सार नहीं है।
यह ठीक है कथा कि गार्गी नाम की स्त्री खड़ी हुई आखिर में। पहले तो पुरुष ने सोचा, याज्ञवल्क्य ने, जैसा सभी पुरुष सोचते हैं कि स्त्री है, इसमें क्या रखा है! निपटा देंगे। बड़े-बड़े पुरुषों को हरा दिया। लेकिन वहीं भूल हो जाती है।
वही भूल मोरारजी और जयप्रकाश कर बैठे। कुछ मामला बड़ा नहीं था, सब सीधा-सादा था। बस एक भूल हो गई कि स्त्री के तर्क अलग ही ढंग से चलते हैं। उससे पुरुष का कुछ लेना-देना नहीं है। मोरारजी-जयप्रकाश लड़ते, कोई एक जीत जाता; कोई झगड़ा न था। दोनों साफ समझ लेते। दोनों एक-दूसरे की चाल भी समझते। शतरंज के खेल में दो पुरुष बैठें, पुरुष पहले से जान लेता है कि दूसरा क्या चलेगा। दोनों का मन एक ही तर्क को मानता है। स्त्री के साथ उपद्रव है। हो सकता है, वह चाल ही न चले और पलटा उलटा दे। वही हुआ। चाल ही खत्म कर दी, खेल ही बंद हो गया। अब सब खिलाड़ी जेल में बैठे हैं।
याज्ञवल्क्य उस दिन इसी मुसीबत में पड़ा। वह गार्गी खड़ी हुई तब तो उसने सोचा कि क्या रखा है। ऐसी बहुत गार्गियां देख लीं! लेकिन अगर उसे थोड़ी भी समझ होती तो उसे याद होना चाहिए था। उसकी दो पत्नियां थीं; उनसे कुछ भी सीखा होता तो यह भूल कभी न करता। लेकिन लोग सीख-सीख कर भूल जाते हैं।
गार्गी ने प्रश्न किए। प्रश्न बड़े सीधे लगते थे। उसने कहा, पृथ्वी कहां ठहरी है?
याज्ञवल्क्य हंसा। उसने कहा, यह भी कोई बड़ा प्रश्न है? शास्त्रों में लिखा है कि पृथ्वी को हाथी सम्हाले हुए हैं।
हाथी कहां ठहरे हुए हैं? उसने पूछा।
यहां जरा याज्ञवल्क्य चौंका। उसने कहा, हाथी? हाथी परमात्मा सम्हाले हुए है।
गार्गी ने पूछा, और परमात्मा को कौन सम्हाले हुए है?
तो याज्ञवल्क्य ने कहा कि गार्गी, बस चुप! अन्यथा तेरा सिर नीचे गिरा दिया जाएगा। अतिप्रश्न हो गया।

यह क्रोध है। यह कोई उत्तर नहीं है। अतिप्रश्न? अतिप्रश्न कब होता है? जब तुम किसी दार्शनिक के घाव को छू देते हो, जिसको वह खुद ही हल नहीं कर पाया। बस वहां भर तक न पूछो, तो बाकी सब विस्तार वह ठीक से समझा देगा। कितने हाथी सम्हाले हुए हैं, कितने बड़े हैं, परमात्मा कैसे सम्हाले है, सब बता देगा। बस आखिरी सवाल तुम मत पूछना। अतिप्रश्न का अर्थ हैः जिसके प्रति दार्शनिक खुद अपनी सुविधा के लिए, बेचैनी से बचने के लिए अंधा हो गया। वह उसको नहीं देखता।
इसलिए यह बड़े मजे की घटना है कि हर दार्शनिक दूसरे की भूल बिल्कुल तत्क्षण देख लेता है और कोई दार्शनिक अपनी भूल नहीं देख पाता। सब दर्शनशास्त्र दूसरों का खंडन कर देते हैं और अपना बचाव नहीं कर पाते। यह बड़े मजे की बात है। खंडन में उनकी कुशलता का अंत नहीं। बचाव में एकदम निहत्थे हो जाते हैं। क्योंकि दूसरा भी फौरन वहीं बात को खींच लाता है। जैसे ही तुम समझो कि दूसरा आदमी क्रोध में आने लगा, समझ लेना कि तुम उस जगह के करीब आ रहे हो जहां उसने आंख बंद कर रखी हैं।
जिज्ञासु कभी पहुंचता नहीं, अगर जिज्ञासा में ही रहा आए। दार्शनिक बन जाएगा, बड़े विवाद भी जीत सकता है, लेकिन असली प्रश्न चूक गया। उसका उत्तर जिज्ञासा से नहीं मिलता।
अगर जिज्ञासु जिज्ञासा में हार जाए और समझ ले कि यह खोज पूरी होती ही नहीं। प्रश्न बचता ही चला जाता है। कितने ही पीछे हटाओ, आखिर में प्रश्न वहीं का वहीं बना रहता है। जब जिज्ञासु ऐसा देख लेता है, तब साधक का जन्म होता है। तब वह कहता है, सोचने से न होगा, साधने से होगा। तब वह ध्यान करता है, तपश्चर्या करता है, उपवास करता है, सब भांति के उपाय करता है कि साध ले। कुंडलिनी का जागरण हो, चक्र खुलें, रोशनी दिखे। यह सब होना भी शुरू हो जाता है।
अगर साधक साधक ही बना रहे और सदा इन्हीं खेल-खिलौनों में उलझा रहे, ये भीतर के अनुभव सब कुछ हो जाएं--शक्तियां भी पैदा हो जाती हैं, सिद्धियां भी आ जाती हैं। साधक का आखिरी अंत सिद्धि पर होता है। वह चमत्कार भी कर सकता है। लेकिन वे सब चमत्कार अहंकार को ही भरते हैं। साधक आखिरी क्षण तक भी शुद्ध अहंकार से भरा रहता है, वह मिटता नहीं। अगर कोई साधक ही रह गया, तो वह शुद्धतम अहंकारी हो जाता है। लेकिन परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता। सब सिद्धियां हो जाती हैं, सिद्धावस्था भर उपलब्ध नहीं होती।
अगर कोई उससे भी थक गया; देख लिए सब भीतर के रंग-बिरंगे प्रकाश; देख लिए खेल तारों के भीतर; देख लिया ऊर्जा का उठना; देख लिया भीतर का सब दृश्य, नाटक; वे भी सब सपने हैं। कितने ही मधुर, कितने ही प्रीतिकर, बस सपने हैं। उससे भी जो थक गया, वह भक्त होता है।
भक्त का अर्थ हैः अब वह कहता है, मेरे किए कुछ न होगा। दो काम संभव थेः
या मन से करता तो जिज्ञासा करता; शरीर से करता तो तपश्चर्या करता। दोनों करके देख लिए। दोनों से पाया, अंत नहीं आता। तेरी कोई सीमा नहीं है। अब मैं तीसरी दिशा में प्रवेश करता हूं। वह तीसरी दिशा अपने को मिटाने, समर्पित करने की है। अब मैं अपने को छोड़ता हूं। अब मैं कुछ करना नहीं चाहता। अब तो मैं इतना ही चाहता हूं कि तू जो कुछ करना चाहे, कर।
कर्ता को विदा कर देता है जो, वह भक्त होता है। भक्ति कोई क्रिया नहीं है, भक्ति कर्ता का परिपूर्ण हार जाना है। भक्ति, कर्म पर श्रद्धा चली जानी है। भक्ति का अर्थ है, अब किए कुछ भी न होगा। अब मैं छोड़ता हूं तेरी धार में। अब तू जहां ले जाए, उसी को किनारा समझूंगा। अब मेरा कोई गंतव्य नहीं है, मेरा कोई लक्ष्य नहीं है।
और ऐसी घड़ी में ही भक्त भगवान हो जाता है। इस घड़ी में सब बाधाएं टूट जाती हैं। कर्ता न रहा, अहंकार न रहा। अहंकार गया कि अवतरण हो जाता है।
उतनी ही बाधा थी, उतना ही पर्दा था। भक्त होते ही भक्त भगवान हो जाता है।
और भक्त हुए बिना भगवान के पीछे तुम लाठी लेकर घूमते रहो; तुम जितनी तेजी से घूमते हो, उतना ही वह तुमसे बचता है।
परमात्मा को खोजना नहीं है, परमात्मा में खोना है।
आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
तीसरा प्रवचन

मेरे आगे मैं खड़ा

सूत्र

जीवत माटी हुई रहै, साईं सनमुख होई।
दादू पहिली मरि रहै, पीछे तो सब कोई।।

(दादू) मेरा बैरी मैं मुवा, मुझे न मारै कोई।
मैं ही मुझको मारता, मैं मरजीवा होई।।

मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाई।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाई।।

दादू आप छिपाइए, जहां न देखै कोई।
पिव को देखि दिखाइए, त्यों-त्यों आनंद होई।।

(दादू) साईं कारण मांस का, लोहू पानी होई।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोई।।

एक प्राचीन कथा है। एक बहुत बड़े सम्राट को राज्य के सुदूर कोने से खबर
आई कि वहां की जनता अत्यंत दुखी है, नरक में जी रही है। लोग एक-दूसरे के विरोध में हैं। सतत कलह और संघर्ष है। लोग एक ही सुख जानते हैं; वह है, दूसरों को दुख देना। जीवन असंभव हो गया है। लूट-पाट, हिंसा, आगजनी, हत्या, आत्महत्या, इन्हीं के बादलों से आकाश भर गया है।
सम्राट ने सोचा; फिर उसने अपने वजीर को बुलाया और उसे एक दर्पण दिया।
वह दर्पण किसी जादूगर ने सम्राट को भेंट किया था। उस दर्पण की खूबी थी कि जो भी उसमें देखेगा, उसे चीजें वैसी दिखाई पड़ने लगेंगी, जैसी वे हैं। वैसी नहीं, जैसी उसने कल्पना में मान रखी हैं; वैसी नहीं, जैसा उसने भ्रम पाल रखा है; वैसी नहीं, जैसा उसका पक्षपात है; वरन वैसी, जैसी कि वे अपने आप में हैं। उसे यथार्थ दिखाई पड़ने लगेगा। और यथार्थ दिखाई पड़ जाए तो जीवन रूपांतरित हो जाता है। जो भी उस दर्पण में झांक लेगा, फिर वह वही आदमी नहीं रह जाएगा जो कल तक था।
वजीर उस जादुई दर्पण को लेकर उस दूर के नगर में पहुंचा। वजीर जानता था लोगों को भलीभांति। सम्राट तो महलों में ही रहा है। उसे दर्पण की खूबी का पता होगा, लोगों की खूबी का पता नहीं है। वजीर जानता था क्या हश्र होगा, क्या परिणाम होगा। पर राजा की आज्ञा थी, पूरी करनी थी। उसने जाकर उस अनूठे दर्पण को गांव के बीच चौराहे पर खड़ा कर दिया, डुंडी पिटवा दी--कि यह दर्पण अनूठा है; सम्राट ने भेंट भेजा है। इस दर्पण को हम यहीं छोड़ जा रहे हैं। इसकी सुरक्षा करना और इसका उपयोग करना। जब भी किसी के चित्त में बेचैनी, अशांति, घृणा का रोग पकड़े, इसमें झांकना। तुम्हें चीजें वैसी ही दिखाई पड़ने लगेंगी, जैसी हैं।
जैसे कि तुम सोचते हो, लोग तुम्हारा अपमान कर रहे हैं। दर्पण में देखना, स्थिति उलटी ही पाओगे। कोई तुम्हारा अपमान करने को उत्सुक नहीं है। तुम ही जरूरत से ज्यादा सम्मान मांग रहे हो। दर्पण में देखते ही दिखाई पड़ जाएगा कि तुमने अपने अहंकार का गुब्बारा इतना बड़ा कर लिया है कि तुम जहां भी जाते हो, तुम ही लोगों से टकरा जाते हो। कोई तुमसे टकराने को उत्सुक नहीं।
अगर तुम्हें लगे कि लोग तुम्हें दुख दे रहे हैं, तो दर्पण में देखने
से पता चल जाएगा कि कोई इस संसार में किसी को दुख दे नहीं सकता। तुम हजार-हजार मार्गों से दुख पाने के उपाय करते हो। फिर जब उपाय पूरे हो जाते हैं,

तब तुम रोते, चीखते, चिल्लाते हो। तुम्हें लगे जब भी कुछ पीड़ा, परेशानी, बेचैनी, तो दूसरे पर उत्तरदायित्व मत फेंकना; पहले दर्पण में झांक लेना।
डुंडी पीट दी गई। वजीर कुछ दिन रुका भी रहा देखने कि क्या होता है। उसे पता था कि क्या होगा।
एक वर्ग था गांव में पंडितों का, मौलवियों का, शास्त्रियों का, जानकारों का, तथाकथित ज्ञानियों का। उन्होंने कहा, वस्तुएं हमें वैसी ही दिखाई पड़ती हैं, जैसी हैं। हम इस दर्पण में क्यों देखें? क्या हम नासमझ हैं कि हमें वस्तुएं उनके यथार्थ में दिखाई नहीं पड़तीं? क्या हम पागल हैं? अब तक हम क्या धूप में बाल पकाते रहे? उस दर्पण के पास वे ही जाएं जिनको अपनी बुद्धि पर भरोसा न हो। हमें भरोसा है। न केवल वे स्वयं नहीं गए, उन्होंने गांव में हवा पैदा की कि कोई जा न सके। उन्होंने खबर की कि जो पागल होंगे वही जाएंगे। दर्पण होगा खूबी का, लेकिन पागलों के ही काम का है, बीमारों के काम का है। हम तो स्वस्थ हैं। और हमें तो चीजें यथार्थ रूप में दिखाई ही पड़ती हैं। दर्पण का प्रयोजन क्या है?
दूसरा वर्ग था एक गांव में सीधे-सादे लोगों का, लेकिन कायरों का। उन्होंने कहा कि दर्पण में देखो न देखो, लेकिन सम्राट ने भेजा है, सम्मान तो देना जरूरी है। तो उन्होंने एक छोटा सा मंडप तैयार कर दिया, फूल-हार सजा दिए। यद्यपि उन्होंने भी ध्यान रखा कि फूल-हार लगाते वक्त, दीप जलाते वक्त, धूप बालते वक्त, कहीं भूल से दर्पण में चेहरा न दिख जाए। क्योंकि कौन जाने ठीक ही हो! तो सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। जीवन बंधा है एक ढांचे में; कहीं कुछ और दिखाई पड़ने लगा तो कहीं के न रहेंगे। एक सुरक्षा है बंधे- बंधाए जीवन की धारा में। कायर उसे बदलने से डरता है। तो उन्होंने पूजा की, इस भय से कि कहीं भूल-चूक से भी दर्पण में चेहरा दिखाई पड़ गया तो क्रांति हो जाएगी। उन्होंने बहुमूल्य मखमल का एक परदा भी दर्पण पर टांग दिया। कहा उन्होंने यही कि यह दर्पण का सम्मान किया जा रहा है, पूजा की जा रही है। लेकिन गहरे में सुरक्षा की तैयारी थी।
गांव में एक तीसरा वर्ग भी था, जिन्होंने न केवल विरोध किया, बल्कि गांव में यह हवा भी पैदा की कि यह दर्पण हमारे अपमान का सूचक है। किसी और नगर में ऐसा दर्पण नहीं है; हमारे नगर में ही सम्राट ने भेजा है। यह भयंकर अपमान है। इसका मतलब है--हम पागल हैं, मूढ़ हैं; हमें चीजें गलत दिखाई पड़ती हैं; हमारे पास आंखें नहीं हैं; हम अंधे हैं! इस दर्पण को उखाड़ कर फेंकना है। इसे यहां टिकने न देंगे।
कुछ एक चौथा वर्ग भी था, बहुत छोटे लोगों का, जैसे डाक्टर फणनीस, स्वभाव, सोहन, पुंगलिया, बागमार; ऐसे थोड़े से लोग थे। उन्होंने हिम्मत जुटा कर दर्पण में झांक कर देखा, रूपांतरित हुए। तो लोगों ने कहा, ये हिप्नोटाइज्ड हो गए हैं। ये सम्मोहित हो गए हैं। लोग जैसा दर्पण से बचते थे, वैसा ही इन लोगों से भी बचने लगे। क्योंकि इनमें भी दर्पण की कुछ खूबी आ गई। इनकी आंखों में भी जो झांकता, उसे भी चीजें वैसी दिखाई पड़ने लगतीं, जैसी कि थीं।
अंततः लोगों ने दर्पण नष्ट कर दिया, क्योंकि वह बहुत उपद्रव था। न केवल उन्होंने यह किया कि दर्पण नष्ट कर दिया, जिन्होंने दर्पण से देखा था उनका जीवन दूभर कर दिया। और ऐसा नहीं कि दुश्मनों ने किया, घर के लोगों ने भी कर दिया, परिवार के लोगों ने भी कर दिया, क्योंकि अब उनकी आंखें झेलना मुश्किल हो गईं।
ऐसी ही कथा है सारे धर्मों की। हर धर्म एक दर्पण लाता है तुम्हारे नगर में। और हर धर्म की चेष्टा है कि उस दर्पण में तुम वैसा देख लो जैसा सत्य है। और ये प्रतिक्रियाएं हैं जो आदमी करता है।
कायर होकर पूजा करने से कुछ लाभ न होगा। कायर के साथ पूजा का कोई संबंध ही नहीं। पूजा तो दुस्साहस है। क्योंकि पूजा तो स्वयं को बदलने की तैयारी है। पूजा तो क्रांति में उतरना है। स्वर्ण को अग्नि में डालना है, ताकि वह निखर सके।
और जो भी क्रांति की तरफ चलता है, उसे अपने को मिटाना ही होगा। रत्ती- रत्ती मिटाना होगा। क्योंकि तुम्हारे और यथार्थ के बीच तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं खड़ा है। तुम्हारी बंधी हुई बुद्धि की धारणाएं,

पक्षपात, शास्त्र, सिद्धांत, हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, सब तुम्हें रोकेंगे। वे कहेंगे, तुम तो जानते ही हो! जानने को बचा क्या है? तब सावधान होना जरूरी होगा।
अगर तुम जानते ही थे, तो एक कसौटी सदा कस लेना कि जो जानता है वह आनंदित होगा। जानने का और कोई अर्थ नहीं है। जो ज्ञान आनंद तक न ले आए वह ज्ञान नहीं है। ज्ञान हो नहीं सकता। जिस भोजन से भूख ही न मिटती हो, उसे भोजन क्या कहना! वह भोजन की चर्चा होगी, भोजन नहीं हो सकता। हो सकता है पूरा पाकशास्त्र तुम्हारे हाथ में हो, तो भी तुम भूखे ही रहोगे। पाकशास्त्रों से कहीं भूख मिटी है? रूखी-सूखी रोटी भी मिटा देती है। बड़ा बहुमूल्य पाकशास्त्र, स्वर्ण की जिल्दों में बंधा हो तो भी, हीरे- जवाहरातों से जड़ा हो तो भी किसी भी काम नहीं आता। भूख मिटाने का उससे कोई संबंध नहीं।
तुम्हारे वेद, तुम्हारी गीताएं, तुम्हारे कुरान, पाकशास्त्र हैं। बड़े बहुमूल्य होंगे, उनमें बड़ी विधियां लिखी हैं। लेकिन तुम उनकी पूजा कर रहे हो। और तुमने उन पर भी काफी मखमल के परदे डाल दिए हैं, ताकि कहीं भूल-चूक से भी तुम्हें अपनी झलक न मिल जाए।
जब भी कोई धर्म जन्मता है तब तो एक दर्पण होता है। जब किसी संत का आविर्भाव होता है, तब वह एक दर्पण होता है। उस दर्पण में तुम झांकोगे तो ही! झांकने के पहले तुम्हें साहस जुटाना होगा। झांकने के पहले तुम्हें यह बात तय कर लेनी होगी कि तुम जानते नहीं हो।
सूफी कहते हैं कि जिस व्यक्ति को यह ख्याल आ गया कि मुझे पता नहीं है,
वह द्वार पर खड़ा हो गया। जिसको यह ख्याल है कि मुझे पता है ही, वह दर्पण के पास से भी आंख बंद किए गुजर जाएगा। क्योंकि क्यों देखूं दर्पण में?
और तुम अपनी जीवन-व्यवस्था को अगर बचाव करने में लगे हो; यद्यपि उससे तुमने दुख पाया है, पीड़ा पाई है, नरक पाया है, लेकिन फिर भी तुम उसके आदी हो गए हो। कारागृह में कैदी जंजीरों का भी आदी हो जाता है। उनको भी छोड़ने का मन नहीं करता।
बीमार आदमी अपनी बीमारी को भी पकड़ता है। पहचान हो जाती है, पुराने नाते हो जाते हैं। आज अचानक बीमारी छोड़ कर चली जाएगी, तुम्हें समझ में ही न आएगा, अब क्या करें? कल तक तो एक योजना थी। सुबह से उठ कर डाक्टर के घर जाते थे, दवा लाते थे, दवा लेते थे, लेटते थे, लोगों से दुख की चर्चा करते थे, लोगों की सहानुभूति जुटाते थे; सभी मित्र, परिचित, अपरिचित प्रेम प्रकट करते थे--एक ढांचा था। आज अचानक बीमारी चली गई। आज न डाक्टर के घर जाना है, न दवा खरीदनी है, न आज पत्नी उतना प्रेम करती मालूम पड़ती है, न मित्र उतनी दया करते मालूम पड़ते हैं। दुनिया अचानक रूखी-सूखी मालूम पड़ने लगी, एक मरुस्थल फैल गया। कल तक हरियाली थी। बीमारी के साथ बड़ा गहरा संबंध हो गया। अब तुम बीमारी छोड़ना न चाहोगे।
दुख भी तुम छोड़ना नहीं चाहते। संत इतना ही कहते हैं कि तुम दुख छोड़ दो; आनंद तो मिला ही हुआ है। तुम गलत को छोड़ दो, ठीक तो उपलब्ध ही है। सिर्फ गलत हाथ में न हो तो ठीक हाथ में आ जाए। गलत आंख में न हो तो ठीक आंख में आ जाए।
इतना ही दर्पण है।
ये दादू के वचन तुम्हारे जीवन को बदल सकते हैं। इनमें छिपा है दर्पण।
इन वचनों को गौर से समझने की कोशिश करना। और ऐसे समझने की कोशिश करना जैसे कि तुम कुछ जानते नहीं हो; तो ही समझ पाओगे। जानने वालों का दुर्भाग्य है।
वे नहीं समझ पाते। वे जानने के पहले ही जानने से भरे हैं। जानने को हटा देना। सुनना सरलता से, जैसे छोटे बच्चे सुनते हों।
जीवत माटी हुई रहै, साईं सनमुख होई।
जो परमात्मा के सामने जाने का साहस करेगा, वह जीते जी मिट्टी हो जाएगा।
परमात्मा को तो खोजने बहुत लोग निकलते हैं, लेकिन जीते जी मिट्टी होने की क्षमता कभी विरले व्यक्तियों में होती है। इसलिए खोजते बहुत हैं, पाते बहुत कम हैं। इसमें परमात्मा का कोई कसूर नहीं है। तुम जब तक न मिटो, तब तक उसके लिए जगह ही नहीं है तुम्हारे पास। तुम ही अपने अंतर्गृह में इस

बुरी तरह भरे हो कि वहां स्थान नहीं है, अवकाश नहीं है कि परमात्मा प्रवेश कर जाए। वहां तुमने बूंद भर जगह नहीं छोड़ी है।
तुम्हारी हालत ऐसी है जैसे मैंने सुना है कि मथुरा का एक पंडा था; उसकी बड़ी ख्याति थी भोजन के संबंध में। किसी के घर आमंत्रण था, भोजन करने के बाद--भोजन तो वह करता ही गया--उसे भेजने के लिए भी बैलगाड़ी पर रख कर घर वापस ले जाना पड़ा। चलने की भी स्थिति न रही। घर पहुंच कर उसकी पत्नी ने उससे कहा, यह गोली एक दवा की खा लो, क्योंकि यह तो तुमने हालत खराब कर ली। उसने आंख खोली। उसने कहा, नासमझ! अगर गोली ही खाने की जगह होती तो एक लड्डू ही और न खा लेते? वह जगह तो पहले ही नहीं बची है।
वैसी तुम्हारी दशा है। परमात्मा के लायक अगर जगह होती, तो तुम थोड़ा फर्नीचर और खरीद लाते, थोड़ा धन और जुटा लेते, थोड़े पद-प्रतिष्ठा के मानपत्र और इकट्ठे कर लेते। तुम थोड़ा कूड़ा-करकट और भर लेते। जगह है ही नहीं। वह तुमने छोड़ी ही नहीं है। और तुम्हारे भीतर जब तक ऐसी जगह न हो कि पूरा आकाश हो जाए, तब तक परमात्मा का आना नहीं हो सकता।
विराट को बुलाते हो, शून्य बनाना पड़ेगा। असीम को बुलाते हो, सीमारहित शून्यता भीतर घनीभूत करनी पड़ेगी। ध्यान कुछ और नहीं, समाधि कुछ और नहीं, तुम्हारे मिट जाने का नाम है। तुम थोड़े ही ध्यान करोगे! तुम मिटोगे तब ध्यान होगा। तुम थोड़े ही समाधिस्थ हो जाओगे! तुम खो जाओगे तब समाधि होगी। तुम्हारा और समाधि का कभी कोई मिलना न होगा। यहां तुम गए, वहां समाधि आई। तुम रहे, समाधि न आ पाएगी। समाधि का कुल इतना अर्थ है कि तुम्हारे भीतर खाली शून्य स्थान हो गया। अब तुम्हारे भीतर कुछ भी नहीं है। उस शून्यता में, उस पवित्रता में, उस कुंवारेपन में ही परमात्मा अवतरित होता है। जीवत माटी हुई रहै, साईं सनमुख होई।
परमात्मा के सामने जो आया, वह जीते जी मिट्टी हो गया। याः जीते जी जो मिट्टी हो गया, उसके सामने परमात्मा आ गया। ये दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जीवित माटी हो रहो! परमात्मा की फिक्र ही मत करो। तुम जीते जी मर जाओ।
इन शब्दों को ठीक से समझ लेना। क्योंकि इन छोटे से शब्दों में धर्म की सारी कला समाहित हैः जीते जी मर जाओ। मरते तो सभी हैं, आज नहीं कल। भक्त मरने के पहले मर जाता है। वह कहता है, जब मरना ही है, तो मौत की क्या प्रतीक्षा करनी! हम खुद ही मिटे जाते हैं।
जीवत माटी हुई रहै...
वह जीता है इस अर्थों में कि श्वास चल रही है। मर जाता है इस अर्थों में कि मैं का कोई भाव नहीं रह जाता। जीता है इस अर्थों में कि भूख लगती है, प्यास लगती है, भोजन भी मांग लाता है, पानी भी पी लेता है। मर जाता है इस अर्थों में कि अब जीने की कोई आकांक्षा नहीं रह जाती। तुम्हारी जीने की आकांक्षा ही, जीवेषणा--जीता रहूं, सदा जीता रहूं, मैं बना रहूं, मिट न जाऊं कहीं, खो न जाऊं कहीं--उस जीवन को वह छोड़ देता है।
वह जीता है, अगर परमात्मा जिलाए जा रहा है; श्वास लिए जा रहा है। तो संत कोई आत्महत्या नहीं कर लेता है। वह कहता है, तेरी मर्जी। जिलाए तो ठीक, मारे तो ठीक। अपनी तरफ से हम मरे हुए हैं। हमने अपने को तो अपनी तरफ से मिटा दिया, अब तेरी जो इच्छा।
जीवत माटी हुई रहै, साईं सनमुख होई।
दादू पहिली मरि रहै, पीछे तो सब कोई।।
दादू पहले ही मर जाओ। पीछे तो सभी मरते हैं।
दादू पहिली मरि रहै, पीछे तो सब कोई।।
सभी मरते हैं पीछे तो। धार्मिक पहले ही मर जाता है। वह मृत्यु को इतना कष्ट भी नहीं देता। वह अपने को पहले ही समेट लेता है। वह अपने को बढ़ाता ही नहीं। वह अपने को बनाता ही नहीं। वह अपने को सम्हालता ही नहीं। वह एक भीतर शून्य को जीने लगता है। देह होती है, मन नहीं होता। श्वास चलती है, चलाने वाला नहीं होता। उठना-बैठना होता है, भीतर का कर्ता खो जाता है।
ये सारे कृत्य निसर्ग से चलते हैं। इनको चलाने की कोई जरूरत नहीं।
तुम श्वास थोड़े ही लेते हो, श्वास चलती है। तुम कुछ भी न करो तो चलती है। तुम गहरे सोए रहो तो चलती है। तुम मूर्च्छित पड़े हो तो चलती है। शराब

पी ली है, नाली में गिर गए हो, तो चलती है। चलाने में तुम्हारा कोई हाथ नहीं है।
तो जो अपने आप चलता रहता है वह चलता रहता है। भूख लगती है, प्यास लगती है।
झेन फकीरों ने बहुत बार कहा है। जब भी उनसे पूछा गया कि निर्वाण को पा लेने के बाद, समाधिस्थ हो जाने के बाद अब आप क्या करते हैं? तो वे कहते हैं, भूख लगती है, तब खाना खा लेते हैं। प्यास लगती है, तब पानी पी लेते हैं। नींद आती है, तब सो जाते हैं। और कुछ भी नहीं करते। अपनी तरफ से कुछ नहीं करते। जो हो रहा है निसर्ग से, वह ठीक है।
दादू पहिली मरि रहै, पीछे तो सब कोई।।
यही धार्मिक-अधार्मिक का फर्क है। अधार्मिक, जब मौत आती है तब भी मरने
को राजी नहीं होता। लड़ता है; सब तरह की चेष्टा करता है, और थोड़ी देर रुक जाए। नाव भी लग गई किनारे पर, तब भी वह किनारे को जकड़े रहता है। उसे जबरदस्ती ले जाना पड़ता है।
यमदूत मृत्यु के कारण नहीं आते, यमदूत तुम्हारी पकड़ के कारण आते हैं। सारे संसार में कथाएं हैं इस बात की कि मरते वक्त परमात्मा को भेजने पड़ते हैं लोग--बड़े दुष्ट प्रकृति के लोग, बड़े शक्तिशाली पहलवान जैसे, भैंसों पर सवार होकर। वह कोई मृत्यु के कारण नहीं; वह तुम्हारी जबरदस्ती है रुके रहने की। तुम अगर जाने को राजी हो तो बात ही अलग हो जाती है। यमदूत आते ही नहीं। अगर बहुत गहरे में तुम देख पाओ तो समझ लोगे कि मृत्यु भी नहीं आती। क्योंकि वह तो तुम काम पहले ही निपटा चुके। वह मरने का काम तो हो ही गया। तुम एक हवा के झोंके की तरह चले जाते हो। कोई ले जाता नहीं।
बुद्ध का एक नाम है तथागत। तथागत का अर्थ होता है, हवा के झोंके की तरह
जो चला गया। पता भी न चला कब आया, पता भी न चला कब चला गया। जिसके जाने में जरा भी शोरगुल न था; जिसका जाना ऐसे हो गया--चुपचाप; कानों-कान खबर न पड़ी। कोई यमदूतों ने बुद्ध को नहीं छुड़ाया संसार से, उस संसार को पहले ही छोड़ दिया था।
बुद्धपुरुष ऐसा है जैसे किनारे से सब जंजीरें तोड़ कर नाव की प्रतीक्षा में खड़ा है। नाव आए, वह सवार हो जाए। साधारण संसारी ऐसा है कि नाव पास आती देख कर मौत की, वह और खूंटियां गाड़ लेता है किनारे पर। हाथ-पैर भी जकड़ देता है। सब तरह से बंध कर अपने को पकड़ कर रह जाता है। मित्र-प्रियजनों को बुला लेता है कि सब तरफ से पकड़ लो, कहीं से जा न सकूं।... ले जाया जाता है। उसकी मौत एक बेहूदी घटना बन जाती है। उसकी मौत एक कुरूप कृत्य हो जाती है।
और ध्यान रखना, जो मर भी नहीं सकता शांति से, वह जी नहीं सका होगा शांति से। क्योंकि मौत तो महाशांति है। वह तो परम विश्राम है। वह तो थके हुए तत्वों का वापस लौट जाना है; और कुछ भी नहीं है। शरीर थक गया, सत्तर साल तक काम करता रहा, भयंकर लंबी यात्रा थी, दूभर चढ़ाई थी। हृदय धड़कता रहा, श्वास चलती रही; खून साफ करता रहा सत्तर-अस्सी साल तक। और बिना किसी विशेष आयोजन के यह महान यंत्र काम करता रहा। यह थक गया। इसके तत्व अब वापस लौट जाना चाहते हैं। मिट्टी मिट्टी में विश्राम करना चाहती है; जल जल में जाना चाहता है; आकाश आकाश में खो जाना चाहता है। मृत्यु तो विश्राम है। जैसे रोज नींद विश्राम है। हर दिन के बाद, हर दिन के श्रम के बाद रात है विश्राम के लिए; ऐसे हर जीवन के बाद रात है मौत की, सो जाने के लिए। विश्राम से कोई घबड़ाता है?
अज्ञानी तड़फता है कि मर जाऊंगा। अशांति से मरता है। जो अशांति से मरता है वह जी तो सकता ही नहीं शांति से। जिसकी नींद तक अशांत है, उसका जागरण तो महा अशांत होगा। मृत्यु कसौटी है। कैसे तुम मरोगे, उससे तुम्हारे पूरे जीवन के संबंध में निर्णय मिल जाएगा। मृत्यु तुम्हारे पूरे जीवन के संबंध में वक्तव्य दे जाएगी--तुम कैसे जीए।
जो आनंद से जीया था, वह आनंद से मरेगा; महा आनंद से मरेगा। जो प्रेम से जीया था, वह प्रेम से ही लीन हो जाएगा। जो अहोभाव से नाचा था, वह नाचते हुए ही विदा होगा। संघर्ष नहीं होगा। बचने की क्षण भर के लिए आकांक्षा नहीं

होगी। वह स्वयं तत्पर होगा। यमदूत उसे खींचेंगे नहीं; वह खुद ही नाव पर सवार हो जाएगा।
एक झेन फकीर हुआ बोकोजू। जब वह मरने लगा, तो उसने सबको खबर कर दी कि आज मैं मर जाऊंगा। मित्र, अनुयायी, प्रेमी इकट्ठे हो गए। लाखों की भीड़ थी। बोकोजू झोपड़े के बाहर आया, अपने प्रार्थनागृह से निकला और मरघट की तरफ चलने लगा। लोगों ने कहा, आप कहां जाते हैं? उसने कहा कि मैं किसी के कंधे पर सवार होकर जाना पसंद न करूंगा। अभी तो चल सकता हूं। यह मेरी आदत नहीं है।
अकेला आदमी है पूरे संसार के इतिहास में, जो मरघट पर जाकर अपनी कब्र खोद कर लेट गया और मर गया। लेटा और शांत हो गया। कब्र भी उसने किसी और को न खोदने दी। उसने कहा, यह बात ही क्या करनी! जब तक जीवित हूं, यह सब कर देता हूं। यह कहने को न रह जाए कि मुझे ले जाया गया। मैं गया! मैं उन बुद्ध का अनुयायी हूं, जिनका नाम तथागत है; जो ऐसे चले गए।
वह बुद्ध से भी सुंदर ढंग से गया। उसके जाने की कहानी बड़ी अनूठी है। अपने हाथ से गया। और जो मौत में ऐसे जाता हो--नाचते हुए, हंसते हुए, सुबह के सूरज में जब फूल खिले हों, पक्षी गीत गाते हों--ऐसे स्वागत से जाता है, इतनी सरलता से जाता है, वह इतनी ही सरलता से जीया भी होगा। क्योंकि मौत तो निचोड़ है। जीवन के सारे फूलों का निचोड़ है, इत्र है।
अगर जीवन के फूल गंदे और कड़वे और दुर्गंध-युक्त रहे हैं, तो मौत सुगंध-युक्त नहीं हो सकती। अगर सारे जीवन फूलों की खेती की है, सुंदर फूलों की, सौंदर्य से भरे फूलों की, सुगंध भरे फूलों की, तो मौत में एक सुगंध होगी। व्यक्ति तो खो जाएगा, सुगंध तैरती रह जाएगी।
इसलिए बुद्ध मर जाते हैं, सुगंध तैरती रह जाती है। बुद्ध का खोना हो गया, लेकिन बुद्ध का गीत गूंजता रहता है। वह गूंजता ही रहेगा। उसके मिटने का कोई उपाय नहीं है।
दादू पहिली मरि रहै, पीछे तो सब कोई।।
दादू मेरा बैरी मैं मुवा, मुझे न मारै कोई।
मैं ही मुझको मारता, मैं मरजीवा होई।।
दादू मेरा बैरी मैं मुआ! कि मेरा दुश्मन मैं ही हूं। मुझे न मारै कोई।
मुझे कोई और नहीं मारता।
महावीर ने कहा है, तुम ही हो अपने मित्र, तुम ही हो अपने शत्रु। जो अपने शत्रु हैं, वे ही सांसारिक हैं। जो अपने मित्र हैं, वे ही धार्मिक हैं। तुम कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लेते हो, आत्मा को बेच डालते हो। तुम क्रोध, घृणा, वैमनस्य में जीने लगते हो; प्रेम, आनंद, अहोभाव, करुणा तिरोहित हो जाते हैं। तुम अपने ही मित्र कैसे अपने को कह सकोगे?
किसी और ने तुम्हें नहीं मारा है, किसी और ने तुम्हें नहीं लूटा है, तुम ही अपने को काटते रहे हो, अपने को जहर देते रहे हो। तुम्हारे जीवन में अगर घाव हैं, तो उनमें तुम्हारे ही हस्ताक्षर हैं। और तुम्हारे हृदय में अगर पीड़ाओं के घनीभूत मेघ हैं, तो वह तुमने अर्जित किया है जन्मों-जन्मों में। तुम जो हो, वह तुम्हारे कृत्यों का फल हो।
दादू मेरा बैरी मैं मुवा...
मैं ही अपना शत्रु हूं।
... मुझे न मारै कोई।
कोई मुझे मारता थोड़े ही है! अब यह बड़ी सूक्ष्म बात है। दादू यह कह रहे हैं कि मौत तुम्हें नहीं मारती; जीवित रहने की आकांक्षा तुम्हें मारती है।
इसीलिए मैंने दर्पण की कथा तुमसे कही, ताकि तुम्हें तथ्य दिखाई पड़ने लगे। तुम सोचते हो, मौत आती है और तुम्हें मारती है। नहीं; तुम जितनी मात्रा में जीवन को जकड़ रखना चाहते हो, उतनी ही बड़ी मात्रा में मौत आती है। तुम्हारी जितनी पकड़ होती है जीवन पर, उतने ही जोर से मौत के दूतों को तुम्हें जीवन से छुड़ाना पड़ता है। अगर तुम्हारी कोई भी पकड़ न हो, पकड़ ही न हो, तो मौत आती ही नहीं। मौत के समय अधिक लोग बेहोश हो जाते हैं, क्योंकि बड़ी छीना-झपटी होती है। सिर्फ संत पुरुष होश में मरते हैं, क्योंकि छीना- झपटी कुछ है ही नहीं।

वस्तुतः सच्चाई तो यह है कि जो लोग सम्यकरूपेण जीए हैं, सम्यकरूपेण मरते हैं। मौत के आखिरी क्षण में उनकी सजगता अपनी चरम उत्कृष्ट कोटि पर होती है, आखिरी कोटि पर होती है। जैसे बुझने के पहले दीये में लपट आखिरी आ जाती है, वैसे ही उनके जीवन में सारे जीवन के बोध का सार-संचित घटित होता है। मृत्यु के क्षण में, जब सब मर रहा होता है, उनके भीतर जो अमृत ज्योति है, वह बड़ी प्रगाढ़ता से जलती है।
यह ठीक भी है। क्योंकि विपरीत में ही चीजें प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ती हैं। अब तक तो मिले-जुले थे शरीर से, कोई भेद-फासला न था ज्यादा। अब शरीर दूर पड़ने लगा; चेतना अलग हटने लगी; मिश्रण टूट रहा है। इस घड़ी में बोध परिपूर्ण होगा। इस घड़ी में चेतना शुद्ध होगी। शरीर की कण भर भी छाया उस पर न रह जाएगी। मन के विचार की क्षण भर भी विकृति न पड़ेगी। दर्पण बिल्कुल शुद्ध होगा।
मृत्यु के क्षण में संत पुरुष--जिसने अपने को पहले ही मार डाला है, अहंकार का त्याग कर दिया है--वह बड़ी प्रगाढ़ ज्योति को उपलब्ध होता है। वह अनुभव करता है कि मैं तो जीवन हूं, मृत्यु कैसे हो सकती है? तब वह देखता हैः मृत्यु आस-पास घट रही है, मुझमें नहीं। मेरे पास घट रही है, मुझमें नहीं।
तुम देखोगेः तुम्हारे भीतर घट रही है। क्योंकि तुम्हें अपना तो पता
ही नहीं है। और जिसे तुमने अपना आपा समझ रखा है, वह सिर्फ एक झूठी धारणा है अहंकार की, नाम-रूप की, माया की।
दादू मेरा बैरी मैं मुवा, मुझे न मारै कोई।
यह उलटा लगेगा, विरोधाभासी लगेगा, लेकिन इसे समझ लेना।
अगर तुम बहुत सम्मान चाहते हो, तो तुम्हारा अपमान होगा। अगर तुम अतिशय सफलता चाहते हो, तो तुम्हें विफलता मिलेगी। अगर तुम बहुत धनी होना चाहते हो, तो तुम निर्धन मरोगे। अगर सम्राट होने की आकांक्षा है, तो भिखारी होना तुम्हारी नियति होगी। तुम जो भी अतिशय से चाहोगे, उससे उलटा परिणाम होगा।
इसलिए तो लाओत्सु कहता है, समझदार पहले से ही सफलता की दौड़ में सम्मिलित नहीं होते। उन्हें तुम हरा न सकोगे। वे पहले से ही पीछे खड़े होते हैं। तुम उन्हें गिरा न सकोगे। वे मांगते ही कुछ नहीं। तुम उनसे छीन न सकोगे।
यह जो लाओत्सु कह रहा है, यह सारे धर्म का सार-संचय है। तुम्हें अगर बचना हो, तो अपने को बचाना ही मत।
जीसस ने कहा है, बचाओगे, और मिटोगे। मिटोगे, बच जाओगे।
धर्म को विरोधाभास की भाषा बोलनी पड़ती है। क्योंकि तुम्हारा जीवन इतने अंधेरे में है कि किसी और तरह से खबर पहुंचाई नहीं जा सकती। सीधी बात भी कहनी हो तो तिरछी करके पहुंचानी पड़ती है, क्योंकि तुम बड़ी तिरछी हालत में पड़े हो। लाओत्सु ने बार-बार कहा है कि सीधी-सादी मेरी बातें हैं, लेकिन तिरछी लगती हैं। क्योंकि तुम तिरछे हो। तुम्हारे भीतर जाकर तिरछी हो जाती हैं।
अब यह बात सीधी-सादी है। अगर तुम मान ही न चाहो, तो क्या तुम्हारा कोई अपमान कर सकेगा? कैसे करेगा? अगर तुम सफलता न चाहो, तो तुम विफल हो सकते हो? कैसे होओगे? अगर तुमने जीतना ही न चाहा हो, तो तुम्हें कोई हरा सकता है? तो तुम्हारी ही जीतने की आकांक्षा हराती है। और तुम्हारी ही जीने की अतिशय आकांक्षा मारती है। तुम्हारी ही पकड़ के कारण तुम से छुड़ाया जाता है।
... मुझे न मारै कोई।
मैं ही मुझको मारता, मैं मरजीवा होई।।
मैं ही अपने को मारता हूं और मैं ही चाहूं तो मैं अमृत को उपलब्ध हो सकता हूं--मरजीवा! मर कर भी जीया हुआ हो सकता हूं। मरजीवा शब्द बड़ा अच्छा है। मरूं भी एक अर्थ में और जीता भी रहूं।
मैं ही मुझको मारता, मैं मरजीवा होई।।
मर भी जाऊंगा, फिर भी न मरूंगा। क्योंकि मैं जागता रहूंगा और देखता रहूंगा कि मैं तो हूं। मेरे होने की शुद्धि बढ़ेगी, घटेगी नहीं। जो मरने को

राजी है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। अमृत को पाने की कला हैः स्वेच्छा से मरने को राजी हो जाना। मरते सभी हैं।
दादू पहिली मरि रहै, पीछे तो सब कोई।
मरते सभी हैं अनिच्छा से। ध्यान में, समाधि में व्यक्ति स्वेच्छा से
मर जाता है। छोड़ देता है। मरजीवा हो जाता है।
मेरे आगे मैं खड़ा...
उपनिषद फीके हो जाएं। वेद-वचन छोटे मालूम पड़ते हैं।
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाई।
मैं ही अपने आगे खड़ा हूं, इसलिए तू छिप गया; अन्यथा तू तो सामने ही है।
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाई।
इसलिए वह छिप गया है जो कभी छिपा ही नहीं, जो कभी छिप ही नहीं सकता।
मैं ही उस पर परदा होकर पड़ गया हूं।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाई।।
और वह प्यारा तो सदा प्रकट है; बस यह जरा आपा हट जाए, यह मेरा होना हट जाए। यह मेरी पकड़ होने की, यह अहंकार की घोषणा कि मैं हूं, यह हट जाए।
मेरे आगे मैं खड़ा...
इसे तुम मंत्र की तरह अपने भीतर गूंज जाने दो। इसे कभी-कभी एकांत क्षण में मंत्र की तरह ही दोहराना, ताकि इसका स्वाद ले सको। समझने की बात कम, स्वाद लेने की बात ज्यादा। ताकि इसकी मिठास तुम्हारे कंठ में उतर जाए, हृदय में चली जाए, तुम्हारे खून-मांस-मज्जा में समा जाए।
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाई।
इसीलिए तू छिप गया है।
दादू परगट पीव है...
प्यारा तो प्रकट है।
... जे यहु आपा जाई।।
बस जरा मैं हट जाऊं बीच से। कौन तुम्हें रोके है? परमात्मा सब ओर है, कण-कण में है, हवा की लहर-लहर में है। सब तरफ से उसने ही तुम्हें घेरा है। बाहर-भीतर वही दिखाई पड़ रहा है, वही देख रहा है। उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। उससे ज्यादा प्रकट कुछ कैसे हो सकता है? क्योंकि जो भी प्रकट है, वही प्रकट है। फिर भी लोग पूछते हैं--परमात्मा कहां है? फिर भी लोग खोजते हैं काशी में, काबा में--परमात्मा कहां है?
परमात्मा को खोजा कि तुम गलत रास्ते पर निकल गए। तुमने पहले तो यह मान
ही लिया कि यहां नहीं है। वहीं भूल हो गई। तुम जहां भी रहोगे, वहीं तो "यहां" होगा। तुम्हें यहां दिखाई न पड़ा--इन वृक्षों में दिखाई न पड़ा, इन पत्थरों में दिखाई न पड़ा, इन लोगों में दिखाई न पड़ा जो यहां मौजूद हैं। तुम पूछते हो, परमात्मा कहां है? तुम काशी जाओगे, वहां दूसरे लोग होंगे, दूसरे वृक्ष होंगे, दूसरी चट्टानें होंगी, मगर वहां पहुंचते ही वे तुम्हारे चारों तरफ घेरने वाला वातावरण बन जाएंगी। काशी "यहां" हो जाएगा, काबा भी "यहां" हो जाएगा। तुम जहां जाओगे वहीं तो "यहां" हो जाएगा। और परमात्मा तुम्हें यहां दिखाई न पड़ा, तो कहीं भी दिखाई न पड़ेगा।
जो खोजने निकलता है परमात्मा को, वह कभी उसे खोज नहीं पाता। क्योंकि उसने बुनियादी भूल तो स्वीकार कर ली कि वह यहां नहीं है। गणित वहीं भूल से हो गया। बस अब आगे गणित कभी भी ठीक न हो सकेगा। अगर तुमने कभी भी गणित किया हो, तो पहले कदम पर बहुत सावधानी की जरूरत है। क्योंकि पहले कदम पर आखिरी निष्कर्ष निर्भर है। पहला कदम आधी मंजिल है। वहां जो चूक गया, वह कभी ठीक जगह पहुंच ही नहीं सकता।
परमात्मा ही है। वह यहां दिखाई नहीं पड़ता। जाहिर है कि तुम्हारी आंख
पर कोई परदा है। वृक्ष दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। चट्टान दिखाई पड़ती है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। मैं तुम्हें दिखाई पड़ता हूं, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारा पड़ोसी दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। कुछ आंख पर परदा है। उस परदे को हटाने की बात है, परमात्मा को खोजने की बात नहीं। कोई बड़ा सूक्ष्म परदा होगा, क्योंकि आंख तुम्हारी खुली मालूम पड़ती है। लेकिन कोई धीमी धुंध होगी। कोई सपने की तरह तुम्हारी आंखों को घेरे हुए है।

रूस में उन्होंने पिछले कुछ दस वर्षों में एक प्रयोग किया है। उन्होंने विद्युत से निद्रा पैदा करने के प्रयोग किए हैं। बड़े कीमती यंत्र उन्होंने बनाए हैं। आधा घंटे तक विद्युत की लहरें मस्तिष्क के भीतर चलाई जाती हैं। जिनको नींद नहीं आती, कठिन से कठिन मरीज को भी अनिद्रा के, आधा घंटे के बाद बड़ी गहन नींद आती है। नींद इतनी गहन होती है आठ घंटों के लिए कि सपने का एक टुकड़ा भी नहीं होता उस नींद में। वह साधारण नींद से बहुत गहरी होती है। क्योंकि साधारण नींद में तो रात में कम से कम आठ सपने आते ही हैं, आठ बार सपने चलते हैं। खाली, बिना सपने के नींद तो बहुत थोड़ी सी होती है। अगर कुल मिला-जुला लें तो घंटे डेढ़ घंटे से ज्यादा नहीं आठ घंटे में। बाकी समय सपने चलते होते हैं। वह आठ घंटे की पूरी गहरी नींद होती है। लेकिन एक बड़ी अनूठी बात पता चली। जो मरीज अनिद्रा का--उस तरह की चिकित्सा दी जाती है, आठ-दस दिन के बाद एक नई घटना घटती है, वह खुली आंख सपना देखने लगता है। चलता है और सपना देखने लगता है। रास्ते पर धुंधलका हो जाता है। आंख खुली है, सामने से बस जाती भी दिखाई पड़ रही है, और बीच में सपना खड़ा है।
तब वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे कि सपना भी एक गहरी जरूरत है शरीर की। वह यंत्र की नींद की वजह से सपना रात में आ नहीं पाया। और सपना भी जरूरत है। उसके बिना भी आदमी पागल हो जाएगा। वह भी होना चाहिए। वह तुम्हारे पागलपन का निकास है, सेफ्टी वाल्व है।
जैसे कि रेल के इंजन में भी ज्यादा भाप हो जाए तो निकालने के लिए वाल्व लगा होता है। जैसे ही भाप ज्यादा हुई, वाल्व से भाप बाहर फिंकने लगती है। जैसे कुकर पर वाल्व लगा होता है। भाप ज्यादा हो जाए तो वाल्व फिंक जाता है, भाप बाहर निकल जाती है।
आदमी के भीतर इतनी बेचैनी है कि सपने से उसकी भाप निकलती है। अगर वह न निकल पाए तो आदमी पागल हो जाएगा। तुम सोचते होओगे कि सपने देखने के कारण तुम पागल हो। तुम गलती में हो। सपना ही तुम्हें बचा रहा है, नहीं तो तुम कभी के पागल हो जाते। क्योंकि सपने में तुम्हारा सब पागलपन निकल जाता है। हत्या करनी है, मार डालना है, पहाड़ों पर चढ़ना है, आकाश में उड़ना है, जो भी तुम्हें पागलपन करना है, तुम सब सपने में कर लेते हो और राहत मिल जाती है। सिर्फ बुद्धपुरुषों को स्वप्न नहीं होते, क्योंकि पागलपन ही नहीं बचा, अब सपने की कोई जरूरत नहीं है।
ये जो रूस में प्रयोग हुए, वैज्ञानिकों ने किए, वे बड़े हैरान हुए इस नतीजे को देख कर। बड़ा खतरनाक था प्रयोग। यह बंद करना पड़ा प्रयोग। क्योंकि नींद न आए, यह इतना खतरनाक न था। लेकिन राह चलते वक्त सपना आने लगे, या दुकान पर काम करते वक्त सपना आने लगे, या तुम गाड़ी चला रहे हो, कार चला रहे हो और सपना आने लगे, तो बड़ी खतरे की बात है। और उस सपने को रोका नहीं जा सकता। वह खुली आंख में भी आ जाता है। तो यहां यथार्थ भी होता है बाहर, बीच में सपने की एक दीवाल खड़ी हो जाती है।
अहंकार सपने की एक दीवाल है। दिखाई नहीं पड़ती, पारदर्शी है, जैसे कांच
की हो, शुद्ध कांच की हो। दिखाई नहीं पड़ता, आर-पार दिखाई पड़ता है, लेकिन पूरे वक्त आंखों पर पड़ी है। तुम जब भी कुछ देखते हो, तुम्हारा मैं भीतर खड़े होकर देखता है। तुम एक फूल को देखते हो, मैं बीच में आ गया। तुम्हारा मन, तुम्हारे विचार बीच में आ गए। फूल और तुम्हारे बीच फासला हो गया।
फूल को तो तुम वस्तुतः उसी दिन देख पाओगे, जिस दिन तुम्हारे और फूल के बीच कोई विचार की धारा न होगी, कोई मैं का भाव ही न होगा। तुम होओगे, लेकिन मैं बिल्कुल न होगा। एक शून्य, एक शांत गहरी झील, जिस पर एक लहर भी नहीं उठती। एक निराकार आकाश! उस क्षण फूल में तुम्हें ब्रह्म दिखाई पड़ जाएगा। ब्रह्म तो गहराई है यथार्थ की। तुम जितने शांत होते जाओगे उतनी गहराई की प्रतीति होने लगेगी।
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाई।
इसलिए दादू कहते हैं कि तू छिपा है, ऐसा हम कहते नहीं। मैंने ही तुझे छिपाया है। मैं ही अपने आगे खड़ा हो गया हूं और अब रोता हूं, चिल्लाता हूं कि तेरे दर्शन नहीं होते। आंख बंद किए हूं और रोता हूं, चिल्लाता हूं कि तू

दिखाई नहीं पड़ता। प्रमाण पूछता हूं लोगों से कि परमात्मा है तो उसका प्रमाण क्या?
प्रमाण कुछ भी नहीं हो सकता। जब तक आंख पर मैं का परदा पड़ा हो, कोई प्रमाण सिद्ध नहीं कर सकता कि परमात्मा है। क्योंकि परमात्मा तो केवल अनुभव से ही सिद्ध हो सकता है। यह तो ऐसा ही है, जैसे बुखार के बाद तुम्हारा स्वाद खो जाता है। तुमने कभी ख्याल किया कि बुखार के बाद कुछ भी भोजन करो, बेस्वाद मालूम पड़ता है। तुम्हारी जीभ पर और भोजन के बीच एक परदा है। एक पतली सतह जम गई बुखार की, बीमारी की। तुम्हारे जीभ के संवेदन-अणु थक गए हैं, उदास पड़े हैं, कोई उत्साह नहीं है। तुम भोजन को लील भी जाते हो, पर स्वाद नहीं आता।
जैसे भोजन में स्वाद है, ऐसा सब में छिपा परमात्मा है। लेकिन स्वाद की क्षमता तो चाहिए। तुम जब स्वस्थ हो जाते हो, स्वाद की क्षमता लौट आती है। तब साधारण सी रूखी-सूखी रोटी में भी बहुत स्वाद आता है। नहीं तो अत्यंत बहुमूल्य मिष्ठान्न भी कचरे की तरह तुम भीतर डाल ले सकते हो, लेकिन स्वाद न आएगा।
तुम्हारा भीतरी स्वास्थ्य ही स्वाद की संभावना को पैदा करता है। तुम
जब भीतर से लयबद्ध होते हो तब तुम्हें बाहर का संगीत सुनाई पड़ता है। तुम्हारी जितनी लयबद्धता बढ़ती जाती है, उतने ही तुम गहरे अस्तित्व में उतरने लगते हो। पत्ती-पत्ती में अनंत सागर है जीवन का। पत्थर-पत्थर में अनंत सागर है जीवन का।
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाई।
यह धार्मिक व्यक्ति की भावदशा है। वह यह नहीं कहता कि तू छिपा है। तुमने सुना होगा पंडितों को समझाते कि परमात्मा अदृश्य है। इससे झूठी कोई बात नहीं हो सकती। परमात्मा और अदृश्य! तो फिर दृश्य क्या होगा? परमात्मा दृश्य है। वस्तुतः परमात्मा ही दृश्य है। सभी दृश्य परमात्मा के हैं। वही दिखाई पड़ रहा है अनेक-अनेक रूपों में। उसे अदृश्य मत कहो; वहीं भूल हो जाती है। इतना ही कहो कि मेरी आंख पर परदा है।
दादू वह भूल नहीं करते। बेपढ़े-लिखे आदमी हैं, शास्त्रों का कुछ पता नहीं है, लेकिन जीवन की गति पकड़ ली, जीवन की कुंजी हाथ में आ गई।
मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाई।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाई।।
बस इतनी सी बात है कि यह मेरा होना चला जाए, कि तू प्रकट ही है। तेरे ऊपर मैं एक परदा हूं; और तेरे ऊपर कोई परदा नहीं है।
दादू आप छिपाइए, जहां न देखै कोई।
इस मैं को ऐसी जगह छिपा दो, जहां कोई भी न देख सके। यह तो प्रतीकात्मक बात है। दादू यह कह रहे हैं, इस मैं को मिटा दो। क्योंकि कहीं भी छिपाओगे, कोई न कोई देख ही लेगा।
एक सूफी कहानी है। दो युवक एक गुरु के पास आए। वे दीक्षित होना चाहते थे। उस सूफी फकीर ने कहा, दीक्षा तो बाद में दूंगा, पहले तुम्हारी परीक्षा होगी। ये दो कबूतर हैं, ये तुम ले जाओ। एक-एक कबूतर दोनों को दे दिया और कहा, ऐसी जगह जाकर मार डालना कबूतर को, जहां कोई देखने वाला न हो।
पहला युवक गया। मिनट भी नहीं लगे होंगे कि वापस लौट आया मार कर कबूतर को। गुरु ने पूछा, मार लाए? ऐसी जगह इतनी जल्दी खोज ली, जहां कोई न देखे? उसने कहा, बगल की गली में ही कोई नहीं था। गया, मारा, आ गया।
दूसरा युवक महीनों तक न लौटा। साल पूरा होने लगा, तब वह आया--बदहवास, थका-हारा, लेकिन एक नई ज्योति उसकी आंखों में। सूख कर कांटा हो गया था, लेकिन कुछ घटा था। गुरु ने उसकी आंख में जलते दीयों को देख कर ही पहचान लिया। कबूतर अब भी जिंदा था। उसने कहा, अरे! साल भर बाद लौटे और कबूतर को मार कर न आए?
उसने कहा, ऐसी कोई जगह ही न खोज सका। बहुत खोजी। भीड़-बाजार से दूर हट गया, एकांत जंगल में गया। वहां भी देखा कि पक्षी हैं, और पक्षी देख रहे हैं। एक अंधेरी गुफा में गया, गहन अंधकार था, कोई भी न देखता था। जैसे ही मैंने उसकी गर्दन पर हाथ रखा, मुझे याद आया कि मैं तो देख ही रहा हूं! फिर मैंने ऐसा उपाय किया कि अपने दोनों हाथ पीछे करके अपनी पीठ की तरफ मारना

चाहा कि वहां तो मैं नहीं देख रहा। तब मुझे ख्याल आया, कम से कम कबूतर तो देख ही रहा है! फिर मुश्किल हो गया। सब उपाय करके आ गया हूं। यह आपने बात ही ऐसी कठिन बता दी--जहां कोई न देखे! कबूतर तो कम से कम देखेगा ही। तब मैं हार गया। मैंने कहा कि अब मामला नहीं है। अपने को भी बचा लिया, सारी दुनिया से दूर हट गया, गहन अंधकार में उतर गया, गुफाएं खोज लीं, सब इंतजाम कर डाला, लेकिन अब इसका क्या इंतजाम करूंगा? यह कबूतर, टक-टक इसकी आंख देख रही है! और आपने कहा था, जहां कोई न देखे।
दादू का वही अर्थ हैः दादू आप छिपाइए, जहां न देखै कोई।
कहां छिपाओगे लेकिन? कम से कम तुम तो जानोगे ही, कहां छिपाया है। तुम
तो देखते ही रहोगे। कोई न देखे, कबूतर तो देखेगा। तुम तो देखोगे। तो दादू यह कह रहे हैं कि इसे तो छिपाने से काम न चलेगा। इसको तो मिटाना ही पड़ेगा, शून्य ही करना पड़ेगा।
दादू आप छिपाइए, जहां न देखै कोई।
पिव को देखि दिखाइए, त्यों-त्यों आनंद होई।।
और जैसे-जैसे तुम इसको छिपाने लगोगे, जहां कोई न देखे, जिस-जिस मात्रा में यह छिपने लगेगा, खोने लगेगा, मिटने लगेगा, इसके गवाह न रह जाएंगे, वैसे- वैसे प्यारा प्रकट होने लगेगा।
पिव को देखि दिखाइए...
फिर देखिए मजे से और दूसरों को भी दिखाइए मजे से। और--
... त्यों-त्यों आनंद होई।
और फिर आनंद बढ़ता जाता है।
इसको हम ऐसा समझेंः जिस मात्रा में तुम्हारा अहंकार, उस मात्रा में नरक, उस मात्रा में दुख। अगर तुम बहुत दुखी हो, तो ठीक से समझ लेना कि बहुत अहंकारी हो। क्योंकि और दूसरा कोई अर्थ नहीं होता। जिस-जिस मात्रा में तुम आनंदित, उतने तुम निरहंकारी। आनंद को सीधा घटाने-बढ़ाने का कोई उपाय नहीं। अहंकार की मात्रा घटाओ-बढ़ाओ। जिस मात्रा में अहंकार घटता है, आनंद बढ़ता है। क्योंकि वही ऊर्जा जो अहंकार में उलझी थी, मुक्त हो जाती है। जिस मात्रा में अहंकार बढ़ता है, उसी मात्रा में आनंद घटता है। क्योंकि वही ऊर्जा जो आनंद देती है, अहंकार में बंद होती चली जाती है। ये एक ही ऊर्जा के खेल हैं। इसलिए हमने ब्रह्म की परिभाषा में आनंद को रखा है-- सच्चिदानंद। आखिरी बात आनंद है ब्रह्म के जगत में। इसलिए आनंद को आखिर में कहा है--सत, चित, आनंद। उसके पार फिर कुछ भी नहीं।
और बड़े से बड़ा पाप है अहंकार; बड़े से बड़ा दुख और नर्क। वहां कोई आनंद
का फूल खिलता ही नहीं। दुख के ही कांटे लगते हैं। मरुस्थल! जहां कोई छोटा मरूद्यान भी नहीं मिलता, जहां थोड़ी देर विश्राम कर लें। धूप-ताप, आपाधापी, कष्ट, पीड़ा! सारे जीवन का सार ना-कुछ। राख हाथ में रह जाती है।
दादू कहते हैंः जहां न देखै कोई, दादू आप छिपाइए।
हम उलटा काम करते हैं, इसलिए दुखी हैं। हम इस दादू के सूत्र से ठीक उलटा चलते हैं। हमारी पूरी आकांक्षा एक ही होती है जीवन में कि सारे लोग हमें देख लें। आपे का पता चल जाए दुनिया भर को। हम इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि अहंकार के पास बड़ा पद हो, तो ऊंचे चढ़ कर खड़े हो जाएं। लाख देखते थे, दस लाख देख लें। और बड़ा पद हो, करोड़ देख लें, दस करोड़ देख लें। बहुत धन हो, तो लोग देख लें। नाम हो, प्रतिष्ठा हो, चरित्र हो, त्याग हो, लोग देख लें। लेकिन सबके पीछे एक ही ख्याल रहता है कि यह जो अहंकार है, यह सबकी स्वीकृति बन जाए, सारा संसार इसके लिए गवाह हो जाए। फिर हम नरक में पड़ते हैं, फिर हम रोते हैं। क्योंकि यही तो नरक को पैदा करने की व्यवस्था है।
दादू आप छिपाइए, जहां न देखै कोई।
पिव को देखि दिखाइए, त्यों-त्यों आनंद होई।।
और जैसे ही तुम इसे छिपाने में समर्थ हो जाओगे--छिपाने का अर्थ है मिटाने में; क्योंकि और तो छिपाना हो ही नहीं सकता--तुम्हारी भी वही दशा होगी जो दूसरे युवक की हुई। आखिर में तुम दादू के पास आकर कहोगे, खूब खेल किया! छिपाने से तो कुछ होता नहीं, मिटाना पड़ेगा। क्योंकि मैं भी देखता रहूं, एक भी इसका गवाह हो, तो भी यह टिमटिमाता रहता है, मिटता नहीं। जहां

इसके गवाह खो जाते हैं, वहीं इसकी ज्योति चुक गई। वहीं इसके तेल का अंत आ गया।
इसीलिए तो तुम अहंकार के दीये में तेल भरने की जो कोशिश करते हो, वह एक
ही है--ज्यादा लोग जान लें, तुम कौन हो--कितने महान हो, कितने ज्ञानी, कितने गुणवान हो, कितने चरित्रवान, कितने त्यागी हो, कितने धार्मिक हो।
मंदिर में भी आदमी प्रार्थना करता है, अगर कोई न हो तो धीरे-धीरे करता है, जल्दी करके चला आता है। अगर भीड़-भाड़ हो, लोग देख रहे हों, तो बड़ी देर तक भक्तिभाव करता है, जोर-जोर से करता है। क्योंकि भगवान से थोड़े ही कोई लेना- देना है! यह तो प्रार्थना, समाज में सम्मान पाने की एक विधि है। और सम्मान एक ऐसी खतरनाक बात है कि तुम कुछ भी करने को राजी हो जाते हो।
एंडरसन की एक कहानी है। एक सम्राट था, उसे सम्मान की बड़ी आकांक्षा थी।
वह बिल्कुल पागल था। राज्य बहुत बड़ा था, फिर भी बेचैनी अंत नहीं आती थी। और भी सीमाएं खाली थीं, जहां राज्य नहीं पहुंचा था। और भी राज्य थे। और वह बड़े जुलूस निकालता और बड़े मुकुट पहनता और बड़े साज-शृंगार से रहता, दिन में दस दफा वस्त्र बदलता, सब तरह के आयोजन करता था। उसने सिंहासन ऐसा बनवा लिया था जो जमीन को नहीं छूता था। उसमें यंत्र लगा रखे थे पीछे से, कि जैसे ही वह सिंहासन पर बैठता, सिंहासन ऊपर उठ जाता। उसकी बड़ी चर्चा थी सारी दुनिया में कि उसके बैठते ही सिंहासन ऊपर उठ जाता है। वह सिंहासन के कारण ऊपर नहीं है, सिंहासन उसके कारण ऊपर है। जब वर्ष के पहले दिन पर उसकी फौजों की परेड होती थी तो उसने ऐसा इंतजाम कर रखा था, सारे सम्राटों को निमंत्रण करता था, बुलाता था; और ऐसा इंतजाम कर रखा था--फौजें बहुत बड़ी न थीं, लेकिन इतनी बड़ी काफी थीं कि जो सामने से राजमहल का रास्ता जाता था, उस पर वे गुजरती रहतीं। और वे ही सैनिक लौट-लौट कर पीछे से सम्मिलित होते जाते। ऐसा बहुत से सम्राटों ने किया है। यह कहानी है, लेकिन यह सत्य भी है। रोमन सम्राट यह करते थे, हिटलर और स्टैलिन यह करते थे। वे जो रेड स्क्वायर के आपने चित्र देखे हों--बड़े सैनिक जा रहे हैं, बड़े तोपखाने जा रहे हैं, टैंक जा रहे हैं, वे सब पीछे से लौट आते हैं। जो देखने वाले हैं वे खड़े रहते हैं और यह चलता रहता है सिलसिला। अंत नहीं आता इसका। सांझ आ जाती है और रोकना पड़ता है बीच में; क्योंकि फौजें इतनी हैं, सामान इतना है। और यह खासकर विदेशी जो राजदूत खड़े हैं, उनको दिखाने के लिए। ताकि याद करवा दो अपने घर कि झंझट मत लेना; ताकत बहुत बड़ी है।
उस सम्राट के पास एक दिन एक चालबाज आदमी आया और उस चालबाज आदमी ने कहा, आपके पास वस्त्र तो अच्छे हैं, लेकिन दैवी वस्त्र नहीं हैं। ये साधारण वस्त्र हैं, सभी सम्राट पहनते हैं, आपके योग्य नहीं हैं। आप जैसा पुरुष कभी हुआ ही नहीं।
सम्राट ने कहा, तो रास्ता बता, देर न कर। दैवी वस्त्र कहां से मिलेंगे? कहां हैं दैवी वस्त्र?
मुझे जाना पड़ेगा स्वर्ग तक, लेकिन हो जाएगा। मेरा आना-जाना है, नाते- रिश्तेदारी है। रिश्वत का नाता है, संबंध है। सब नेतागण जो मर गए हैं भारत में, वे सब स्वर्गीय हो गए हैं। वे ही सब वहां हैं। लेन-देन चल जाएगा, तुम बिल्कुल फिक्र मत करो।
सम्राट ने कहा, कितना खर्च होगा?
उसने कहा, करोड़ों का खर्च। खर्च की तो बात ही मत करना। क्योंकि यह मामला कोई सस्ता नहीं है। पहली दफा स्वर्ग के वस्त्र पृथ्वी पर आएंगे। उसने कहा, कोई फिक्र न कर। जितना लेना हो ले। लेकिन देख, धोखा देने की कोशिश मत करना!
उसने कहा, कोई जरूरत ही नहीं। मैं महल के बाहर भी न जाऊंगा। मैं तो यहीं ध्यान लगाऊंगा। एक कमरा मुझे दे दिया जाए। क्योंकि वहां जाने के लिए कोई इस शरीर से थोड़े ही जाना पड़ता है। सूक्ष्म देह! यह तो आंख बंद करके मैं यहीं बैठा रहूंगा। तुमको समझ में भी नहीं आएगा कि यह गई सूक्ष्म देह! सम्राट ने कहा, बिल्कुल कर।
करोड़ों रुपये उसको दिए गए। छह महीने का उसने वक्त मांगा। छह महीने बाद वह एक बड़ी सुंदर काष्ठ की पेटी लेकर आ गया सम्राट के दरबार में। कई करोड़ रुपये उसने इस बीच राज्य से लिए। सम्राट कभी-कभी संदेह से भी भरता था,

लेकिन संदेह का कोई कारण न था। क्योंकि वह आदमी तो महल में है। भाग सकता नहीं; चारों तरफ पहरा है। धोखा दे नहीं सकता। लेकिन सम्राट को पता ही नहीं था।
वह आया और उसने आकर सम्राट के पास कहा कि वस्त्र आ गए, लेकिन कान में
एक बात कहनी है। देवताओं ने कही है, आपको बता देनी जरूरी है। कान में उसने कहा कि ये वस्त्र साधारण वस्त्र नहीं हैं, पृथ्वी के नहीं हैं। ये सूक्ष्म अदृश्य वस्त्र हैं। ये दिखाई नहीं पड़ते। ये तो सिर्फ उसी को दिखाई पड़ते हैं, जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो। जो भी संदिग्ध है, उसको तो ये दिखाई पड़ेंगे नहीं।
सम्राट ने कहा कि ठीक है। थोड़ा बेचैन तो हुआ।
उसने कहा, आप एक-एक वस्त्र मुझे देते जाएं। पगड़ी ले ली, अंदर हाथ डाला। असली पगड़ी तो अंदर डाल दी, क्योंकि वह भी सब कीमती सामान था, वह भी वह छोड़ नहीं जाना चाहता था। अंदर से ऐसा सम्हाल कर हाथ बाहर निकाला, जैसे पगड़ी ला रहा हो। सम्राट के सिर पर रख दी। उसमें कुछ भी न था हाथ में। सम्राट को दिखाई भी न पड़ी पगड़ी, सिर पर भी बोझ न मालूम पड़ा, लेकिन अगर सम्राट कहे कि दिखाई नहीं पड़ती, तो खुद तो गए, बाप तक की प्रतिष्ठा गई। और दरबारियों को भी उसने कह दिया कि देखो भाई, यह इसका नियम है। यह सिर्फ थोड़े लोगों को दिखाई पड़ेगी, जो अपने ही बाप से पैदा हुए हों। सबको दिखाई नहीं पड़ेगी। जिसको न दिखाई पड़े वह हाथ ऊपर कर ले।
कौन हाथ ऊपर करे? लोग आगे-आगे बढ़-बढ़ कर प्रशंसा करने लगे कि ऐसी पगड़ी
तो कभी देखी नहीं! अनूठी है! इंद्रधनुष खिंचे हैं पगड़ी पर!
ऐसे एक-एक वस्त्र सम्राट का ले लिया। सम्राट नंगा खड़ा है अब। सारे दरबारी देख रहे हैं कि नंगा है। सम्राट भी देख रहा है कि नंगा है! लेकिन कोई कह नहीं सकता। सब वस्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं।
उसने कहा, अब जुलूस निकले। राजधानी में करोड़ों लोग इकट्ठे हैं। यह घटना कभी घटी नहीं; ऐतिहासिक है। फिर कभी घटेगी भी नहीं।
सम्राट डरने भी लगा। एक दफा मन भी हुआ कि कह दे कि यह क्या पंचायत है! क्या बेवकूफी है! मगर इसमें बड़ी खतरे की बात है। और सब को दिखाई पड़ रहा है। इसलिए अब यह भी शक होने लगा कि हो सकता है मुझको ही न दिखाई पड़ रहा हो। और प्रत्येक को यही शक हो रहा है कि मुझको ही न दिखाई पड़ रहा हो। बाकी सब इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, दिख ही रहा होगा। और लोग और ज्यादा-ज्यादा प्रशंसा कर रहे हैं। क्योंकि ऐसा किसी को शक न हो जाए कि तुम चुप क्यों खड़े हो? कुछ बोले नहीं! कुछ खतरा है? दिखाई नहीं पड़ रहा?
जुलूस निकला। गांव भर में उसने डुंडी पीट दी। सम्राट नंगा खड़ा है रथ
पर और लोग वस्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं।
कहते हैं, सिर्फ एक छोटे बच्चे ने, जिसको बाप अपने कंधे पर बिठा कर ले आया था, उसने अपने बाप से कहा कि पिताजी, राजा नंगा है। उसने कहा, चुप नासमझ! उम्र जब तेरी बड़ी हो जाएगी, तुझको भी वस्त्र दिखाई पड़ेंगे। ये अनुभव से दिखाई पड़ते हैं। और दुबारा ऐसी बात मुंह से मत निकालना। सिर्फ एक छोटे बच्चे ने सत्य कहा था, वह भी दबा दिया गया था। उससे भी कहा गया था कि तेरी भी जब उम्र बड़ी हो जाएगी, तू समझदार हो जाएगा, तब तुझे भी वस्त्र दिखाई पड़ेंगे। ये वस्त्र अनुभव से दिखाई पड़ते हैं।
अहंकार बिल्कुल झूठे वस्त्र हैं। तुम कितना ही अपने को सजा कर खड़े हो जाओ, अहंकार में तुम नग्न खड़े हो। लेकिन दूसरे भी तुम्हारा सहारा दे रहे हैं, क्योंकि वे तुमसे भी सहारा मांगते हैं। पत्नी पति को कहती है, तुम महाशक्तिशाली हो। तुम जैसा कोई पुरुष संसार में नहीं। पति पत्नी से कहता है, तू महासुंदरी है। तुझ जैसी कोई स्त्री संसार में नहीं। ऐसा एक-दूसरे के वस्त्र जो नहीं हैं, उनकी हम प्रशंसा करते हैं। क्योंकि अगर मैं चाहता हूं कि तुम मेरी प्रशंसा करो, तो मुझे तुम्हारी प्रशंसा करनी पड़ेगी। एक ही उपाय है, अगर मैं चाहता हूं कि तुम मेरे अहंकार को सजाओ, तो मुझे तुम्हारे अहंकार को सजाना पड़ेगा। यह एक पारस्परिक लेन-देन है। और इस अहंकार के कारण ही, जो है वह दिखाई नहीं पड़ता और जो नहीं है वह दिखाई पड़ रहा है।

अहंकार नहीं है, झूठे वस्त्र हैं एंडरसन की कहानी के, पर दिखाई पड़ रहे हैं। और परमात्मा है, लेकिन नहीं दिखाई पड़ रहा है। जिनकी आंखें, जो नहीं है उससे भर गईं, उन्हें वह नहीं दिखाई पड़ेगा जो है।
दादू आप छिपाइए, जहां न देखै कोई।
पिव को देखि दिखाइए, त्यों-त्यों आनंद होई।।
दादू साईं कारण मांस का, लोहू पानी होई।
उस परमात्मा को पाने जो चलता है, उस महासंपदा को पाने जो चलता है, ये
सब छोटे कंकड़-पत्थर सब छूट जाते हैं। मांस का खून पानी हो जाता है।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोई।।
अस्थियों में छिपी मज्जा सूख जाती है, तो ही उस परमात्मा का मिलन होता है।
दूभर है मार्ग। कठिन है यात्रा। संतों ने कहाः खड्ग की धार। क्योंकि जैसे ही तुम रूपांतरित होना शुरू करोगे, तुम कठिनाई में पड़ोगे। समाज तो तुम्हारे साथ नहीं बदलेगा। तुम अकेले पड़ जाओगे, तुम अजनबी हो जाओगे। अपनों के बीच पराए। लोग तुम पर संदेह करने लगेंगे। तुम सच्चे हो रहे हो, तुम इन्हें गलत होते हुए मालूम पड़ोगे; क्योंकि भीड़ गलत है। तुम्हारे जीवन में आनंद आ रहा है, लेकिन वे समझेंगे कि तुम पागल हो रहे हो। तुम्हारे जीवन में रोशनी आ रही है, लेकिन वे समझेंगे कि तुम सम्मोहित हो गए हो। तुम्हारे जीवन में शांति उतर रही है, लेकिन वे हंसेंगे। क्योंकि हंसी के द्वारा ही वे अपनी आत्मरक्षा कर सकते हैं। वे तुम्हारा व्यंग्य करेंगे, क्योंकि व्यंग्य ही उनकी सुरक्षा है। यद्यपि भीड़ उनकी है, बहुमत उनका है। इसलिए वे जो भी कहेंगे, उसके पीछे भीड़ का बल होगा। तुम अकेले पड़ जाओगे।
इस संसार में अकेले पड़ जाना बड़ा कठिन काम है। एकाकी है यात्रा। रवींद्रनाथ ने गाया हैः एकला चलो रे। क्योंकि इस रास्ते पर दो तो चल ही नहीं सकते। अकेले चलना होगा--असुरक्षित, असहाय।
लेकिन ध्यान रखना, एक बार तुमने हिम्मत कर ली इस भीड़ की नासमझी के बाहर होने की कि परमात्मा का बल तुम्हारे साथ है। यह बल भी कोई बल है! यह धोखा है बल का। इसके लिए तो तुम निर्बल ही हो जाओ तो अच्छा। क्योंकि संत कहते हैंः निर्बल के बल राम। इधर जो निर्बल हुआ, वहां परमात्मा का बल मिल जाता है।
आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
चौथा प्रवचन

मृत्यु श्रेष्ठतम है

पहला प्रश्नः कृष्ण पूर्णावतार कहे जाते हैं, पर सभी सयाने उनके प्रति एकमत क्यों नहीं हैं?

सयाने तो सभी एकमत हैं; सयानों के पीछे चलने वाले अनुयायी एकमत नहीं हैं। सयानों में तो कोई भेद नहीं है। अगर भेद हो तो वे सयाने ही नहीं हैं। लेकिन पीछे चलने वाले अनुयायी में बड़ा भेद पैदा हो जाता है। अनुयायी बिना भेद के जी ही नहीं सकता। अनुयायी को अपने गुरु को पकड़ने के लिए भी किसी का विरोध चाहिए।
इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।
तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो, यह तो एक बात हुई। और तुम किसी व्यक्ति को घृणा करते हो, कोई तुम्हारा दुश्मन है, तो दुश्मन का जो दुश्मन है उससे भी तुम प्रेम जतलाते हो; यह बड़ी दूसरी बात हुई। किसी से प्रेम होना एक बात है, दुश्मन के दुश्मन से प्रेम दिखलाना बिल्कुल दूसरी बात है। पहली बात तो धर्म की है, दूसरी राजनीति की है। राजनीति का सूत्र ही यह है कि दुश्मन का दुश्मन अपना मित्र। उससे कोई मैत्री नहीं है, उससे कुल इतना ही संबंध है कि वह दुश्मन का दुश्मन है।
अगर तुम अपने गुरु को प्रेम करते हो, तब तो तुम्हें किसी और गुरु से तुलना करने का कोई सवाल नहीं। लेकिन तुम्हारे जीवन में प्रेम कम महत्वपूर्ण है, घृणा ज्यादा महत्वपूर्ण है। वस्तुतः तुम अपने गुरु को प्रेम कम करते हो, किसी और के गुरु को घृणा ज्यादा करते हो। उस घृणा के विपरीत ही तुम इस व्यक्ति के प्रेम में पड़ते हो। तुमने महावीर को नहीं चाहा है; तुमने कृष्ण को न चाहा होगा, इसलिए तुम महावीर को पकड़े हो; क्योंकि यह दृष्टि विपरीत मालूम होती है। तुमने कृष्ण को भी नहीं चाहा है; तुमने बुद्ध को न चाहा होगा, इसलिए तुम कृष्ण को पकड़े हो; क्योंकि बुद्ध की दृष्टि से कृष्ण विपरीत जाते मालूम पड़ते हैं।
तुम्हारे जीवन की धारा प्रेम से आंदोलित नहीं है, घृणा से आंदोलित है। इसीलिए जब भी तुम्हारे जीवन में घृणा को प्रकट करने का मौका होता है, तब तुम्हारे उत्साह की कमी नहीं होती। अगर कहीं कोई शुभ घटना घटती हो, तो तुम ध्यान ही नहीं देते। कहीं कोई अशुभ घटना घटती हो, तो तुम भीड़ बांध कर वहां खड़े हो जाते हो।
तुम अस्पताल जा रहे हो, पत्नी बीमार पड़ी है, बच्चा भूखा है, दवा लानी है, भोजन कमाना है, लेकिन अगर रास्ते पर दो लोग लड़ रहे हों, तो फिर तुम्हारे पैर नहीं बढ़ते। तुम खड़े होकर देख ही लेना चाहोगे। और अगर ऐसा हो जाए कि शोरगुल तो बहुत मचे, लड़ाई-झगड़ा हो न, गाली-गलौज बहुत हो और लोग बीच-बचाव कर दें, या लोग अलग हटा दें, तो तुम बड़े उदास मन से आगे बढ़ते हो कि कुछ हुआ ही नहीं। मन में बात छूट जाती है, जैसे कुछ होना था--छुरा चलता, खून बहता, तो जीवन में थोड़ी गति आ जाती।
युद्ध के समय इसलिए लोग बहुत ज्यादा ताजे, निखरे मालूम पड़ते हैं। जो कभी ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठते, वे भी ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर अखबार खोजते हैं। जिनके जीवन में कुछ भी नहीं है, वे भी कहीं लाखों लोग मर रहे हैं, मारे जा रहे हैं, इससे आंदोलित हो जाते हैं। हर दस वर्षों में, मनस्विद कहते हैं, पृथ्वी पर एक बड़े युद्ध की जरूरत पड़ जाती है। क्योंकि लोग घृणा से जीते हैं। और अगर घृणा के निकलने का उपाय न हो तो लोगों के जीवन से रस खो जाएगा।
अखबार तुम पढ़ते हो, तुमने कभी ख्याल किया, हत्या हो, चोरी हो, किसी की स्त्री भगाई गई हो, कहीं दंगा हो जाए, कहीं दुर्घटना हो जाए--तत्क्षण तुम्हारी रीढ़ झुक जाती है, पढ़ने में आंखें एकाग्र हो जाती हैं। रामनाम पर इतनी एकाग्र नहीं होतीं, जैसे अखबार में हुई दुर्घटना पर। कुछ भी गलत पर मन अटक जाता है।

अखबार में खबर इकट्ठी करने वाले लोग शुभ खबरों को इकट्ठा नहीं करते। क्योंकि उन्हें कौन पढ़ेगा? उनका कोई मूल्य ही नहीं है। अगर कहीं किसी ने किसी गिरते आदमी को सहारा दिया हो, इसको कौन पढ़ेगा? इसमें मतलब भी क्या है? इसमें रस किसको है? किसी ने किसी बीमार के पैर दबाए हों, यह कोई खबर है! इसमें कोई उत्तेजना नहीं है। यह बात फीकी लगती है। अगर कभी आ भी जाए तो किसी कोने में कोई छोटा सा स्थान घेरती है। धर्म के लिए तो अखबार में कोई जगह ही नहीं रह गई है; केवल अधर्म के लिए जगह है। राजनीतिज्ञ होते हैं प्रथम पृष्ठों पर बड़ी सुर्खियों में। क्योंकि उनके आस-पास सब तरह का उपद्रव है। उनके आस-पास सब तरह का गलत चल रहा है।
गलत पर हमारी दृष्टि है, घृणा में हमारा रस है। मित्र में हमें बहुत रुझान नहीं है, शत्रु में है। यह जीवन की बड़ी उलटी दिशा है; जैसे गंगा गंगोत्री की तरफ बहती हो, सागर की तरफ नहीं।
निश्चित ही तुम बहुत दुख पाते हो, बहुत पीड़ा पाते हो इसके कारण। लेकिन यही तुम्हारा ढंग है। तुम कभी मंदिर न जाओगे, लेकिन अगर मस्जिद जलाने का मौका आ जाए तो तुम मस्जिद जलाने जरूर चले जाओगे। तुम कभी मस्जिद प्रार्थना करने न गए होओ, लेकिन अगर कोई कह दे इस्लाम खतरे में है और हिंदुओं की मूर्ति तोड़नी है, तो तुम्हारे जीवन में बड़ा उत्साह आ जाएगा। मस्जिद जलाने जो गए हैं, तुमने कभी उनको मंदिर में पूजा करते देखा? तुम और ही लोगों को पाओगे मंदिर में पूजा करते। और जो मंदिर में पूजा कर रहा है, वह मस्जिद जलाने जाएगा? अगर उसने पूजा की है तो मस्जिद भी मंदिर हो गया। जिसने मस्जिद में नमाज पढ़ी है, उसके लिए सारा जगत परमात्मा का घर हो गया। अब वह मंदिर की मूर्ति तोड़ने जाएगा? क्योंकि तुम किसी को भी तोड़ो, परमात्मा को ही तोड़ोगे। और तुम कुछ भी करो, परमात्मा के साथ ही करोगे। लेकिन एक दूसरा आदमी तुम्हें मिलेगा; वह तभी जगता है जब इस्लाम खतरे में होता है। अन्यथा वह सोया रहता है। वह तभी जगता है जब हिंदू धर्म खतरे में होने की आवाज मच जाती है। जब भी खतरा होता है तब उसे रस आता है, क्योंकि अब उपद्रव किया जा सकता है।
तुम्हारे रस बड़े रुग्ण हैं। तुम जब कहते हो, मैं कृष्ण के पक्ष में हूं, तो तुम जरा गौर से सोचनाः तुम कृष्ण के पक्ष में हो? क्योंकि पक्ष में होते तो तुम कृष्णमय हो जाते। तुम रूपांतरित हो गए होते। तुम महावीर के विपक्ष में होओगे, बुद्ध के विपक्ष में होओगे, मोहम्मद के विपक्ष में होओगे। क्योंकि इन सबके विपक्ष में होने के लिए किसी के पक्ष में होना जरूरी है, इसलिए तुम कृष्ण के पक्ष में हो! तुम्हारा पक्ष तुम्हारे प्रेम से नहीं आता, तुम्हारे घृणा के जहर से आता है।
इसलिए तो दुनिया में इतने धार्मिक लोग दिखाई पड़ते हैं और धर्म बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। आदमी ही खोजना मुश्किल है जो धार्मिक न हो। सभी आदमी धार्मिक हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है। पर धार्मिक कहां है? धार्मिक होना तो एक महाक्रांति है। वह तो जीवन का आमूल रूपांतरण है। वह तो जड़ों से स्वयं को बदल डालना है।
तो मैं तुमसे कहता हूं, सयाने तो सभी एकमत हैं। महावीर कृष्ण के विरोध में नहीं हैं, कृष्ण महावीर के विरोध में नहीं हैं। और अगर कभी तुम्हें ऐसा भी लगता हो कि वे विरोध में मालूम पड़ते हैं, तो पहले तो तुम अपनी बुद्धि को समझने की कोशिश करना। क्योंकि जितना ज्ञान का शिखर ऊपर उठता है, उतनी ही वाणी और शब्दों के अर्थ रूपांतरित हो जाते हैं। शब्द का अर्थ वही होता है जो अर्थ तुम देते हो।
महावीर ने कहा है, आत्मा ही एकमात्र सत्य है। और बुद्ध ने कहा है, आत्मा से असत्य और कुछ भी नहीं। स्वभावतः विरोधी हैं। इसको देखने में आंख की भी जरूरत नहीं, अंधा भी पहचान लेगा; कि एक कहता है, आत्मा ही सत्य है, आत्मा को पा लेना ही सब कुछ है; और एक कहता है, आत्मा ही असत्य है, इससे मुक्त हो जाना ही मुक्ति है।
लेकिन अगर दोनों सयाने हैं, तो दोनों के शब्दों के अर्थ ठीक से समझने पड़ेंगे। महावीर जिसको आत्मा कहते हैं, बुद्ध उसको आत्मा कहते ही नहीं। बुद्ध हमेशा अहंकार को ही आत्मा कहते हैं, आपे के भाव को आत्मा कहते हैं।
आत्मा में वह भी अर्थ है। आत्मा का अर्थ हैः मैं, आत्मभाव, अत्ता। तो बुद्ध

ने जो शब्द प्रयोग किया है--आत्मा, वह अहंकार के लिए ही किया है। क्योंकि अहंकार के मिट जाने पर, बुद्ध कहते हैं, निर्वाण उपलब्ध होगा। तुम तो रहोगे, मैं भाव न रहेगा।
महावीर ने आत्मा का अर्थ अहंकार के अर्थों में नहीं किया। वह अर्थ भी आत्मा में है। महावीर ने अहंकार का अलग उपयोग किया है। महावीर भी कहते हैं, जब अहंकार मिट जाएगा तभी तुम आत्मा को उपलब्ध होओगे।
थोड़ा सा विश्लेषण करो। क्योंकि जब दो सयाने विपरीत बात कहते मालूम पड़ें, तो तुम जल्दी मत करना। कहीं न कहीं उनकी बातों के भीतर एक ही अर्थ छिपा ही होगा। शब्द होंगे अलग; लेकिन सयाने दो मत नहीं हो सकते।
और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सयाने एक-दूसरे के विरोध में भी खड़े होते हैं। और तब खेल बहुत गहरा है। उसको समझने के लिए बड़ी गहरी समझ चाहिए। मैंने सुना है, एक गांव में ऐसा हुआ कि दो हलवाइयों में झगड़ा हो गया। खानदानी हलवाई थे। कोई ऐसे आज के ही हलवाई न थे। जन्मों-जन्मों से सिर्फ मिठाई ही बनाई थी। झगड़ा भी हो गया तो भी पत्थर उठा कर फेंकने की तो आदत ही न थी, स्वभाव ही न था, वह तो खून में न थी बात; तो लड्डू उठा-उठा कर एक-दूसरे की तरफ फेंकने लगे--आमने-सामने दुकान थी। सारा गांव इकट्ठा हो गया। और गांव ने बहुत आनंद मनाया, क्योंकि लड्डू बीच में मिले, गिरे, लोगों ने लूटे। लोगों ने हलवाइयों से कहा कि तुम तो रोज ही लड़ो तो अच्छा। ऐसी लड़ाई तो कभी देखी नहीं। यह तो आनंद हो गया। यह तो दीवाली आ गई गांव में। सारा गांव इकट्ठा हो गया।
जब महावीर और बुद्ध में कोई विरोध भी होता है तो दो हलवाइयों की लड़ाई है। पत्थर तो वे फेंक नहीं सकते। अगर पत्थर तुम्हें दिखता हो तो तुम्हारी आंख की ही कोई भ्रांति है। वह तुम्हारी नासमझी होगी। वे लड्डू ही फेंक सकते हैं। मिठास उनका स्वभाव है। मिठास उनके खून में है, उनकी श्वास में है।
लेकिन हो सकता है तुम्हें समझ में न आए। तुम अपनी नासमझी को सयानों पर
मत थोपना। तुम सयानों को तभी पहचान पाओगे जब तुम भी सयाने हो जाओगे; और कोई उपाय नहीं है। इसलिए तुम फिक्र छोड़ दो कि सयाने एकमत हैं या नहीं। तुम सयाने हो जाओ; अचानक तुम्हें दिखाई पड़ेगा--वे सभी एकमत हैं।
सयाना होने का अर्थ है, शिखर पर पहुंच जाना। जो रास्ते पहाड़ के चारों तरफ से आते थे, अलग-अलग दिखाई पड़ते थे, वे शिखर पर आकर सब मिल गए हैं। नीचे पहाड़ के खड़े हुए, तलहटी में भटके हुए, अंधेरे में डूबे हुए लोगों को यह मानना असंभव है कि सभी रास्ते शिखर पर पहुंच जाएंगे। क्योंकि कोई रास्ता पूरब की तरफ जा रहा है, कोई पश्चिम की तरफ जा रहा है। दोनों विपरीत मालूम पड़ते हैं; ये एक ही जगह कैसे पहुंच जाएंगे? लेकिन शिखर एक है; सभी रास्ते एक ही जगह पहुंच जाएंगे।
रास्ते भिन्न हो सकते हैं, शब्द भिन्न हो सकते हैं, अभिव्यक्ति अलग-अलग हो सकती है--हो सकती है कहना ठीक नहीं, होगी ही। क्योंकि जब बुद्ध बोलेंगे तो अपने ढंग से बोलेंगे। महावीर बोलेंगे तो अपने ढंग से बोलेंगे। कठिनाई तो तब आती है जब तुम जल्दी से अर्थ कर लेते हो, यह बिना ही सोचे कि तुम्हारी दृष्टि का अभी इतना विस्तार नहीं, इतनी ऊंचाई नहीं, जहां कि विपरीत को तुम मिलता हुआ देख सको।
और तुम पर दया करके भी सयाने एक-दूसरे के विपरीत बोले हैं। और तो कोई कारण नहीं है। तुम पर दया करके भी, तुम्हारे प्रति महाकरुणा से भी एक-दूसरे के विपरीत बोले हैं; एक-दूसरे के विपरीत हैं नहीं। स्थिति ऐसी है कि अगर महावीर तुमसे कहें कि सभी ठीक हैं, जैसा कि महावीर ने कहा भी। इसलिए महावीर को बहुत अनुयायी न मिल सके। महावीर ने बड़ी चेष्टा की कि वे कुछ भी ऐसी बात न कहें जो गलत हो। तो महावीर से तुम पूछो, ईश्वर है? तो महावीर सात उत्तर देते हैं। क्योंकि सयानों ने सात उत्तर दिए हैं अब तक। उन्होंने सभी सयानों के उत्तर दोहराए, क्योंकि किसी सयाने से विरोध न हो जाए। अविरोध की भावना रखी। अहिंसा उनकी धारणा थी, दृष्टि थी, जीवन-दर्शन था। तो जो भी सयानों ने कहा है, सात से ज्यादा कहा नहीं जा सकता। क्योंकि एक वस्तु के संबंध में सात ही वक्तव्य हो सकते हैं; उससे ज्यादा वक्तव्य का उपाय नहीं है। अगर तुम महावीर से पूछो, ईश्वर है? तो महावीर कहते हैं, हैं। यह

एक वक्तव्य है। महावीर कहते हैं, यह पूरी बात नहीं है। क्योंकि ऐसे भी सयाने हैं, जो कहते हैं, नहीं है। यह भी एक वक्तव्य है। यह भी ईश्वर के संबंध में है। और ऐसे भी सयाने हैं, जो कहते हैं, है भी और नहीं भी है। यह भी ईश्वर के संबंध में है। और ऐसे भी सयाने हैं, जो कहते हैं, है भी नहीं, नहीं भी नहीं। यह भी ईश्वर के संबंध में है।
ऐसे सात वक्तव्य महावीर देते हैं। तो महावीर का तर्क सप्तभंगी कहलाता है। उन्होंने सारे सयानों के जितने वक्तव्य हो सकते हैं, वे सब संगृहीत कर दिए। और सात से ज्यादा नहीं हो सकते। क्योंकि उनमें सभी स्थितियां आ गईं-- होने की, न होने की, दोनों के जा.ेड़ की; दोनों के विरोध की; होने की--दोनों के जोड़ की; होने की--दोनों के तोड़ की; होने की--दोनों के न जोड़ की न तोड़ की। सात स्थितियां, सारा गणित आ गया।
लेकिन महावीर ज्यादा अनुयायी न पा सके। क्योंकि जो आदमी कहे सभी ठीक है, उससे तुम्हारे जीवन में धारणा नहीं बनती। तुम और बिगूचन में पड़ जाते हो। तुम्हारे जीवन में कोई स्पष्ट रूप खड़ा नहीं होता--कि हम मानें क्या? तुम मान्यता खोजने आए हो, धारणा खोजने आए हो। और यह आदमी कहता है, सब ठीक है। मैं जो कहता हूं वह भी ठीक है; मेरे विरोधी जो कहते हैं वह भी ठीक है। तो तुम्हारे सामने सवाल यह है कि तुम चुनो कैसे?
तुम चौराहे पर खड़े हो। तुम पूछते हो, कौन सा रास्ता नदी की तरफ जाता है? महावीर कहते हैं, जो बाएं तरफ जाता है वह भी जाता है, जो दाएं तरफ जाता है वह भी जाता है; जो उत्तर जाता है वह भी, दक्षिण जाता है वह भी; पूरब, पश्चिम, सब रास्ते उसी तरफ जाते हैं।
तुम इस आदमी की न सुनोगे। तुम कहोगे यह आदमी पागल है। तुम किसी आदमी
की तलाश में हो जो तुम्हें ठीक-ठीक बता दे कि कौन सा रास्ता नदी की तरफ जाता है। तुम्हें नदी पहुंचना है। यह आदमी होश में नहीं मालूम पड़ता। सभी रास्ते कहीं एक तरफ गए हैं!
हो सकता है नदी पहुंच कर तुम्हें भी पता चले कि वह आदमी पागल न था, ठीक था। लेकिन उसको मान कर तुम चलोगे कैसे? क्योंकि वह चारों रास्ते ठीक कह रहा है। वह तुम्हारे लिए चुनाव का मौका ही नहीं छोड़ रहा है।
तुम कोई आदमी चाहते हो जो तुमसे कहे कि बाएं का रास्ता नदी पहुंचता है; बाकी तीन से सावधान रहना! इस आदमी से तुम्हारे जीवन में कृत्य पैदा होता है। तुम कुछ कर सकते हो; कोई उपाय आता है। कहीं जाने की सुविधा बनती है, चुनाव की सुविधा बनती है। अब तुम सोच सकते हो कि जाना या नहीं जाना! तुम और दो-चार से पूछ सकते हो। लेकिन निर्णय के लिए कुछ आसार दिखाई पड़ने शुरू होते हैं। अंततः तुम भी यही पाओगे कि जिसे तुमने पागल की तरह पाया था वही आदमी सच था। सभी रास्ते जाते थे। लेकिन उस आदमी को मान कर चलना बहुत मुश्किल था। क्योंकि चार रास्तों पर चलोगे कैसे? मंजिल एक हो सकती है, चलने वाला एक है, रास्ते चार हैं, तुम्हें तो चुनना पड़ेगा।
इसलिए महावीर को बहुत अनुयायी नहीं मिले। आज भी भारत में जैनों की संख्या मुश्किल से तीस लाख है। तीस लाख भी कोई संख्या है पच्चीस सौ साल बाद? अगर तीस आदमियों ने भी महावीर की मानी होती तो इतने बच्चे पैदा कर देते वे। यह कोई संख्या नहीं है। तीस जोड़े तीस लाख आदमी पच्चीस सौ साल में पैदा कर देते।
जीसस के मानने वालों की संख्या एक अरब है। इस्लाम को मानने वालों, मोहम्मद के मानने वालों की संख्या अस्सी करोड़ के ऊपर है। कुछ कारण होगा। महावीर जैसा खुद जानते थे वैसा ही कहा। महावीर के भाव में अहिंसा तो है, करुणा नहीं है।
यह जरा मुश्किल होगा तुम्हें समझना; क्योंकि हम तो अहिंसा और करुणा
का एक ही अर्थ करते हैं। अहिंसा का अर्थ हैः भीतर तो अहिंसा का भाव है, स्वयं तो अहिंसा से भरे हैं, लेकिन दूसरे की तरफ विचार नहीं है--कि मैं जो कह रहा हूं वह बिल्कुल ठीक है, जहां तक मेरा संबंध है; लेकिन जो सुन रहा है, उसके जीवन में क्या होगा?
जैसे कृष्णमूर्ति हैं; वे ठीक महावीर जैसे व्यक्ति हैं। अहिंसा तो पूरी है, करुणा बिल्कुल नहीं है। वे कह रहे हैं जो ठीक है। जो उन्हें ठीक लगता है, वही कह रहे हैं। उसको रत्ती भर भी बदलते नहीं हैं। लेकिन सुनने

वाला जहां खड़ा है, उस पर क्या गुजर रही है, उसके क्या परिणाम होंगे, इसकी उन्हें चिंता नहीं है।
डाक्टर अपने ज्ञान की कम फिक्र करता है, मरीज की ज्यादा फिक्र करता है। वह यह देखता है कि मैं जो कहूंगा, उसका मरीज पर क्या परिणाम होगा। यह भी हो सकता है कि उसे दिखाई पड़ रहा हो कि यह मरीज दो दिन बाद मर जाएगा, यह दो दिन से ज्यादा टिक नहीं सकता। लेकिन वह मुस्कुराता है और कहता है, सब ठीक है और कल तुम उठ आओगे और चलने-फिरने लगोगे। जानता है कि दो दिन से ज्यादा बच नहीं सकता। लेकिन अगर वह सत्य ही सत्य कह दे कि तू दो दिन में मर जाएगा, तो यह अभी मर जाएगा। यह दो दिन भी नहीं बच सकता फिर। और अगर यह दो दिन बच गया, तो और भी संभावना है। और भी सहारा है, दो दिन का मौका है, इसमें चिकित्सा और की जा सकती है, कुछ और उपाय किए जा सकते हैं।
तो एक तो है शुद्ध ज्ञान का वक्तव्य और एक है प्रेम का वक्तव्य। जिन्होंने ज्ञान का वक्तव्य दिया, उन्होंने कहा, सभी ठीक है। जिन्होंने प्रेम का वक्तव्य दिया, उन्होंने कहा, यही ठीक है। क्योंकि तुम्हें चलना है। तो उन्होंने कहा, बाएं से जाओगे तो ही पहुंचोगे।
इसलिए जीसस ने बड़े प्रेम से यह कहा है कि जो मेरे साथ न होंगे, वे पहुंच न पाएंगे। यह बात किसी अहंकार से नहीं कही गई है। यह बात बड़े प्रेम से कही गई है कि जो मेरे साथ नहीं हैं, वे नहीं पहुंच पाएंगे। इसका यह मतलब नहीं है कि जो नहीं हैं वे नहीं पहुंचेंगे। इसका कुल मतलब इतना है कि तुम मेरे साथ हो लो। तुम साथ हो सको इसलिए जीसस कह रहे हैं कि जो मेरे साथ नहीं हैं, वे नहीं पहुंचेंगे। इससे तुम उनका हिसाब मत लगाना कि जो साथ नहीं हैं, उन सबका क्या होगा? तुम इससे सिर्फ इतनी ही चिंता करना कि मैं साथ हो लूं। तुम भयभीत, लोभातुर, अंधेरे में भटके हो। तुम्हें कोई हाथ का सहारा चाहिए, जो बड़ी सुदृढ़ता से कहे कि बचा लूंगा। अगर हाथ कहेः हो सकता है बच भी जाओ; हो सकता है न भी बचो; हो सकता है कोई दूसरा हाथ बचा ले; हो सकता है कोई तीसरा हाथ ठीक हो--ऐसी अगर संदेह की बातें करे बचाने वाला हाथ, तो वह जो डूब रहा है वह कहेगा, इससे अकेले ही डूब जाना बेहतर। और तुम्हारी झंझट कौन सिर पर ले! हम वैसे ही मुसीबत में हैं, उलझन में हैं, चित्त डांवाडोल है, तुम और हमें हिलाने आ गए।
महावीर का सिद्धांत कहलाता है स्यातवाद। महावीर जो भी वक्तव्य देते
थे उसमें स्यात लगा देते थेः स्यात ऐसा हो। इससे चलने वाले को गति नहीं मिलती। समझने वाले को समझ मिल सकती है, चलने वाले को गति नहीं मिलती। लेकिन समझने वाले तुम कहां हो? तुम्हें अभी चलना है, तब कहीं तुम समझ के मंदिर तक पहुंच सकोगे।
तो जीसस कहते हैं, जो मेरे साथ चलेगा! सुनिश्चित भाव से कहते हैं। ऐसा नहीं कि स्यात। तुम तो वैसे ही डगमगा रहे थे; और यह सुन कर कि स्यात मेरे साथ चलने से पहुंच जाओ, स्यात न भी पहुंचो। तो ऐसे मार्गदर्शक के साथ कोई भी होना न चाहेगा। सुदृढ़ आवाज चाहिए! ताकि तुम्हारे भीतर का कंपता हुआ भय शांत हो जाए; ताकि तुम्हारे कंपते हुए पैर थिर हो जाएं। पहुंच कर तो तुम भी पाओगे कि यह बात मजाक ही रही। पहुंच कर तो जीसस भी हंसेंगे और कहेंगे कि क्या करूं, मजबूरी थी! तुम्हारे लिए कहना पड़ा। तुम्हें बचाने का और कोई उपाय न था, इसलिए मुझे बचाने वाला बनना पड़ा। अन्यथा कौन किसको बचाता है? महावीर ने यही कहा हैः कौन किसको बचाता है? सब अपने से बचते हैं, अपने
से डूबते हैं।
सौ प्रतिशत सत्य है। यह सोना बिल्कुल चौबीस कैरेट है, लेकिन इसके गहने नहीं बन सकते। सोने को क्या करोगे, सिर पर ढोओगे? जीसस का सोना चाहे चौबीस कैरेट न हो, मोरारजी गोल्ड हो, तो भी गहने बन सकते हैं। तुम पर ध्यान हो तो गहने बनाने पड़ेंगे। स्वयं पर ध्यान हो तो शुद्ध सोने की बात कही जा सकती है।
तो महावीर ऐसे बोल रहे हैं जैसे शून्य में बोल रहे हों। वे तुमसे नहीं बोल रहे हैं, वे अपने से ही वार्तालाप कर रहे हैं। वह एकालाप है, मोनोलाग है। जीसस तुमसे बोल रहे हैं, मोहम्मद तुमसे बोल रहे हैं। महावीर अपने शिखर से बात कर रहे हैं। जीसस उतर कर खाई में आते हैं।

जीसस ने कहा है, गड़रिए की एक भेड़ खो जाए तो सभी भेड़ों को अंधेरी रात में छोड़ कर गड़रिया अपनी भेड़ खोजने पहाड़ों पर जाता है, अंधेरे में उतरता है। उन सबको छोड़ देता है जो साथ आ गई थीं। उसकी खोज में निकल जाता है जो भटक गई। और जब वह भेड़ भटकी हुई मिल जाती है, तो उसे कंधे पर रख कर लौटता है। ऐसा ही मैं हूं। मैं तुम्हारे अंधेरे में आऊंगा। तुम भटकी हुई भेड़ हो; मैं तुम्हें कंधे पर लाऊंगा।
महावीर ऐसी बात नहीं कह सकते। महावीर कहेंगे, यह क्या बकवास है! कौन किसको लाता है? तुम अपने कारण भटकते हो, अपने कारण आते हो। आत्मा ही कल्याण है और आत्मा ही बंधन है, आत्मा ही मोक्ष है।
बिल्कुल ठीक कहते हैं। सौ प्रतिशत सही कहते हैं। लेकिन वह जो भेड़ भटक
गई है, उसके हृदय को इससे क्या सहारा मिलेगा? जो भेड़ भटक गई है, उसके प्राणों को कैसे इससे ज्योति और आश्वासन मिलेगा?
इसलिए जीसस की बात अगर बहुत महत्वपूर्ण हो सकी तो तुम यह मत समझना कि
वह सिर्फ ईसाई मिशनरियों के कारण है। उसके पीछे कारण है। उसके कारण खुद जीसस हैं। वह वक्तव्य सुनिश्चित है। वह वक्तव्य स्यात का नहीं है। यद्यपि जिस दिन तुम पहुंच जाओगे, उस दिन जीसस के साथ बैठ कर तुम भी हंसोगे और जीसस भी हंसेंगे। वे कहेंगे, क्या करें, मजबूरी थी! तुम सुनते ही न, अगर इस ढंग से न कहा जाता। तुमने सुना ही इसलिए कि इस ढंग से कहा गया। सुन कर तुम पहुंचे; पहुंच कर तुम जान सकते हो अब कि वह बात ठीक न थी; कामचलाऊ थी; हाइपोथेटिकल, परिकल्पना मात्र थी। एक छोटे बच्चे को खिलौना दे दिया था। लेकिन उस खिलौने ने उसे राहत दी। राहत से वह शांत हुआ, शांत होने से समझ बढ़ी, समझ से यात्रा शुरू हुई।
तो कई बार तुम्हें वक्तव्य उनके विरोधी भी मालूम पड़ सकते हैं। वे उनकी करुणा से निकले होंगे। बुद्ध ने बहुत बार महावीर का विरोध किया है; महावीर ने नहीं किया। क्योंकि महावीर का वार्तालाप एकालाप है। वे दूसरे से बोल ही नहीं रहे हैं। वे अपनी शुद्धता से बोल रहे हैं। वह ऐसे है जैसे एकांत में कोयल कूकती हो। कोयल किसी सुनने वाले के लिए नहीं कूक रही है। कोयल कोई तानसेन नहीं है कि दर्शक, श्रोता की चिंता हो। एकांत में भी चलेगा। कोई सुन ले तो सुन ले; यह उसकी मौज। इसके लिए वही जाने। न सुने तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन बुद्ध का वक्तव्य एकांत में गूंजती कोयल जैसा नहीं है। बुद्ध का वक्तव्य तानसेन जैसा है। वह तुम्हारे लिए गाया गया है। वह विशेषतः तुम्हारे लिए तैयार किया गया है। तुम ध्यान में हो। क्योंकि बुद्ध कहते हैं, तुम्हारा ही ध्यान न हो, तो तुमसे बोलने का प्रयोजन ही क्या है?
एक बार ऐसा हुआ कि एक गांव में बुद्ध आए, वे बैठ गए, लोग इकट्ठे हो गए, सारा गांव इकट्ठा हो गया, फिर भी चुप हैं। तो किसी ने पूछा कि अब आप शुरू भी करिए। हम सब आ गए। फिर रात उतरी आती है, फिर अंधेरा हो जाएगा।
पर बुद्ध ने कहा, मैं जिसके लिए बोलने आया हूं, वह मौजूद नहीं।
लोगों ने चारों तरफ देखा। गांव के सभी पंडित मौजूद थे, धनी-मानी मौजूद थे, प्रतिष्ठावान मौजूद थे। कोई ऐसा दिखाई न पड़ता था जिसकी कि कोई गणना हो सके जो नहीं है।
उन्होंने कहा कि सब मौजूद हैं। आप किसकी बात कर रहे हैं? कौन मौजूद नहीं है?
बुद्ध ने कहा, मैं आता था रास्ते पर, एक जवान लड़की खेत की तरफ जाती थी। उसने मुझसे कहा कि देखो, रुकना। मैं आती हूं। और उसने इतने भाव से कहा है कि उसके अभाव में मैं न बोल सकूंगा। और ऐसा भाव यहां किसी की भी आंख में नहीं है। ये सब होंगे गणमान्य गांव के, ये सिर्फ आ गए हैं लोकोपचार से कि बुद्ध गांव आए हैं, सुनने जाना पड़ेगा कर्तव्यवश। सभी गणमान्य मौजूद होंगे, हम न मौजूद होंगे, प्रतिष्ठा को धक्का लगेगा। ये भीड़-भाड़ को दिखाने आ गए हैं। लेकिन उस युवती ने मुझसे कहा था, रुकना। वह अभी तक आई नहीं है। मुझे रुकना पड़ेगा।
जब वह युवती आ गई... वह एक चमार स्त्री थी। गांव के गणमान्यों ने तो कभी उसे देखा भी नहीं था कि यह गांव में रहती है। पहली तो बात स्त्री; दूसरी

बात चमार; वह भी दीन-हीन, गरीब, फटे कपड़े। लेकिन जैसे ही वह आ गई, बुद्ध ने बोलना शुरू कर दिया।
बुद्ध का गीत तानसेन जैसा है। कोयल के गीत की भी अपनी खूबी है। तानसेन
के गीत का भी अपना मजा है। वे तुम्हारे लिए गा रहे हैं।
इसलिए बुद्ध धर्म विराट हो गया। सीमाएं तोड़ कर बहा। ईसाइयत भी उसका मुकाबला नहीं कर सकती, इस्लाम भी मुकाबला नहीं कर सकता। क्योंकि इस्लाम ने तलवार का सहारा लिया धर्म को फैलाने में; जबरदस्ती की। ईसाइयत ने आर्थिक प्रलोभन दिए। गरीब को रोटी दी, भूखे को भोजन दिया, नंगे को कपड़ा दिया, अशिक्षित को शिक्षा दी, बीमार को अस्पताल दिया। इसके सहारे करोड़ों लोग ईसाई बने। लेकिन बुद्ध धर्म ने न तो तलवार का सहारा लिया, न रुपये- रोटी-रोजी का सहारा लिया। बुद्ध धर्म ने तो सीधा एक गीत गाया बुद्ध का। उस गीत में ही खूबी ऐसी थी कि सारा एशिया डूब गया। महावीर टापू की तरह रह गए। मैं यह नहीं कहता कि टापू नहीं होने चाहिए। कोयल भी जरूरी है। तानसेन
ही तानसेन काफी न होंगे। कभी तानसेन से भी मन ऊब जाता है। और कोयल के गीत में बड़ी मिठास है, निसर्ग है। लेकिन कोयल का गीत ही संगीत का आधार नहीं बन सकता। कभी किसी दुपहरी में शांत सुन लिया, ठीक! संगीत की कला का जन्म तो तानसेनों से होगा।
इन दोनों के वक्तव्य अलग-अलग होंगे। क्योंकि बुद्ध तुम्हारे लिए बोलेंगे। महावीर अपने कारण बोलेंगे, बुद्ध तुम्हारे कारण बोलेंगे। महावीर अहिंसक हैं, बुद्ध महा करुणावान हैं। यह दोनों के व्यक्तित्वों का भेद है।
लेकिन जो वे कह रहे हैं, अंतिम घड़ी में तुम पाओगे, वे बिल्कुल एक हैं-- सबै सयाने एकमत। पर वह अंतिम घड़ी में तुम पाओगे। उसके उदघाटन के लिए तुम्हें भी शिखर पर पहुंच जाना होगा। तब तुम समझ लोगे कि बुद्ध की करुणा थी कि उन्होंने बदले वक्तव्य।
तुम बुद्ध से पूछो, ईश्वर है? वे जवाब नहीं देते। महावीर सात जवाब देते हैं; बुद्ध जवाब नहीं देते। आत्मा है? चुप रह जाते हैं। पुनर्जन्म है? चुप रह जाते हैं। स्वर्ग-नरक हैं? चुप रह जाते हैं। महावीर हरेक प्रश्न का उत्तर सात बार देते हैं। बुद्ध ऐसे प्रश्नों के उत्तर ही नहीं देते। वे कहते हैं, सुनो! मैं एक गांव से गुजरता था। किसी शिकारी का तीर एक आदमी की छाती में चुभ गया था। वह सड़क के किनारे पड़ा था। मैंने उसे कहा कि भाई, तेरे तीर को निकाल लूं।
उसने कहा, रुको! तीर जिसने मारा वह मित्र है या शत्रु? मरने के बाद पुनर्जन्म होता है या नहीं? आत्मा शाश्वत है या नहीं? तीर विषबुझा है या बिन-विषबुझा? पहले इनका उत्तर दे दो।
तो बुद्ध कहते हैं, मैंने उससे कहा, पहले तीर को खींच लेने दे। अन्यथा मैं उत्तर देता रहूंगा और तू सो जाएगा। तू मर जाएगा। अभी यह वक्त दर्शनशास्त्र का नहीं। तीर निकाल लेने दे, फिर मौज से जितनी बकवास तुझे करनी हो करना; और जो पूछना हो पूछना।
बुद्ध कहते, तुम्हारा जीवन मृत्यु के तीर से चुभा है। तुम पूछते हो, पुनर्जन्म है? यह क्षण बीता जाता है। श्वास टूट जाएगी किसी भी पल। तुम पूछते हो, परमात्मा ने बनाया संसार कि अपने आप बना है? इन बातों का कोई सार नहीं है अभी। पहले दुख के तीर को निकल जाने दो, फिर पूछ लेना।
और बुद्ध कहते, जिसका दुख का तीर निकल गया वह पूछता ही नहीं। क्योंकि
जो आनंदमग्न हो गया...
तुम कभी सोचे हो, आनंद के संबंध में तुम कभी नहीं पूछते--कहां से आया? तुम भोगते हो। दुख के संबंध में तुम पूछते हो--कहां से आया? अगर तुम प्रसन्नचित्त हो तो तुम यह नहीं पूछते कि प्रसन्नता कहां से आई? लेकिन अगर तुम उदास हो तो तुम जरूर खोजते हो कि उदासी कहां से आई? क्योंकि कारण तो हम उसी का खोजते हैं, जिसे हम मिटाना चाहते हैं। जिसे हम मिटाना नहीं चाहते उसका कारण हम क्यों खोजें? कोई नहीं खोजता कारण।
मृत्यु का कारण हम खोजते हैं; जीवन का कारण कोई नहीं खोजता। तुम शांत हो, स्वीकार करते हो। अशांत हो, चिकित्सक के पास जाते हो। बीमारी है, निदान करवाते हो। स्वास्थ्य का निदान करवाते हो? तुम डाक्टर से जाकर पूछते हो कि

ठीक-ठीक बताओ मैं स्वस्थ क्यों हूं? क्या कारण है मेरे स्वास्थ्य का? जब तक मुझे कारण पता न चल जाए और जब तक ठीक से निदान न हो जाए कि मेरा स्वास्थ्य किस प्रकार का है, तब तक मुझे चैन न मिलेगी।
नहीं, तुम पूछते ही नहीं। जब तुम स्वस्थ हो तब तुम भोगते हो। जब तुम अस्वस्थ हो तब तुम पूछते हो निदान, मार्ग, कारण, उपाय। दुख का कारण खोजा जाता है।
तो बुद्ध कहते, तीर निकाल लिया, फिर तुम पूछ लेना। बुद्ध कहते, मैंने बहुतों के तीर निकाले; फिर वे नहीं पूछते।
फिर फुर्सत किसे है? फिर प्रयोजन क्या? फिर आदमी नहीं पूछता कि परमात्मा है या नहीं, क्योंकि आदमी स्वयं ही परमात्मा हो जाता है। उस आनंद-भाव में स्वयं के ही मंदिर की प्रतिमा प्रकट हो गई। अब किस मंदिर में जाना है? फिर आदमी प्रश्न ही नहीं पूछता, क्योंकि जिसके जीवन में आनंद की अहर्निश वर्षा हो रही हो, प्रश्न बह जाते हैं; जैसे बाढ़ में कूड़ा-करकट बह जाता है, किनारे स्वच्छ हो जाते हैं, ऐसा ही चित्त स्वच्छ हो जाता है।
तो यह तो बुद्ध का ढंग है। वे दुख में उत्सुक हैं। बुद्ध एक मनोवैज्ञानिक हैं। उनकी चिंतना तुम्हारे दुख को मिटाने की है।
महावीर एक दार्शनिक हैं। उनकी चिंतना तुम्हारे दुख को मिटाने की नहीं है। उनकी चिंतना सत्य को शुद्धतम प्रकट कर देने की है। जैसा सत्य है वैसा कह देना है। क्या होगा परिणाम, क्या नहीं होगा परिणाम, इससे उन्हें कोई संबंध नहीं है।
सयाने बहुत प्रकार के हैं, लेकिन सब सयानों का मत एक है। सयाने बहुत रंग-रूप के हैं। तुमने अगर उनका वेश देखा तो तुम भटक जाओगे। तुमने अगर उनके शब्द ही सुने, उनके निशब्द में न उतरे, तो तुम भूल जाओगे। वे जो कहते हैं वही तुमने सुना, तुमने उनके प्राणों की धुन न सुनी जो कहने के पीछे बज रही है, तुमने भीतर की अंतर्वीणा न सुनी, तो तुम भटक जाओगे। तुमने अगर अंतर्वीणा सुनी, तो तुम पाओगे कि वीणा के ढंग कोई भी हों, आकार-रूप कोई भी हों, वीणा का स्वर एक है। सभी वीणाओं से वही स्वर उठ रहा है।
आकृति का क्या अर्थ है? कोई मूल्य नहीं। और बुद्ध अपने ढंग से चलेंगे; महावीर अपने ढंग से चलेंगे; कृष्ण अपने ढंग से चलेंगे। उनके ढंग भिन्न हैं, लेकिन उनका मत भिन्न नहीं है।
ऐसा ही समझो कि मैंने अपनी अंगुली उठाई चांद की तरफ; मेरी अंगुली अलग है। महावीर ने अंगुली उठाई चांद की तरफ; निश्चित ही उनकी अंगुली अलग होगी। लंबी होगी, छोटी होगी, बड़ी होगी, सुंदर होगी, न सुंदर होगी। बुद्ध ने उठाई अपनी अंगुली; अंगुली अलग होगी। जिस चांद की तरफ ये हजारों अंगुलियां उठ रही हैं सयानों की, वह चांद एक है।
तुमने अगर अंगुली को पकड़ लिया और अंगुली का विश्लेषण करने लगे और अंगुली काट कर पहुंच गए अस्पताल में और जांच-पड़ताल करने लगे, तो सभी अंगुलियों से अलग-अलग बातें मिलेंगी। किसी की हड्डी लंबी होगी, किसी की छोटी होगी। किसी के खून में बीमारी होगी, किसी के में नहीं होगी। किसी का नाखून छोटा होगा, किसी का बड़ा होगा। किसी की चमड़ी स्वस्थ होगी, अस्वस्थ होगी। वह तुम जो सब निकाल कर कागज पर लिख कर लौट कर आ जाओगे, उससे तुम्हारे शास्त्र बन जाएंगे और चांद का इससे कोई भी संबंध न होगा। जो दिखाया था वह अनदिखा ही रह जाएगा और जिससे दिखाया था उस पर आंखें अटक जाएंगी।
जब कोई चांद को अंगुली दिखाए, तो चांद को देखना, अंगुली को भूल जाना।
तब तुम पाओगेः सभी सयाने एकमत। और अगर अंगुलियां देखीं तो तुम बड़ी उलझन में पड़ जाओगे। और तब अंगुली ही चांद और तुम्हारे बीच बाधा बन जाएगी। उसी के कारण तुम फिर चांद को न देख पाओगे। और अगर उस अंगुली को ही अपनी आंखों में रख लिया, तो अंधे हो जाओगे।
यही हुआ है। बुद्धपुरुषों के वचन तुमने अपनी आंखों में रख लिए हैं। कोई कहता है मैं जैन हूं, कोई कहता है हिंदू, कोई कहता बुद्ध, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई। तुमने बुद्धपुरुषों के वचनों को अपनी आंखों में रख लिया है।
तुम्हारी आंखें अंधी हो गई हैं।
ये सिक्ख, हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई अंधों के नाम हैं, आंख वालों के नहीं। नानक आंख वाले हैं; नानक सिक्ख नहीं हैं। महावीर आंख वाले हैं;

महावीर जैन नहीं हैं। जीसस को पता ही न था कि ईसाइयत भी कोई चीज होती है। मोहम्मद को ख्याल भी नहीं था कि इस्लाम बनेगा। ये तो जिन्होंने अंगुलियां पकड़ीं, शब्द पकड़े, सिद्धांत पकड़े, शास्त्र पकड़े, उनके कृत्य हैं। इस पृथ्वी पर कोई तीन सौ धर्म हैं। अब धर्म भी तीन सौ हो सकते हैं? धर्म तो एक ही हो सकता है। और एक होगा, अनाम होगा। उसका कोई नाम नहीं होगा। ये तीन सौ धर्म तीन सौ अंगुलियां हैं। चांद तो एक है।
कितना ही विरोध मालूम पड़े बुद्धपुरुषों के वचनों में, तुम धोखा मत खाना। वे तुम्हें ठीक लड़ते हुए भी मालूम पड़ें, तो तुम गौर से देखना, लड्डू फेंक रहे होंगे। मिठास ही फेंक सकते हैं।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा है, गुरु मृत्यु है, ध्यान मृत्यु है, समाधि मृत्यु है। जीवन में जो भी श्रेष्ठतम है उसे मृत्यु ही क्यों कहा गया है?

क्योंकि मृत्यु श्रेष्ठतम है। मृत्यु शिखर है।
मृत्यु को देखने के दो ढंग हैं। एक तो ढंग है कि शत्रु की तरह देखो--कि तुमसे बाहर है, तुम्हें मिटाने आती है। और एक ढंग है कि तुम अपने अंतरतम की तरह देखो--कि तुम्हारे भीतर छिपी है, रोज विकसित होती चली जाती है। मृत्यु बाहर से आती नहीं। वह दृष्टि गलत है। मृत्यु तो तुम जन्म के साथ ही लेकर पैदा होते हो। जैसे बीज में वृक्ष छिपा है, ऐसे ही तुम्हारी मृत्यु तुममें छिपी है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारा जीवन भी भिन्न है और तुम्हारी मृत्यु भी। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन अपने ढंग का है; उसकी मृत्यु भी अद्वितीय है। कोई मृत्यु भी सामूहिक घटना नहीं है। मैं मेरे ढंग से मरूंगा। कोई दूसरा व्यक्ति उस ढंग से नहीं मर सकता। क्योंकि मैं मेरे ढंग से जीया। तुम तुम्हारे ढंग से जीए हो, तुम तुम्हारे ढंग से मरोगे। तुम्हारी छाप तुम्हारी मृत्यु पर भी होगी।
कोई रोता मरेगा। कोई चीखता-चिल्लाता मरेगा। कोई बेचैन, अशांत मरेगा। कोई छाती पीटता मरेगा। कोई जबरदस्ती घसीट कर ले जाया जाएगा। कोई शांति से गीत गाता जाएगा। कोई हंसता हुआ विदा होगा। कोई मौन में जाएगा। कोई मृत्यु को ध्यान बना लेगा। किसी के लिए मृत्यु समाधि हो जाएगी। कोई मृत्यु को परमात्मा का द्वार समझते हुए जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु भी उसके जीवन के सार-संचय की खबर होगी। मृत्यु भी विशिष्ट है, वैयक्तिक है। और तुम किस ढंग से रहते हो, उस ढंग से तुम अपनी मृत्यु को भी निर्मित कर रहे हो। क्योंकि मृत्यु तुम्हारे भीतर छिपी है।
मृत्यु तुम्हारे भीतर वैसे ही छिपी है, जैसे तुम्हारी नींद तुम्हारे भीतर से आती है। जागरण तुम्हारे भीतर से आता है। सुबह जब आंख खुलती है, जागरण कहां से आता है--बाहर से? जागरण तुम्हारे भीतर से आता है। रात नींद आती है, नींद कहां से आती है--बाहर से? नींद तुम्हारे भीतर से आती है। जन्म भी तुम्हारे भीतर से आता है, मृत्यु भी तुम्हारे भीतर से आती है। जन्म और मृत्यु ऐसे ही हैं जैसे तुम्हारे दाएं-बाएं हाथ। जन्म और मृत्यु ऐसे ही हैं जैसे पक्षी के दो पंख। जन्म और मृत्यु ऐसे ही हैं जैसी तुम्हारी बाहर-भीतर जाती श्वास। एक से काम न चलेगा। एक पंख के पक्षी को उड़ा कर देखो। श्वास को सिर्फ भीतर ले जाओ और बाहर मत आने दो; करके देखो। एक पैर से चलने की कोशिश करो। तुम पाओगे कि जीवन अधूरा हो जाएगा।
मृत्यु के बिना जीवन एकदम अधूरा हो जाएगा, रूखा हो जाएगा, सूखा हो जाएगा। अगर तुम मर न सको तो तुम्हें पता नहीं है कि तुम कैसी दुविधा में पड़ जाओगे।
मैंने सुनी है एक कहानी कि सिकंदर अपनी सारी विश्व की यात्राओं में मूलतः किसी और ही चीज की खोज में था। ज्ञानी पुरुषों से उसने सुना था कि कहीं पृथ्वी के किसी कोने में एक ऐसा झरना छिपा है जो अमृत का है। उसे जो पी लेता है वह अमर हो जाता है। तो वह सारी खोज कर रहा था, देश जीत रहा था, युद्ध लड़ रहा था, लेकिन साथ ही साथ उसकी असली खोज भी जारी थी कि उस झरने का पता लगा ले।
कहते हैं, अरब का रेगिस्तान पार करते वक्त उसे भनक पड़ी। सूत्र मिलने लगे। उसके पास नक्शे थे। वह कहां छिपा है अमृत, उसके प्रतीक मिलने लगे।

उसने अपने समझदारों को चौकन्ना कर दिया। प्रतीक मेल खाते गए, नक्शा ठीक बैठने लगा। अंततः वह दिन आ गया जब वह उस झरने के पास पहुंच गया मरुस्थल में छिपे, जिसको पी लेने से कोई अमरत्व को उपलब्ध हो जाता है। उसके आनंद का कोई पारावार न रहा।
स्वभावतः वह अपने साथ किसी को भी भीतर नहीं ले गया। न केवल यही, बल्कि उसने सख्त मनाही कर दी कि जैसे ही मैं बाहर आऊं, प्रत्येक व्यक्ति यहां से हट जाए, नक्शे जला डाले जाएं, यात्रा के चिह्न पोंछ डाले जाएं। किसी को पता न चल सके। क्योंकि अगर सभी अमृत पा जाएं, सभी अमर हो जाएं, तो मजा ही चला गया। अहंकार का मजा तो अपने लिए पाने में है।
वह भीतर गया। उसके आनंद से हाथ कंपते थे। अंधेरी गुफा थी। वह झुक ही रहा था, झरने में उसने देखा, स्फटिक मणि जैसा स्वच्छ जल। कभी नहीं देखा था। उस जल से ही जीवन की ऊर्जा और आभा प्रकट हो रही थी। जैसे जल न हो, छिपे हुए रत्न हों, मणियां हों। एक अपूर्व सुगंध उठ रही थी। वह हाथ भरने को ही था, अंजुलि भरने को ही था, पानी पी लेता, हाथ उसने डुबा भी दिए थे पानी में, तभी एक आवाज अंधेरे में से आई कि रुक सिकंदर! एक क्षण बात सुन ले!
देखा उसने तो बड़ी मुश्किल से अंधेरे में दिखाई पड़ा--एक कौवा बैठा हुआ है। और उस कौवे ने कहा कि मैं भी इसी गलती में पड़ गया। मैं कोई साधारण कौवा नहीं हूं, कौवों का सम्राट हूं। जो तू कर रहा है वही करके मैं फंस गया हूं। तू भी न उलझ जाए इसलिए सूचना कर देना उचित है।
सिकंदर ने पूछा, क्या मतलब?
कौवे ने कहा, मैं भी इसी की खोज में लगा रहा। आखिर एक दिन खोज लिया; इसका जल भी पी लिया। अब मर नहीं सकता हूं। और अब ऐसी मुश्किल में पड़ गया हूं कि अब करूं क्या! जीवन सूख गया। देख लिया जो देखना था, भोग लिया जो भोगना था, कर लिया जो करना था, पा लिया जो पाना था। अब कुछ पाने को नहीं बचा, कुछ भोगने को नहीं बचा। कोई रस बाकी नहीं है, एक श्वास लेने की इच्छा नहीं है, क्योंकि सब व्यर्थ मालूम हो रहा है। अब मर नहीं सकता हूं। अब सिर पीटता हूं। जहर खाकर देखा, कुछ असर नहीं होता। पहाड़ों से गिर कर देखा, कोई परिणाम नहीं होता, जरा भी खरोंच नहीं लगती। तलवारों पर अपनी गर्दन को घिस कर देखा; तलवार कट जाती है, गर्दन नहीं कटती। अपने प्रियजन सब जा चुके। सदियां बीत गईं। मैं रूखा-सूखा यहीं बैठा हूं। और अब मैं यहां बैठा हूं कि जो भूल मुझसे हो गई, वह किसी और से न हो जाए। मेरी पीड़ा का अंत नहीं है। मृत्यु महासुखदायी है। सिकंदर, अगर तुम्हें कभी पता चल जाए कि कोई ऐसा झरना भी है कि अमृत के बाद भी आदमी मर सकता है, तो मुझे खबर कर देना। मैं तुम्हें रोकता नहीं हूं, सिर्फ सुझाव है। फिर तुम्हारी मर्जी।
कौवा चुप हो गया। कहते हैं, सिकंदर थोड़ी देर खड़ा रहा, सोचता रहा, चुपचाप वापस लौट आया--बिना पीए अमृत को।
कथा बड़ी महत्वपूर्ण है, बड़ी मीठी है। झूठी ही है, पर बड़ा सच छिपा है। तुम थोड़ा सोचो, अगर न मरो, ऐसी कोई व्यवस्था हो जाए; थोड़ा सोचो जरा, थोड़े विस्तार में देखो जीवन को; तुम कौवे की मुसीबत में पड़ जाओगे। और कौवा भूल कर गया, क्योंकि कौवे पक्षियों में सयाने समझे जाते हैं। बड़े समझदार हैं, पंडितगण हैं। मिल गया होगा शास्त्र से कोई सूत्र, लग गए!
सिकंदर वापस लौट आया। तुम भी अगर उस झरने के पास पहुंच जाओ और तुममें अगर थोड़ी भी समझ हो तो तुम वापस लौट आओगे।
टाल्सटाय ने कहा है अपने मरने के कुछ दिनों पहले कि जवानी में तो जीवन ठीक मालूम पड़ता है। क्योंकि आंखें अंधी होती हैं, नशा होता है। होश ही नहीं होता। एक कोई भीतर की गहरी कामतंद्रा घेरे रहती है। जैसे आदमी बेहोशी में शराब पीए चल रहा है; कुछ का कुछ दिखाई पड़ता है। जहां कुछ भी न था वहां सपने बन जाते हैं। जहां कंकड़-पत्थर पड़े थे वहां हीरे-जवाहरात दिखते हैं। जहां भीषण नरक था वहां स्वर्ग की अट्टालिकाएं दिखाई पड़ती हैं। फिर जब होश आता है, जवानी का नशा टूटता है और आदमी के पास थोड़ी समझ आती है, अनुभव आता है, तो जीवन बिल्कुल बे-सार मालूम होने लगता है। तब जीवन बिल्कुल राख हो जाता है। उस घड़ी अगर तुम मर न सको, तो उस राख को हाथ में ढोना पड़ेगा--अनंत काल तक।

तुम थोड़ा सोचो, मृत्यु न होती तो जगत कैसे अभिशाप से भर जाता! तब तुम्हें समझ में आएगा कि मृत्यु कोई जीवन के विपरीत नहीं है। मृत्यु में ही जीवन का राज छिपा है। वह उसका एक पंख है। जन्म और मृत्यु--वे दोनों ही जीवन के पंख हैं। जीवन दोनों के बीच में छिपा है। दो किनारे हैं नदी के-- जन्म और मृत्यु। और जीवन की धार बीच से बहती है।
इसलिए मृत्यु की बड़ी महिमा है--जिन्होंने जाना। जो नहीं जानते हैं वे जीवन की महिमा गाते रहते हैं। जो जानते हैं उन्होंने मृत्यु की महिमा गाई है।
जीवन एक तरह की उत्तेजना है--जिसे तुम जीवन कहते हो। मृत्यु महाशांति है। तुम मृत्यु को इतने दुश्मनी के भाव से क्यों देखते हो? उसका कारण-- उसका कारण यह है कि तुम्हें ऐसा लगता है, अभी तो बहुत महत्वाकांक्षाएं अधूरी हैं। अगर मृत्यु आ गई, फिर कब पूरी होंगी? फिर कैसे पूरी होंगी? अभी तो बहुत महल बनाने बाकी हैं। अभी तो बहुत यात्रा पड़ी है। अभी तो किया ही क्या है? करने को बहुत कुछ शेष है। और मृत्यु आ गई तो हम तो अधूरे ही मर जाएंगे।
मृत्यु का भय नहीं है। और जीवन को मृत्यु का भय नहीं है, महत्वाकांक्षा को मृत्यु का भय है। असली जो भय है वह अहंकार को है, महत्वाकांक्षा को है। अगर तुम्हारी कोई महत्वाकांक्षा न हो, कुछ पाने को न हो, कुछ होने को न हो, तुम राजी हो, जो तुम हो वैसे ही से--तृप्त, परितुष्ट--तो क्या मृत्यु में तुम्हें दुश्मन दिखाई पड़ेगा? तब मृत्यु अभी आ जाए तो तुम उतने ही अहोभाव से स्वीकार कर लोगे, जैसे अहोभाव से तुम जीवन को स्वीकार कर रहे हो। जरा भी अंतर न होगा, जरा भी भेद न दिखाई पड़ेगा। तुम सहज ही विश्राम में जाने को तैयार हो जाओगे। तुम कहोगे, वह दौड़-धूप तो जा ही चुकी थी। हम विदा होने को तैयार ही थे। हम किनारे पर प्रतीक्षा ही करते थे, कब नाव आकर लग जाए और हम उस दूसरी यात्रा पर निकल जाएं।
सुकरात को जहर देकर मारा गया। अदालत ने सुकरात से कहा कि अगर तुम एक वचन दे दो कि तुम सत्य का प्रचार नहीं करोगे--जिसको तुम सत्य कहते हो, उसका तुम प्रचार नहीं करोगे, चुप रहोगे--तो यह मृत्यु बचाई जा सकती है। हम तुम्हें माफ कर दे सकते हैं।
सुकरात ने कहा, जीवन को तो मैं देख चुका। सब कोनों से पहचान लिया। पर्त-पर्त उघाड़ ली। और अगर मुझे जीने का मौका दिया जाए, तो मैं एक ही काम के लिए जीना चाहूंगा कि दूसरे लोगों को भी जीवन का सत्य पता चल जाए। और तो अब कोई कारण न रहा। मेरी तरफ से जीवन का काम पूरा हो गया। पकना था, पक चुका। मेरी तरफ से तो मृत्यु में जाने में कोई अड़चन नहीं है। वस्तुतः मैं तो जाना चाहूंगा। क्योंकि जीवन देख लिया, मृत्यु अभी अनदेखी पड़ी है। जीवन तो पहचान लिया, मृत्यु से अभी पहचान नहीं हुई। जीवन तो ज्ञात हो गया, मृत्यु अभी अज्ञात है, रहस्यमय है। उस मंदिर के द्वार भी खोल लेना चाहता हूं। मेरे लिए तो मैं मरना ही चाहूंगा, जानना चाहूंगा--मृत्यु क्या है? यह प्रश्न और हल हो जाए। जीवन क्या है, हल हो चुका। एक द्वार बंद रह गया है; उसे भी खोल लेना चाहता हूं। और अगर मुझे छोड़ दिया जाए जीवित, तो मैं एक ही काम कर सकता हूं--और एक ही काम के लिए जीना चाहूंगा--और वह यह कि जो मैंने देखा है वह दूसरों को दिखाई पड़ जाए। अगर इस शर्त पर आप कहते हैं कि सत्य बोलना बंद कर दूं तो जीवित रह सकता हूं, तो फिर मुझे मृत्यु स्वीकार है। मृत्यु सुकरात ने स्वीकार कर ली। जब उसे जहर दिया गया, वह जहर पीकर लेट गया। मित्र रोने लगे; शिष्य दहाड़ने लगे पीड़ा में; आंसुओं की धारें बह गईं। सुकरात ने आंख खोलीं और कहा कि यह वक्त रोने का नहीं। मैं चला जाऊं, फिर रो लेना। फिर बहुत समय पड़ा है। ये क्षण बड़े कीमती हैं। कुछ रहस्य की बातें तुम्हें और बता जाऊं। जीवन के संबंध में तुम्हें बहुत बताया, अब मैं मृत्यु में गुजर रहा हूं, धीरे-धीरे प्रवेश हो रहा है। सुनो!
मेरे पैर ठंडे हो गए हैं; पैर मर चुके हैं। जहर का प्रभाव हो गया। मेरी जांघें शून्य होती जा रही हैं। अब मैं पैरों का कोई अनुभव नहीं कर सकता, हिलाना चाहूं तो हिला नहीं सकता। वहां से जीवन विदा हो गया। लेकिन आश्चर्य! मेरे भीतर जीवन में जरा भी कमी नहीं पड़ी है। मैं उतना ही जीवित हूं। जांघें सो गईं, शून्य हो गईं।

सुकरात ने अपने एक शिष्य को कहा, क्रेटो, तू जरा चिउंटी लेकर देख मेरे पैर पर।
उसने चिउंटी ली।
सुकरात ने कहा, मुझे पता नहीं चलता। पैर मुर्दा हो गए। आधा शरीर मर गया। लेकिन मैं तो भीतर अभी भी पूरा का पूरा अनुभव कर रहा हूं! हाथ ढीले पड़ गए। हाथ उठते नहीं। गर्दन लटक गई। आखिरी क्षण में भी, आंख जब बंद होने लगी, तब भी उसने कहा कि मैं तुम्हें एक बात कहे जाता हूं, याद रखनाः करीब-करीब सब मर चुका है, आखिरी किनारा रह गया है हाथ में, लेकिन मैं पूरा का पूरा जिंदा हूं, मृत्यु मुझे छू नहीं पाई है।
जिसने जीवन को जान लिया, वह मृत्यु को जानने को उत्सुक होगा। क्योंकि मृत्यु जीवन का दूसरा पहलू है; छिपा हुआ हिस्सा है। चांद की दूसरी बाजू है, जो कभी दिखाई नहीं पड़ती।
गुरु को मैं मृत्यु कहता हूं, क्योंकि वह तुम्हें मरना सिखाएगा। सारा शिक्षण धर्म का, मृत्यु का शिक्षण है। ध्यान को भी मैं मृत्यु कहता हूं, क्योंकि वह विधि है मरने की। समाधि को भी मृत्यु कहता हूं, क्योंकि वह पूर्णाहुति है। गुरु सिखाने वाला है; ध्यान सीखना है; समाधि पानी है। वे तीनों ही मृत्यु हैं। और मृत्यु बड़ा प्यारा शब्द है। जिस दिन भी तुम इसके भय से छूट जाओगे, मुक्त हो जाओगे; जिस क्षण भी तुम्हारी महत्वाकांक्षा तुम्हें डराएगी न; और तुम आंख खोल कर देखोगे, भर आंख मृत्यु में झांकोगे, उस दिन तुम पाओगे--तुमने अपने भीतर ही झांक लिया।
जीवन आधा है। जीवन से ही जिसने अपने को जाना उसने आधा जाना। उसका आत्मज्ञान पूर्ण नहीं है। मृत्यु आधा है। दिन ही जिसने जाना और रात न जानी उसका ज्ञान अधूरा है। दिन सुंदर है माना; सूरज है, प्रकाश है, फूल हैं, पक्षी हैं। पर रात और भी सुंदर है; तारे हैं, चांद है, विराट आकाश है। प्रकाश की तो सीमा भी मालूम पड़ती है, रात के अंधेरे की कोई सीमा नहीं। प्रकाश में तो थोड़ी उत्तेजना भी है, जलन भी है; रात महाशांति है; कोई उत्तेजना नहीं; परम शून्यता है। प्रकाश में तो वस्तुओं के भेद दिखाई पड़ते हैं; प्रकाश में तो आकृतियां समझ में आती हैं। रात्रि निराकार है; सब आकार खो जाते हैं। एक महाशून्य, एक महाविराट रह जाता है।
मृत्यु भी रात जैसी है। जिसने रात का सौंदर्य नहीं देखा; जिसने आंख खोल कर तारों से भरा आकाश नहीं देखा; जिसने अंधेरे को छुआ नहीं, स्पर्श नहीं किया; जो अंधेरे में डूबा और खोया नहीं; वह उथले में जीया, गहरे से उसके संबंध न हो पाए।
तुम अगर मुझसे पूछो तो मैं ऐसा कहूंगा कि जीवन जिसे तुम कहते हो, वह तो केवल सागर के ऊपर की लहरों का झंझावात है। और जिसे मैं मृत्यु कहता हूं, जिसे उपनिषद मृत्यु कहते हैं, जिसे दादू ने मृत्यु कहा है, वह सागर की गहराई है, जहां लहरें नहीं हैं, जहां सब लहरें खो गईं; जहां आकृतियां समाप्त हो गईं; जहां केवल निराकार है; जहां तरंग भी नहीं उठती; जहां एक विचार भी नहीं उठता; जहां महाशून्य है--न कभी जो खंडित हुआ है, न कभी जो खंडित होगा; जहां अस्तित्व कुंआरा है, जिसमें जरा भी विकृति नहीं। मृत्यु को मित्र की तरह देखो; तत्क्षण तुम्हारे साथ मृत्यु का नाता
बन जाएगा। तुम उस द्वार से भी जीवन को पहचानने में समर्थ हो जाओगे।
अगर तुम पहले से ही डरे हो तो तुमने धारणा बना ली। अगर डर गए तुम और धारणा बना ली तो तुम मृत्यु के पास कैसे जाओगे? वह मंदिर तुम्हारे लिए सदा के लिए बंद रह जाएगा। मरोगे तुम भी--वही तो कबीर कहते हैं, दादू कहते हैं, नानक कहते हैं--मरोगे तुम भी, लेकिन जो मरने के पहले मर जाता है वही मृत्यु को जान पाता है। जो जीते जी मर जाता है, जो जीता भी रहता है और मृत्यु को स्वीकार कर लेता है।
यही तो समाधिस्थ व्यक्ति का लक्षण है। वह जीता भी है, लेकिन महत्वाकांक्षा की लहरें न रहीं, निर्वासना की गहराई आ गई। चलता है, उठता है, बैठता है उसी बड़े नाट्य मंच पर, जिस पर तुम चलते हो, उठते हो, बैठते हो। उसके ऊपर के कृत्य ठीक तुम्हारे जैसे हैं, कोई भेद नहीं। लेकिन उसकी भीतर की गहराई--जिसने मृत्यु को भीतर आत्मसात कर लिया उसका गुणधर्म बदल जाता है।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि चित्त को सभी धारणाओं से शून्य कर लेने पर
जो यथार्थ दिखता है, वही सत्य या परमात्मा है। लेकिन शून्य चित्त में यह प्रत्यभिज्ञा, पहचान कैसे होगी कि यह सत्य है?

पहचान की जरूरत भी नहीं; प्रत्यभिज्ञा की जरूरत भी नहीं। जो है वही सत्य है। जो है वह सत्य है, ऐसी प्रत्यभिज्ञा नहीं होती ध्यान की गहराई में। जो है बस वही है; उससे अन्यथा कुछ भी नहीं है। यह भी मैं कह रहा हूं, क्योंकि तुम्हें समझाना है। जैसे दर्पण के सामने एक पक्षी उड़ जाता है, कि एक फूल खिल जाता है। दर्पण को कोई प्रत्यभिज्ञा थोड़े ही होती है। पहचान थोड़े ही करता है दर्पण कि यही फूल है, असली फूल है, नकली नहीं है। इसका होना ही इसका असलीपन है। इसको अलग से पहचानने की कोई जरूरत नहीं है। और अलग से पहचानने तुम चलोगे तो भटक जाओगे।
समझो; राह पर तुम हो, तुम्हें दूर अंधेरे में एक पुलिसवाला खड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। पास आते हो, पुलिसवाला नहीं है, भ्रांति हो गई, वृक्ष का ठूंठ है। अब तुम्हें प्रत्यभिज्ञा हो गई। बिल्कुल पास आ गए, बिल्कुल पहचान लिया कि वृक्ष का ठूंठ है। अब तो कोई संदेह न रहा।
लेकिन थोड़ी दूर पहले जब तुम्हें पुलिसवाला दिखाई पड़ा था तब भी कोई संदेह न था, तब भी निस्संदिग्ध भाव उठा था मन में कि पुलिसवाला है। अब निस्संदिग्ध भाव उठ रहा है कि वृक्ष का ठूंठ है। क्या तुम निश्चित हो सकते हो कि अब जो प्रत्यभिज्ञा हो रही है वह सही हो रही है?
और तभी अलार्म बजा और तुम्हारी नींद खुल गई, और तुमने पाया, वह सपना था। नींद लगी थी, रास्ते पर चले न थे। रास्ता सपने में था। दूर से पुलिसवाला दिखाई पड़ा, पास आकर छूकर देखा, ठूंठ मालूम पड़ा, तभी बेवक्त अलार्म बज गया, नींद खुल गई। सपना था।
क्या तुम अब भी पक्के हो सकते हो कि जाग कर तुमने जो देखा है वह सपना नहीं है? क्या यह नहीं हो सकता कि अलार्म सपने में बजा हो और एक सपना मिटा और दूसरा शुरू हुआ? प्रत्यभिज्ञा के निश्चित होने का क्या प्रमाण है? तुमने कई बार ऐसा सपना देखा होगा कि तुम जाग गए हो--सपने में। जागने का सपना! सपने के भीतर सपना, सपने के भीतर सपना, सपने के भीतर सपना संभव है। जो बहुत उलझे हुए दिमाग हैं, वे देखते हैं। तुमने नहीं देखा होगा, लेकिन जिनके दिमाग में बहुत ज्यादा उलझाव हैं, वे देखते हैं। ऐसा तुम देख सकते हो कि तुम रात सोए, सपना शुरू हुआ, सपने में तुमने देखा कि तुम जाग गए। तुम फिल्म देखने जा रहे हो जाग कर। तुम एक सिनेमागृह में बैठे फिल्म देख रहे हो। फिल्म में तुमने देखा कि फिल्म का जो प्रधान अभिनेता है वह फिल्म देखने जा रहा है। तुम जा सकते हो। और यह ऐसा चल सकता है।
च्वांगत्सु ने इसीलिए कहा है कि एक रात मैंने सपना देखा कि मैं तितली
हो गया; तब से मेरे सब विश्वास ढीले पड़ गए। क्योंकि सुबह मुझे यह शक होने लगा कि अगर रात च्वांगत्सु सपना देख सकता है तितली होने का, तो तितली सोकर सपना देख रही हो कौन जाने कि च्वांगत्सु हो गई! अगर पहला सच हो सकता है कि च्वांगत्सु तितली हो सकता है, तो तितली सपना क्यों नहीं देख सकती च्वांगत्सु होने का? क्या अड़चन है? बात तो एक ही है। च्वांगत्सु तितली हो जाता है, तो तितली च्वांगत्सु हो सकती है। फिर वह कहता है, उस दिन से फिर मेरा कोई भरोसा न रहा।
प्रत्यभिज्ञा--जो घटना घट रही है, अगर उसमें ही उसकी पहचान नहीं है, तो बाहर से तुम पहचान न ला सकोगे। बाहर से लाई पहचान के लिए फिर किसी दूसरी पहचान की जरूरत पड़ेगी। फिर उस पहचान के लिए किसी और पहचान की जरूरत पड़ेगी। और यह सिलसिला अंतहीन है।
तो बहुत लोगों ने पूछा है। नास्तिकों के सवालों में एक सवाल यह भी है
कि जब परमात्मा दिखाई पड़ता है तो तुम पहचानते कैसे हो कि यह परमात्मा है? सवाल बिल्कुल सही है। क्योंकि पहले तुमने कभी देखा नहीं; इसलिए पहचान
तो हो ही नहीं सकती। जब तुमने पहली बार शांति का अनुभव किया, शून्य हो गए, तुम कैसे कहोगे कि यह शून्य है, आत्मा है, निर्वाण है, समाधि है? तुमने पहले कभी जानी थी? पहले जानी हो तो तुम तुलना कर सकते हो कि यह ठीक है।

पहले कभी जानी नहीं। तो इसकी तुम तुलना कैसे करोगे? किससे तौलोगे? अगर तौल ही नहीं सकते तो तुम्हारे सभी वक्तव्य व्यर्थ हैं। तुम कुछ मत कहो, चुप रहो। तुम क्या कह सकते हो? और अगर तुम मानते हो कि यह है भी स्थिति ऐसी शून्यता की, तुम यह कैसे पक्का कह सकते हो कि यह सपना नहीं है? कि तुम्हें कल्पना नहीं हो गई है?
नास्तिक के प्रश्नों में अर्थ है। वे बुद्धि के प्रश्न हैं।
लेकिन नास्तिक के सिर में दर्द हो तब तुम उससे कहो, पहले कभी हुआ था? क्योंकि कभी तो पहली दफे हुआ होगा। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि सदा पहले, सदा पहले, सदा... कभी तो पहली दफा हुआ होगा। जब पहली दफा हुआ था तब तुम कैसे पहचाने कि यह सिरदर्द है? प्रत्यभिज्ञा कैसे हुई? और मान लो कि अब बहुत दफे हो गया है, पहचान भी हो गई है, तुम यह कैसे पक्का मानते हो कि कल्पना नहीं है? नास्तिक लड़ने-झगड़ने को खड़ा हो जाएगा। वह कहेगा, एस्प्रो है? बातचीत की जरूरत नहीं है!
अब सिरदर्द के लिए कोई प्रत्यभिज्ञा चाहिए? सिरदर्द काफी है; उसका होना ही खबर है। और वह पहली दफे भी हो, तब भी पता चलता है। उसके लिए उसके पहले होने की कोई जरूरत नहीं है। कांटा जब पहली दफा गड़े तब भी गड़ता है। समाधि जब पहली दफा होती है तब भी होती है। और समाधि इस जीवन का सबसे बड़ा अनुभव है। वह इतना विराट अनुभव है कि सिरदर्द पर तो शक भी किया जा सकता है-- हालांकि सिरदर्द पर भी शक करना मुश्किल है। जब होता है तब पता चलता है कि कैसे शक करो! लाख उपाय करो शक करने के--आंख बंद करो, इधर-उधर समझाओ--कुछ फर्क नहीं पड़ता; वह है। वह खड़ा है वहां मौजूद।
सिरदर्द जैसी छोटी चीज पर भी शक नहीं किया जा सकता। जब वह अनुभव बनती
है तो प्रगाढ़ हो जाती है। तो समाधि तो महा घटना है। वह परम आनंद है। वह पूरे परमात्मा का तुम्हारे ऊपर बरस पड़ना है। वह बूंद में सागर का उतरना है। उसके लिए किसी पहचान की जरूरत नहीं। जब होगा, तुम पहचान लोगे। जब होगा, तुम तत्क्षण पहचान लोगे। और इस पहचान के लिए किसी और पहचान से संबंध जोड़ना न पड़ेगा। यह घटना इतनी बड़ी है!
और इस पर संदेह भी पैदा नहीं होता। सिरदर्द पर तो शायद संदेह पैदा किया भी जा सकता है। इस पर संदेह भी पैदा नहीं होता। क्योंकि जब यह घटना घटती है तो संदेह करने वाला मन ऐसे ही खो जाता है जैसे सुबह के सूरज के उगने पर ओस-कण विदा हो जाते हैं, भाप हो जाते हैं, उड़ जाते हैं। संदेह करने की क्षमता ऐसे ही खो जाती है समाधि के अवतरण पर, जैसे अंधेरे में दीया जलते ही अंधेरा खो जाता है। एक क्षण की भी, पल भर की भी देर नहीं लगती। इधर जला दीया, उधर अंधेरा गया--युगपत, एक साथ। ऐसा नहीं है कि पहले दीया जलता है, प्रकाश होता है, फिर अंधेरा थोड़ा लड़खड़ाता है, डगमगाता है, सोचता है--जाऊं कि न जाऊं। ऐसा कुछ भी नहीं होता। बस यहां दीया जला कि तुम पाते हो अंधेरा नहीं है।
तुम कभी दीया लेकर अंधेरे को खोजने गए? अगर तुम दीया लेकर अंधेरे को खोजने जाओगे, कभी न पाओगे। क्योंकि जहां तुम दीया ले जाओगे वहीं अंधेरा नहीं होगा।
ऐसी ही घटना घटती है, जब भीतर महाप्रकाश का उदय होता है, समाधि होती है। महासूर्य जन्मता है। उस प्रगाढ़ ज्योति में, अनंत ज्योति में सब संदेह विसर्जित हो जाते हैं, सब अंधकार खो जाते हैं। उस क्षण दर्पण में जो झलकता है, कोई धारणा नहीं होती। धारणा हो नहीं सकती। क्योंकि जिसे पहले कभी जाना ही नहीं, उसकी धारणा कैसे होगी? कोई विचार नहीं होता। क्योंकि बात ही इतनी अवाक करने वाली होती है कि विचार तुम करोगे क्या?
साधारण स्थितियों में भी अगर अचानक कुछ घट जाए तो विचार मुश्किल हो जाता है। तुम रास्ते पर चले जा रहे हो, अचानक सांप बीच में आ जाए, तत्क्षण विचार बंद हो जाता है। लाख उपाय करते थे ध्यान करने के, नहीं होता था विचार बंद; सांप के देखते ही बंद हो गया। क्षण भर के लिए अवाक हो गए! तो जब महासमाधि घटती है, चित्त दर्पण की तरह हो जाता है। उस समय कोई विचार नहीं होता, कोई धारणा नहीं होती, कोई प्रत्यय नहीं होता। केवल तुम होते हो तुम्हारी परिपूर्ण शुद्धि में। या अगर बुद्ध का वचन उपयोग करना हो तो कहो कि तुम होते ही नहीं, परिपूर्ण शुद्धि होती है। दोनों एक ही बात है। उस

समय, जो है, वही सत्य है। किसी प्रत्यभिज्ञा के कारण नहीं। इसलिए सत्य को स्वयंसिद्ध कहा है, सेल्फ इवीडेंट; उसके लिए किसी की गवाही नहीं चाहिए। योरोप में ईसाइयों का एक छोटा सा संप्रदाय है, क्वेकर। पिछले तीन सौ वर्षों में उन्होंने कई कष्ट सहे, एक छोटी सी जिद के कारण। वह जिद बड़ी मीठी है। मगर अदालतें, कानून, पुलिस, राज्य मीठी बातों को समझने में समर्थ ही नहीं होते। उनके मापदंड बहुत मोटे और स्थूल होते हैं।
सभी अदालतों में नियम है कि व्यक्ति को कसम खानी चाहिए कि मैं जो भी कहूंगा वह सत्य कहूंगा। क्वेकर कहते हैं, हम यह कसम न खाएंगे। क्योंकि इस कसम से ही झूठ शुरू हो गया। क्वेकर यह कहता है कि मैं अदालत में यह कहूं कि मैं जो भी कहूंगा वह सत्य कहूंगा, इसका मतलब मैं अब तक असत्य बोलता रहा? और अगर अब तक असत्य बोलता रहा तो यह एक बात और बोलने में क्या अड़चन है असत्य कि मैं जो भी कहूंगा वह सत्य ही कहूंगा! यह भी असत्य बोल सकता हूं। जब अब तक असत्य बोलता रहा, जीवन भर असत्य ही बोलता रहा, क्योंकि बिना कसम खाए बोला, तब यह एक छोटी सी बात सिर्फ अदालत में खड़े होकर सत्य बोलने का क्या कारण है? तुम कैसे पक्का कर सकते हो कि मैं यह भी असत्य नहीं बोल रहा हूं?
तो क्वेकर कहता है, मैं जो भी बोलूंगा, बोलूंगा। सत्य-असत्य की फिक्र तुम कर लेना। लेकिन मुझसे क्या कसम खिलवाते हो? कसम का तो मतलब हुआ कि परमात्मा के सामने मैं दोषी हुआ। क्योंकि वह मुझसे पूछेगा कि तूने अदालत में कसम खाई थी कि मैं जो भी बोलूंगा सत्य बोलूंगा, तो अदालत के बाहर क्या करता था?
यह बात बड़ी मीठी है, बड़ी प्रीतिकर है। मगर अदालत में इतनी बुद्धि तो
हो नहीं सकती। वे कहते हैं, कसम खाओ। क्वेकर कसम नहीं खाते। सजाएं भुगत लीं उन्होंने, कसम नहीं खाई।
मुझे भी लगती है बात तो ठीक ही है। या तो मैं सत्य बोलता हूं, या नहीं बोलता। कसम का क्या मतलब है? सत्य बोलने वाला कसम नहीं खाएगा। झूठ बोलने वाला कसम खाने को हमेशा तैयार है। क्योंकि कसम भी झूठ बोलने की एक तरकीब है। तुम अगर झूठ बोलने वाले आदमी से मिलोगे तो वह हर वचन के बाद कसम खाता है। वह कहता है, कसम तुम्हारी! कसम भगवान की! जो आदमी जितनी कसम खाए, समझ लेना उतना ही झूठा है। नहीं तो कसम की जरूरत क्या है? बात सीधी-सीधी है, दो और दो चार होते हैं, अब इसमें कसम भगवान की क्या? इसमें भगवान को क्यों बीच में लाते हो? भगवान को बाहर छोड़ो।
नहीं, लेकिन तुम जानते हो, तुम काफी नहीं हो। भगवान का सहारा चाहिए, तभी तुम्हारा झूठ सच जैसा मालूम पड़ेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन ने बड़ी मुश्किल से कुछ बहुमूल्य कपड़ा दो-तीन वर्षों में धीरे-धीरे करके इकट्ठा किया था कोट बनवाने के लिए। रमजान के दिन करीब आते थे। तो वह दर्जी के पास गया। दर्जी बहुत व्यस्त था, उसने कहा कि बहुत मुश्किल है। मुल्ला ने बहुत मिन्नतें कीं तो उसने कहा, ठीक है, छोड़ जाओ; सात दिन लगेंगे।
मुल्ला ने कहा, बिल्कुल पक्का कह रहे हो?
उसने कहा, बिल्कुल पक्का कहता हूं। अल्लाह ने चाहा तो सात दिन में पूरा हो जाएगा।
मुल्ला बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि न केवल दर्जी ने अपनी ही बात कही, बल्कि अल्लाह का भी नाम लिया। आदमी धार्मिक है।
सात दिन बाद पहुंचा। दर्जी ने कुछ ध्यान ही न दिया। बामुश्किल तो ऊपर नजर उठाई। उसने कहा कि नहीं हो सका। सात दिन और लग जाएंगे।
मुल्ला ने कहा, अरे! मगर झगड़ा करने से फायदा भी क्या? सात दिन तो गए ही। उसने कहा, पक्का है?
उसने कहा, अगर अल्लाह ने चाहा तो सात दिन में पूरे हो जाएंगे।
मुल्ला ने कहा कि चलो ठीक। कभी हो गई होगी भूल-चूक; आदमी धार्मिक है, अल्लाह को भूला नहीं है। तीसरे सप्ताह पहुंचा। वह तो कोई पता ही नहीं था कोट का। जैसे दर्जी सदा से होते हैं, वैसा ही दर्जी था। उसने कहा, बस एक सप्ताह और, अगर अल्लाह ने चाहा... ।
मुल्ला ने कहा, अब एक बात सुनो! अगर अल्लाह को बाहर छोड़ दें तो कितने दिन लगेंगे? यह अल्लाह तो झंझट है। सीधी आदमी-आदमी की बात करो। यह बीच में

अल्लाह को ले लेते हो; अल्लाह को तो कोई समय की जल्दी नहीं पड़ी है, अनंत काल है। हम मुफ्त में मारे जाएंगे।
कसम खाने वाला आदमी झूठ को सहारे खोज रहा है। सच्चा आदमी कसम नहीं खाता। क्यों खाए? कसम का प्रयोजन क्या है? सच्चा आदमी गवाह भी नहीं जुटाता। झूठे आदमी ही गवाह जुटाते हैं। कानून का सत्य से कुछ लेना-देना नहीं है, गवाह से ज्यादा प्रयोजन है।
मुल्ला पर एक मुकदमा चला था। और जब विरोधी वकील ने पूछा कि जब यह हत्या की गई, तुम कहते हो तुम चश्मदीद गवाह हो, तुमने आंखों से देखा; तुम कितनी दूर खड़े थे?
मुल्ला ने कहा, सत्रह फीट साढ़े तीन इंच।
थोड़ा चौंका वकील भी; अदालत भी थोड़ी जाग गई; ज्यूरी भी सोए थे, उठ गए; मजिस्ट्रेट ने भी चौंक कर देखा कि सत्रह फीट साढ़े तीन इंच! तुम तो इस तरह बता रहे हो जैसे बिल्कुल पहले ही से नाप लिया हो।
नसरुद्दीन ने कहा, मुझे पता था, कोई न कोई मूर्ख जरूर पूछेगा। मैं नाप कर, मैं बिल्कुल नाप कर आया हूं।
झूठ बोलने वाला पहले से तैयारी करता है, नाप कर चलता है। जब तुम सोचने लगते हो झूठ बोलने की, तभी तुम गवाहियां जुटाने लगते हो, प्रमाण खोजने लगते हो। इसलिए तो जो महाशास्त्र हैं जगत के--उपनिषद, उनमें परमात्मा के लिए एक भी प्रमाण नहीं है। उपनिषद के ऋषि सिर्फ कहते हैं, परमात्मा है। प्रमाण कोई नहीं देते।
पश्चिम में जब पहली दफा उपनिषदों का अनुवाद हुआ, तो वहां के विचारक समझ ही न सके कि ये किस तरह के शास्त्र हैं। क्योंकि प्रमाण कहां है? ये तो सिर्फ वक्तव्य हैं।
ईसाइयत में तो प्रमाण हैं, बड़े शास्त्र लिखे गए हैं, सिद्ध करने की कोशिश की गई है कि परमात्मा क्यों है। उपनिषद सिर्फ कहते हैं, है। क्यों की बात ही नहीं उठाते।
कारण साफ है। जिन्होंने भी परमात्मा के लिए कारण खोजे हैं, वे झूठे लोग हैं; उन्हें परमात्मा का दर्शन नहीं हुआ। अन्यथा दर्शन काफी प्रमाण है; और तो कोई प्रमाण हो भी नहीं सकता। देख लेना ही प्रमाण है। और परमात्मा के लिए प्रमाण तुम खोजोगे कहां? वही है। उसके अतिरिक्त कोई है नहीं। किससे गवाही लोगे?
परमात्मा को अदालत में खड़ा करने का उपाय नहीं है। नहीं तो वह कह दे कि हां, मैं हूं। वह भी उपाय नहीं है। क्योंकि सब अदालतें छोटी पड़ जाएंगी। उसे कहां तुम खड़ा कर पाओगे? वह विराट है। उसके अतिरिक्त कोई नहीं है; कोई गवाही नहीं दे सकता।
उपनिषद चुप हैं। वे सिर्फ वक्तव्य देते हैं। वे सिर्फ इतना कहते हैं, है। जानने का उपाय है, सिद्ध करने का उपाय नहीं है। उसके साथ एक हो जाने का मार्ग है, लेकिन उसके लिए तर्क से प्रमाण देने की कोई व्यवस्था नहीं है। परमात्मा अनुभव है। परमात्मा कोई तार्किक निष्पत्ति नहीं है। वह कोई निष्कर्ष नहीं है तुम्हारे विचार का। इसलिए न तो उसे कोई गलत सिद्ध कर सकता है, न उसे कोई ठीक सिद्ध कर सकता है।
तो परमात्मा को जो सिद्ध करने में लगे हैं कि है, वे भी नासमझ; उनको तुम आस्तिक कहते हो। जो परमात्मा को सिद्ध करने में लगे हैं कि नहीं है, वे नास्तिक; वे भी नासमझ हैं। वे दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों की धारणा एक है कि परमात्मा सिद्ध किया जा सकता है या असिद्ध किया जा सकता है। दोनों मानते हैं कि परमात्मा निष्कर्ष है विचार का। इसलिए मैं कहता हूं, आस्तिक और नास्तिक एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं; उनमें कोई फर्क नहीं है।
धार्मिक व्यक्ति न तो आस्तिक होता है, न नास्तिक। फिर धार्मिक कौन है? धार्मिक वह है जो कहता है कि परमात्मा अनुभव है; न तो सिद्ध किया जा सकता है, न असिद्ध किया जा सकता है। न तो हम आस्तिक की धारणा पकड़ सकते हैं उसके संबंध में, न नास्तिक की। उसके संबंध में तो हम केवल चुप हो सकते हैं। चुप्पी ही, मौन ही उसके संबंध में एकमात्र उपाय है। और जो जितना मौन होता

जाएगा, उतना ही वह प्रकट होता जाता है। मौन होते हो, तुम मिटते हो, वह प्रकट होता है।
दादू कहते हैं, अपने अतिरिक्त कोई बीच में खड़ा नहीं।
तुम मिट जाते हो, शून्य हो जाते हो, मौन हो जाते हो, वह प्रकट हो जाता है। प्यारा तो सदा ही प्रकट है। वह छिपा नहीं है। तुमने अपनी ही नासमझियों में अपने को छिपा लिया है।

आखिरी प्रश्नः आप कहते हैं कि हर आकांक्षा के भीतर उसका विपरीत छिपा है। सम्मान की आकांक्षा में अपमान छिपा बैठा है; जीने की आकांक्षा में ही मृत्यु का भय भरा है। ऐसा क्रूर विधि-विधान क्यों है?

विधि-विधान क्रूर नहीं है। विधि-विधान क्रूर न हो, उस आकांक्षा से यह दृष्टि पैदा हो जाती है कि विधि-विधान क्रूर है। विधि-विधान न तो क्रूर है, न अक्रूर है। अस्तित्व न तो तुम्हारे पक्ष में है, न तुम्हारे विपक्ष में है। अस्तित्व निष्पक्ष है। अस्तित्व बिल्कुल तटस्थ है। यह तुम्हारी मौज है कि तुम पक्ष में हो जाओ या विपक्ष में हो जाओ। तुम अगर विपक्ष में हो जाओगे तो अस्तित्व तुम्हें विपक्ष में मालूम पड़ेगा। वह तुम्हारी दृष्टि है।
जैसे छोटे बच्चों की दृष्टि होती है; टेबल से टकरा गए, नाराज हो जाते हैं टेबल से। अब टेबल उनसे टकराई नहीं है, टेबल अपनी जगह खड़ी है, बिल्कुल तटस्थ है। इस बच्चे की तरफ आकर चेष्टा नहीं की है टेबल ने कि टकरा जाए। ये ही चले आ रहे थे बेहोश अवस्था में; टेबल से टकरा गए; होश न था, हाथ में चोट लग गई। अब बच्चा समझता है कि टेबल ने चोट मारी। और बच्चा कोशिश भी करता है टेबल से बदला लेने का। बल्कि बच्चे के लिए उसकी मां को भी दौड़ कर टेबल को मारना पड़ता है, जानते हुए भी कि टेबल का कोई कसूर नहीं है। मगर बच्चा प्रसन्न होता है टेबल को पिटते देख कर कि ठीक हुआ। नाचता है। क्योंकि इस टेबल ने उसे मारा था।
इस बच्चे पर तुम्हें हंसी आती है, लेकिन सारे लोग आमतौर से अस्तित्व
के साथ इसी बच्चे की भांति हैं। तुम ही टकराते हो, फिर चोट लग जाती है। चोट लग जाती है तो तुम नाराज होते हो। तुम सोचते हो, अस्तित्व मेरे विरोध में क्यों? इतना क्रूर क्यों?
अस्तित्व न क्रूर है, न अक्रूर। अस्तित्व का कोई पक्षपात ही नहीं है।
एक बात सुनिश्चित रूप से ध्यान में रख लो कि अस्तित्व तुम्हारे साथ वही करता है, जो तुमने अस्तित्व के साथ किया है। इसको ही हमने कर्म का सिद्धांत कहा है। और कुछ नहीं है कर्म का सिद्धांत। सीधी सरल सी बात है। तुम जैसा करते हो अस्तित्व के साथ, वही तुम पर लौट आता है। अगर तुम गीत गाते हो, गीत लौट आते हैं। गालियां देते हो, गालियां लौट आती हैं।
क्रूर नहीं है, पहली बात।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बड़ा सदय है तुम्हारे प्रति। क्योंकि वह भाषा ही गलत है। क्रूरता, अक्रूरता दोनों ही बातें गलत हैं।
अस्तित्व बिल्कुल निष्पक्ष है, कोरा है। वह दर्पण है। तुम जैसा चेहरा उसके पास ले आते हो, वैसा ही चेहरा तुम्हें दिखा देता है। दर्पण पर नाराज मत होना।
मैंने सुना है, एक स्त्री पागल हो गई थी। वह दर्पण में नहीं देखती थी।
उसको लाख समझाओ, वह दर्पण से डरती थी। उसे चिकित्सकों के पास लाया गया। उन्होंने पूछा कि तू दर्पण क्यों नहीं देखती? वह दर्पण फोड़ देती थी जहां भी मिल जाए। दिखाई पड़ जाए, वहीं फोड़ देती थी। रास्ते में चलते दुकान पर लगा दर्पण है, वह दौड़ जाती, नष्ट कर देती। वह कई उपद्रव कर चुकी थी।
उसने कहा कि दर्पण? दर्पण में जब भी मैं देखती हूं तो दर्पण मेरे साथ बड़ा कठोर व्यवहार करते हैं। मुझे कुरूप बतलाते हैं, जो कि मैं नहीं हूं। वह स्त्री कुरूप थी। दर्पण का कोई कसूर न था। उसका चेहरा भयानक था।
उसके चेहरे को कोई भी देख कर डर जाता, जुगुप्सा पैदा होती, घृणा उत्पन्न होती, दूर हटने का भाव होता। उसके चेहरे में बड़ी विकर्षित करने की क्षमता थी। लेकिन वह सोचती थी कि दर्पण मेरे साथ कुछ शड्यंत्र कर रहे हैं।

दर्पणों ने कुछ साठ-गांठ कर रखी है। जहां भी मैं दर्पण में देखती हूं, वहीं दर्पण मुझे कुरूप दिखलाते हैं। मैं सुंदर हूं।
तुम इस स्त्री को ही पागल मत समझना, ऐसा पागलपन थोड़ी-ज्यादा मात्रा में सबके भीतर है। अगर कोई तुम पर नाराज हो जाता है, तो तुम यह नहीं सोचते कि मेरे भीतर कुछ होगा जिसने उसे नाराज करवा दिया। तुम सोचते हो, यह आदमी गलत है। दर्पण गलत है। कोई अगर तुम्हारे पास नहीं आता, जो भी तुम्हारे पास आता है, दूर हटने लगता है, तो तुम सोचते हो, सारे लोगों ने मेरे खिलाफ कुछ कर रखा है। लेकिन तुम नहीं देखते कि तुममें जरूर कुछ होगा, जो लोगों को दूर हटाता है।
ध्यानी व्यक्ति को यह दर्पण से दुश्मनी छोड़नी चाहिए। बल्कि दर्पण से मैत्री करनी चाहिए, क्योंकि दर्पण खबर देता है। खबर को तुम स्वीकार कर लो तो बदलाहट का उपाय है। तुम सुंदर हो सकते हो। जब सभी तुम्हें गाली देते हैं, तो थोड़ा सोचना कि मामला क्या है? तुम जरूर ऐसे उपाय करते होओगे कि उनको गाली देने को मजबूर कर देते हो। अन्यथा किसको प्रयोजन है कि तुम्हें गाली देता फिरे? अपने-अपने काम लोगों को काफी हैं। अपने ही काम नहीं चुक रहे हैं, तुमको गाली देने कौन आएगा और? निमंत्रण दो तो भी कोई नहीं आएगा। लोग कहेंगे, भई हम अपने काम से जाएं कि तुम्हें गाली दें? तुम देखो करके। मुहल्ले भर को निमंत्रण दे दो कि मैं एक घंटा रोज बाहर बैठूंगा, कृपा करके सब लोग मुझे गाली देने आएं। कोई नहीं आएगा।
तुम जब अपने भीतर रूपांतरित होते हो, तो आस-पास का सारा जगत तुम्हारे संबंध में व्यवहार बदल देता है। जगत तटस्थ है। तुम जैसा चाहते हो, वैसा ही वह हो जाता है। हो सकता है कि तुम्हें खुद ही पता न हो कि तुम क्या कर रहे हो जगत के साथ, जिससे कि दुष्परिणाम हो रहे हैं। लेकिन जगत क्रूर नहीं है; अक्रूर भी नहीं है। जगत शुद्ध, शांत--तुम्हारे संबंध में जगत का कोई भी पक्षपात नहीं है।
फिर जो बात पूछी है, वह समझ लेने की है। तुम जो भी चाहते हो--समझो कि तुम सम्मान चाहते हो। सम्मान चाहने का मतलब ही यह है कि तुम अपने को सम्मानित मानते नहीं; पहली बात। तुम्हारा होना काफी नहीं है। तुम तृप्त नहीं हो। तुम मानते हो, हम कुछ भी नहीं हैं जब तक सम्मान न मिले; जब तक भारत-रत्न की उपाधि न मिल जाए; कि कोई सरकार तुम्हें सर न बना दे; कि कोई तगमा न लगा दे; तब तक तुम दो कौड़ी के हो। ऐसी तुम्हारी मान्यता है। यह जो तुम्हारी मान्यता है कि मैं दो का.ैडी का हूं, इस पर तुम भारत-रत्न का तगमा लगाना चाहते हो--पद्मभूषण! कि कोई कुछ भी शोरगुल मचा दे तुम्हारे चारों तरफ, फूलमालाएं पहना दे, जुलूस निकाल दे; ताकि तुम्हें जो दो कौड़ीपन का भाव हो रहा है कि मैं दो कौड़ी का हूं, ना-कुछ हूं, वह दब जाए।
लेकिन क्या वह दबेगा? वह दो कौड़ी का जो भाव है, वह तो भीतर ही पड़ा रहेगा। किसी ने माला पहना दी, दो कौड़ियों के ऊपर माला पड़ गई। अब तुमको यह फिक्र होगी कि कोई माला न उठा ले। क्योंकि वह माला उठाते ही से दो कौड़ियां दिखाई पड़ेंगी। अब तुम डरोगे कि सारी दुनिया माला छीनने की कोशिश कर रही है।
और स्वभावतः दूसरे भी दो कौड़ी का भाव लिए घूम रहे हैं; वे भी इस चिंता में हैं कि किसी की माला मिल जाए तो ढांक लें। माला के लिए बड़ी प्रतियोगिता है, बड़ा संघर्ष है। कौन राष्ट्रपति हो जाए, कौन प्रधानमंत्री हो जाए, बड़ा संघर्ष है। सिंहासन पर जो बैठ गया वह उतरना नहीं चाहता, क्योंकि उतरते ही से वह फिर दिखाई पड़ जाएगा कि कुछ भी नहीं है। सिंहासन पर बैठ कर जो होने का मजा आया, शब्दों में बल आ गया, आज्ञा देते ही घटनाएं घटने लगीं, वह सिंहासन से उठते ही कोई नहीं सुनेगा। अपना कुत्ता भी पूंछ न हिलाएगा सिंहासन से उतरते ही से। वह भी भौंकेगा। वह भी कहेगा कि जाओ। भूतपूर्व राष्ट्रपति हो! वे वक्त गए। अब हम तुम्हारे लिए थोड़े ही पूंछ हिलाते रहें! दूसरा बैठा है सिंहासन पर।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक सम्राट के घर नौकर था। वह रसोइए
का काम करता था। सम्राट उसे बड़ा प्रेम करता था। उसने एक दिन भिंडियां बनाईं। सम्राट ने चखीं, उसे भिंडियां बहुत पसंद आईं। सम्राट के चेहरे पर

बड़ी प्रसन्नता आई। उसने नसरुद्दीन से पूछा कि भिंडियों के संबंध में तुम्हारा क्या ख्याल है?
नसरुद्दीन ने कहा, मालिक, भिंडियां तो अमृत हैं। और सब सब्जियां तो साधारण हैं, यह तो सिंहासन पर विराजमान है। भिंडी तो बस आखिरी चीज है। इसके ऊपर कहीं कुछ है!
सम्राट प्रसन्न था, तो नसरुद्दीन ने दूसरे दिन भी भिंडी बनाई, तीसरे दिन भी भिंडी बनाई, चौथे दिन भी, पांचवें दिन भी... । सातवें दिन सम्राट ने थाली फेंक दी और कहा, नसरुद्दीन, हर चीज की हद होती है!
नसरुद्दीन ने कहा, मालिक, हद होती है। और भिंडी जैसी सड़ी चीज! जानवर भी नहीं खाते, मालिक। यह तो बिल्कुल आखिरी है।
सम्राट ने कहा, अरे! और तू कह रहा था उस दिन कि भिंडी सबसे ऊपर, और सभी सब्जियां इसके सामने कुछ भी नहीं। यह तो कोहिनूर है। और जमाने भर की तारीफ हांक रहा था।
नसरुद्दीन ने कहा, मालिक, हम तुम्हारे नौकर हैं, भिंडी के नहीं। हम तुम्हारे चेहरे की तरफ देखते हैं। भिंडी से हमको क्या लेना-देना!
वह जो कुत्ता है, वह सिंहासन के पास पूंछ हिलाता है।
ऐसा हुआ कि मैं एक भूतपूर्व मंत्री के साथ यात्रा कर रहा था। उनके ही गांव के बाहर, जहां कभी वे सम्राट की तरह पूजे गए थे, एक पुलिसवाले ने रोक दिया चुंगी-चौकी पर। उनको भरोसा न आया। और मुझे साथ देख कर उनको ऐसा लगा कि यह तो अपमानजनक है। मेरी गाड़ी रोकता है, और एक साधारण पुलिसवाला! और जब वह पुलिसवाला पास आया तब तो वे और भी नाराज हो गए, क्योंकि उन्हीं ने उसे नौकरी दिलाई थी वे जब मंत्री थे।
उन्होंने कहा, क्यों रे! देखता नहीं किसकी गाड़ी है?
वह कहने लगा, देख लिया किसकी गाड़ी है। सबकी गाड़ी रुकती हैं।
मंत्री भी थोड़े ढीले पड़ गए, क्योंकि अब कोई ताकत तो है नहीं। दिन गए!
अब यह पुलिसवाला उपद्रव कर सकता है। देखादाखी करने लगे, चीजें देखने लगे। कहने लगे, अच्छा भाई!
जब वहां से निकल गए तो उन्होंने मुझे कहा कि हद हो गई! इस आदमी को मैंने ही नौकरी दिलाई।
मैंने कहा, इसीलिए वह आपको अभी तक माफ नहीं कर पाया। किसी को नौकरी दिलाओ, वह तुम्हें कभी माफ न करेगा। वह किसी न किसी दिन बदला लेगा।
क्योंकि एक दिन तुम इतने ऊंचे थे कि नौकरी दिलाई। उस दिन पीड़ा तो उसके मन में हुई थी कि तुम्हारे हाथ जोड़ने पड़े, तुम्हारे सामने पूंछ हिलानी पड़ी।
इसका बदला वह कभी न कभी लेगा।
लोग कहते हैं, हम तो नेकी करते हैं और लोग हमारे साथ बदी करते हैं।
यह बिल्कुल गणित है। जिसके साथ तुमने नेकी की, वह बदी न करेगा तो क्या करेगा? उसको बदला तो लेना ही है। क्योंकि जब भी तुमने नेकी की, तब तुमने इतनी अकड़ से देखा होगा कि देख, तू कीड़ा-मकोड़ा! हमारी कृपा से जी रहा है। मैंने कहा, याद करो वह दिन, जिस दिन इस आदमी ने आकर तुम्हारे सामने पूंछ हिलाई थी और तुमने इसको नौकरी दिलवाई थी। आज यह ठीक उससे विपरीत करके दिखला रहा है। यह चाहता था कि अब तुम भी जरा पूंछ हिलाओ। सबका वक्त आता है। जो आदमी, इसीलिए, सिंहासन पर पहुंच जाता है, किसी पद पर, वहां से हटना नहीं चाहता। वह लाख बातें करता है कि राष्ट्र के लिए बहुत जरूरत है। इस पद से हटे कि राष्ट्र डूब जाएगा। और राष्ट्र कभी डूबते नहीं--या डूबे ही हुए हैं, कोई किसी से कुछ फर्क पड़ता नहीं है। लेकिन जो भी पद पर है, वह सोचता है, मेरे हटते ही संसार नष्ट हो जाएगा। इसे बचाना जरूरी है।
किसी को मतलब नहीं है संसार से। प्रत्येक व्यक्ति अपने को पद पर बचाए रखने में उत्सुक है। क्योंकि वह जो दो कौड़ी का भाव है, वह पद के नीचे छिपा है। पद से गए कि वह दो कौड़ी का भाव साथ चलेगा।
मैंने सुना है कि एक युवक धन की खोज में निकला। वह एक राजमहल के बाहर आकर रुका। सुंदर स्वस्थ युवक था। सम्राट सुबह-सुबह अपने घोड़े पर निकला था। उसने इस युवक से पूछा कि कैसे बैठे हो? कुछ काम की तलाश है?
उसने कहा, काम की तलाश में निकला हूं। धन कमाने निकला हूं।
कर क्या सकते हो?

उसने कहा, मैं शिल्पी हूं। मकान बना सकता हूं, भवन बना सकता हूं, मंदिर बना सकता हूं, मूर्तियां गढ़ सकता हूं। स्थापत्य मेरा विषय है।
सम्राट ने कहा, हमें जरूरत है। आ जाओ; महल के भीतर प्रवेश कर जाओ। यह
जो दुर्ग है महल के आस-पास, इसके भीतर तुम्हें जो भी भोगना हो भोगो; जो भी खाना हो खाओ; जो भी पीना हो पीओ; जो भी पहनना हो पहनो। किसी चीज की कमी न रहेगी। तुम सम्राट की तरह रहो। लेकिन एक बात ध्यान रखनाः जिस दिन भी मैं नाराज हो जाऊंगा, उस दिन जैसे यहां बैठे हो, इन्हीं कपड़ों में, बस इतने ही सामान के साथ दरवाजे से बाहर होना पड़ेगा। जब तक हो, सम्राट की तरह रहो। जाते वक्त ये ही कपड़े, ये ही फटे जूते, यही झोला, और यही सामान। इसको सम्हाल कर रख दो तिजोड़ी में महल की। अभी मजे से सम्राट की तरह रहो।
वह युवक महल में काम करने पर लग गया। सम्राट की तरह रहने लगा, मगर भीतर
एक बेचैनी तो बनी ही रही। सब कपड़े थे, कीमती थे, लेकिन जानता था ये मेरे नहीं हैं। हीरे-जवाहरात मिल गए थे पहनने को, लेकिन जानता था ये मेरे नहीं हैं। शानदार घोड़ों पर चढ़ता था, हजारों लोग नमस्कार करते थे। लेकिन जानता था कि किसी भी दिन जरा गड़बड़ हुई कि दरवाजे के बाहर कर दिए जाएंगे। वही पुराना झोला और वही पुराना कपड़ा!
वही तुम्हारे राष्ट्रपतियों की हालत है, तुम्हारे प्रधानमंत्रियों की। जिस दिन भी बाहर हुए--वही पुराना झोला, वही पुराना कपड़ा। इसलिए घबड़ाहट है। और बाहर होने का डर है, क्योंकि दूसरे भीतर घुसने की कोशिश कर रहे हैं। चारों तरफ से कोशिश चल रही है। दुश्मन तो दुश्मन हैं ही; जो अपने हैं, जो बिल्कुल बैठे हैं पास सिंहासन के, वे भी हाथ रखे हैं कि कब मौका पड़े कि टांग पकड़ लें। अपने भी पराए; पराए तो पराए। दुश्मन तो दुश्मन; मित्र भी दुश्मन।
इस घबड़ाहट में फिर जीवन बीतता है। इस चिंता में फिर जीवन बीतता है। जब
तक माला न मिले, पद न मिले, तब तक दो कौड़ी का भाव सताता है। फिर दो कौड़ी को छिपा लो पद में, तब यह भाव सताने लगता है कि अब यह माला न छिन जाए। और अभी और मालाएं भी पाने को हैं। तो यह माला छिने न; और मालाएं गिरती चली जाएं। और मजा यह है पूरी मूढ़ता का कि अंत में हजारों मालाएं भी तुम्हें छिपा लें, लेकिन तुम जानते ही रहोगे कि वह दो कौड़ी का भाव भीतर पड़ा है। तुम ना-कुछ हो।
आखिर एक दिन वह युवक घबड़ा गया। वर्ष बीत गए। उसने आकर सम्राट से कहा, मैं जाता हूं।
तो सम्राट ने कहा, कोई बात नहीं हुई। तुम्हें जाने का आदेश नहीं दिया गया। कोई तुम्हें कमी है? तुम बोलो!
सम्राट उससे बहुत प्रसन्न था। उसका काम अदभुत था। उसने कहा, काम भी ठीक है, कोई कमी भी नहीं है। लेकिन मैं भलीभांति जानता हूं कि मेरा कुछ भी नहीं है। यहां रुकना ठीक नहीं। अपना कुछ हो, वहीं जाएंगे। मेरा झोला और मेरे कपड़े वापस लौटा दिए जाएं। तुम भला सोचते होओ कि मैं इन महल के वस्त्रों में बड़ा प्रसन्न हूं, लेकिन मैं प्रसन्न नहीं हूं। क्योंकि मैं भीतर तो जानता हूं कि ये मेरे नहीं हैं।
जो अपना नहीं है, उससे कहीं तृप्ति हुई है! जो माला किसी दूसरे ने तुम्हें डाली है, वह तुम्हारी नहीं है। और जो पद किसी वोट से मिला है, वह तुम्हारा नहीं है। जो किसी के सहारे से जीता है, वह छीना जाएगा। जो किसी की कृपा से पाया है, वह आज नहीं कल खो जाएगा। न भी खोए तो भी तुम्हारी सत्ता नहीं है वह; तुम्हारी संपदा नहीं है। तुम्हारी आत्मा नहीं है वहां।
उस युवक ने ठीक किया। उसने कहा कि मैं जाता हूं। मुझे मेरे कपड़े लौटा दो। मैं जो हूं, अब मैं वही खोजूंगा, जो मेरा हो सके।
तो एक तो रास्ता है कि दो कौड़ी का भाव है, इस भाव का त्याग करो और भीतर प्रवेश करो, क्योंकि वहां महामहिम विराजमान है। उससे ऊपर कोई पद नहीं है, उससे ऊपर कोई धन नहीं है। तो एक तो उपाय है धार्मिक व्यक्ति का कि वह दो कौड़ी का भाव क्यों है, इसकी खोज में लगता है। विश्लेषण करता है, ध्यान करता है, चिंतन-मनन करता है, स्वाध्याय करता है। और यह दो कौड़ी का भाव कैसे छूट जाए और मेरे भीतर की परम सत्ता कैसे मुझे उपलब्ध हो जाए, इसकी यात्रा पर जाता है। उसकी भीतरी यात्रा है, अंतर्यात्रा है।

एक दूसरी यात्रा है--बहिर्यात्रा; वह राजनीति की है। और धर्म और राजनीति, दुनिया में दो यात्राएं हैं। और तुम दोनों साथ-साथ न हो सकोगे। इसलिए धार्मिक राजनीतिज्ञ नहीं हो सकता। राजनीतिज्ञ धार्मिक नहीं हो सकता। इसका कोई उपाय नहीं है। जो राजनीति की यात्रा पर चल रहा है, वह यह कोशिश कर रहा है कि दो कौड़ी का भाव है, इसको कैसे छिपा लूं।
छिपा-छिपा कर भी छिपेगा नहीं। सारी दुनिया से छिप जाए, फिर भी तुम्हें पता चलता रहेगा। और जितना छिप जाएगा दुनिया से, उतना ही ज्यादा पता चलेगा। जैसा उस युवक को पता चलने लगा था--ये कपड़े मेरे नहीं हैं, ये महल मेरे नहीं हैं; मेरा तो वही झोला है। उसका और उभार होकर तुम्हें पता चलेगा।
इसलिए धन जब बहुत मिल जाता है लोगों को, तब उनको भीतर की निर्धनता का बोध होता है। और जब बड़े पदों पर पहुंच जाते हैं, तब उन्हें दीनता का पता चलता है। लेकिन तब तक सारा जीवन खो गया व्यर्थ दौड़ में।
और फिर भी बहुत कम हिम्मतवर लोग हैं, जो उन ऊंचाइयों से--झूठी सही--उन ऊंचाइयों से वापस लौटने की कोशिश करते हैं। वह युवक बहुत हिम्मतवर था। उस युवक ने वही किया जो बुद्ध और महावीर ने किया था। महल छोड़े, इसलिए नहीं कि महल अपने थे; महल छोड़े इसलिए कि पहचान लिया कि अपने नहीं हैं और एक दिन झोली लेकर बाहर निकलना पड़ेगा। अच्छा है इसके पहले कि निकाले जाएं, निकल जाना उचित है।
बुद्ध और महावीर ने वही किया, जो उस युवक ने किया। उसने कहा, सम्हालो।
अब हम उस खोज में जाते हैं, जो अपना हो सके। आत्मा की खोज में जाने का मतलब है, जो अपनी है उसकी खोज में जाते हैं। जो अपनी है वह दूसरे से नहीं मिलती; वह उधार नहीं है। मेरी आत्मा तुम मुझे नहीं दे सकते। कोई मुझे नहीं दे सकता। उसे मुझे ही आविष्कार करना होता है। हां, सम्मान तुम मुझे दे सकते हो। वह उधार है। उन वस्त्रों के भीतर मेरा दो कौड़ी का भाव छिप सकता है। लेकिन जब तक मेरी आत्मा का उदय न हो, वह दो कौड़ी का भाव मिटेगा नहीं। वह अंधकार का हिस्सा है।
हीनता की स्थिति, हीन-ग्रंथि अज्ञान है। जब तुम आत्मभाव से भरोगे, तभी हीन-ग्रंथि विसर्जित होती है। उसके पहले विसर्जित नहीं होती। और अच्छा है कि उसके पहले विसर्जित नहीं होती। नहीं तो तुम न मालूम कहां कूड़ा-करकट में दब कर बैठ जाते और समाप्त हो जाते!
आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
पांचवां प्रवचन

समरथ सब विधि साइयां

सूत्र

समरथ सब बिधि साइयां, ताकी मैं बलि जाऊं।
अंतर एक जु सो बसे, औरां चित्त न लाऊं।।

ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे, अपने बल नाहीं।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं।।

दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहब एक।
सो हमको क्यूं बीसरै, जे जुग जाहिं अनेक।।

कर्म फिरावै जीव को, कर्मों को करतार।
करतार को कोई नहीं, दादू फेरनहार।।

आप अकेला सब करै, औरुं के सिर देई।
दादू सोभा दास कूं, अपना नाम न लेई।।

एक पुरानी कथा है। एक सम्राट संसार से विरागी हो गया; संन्यास का भाव उठा। घर छोड़ा, राज्य छोड़ा, दूर पहाड़ों में एकांतवास करने के मन से स्थान खोजने निकला--कहां ठहरूं, कहां बसूं। नदी में एक नाव पर उसने यात्रा की। दोनों तट सुंदर थे, अलौकिक थे, मन-लुभावने थे। चुनाव करना कठिन था, इस तट पर बसूं या उस तट पर। सोचा, लोगों से पूछ लूं।
बाएं तट पर बसे लोगों से पूछा। उन्होंने कहा, चुनाव का सवाल ही नहीं है। बसना हो, यहीं बसना है। स्वागत है आपका! क्योंकि इस हिस्से को स्वर्ग कहते हैं। और उस तरफ, नदी का जो दूसरा किनारा है, वह नरक है। वहां भूल कर मत जाना। वहां दुख पाओगे, सड़ोगे। वहां बड़े दुष्ट प्रकृति के लोग हैं। सम्राट को किनारा तो स्वर्ग जैसा लगा, लेकिन स्वर्ग में रहने वाले लोगों के मन में दूसरे किनारे बसे लोगों के प्रति ऐसी दुर्भावना होगी, यह बात न जंची।
वह दूसरे किनारे भी गया। दूसरा किनारा भी अति सुंदर था। एक से दूसरा किनारा ज्यादा सुंदर था। उसने लोगों से पूछा कि मैं बसने का सोचता हूं, किस किनारे को चुनूं?
उन्होंने कहा, चुनाव का कोई सवाल ही नहीं है। बसना हो तो यहीं बसो। इस तरफ देवता बसते हैं, उस तरफ दानव। भूल कर भी उस तरफ मत बस जाना, अन्यथा सदा पछताओगे। फंस गए तो निकलना भी मुश्किल हो जाएगा। महाक्रूर प्रकृति के लोग हैं। उन दुष्टों से तो परमात्मा बचाए। उनकी तो छाया भी पड़ जाती है तो आदमी भटक जाता है। उस किनारे तो भूल कर भी उतरना भी मत; नाव भी मत लगाना। सम्राट बड़ी दुविधा में पड़ गया। दोनों किनारे सुंदर थे, लेकिन दोनों तरफ रहने वाले लोग असुंदर थे। दोनों तरफ स्वर्ग था, लेकिन रहने वाले लोग वंचित हो गए थे। क्योंकि जब तक दूसरे की बुराई दिखाई पड़ती रहे, तब तक अपने भीतर छिपी भलाई को भोगने का अवसर नहीं आता। और जब तक दूसरे के कांटे गिनने की आदत बनी रहे, तब तक अपने भीतर खिले फूल की सुगंध नहीं मिलती। कांटों को गिनने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे फूल की गंध लेने की कला ही भूल जाता है। नरक पर जिसकी आंखें लगी हों, उसकी आंखों की क्षमता ही खो जाती है स्वर्ग को देखने की। खुरदरे पत्थरों के साथ ही जो दिन-रात अपने हाथों को लगाए रहा हो, वह फिर हीरों को नहीं पहचान पाता। हीरे भी पत्थरों जैसे ही लगते हैं। इससे उलटी बात भी सच है कि जिसने अपने भीतर खिला हुआ फूल देखा हो, उसे
सब तरफ फूल दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। क्योंकि व्यक्ति अंततः अपने को ही सब तरफ झलकता हुआ पाता है। सारा अस्तित्व दर्पण है। उसमें हम विभिन्न

रूपों में अपने ही चेहरे देखते हैं। उस किनारे जो दिखाई पड़ता है वह अपना ही चेहरा है। दुश्मन में जो दिखाई पड़ता है वह अपना ही चेहरा है। नरक में जलती हुई जो लपटें दिखाई पड़ती हैं वह अपना ही चेहरा है।
सम्राट ने कहा, इन्हीं उपद्रवों से तो बच कर भागना चाहा है साम्राज्य से। वह इस शांत पहाड़ की झील में बसे हुए लोगों में, इस घाटी में बसे हुए लोगों में भी वही का वही द्वंद्व है।
तो नाव को बढ़ाता आगे चला गया। उसने कहा, अब तो वहीं रुकूंगा जहां आदमी
न हो। क्योंकि जहां तक आदमी है वहां तक मन रहेगा। और जहां तक मन है वहां तक संसार से बाहर जाने का कोई उपाय नहीं। मन ही तो संसार है। जहां तक मन है वहां तक द्वैत रहेगा, द्वंद्व रहेगा, विरोध रहेगा, पक्षपात रहेगा, अपना- पराया रहेगा, मैं-तू रहेगा। नदी दिखाई न पड़ेगी, किनारे महत्वपूर्ण रहेंगे--अपना किनारा, पराया किनारा। वह दूर का किनारा, दुश्मन का किनारा। वह बढ़ता गया। ऐसा समय आया, कोई लोग न मिले, बस्ती समाप्त हो गई। अब वह बस सकता था। लेकिन उसने कहा, अब भी मैं बसूंगा तो किसी एक किनारे पर बसूंगा। मैं भी आदमी हूं। अभी छूट नहीं गया हूं, छूटने की कोशिश कर रहा हूं। बंधन तोड़ रहा हूं, थोड़े ढीले हुए हैं, लेकिन जंजीरें खुल नहीं गई हैं। अगर एक किनारे पर बसूंगा, कौन जाने दूसरा किनारा मुझे भी बुरा दिखाई पड़ने लगे!

मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलताएं हैं। तुम जहां हो, उसे महिमावान सिद्ध करने के लिए अनिवार्यरूपेण तुम्हें, तुम जहां नहीं हो, वहां की निंदा करनी पड़ती है। तुम जो हो, उस अहंकार की तृप्ति के लिए दूसरों का खंडन करना होता है।
अहंकार को एक ही रास्ता पता है अपने को बड़ा करने का, वह है दूसरों को छोटा करना। आत्मा का रास्ता अहंकार को पता नहीं है। आत्मा का रास्ता है अपने को बड़ा करना। और मजा यह है कि जब कोई अपनी आत्मा को बड़ा करता है, तो दूसरे भी उसके साथ बड़े होते चले जाते हैं।
और जब अहंकार अपने को बड़ा करना चाहता है तो उसे एक ही गणित मालूम है, दूसरे को छोटा करना। और दूसरी बात भी समझ लेने जैसी है, जितने दूसरे छोटे होते जाते हैं, उतने ही छोटे तुम भी होते चले जाते हो। क्योंकि छोटे के साथ बड़े होने का उपाय नहीं है। छोटे के साथ जीना हो तो तुम्हें भी छोटा होना पड़ेगा। बुरे आदमी के साथ जीना हो तो तुम्हें भी बुरा होना पड़ेगा। और अगर तुमने सब में बुराई ही देखी है तो तुम भले कैसे रह सकोगे? रहना तो बुरे लोगों के साथ होगा, जिनमें तुमने बुराई देखी है। तुम भी बुरे हो जाओगे। शायद गहरे में तुम बुरे होने के लिए सुविधा चाहते हो इसीलिए दूसरे में बुराई देखते हो। तुम दूसरे को छोटा बताते हो ताकि तुम्हें अपना छोटापन अखरे न। तुम दूसरे को छोटा करते हो ताकि कम से कम छोटों में तो बड़े दिखाई पड़ सको। जितने दूसरे छोटे हो जाएंगे उतना तुम्हें ऐसा लगता है, मैं थोड़ा बड़ा हूं।
लेकिन जिसने दूसरों को छोटा किया वह खुद भी छोटा हो गया। तुम छोटे करने की चेष्टा कर ही नहीं सकते बिना छोटे हुए। क्योंकि तुम्हारा प्रत्येक कृत्य तुम्हें निर्मित करता है। तुम्हारे प्रत्येक कृत्य की छाप तुम पर पड़ जाती है। तुम जो करते हो, करते-करते वही तुम हो जाते हो। सम्राट ने सोचा, रुक जाऊं इस किनारे। दोनों किनारे सुंदर हैं। किसी
भी किनारे रुकना हो सकता है। लेकिन क्या पता, मनुष्य का मन! मैं भी कहीं ऐसा ही सोचने लगूं कि मेरा किनारा सुंदर। क्योंकि मेरा किनारा है, सुंदर होना ही चाहिए। मेरा किनारा और सुंदर न हो! और अपने किनारे को सुंदर बताने के लिए दूसरे के किनारे को छोटा बताने लगूं।
तो सम्राट ने कहा, आदमी तो छूट गए, लेकिन किनारे अभी भी हैं। किनारे भी जहां छूट जाएं वहीं रुकूंगा। वह नाव बढ़ाता चला गया। वह मूल उदगम पर पहुंच गया नदी के। वहां नदी ही समाप्त हो गई थी, किनारे भी समाप्त हो गए थे। जिस पर्वत से नदी निकलती थी, वह पर्वत न इस किनारे था, न उस किनारे था, बीच में खड़ा था। बीच में भी नदी के तल पर न था, नदी से बहुत ऊपर खड़ा था। उसने उस पर्वत के ही ऊपर अपना भवन बनाया। वह वहीं रहा। उसने अपने भवन का नाम रखाः

नेति-नेति। उपनिषद का प्राचीन वचन हैः न यह, न वह। न यह किनारा, न वह किनारा।
जब उसके मित्र प्रियजन आते उससे मिलने, उसके दर्शन करने, तो वे सभी पूछते कि इस भवन का नाम नेति-नेति किस कारण? तो वह यह सारी कहानी कहता जो मैंने तुमसे कही।
जहां तक मनुष्य है, वहां तक तुम मन से बाहर न हो सकोगे। मन के फैलाव का नाम ही तो मनुष्य है। हमारा शब्द "मनुष्य" बड़ा बहुमूल्य है। वह मन से ही बना है। अंग्रेजी का "मैन" भी "मन" का ही रूपांतर है। वह भी मनुष्य का ही आधा हिस्सा है। मन का अर्थ हैः चुनाव। मन का अर्थ हैः इस किनारे, उस किनारे; इस पक्ष में, उस पक्ष में। हिंदू, मुसलमान; जैन, ईसाई; ब्राह्मण, शूद्र; भारतीय, चीनी--मन हमेशा तोड़ता है दो में। एक को पकड़ता है, एक से लड़ता है। मन बिना शत्रुता के नहीं जीता। इसलिए मन कभी शांत नहीं हो सकता। मुझसे, आते हैं लोग, पूछते हैं कि मन कैसे शांत हो जाए?
मैं उनसे कहता हूं, मन कभी शांत न होगा। मन के पार जाना होगा, तभी शांति है। मन शांत होता ही नहीं। जब मन नहीं होता तभी शांति होती है। मन के अभाव का नाम शांति है। मन के भाव का नाम अशांति है। मन यानी अशांति; इसलिए मन के शांत होने की बात ही मत सोचना। वह भूल हो जाएगी। वह तो तुमने बीमारी को ही स्वास्थ्य समझ लिया। अब तुम बीमारी को ही निखारने में लग जाओगे। हां, मन निखर सकता है, बड़ा सूक्ष्म हो सकता है, बड़ा चमत्कार उससे पैदा हो सकता है, लेकिन शांत नहीं होगा। कितना ही बलशाली हो सकता है, लेकिन शांत नहीं होगा।
बड़े प्रसिद्ध झेन फकीर रिंझाई की कथा है कि वह अपने गुरु के आश्रम में
था और वर्षों से चेष्टा कर रहा था मन को शांत करने की। मन बलशाली हो गया। दूर के दृश्य दिखाई पड़ने लगे। दूसरों के विचार पढ़ने में आने लगे। छू देता, बीमारियां हट जातीं। चमत्कार घटने लगे। छाया पड़ जाती उसकी, कुम्हलाए फूल फिर से खिल जाते, सूखता हुआ वृक्ष फिर हरा हो जाता। दूर-दिगंत तक उसकी खबर पहुंचने लगी। और वह अभी भी लगा ही था श्रम में। मन उसका रोज-रोज शुद्ध होने लगा। रोज-रोज मन में नई शक्तियों के आविर्भाव होने लगे।
एक दिन उसका गुरु उसके द्वार पर आकर बैठ गया। वह ध्यान कर रहा था। वह अपने मन को मांज रहा था। उसके सामने ही बैठ कर गुरु ने एक ईंट को घिसना शुरू कर दिया पत्थर पर।
रिंझाई तो बैठा हुआ अपने को ध्यान में ही खींचता रहा। थोड़ी देर में उसे हैरानी भी हुई कि यह गुरु को क्या हुआ है, क्या पागलपन हुआ है? इस तरह उपद्रव करना, ध्यान करते शिष्य को बाधा देनी, यह कोई गुरु का ढंग है! गुरु तो बचाने को है कि विघ्न उपस्थित करने को है? पर फिर भी उसने सोचा कि शायद मेरी परीक्षा लेते हों कि मैं अभी परेशान होता हूं या नहीं होता। तो वह डटा रहा। सांझ हो गई। और गुरु भी डटा रहा; वह घिसता ही रहा। सिर भी पक गया रिंझाई का। आखिर उसने चिल्ला कर कहा कि बंद भी करो! क्या कर रहे हो? ईंट को घिसने से क्या होगा?
गुरु ने कहा कि ईंट को घिस-घिस कर सोचता हूं कि दर्पण बना लेंगे।
रिंझाई हंसने लगा। उसने कहा, पागल हुए हो बुढ़ापे में? सठिया गए? कहीं ईंट को घिसने से दर्पण बना है!
गुरु हंसने लगा। उसने कहा, तो तेरा अभी होश खोया नहीं। ईंट घिसने से दर्पण नहीं बनता, मन घिसने से कभी आत्मा बनती है? तू भी ईंट घिस रहा है। हां, ईंट घिसने से साफ-सुथरी हो जाएगी, चिकनी हो जाएगी, सूक्ष्म हो जाएगी, सुंदर हो जाएगी; रूप-रंग दे सकते हो घिस-घिस कर, लेकिन दर्पण तो न बनेगा। मन को घिस-घिस कर कई रूप आ जाएंगे, कई भीतर के इंद्रधनुष प्रकट हो जाएंगे; लेकिन वह तो न मिलेगा जो सभी रूपों के पार है। मन के घिसने से शांति न मिलेगी।
और ध्यान की दो विधियां हैं संसार में। एक, जो मन को घिसने में ही भरोसा करते हैं। उन्हें सिद्धियां उपलब्ध होती हैं, चमत्कार होते हैं। लेकिन आत्मा नहीं मिलती। वे भीतर की संपदा में भटक गए। वे भीतर के बाजार में भटक गए। बाहर के बाजार से बचे तो भीतर के बाजार में उलझ गए। बच न पाए, बाजार से उठ न पाए ऊपर।

दूसरी ध्यान की विधियां हैं, जो मन को घिसने की नहीं, मन के त्यागने की हैं। मन का त्याग ही ध्यान है। मन की साधना नहीं, मन का अभ्यास नहीं, मन का विसर्जन ध्यान है। और जहां मन जाता है वहां पक्ष चले जाते हैं। जब तक मन है तब तक पक्ष रहेगा। तुम कितना ही सोचो कि निष्पक्ष हो जाऊं; तुम निष्पक्षता के पक्षपाती हो जाओगे, इससे ज्यादा और कुछ भी न होगा। अब तुम निष्पक्षता को ही अपनी अकड़ और पकड़ बना लोगे कि मैं तटस्थ हूं, मैं निष्पक्ष हूं। अब तुम निष्पक्षता के लिए लड़ने लगोगे। लेकिन लड़ाई जारी रहेगी; लड़ाई का अंत न होगा। क्योंकि तुम मूल बात चूक ही गए।
मैंने सुना है, एक गांव के रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे थे। बड़ी गाली-गलौज
बक रहे थे, मार-पीट पर उतारू थे, ईंट-पत्थर लिए खड़े थे। मुहल्ले के एक बुद्धिमान आदमी ने कहा कि भाई, बात क्या है? यह झगड़ा क्या है? पूरे गांव को क्यों इकट्ठा किया हुआ है? अगर कोई झगड़े की ही बात है, तो पंच नियुक्त कर लो, निपटारा हो जाए। लड़ते क्यों हो?
बात समझ में आ गई। लोगों ने औरों ने भी कहा कि ठीक है, तीन-तीन पंच नियुक्त कर लो।
सांझ वह आदमी जब वापस बाजार से अपने काम करके लौटा तो वहां और भी बड़ा झगड़ा मचा हुआ था। सुबह दो आदमी लड़ रहे थे, अब वहां आठ आदमी लड़ रहे थे। उसने कहा, मामला क्या है? यह तो बात और बिगड़ गई!
पता चला कि वे जो पंच नियुक्त किए हैं, अब वे भी लड़ रहे हैं। वे दो तो
लड़ ही रहे हैं, वे जो तीन-तीन पंच नियुक्त किए थे दोनों की तरफ से, अब वे भी लड़ रहे हैं।
अगर मूल न बदले और बोध न हो, तो तुम जो भी करोगे वह वही होगा नये रूप में। उसमें फर्क नहीं पड़ने वाला, जब तक मूल दृष्टि न साफ हो जाए। पत्ते काटने से कुछ हल न होगा, जब तक जड़ पर ही हाथ न पहुंच जाए।
उस सम्राट ने ठीक किया कि वह किनारों पर न रुका। क्योंकि पक्ष पर रुक जाता तो मन पर ही रुक जाता। नेति-नेति का भवन है मन के पार। वह अद्वैत है। वहां यह किनारा भी नहीं है, वह किनारा भी नहीं है।
तुम्हारे जीवन की सारी दुविधा क्या है? कि तुमने कभी भी अद्वैत का कोई क्षण भर का भी अनुभव नहीं पाया। यह शब्द तुमने सुना है--ब्रह्म, अद्वैत, एक; पर तुमने जो भी अनुभव पाए हैं जीवन में, वे सब द्वैत के हैं। तुम्हारे श्रेष्ठतम अनुभव भी द्वैत के ही हैं।
तुम किसी के प्रेम में पड़े हो। किसी स्त्री, किसी पुरुष, किसी मित्र, किसी बच्चे को, किसी को तुमने प्रेम किया है। बड़ा गहरा अनुभव है, लेकिन वह भी द्वैत का है, वह भी दो के बीच है। अभी वह भी मन के पार नहीं है। तुमने कभी संगीत सुना है। और कभी संगीत के साथ बह गए हो, बड़ी दूर की यात्रा की है। लेकिन वह भी द्वैत का ही अनुभव है। संगीत भी है और तुम भी हो। ऐसा नहीं हुआ है कि संगीत ही रह गया हो और तुम न रहे हो। जब भी तुम खोजोगे, अपने को पाओगे। उस गहरे से गहरे संगीत में भी द्वैत ही है।
तो तुम कितने ही उदगम के करीब पहुंच गए होओ, लेकिन बिल्कुल उदगम के पार नहीं जा पाए हो। किनारे बने ही रहे हैं। नदी छोटी होती गई होगी। जैसे- जैसे स्रोत पास आता है, नदी छोटी होती है; छोटा सा झरना रह गया होगा। लेकिन छोटे झरने के भी दो किनारे होते हैं। अगर गौर से देखो तो एक बूंद के भी दो किनारे होते हैं। बूंद कितनी ही छोटी हो, उसके भी दो पहलू होते हैं।
तो तुमने जीवन में कभी-कभी झलक भी पाई है, गहरी झलक भी पाई है, तो भी द्वैत के पार नहीं गई है। अद्वैत तो खाली शब्द है; उसका कोई अनुभव नहीं है। और उसे तुम शास्त्रों से न समझ सकोगे। उसका तो स्वाद चाहिए।
एक सूफी फकीर था बायजीद। वह एक दिन अपने शिष्यों को समझा रहा है। जब
वह आया था बोलने, तो अपने हाथ में एक टोकरी लेकर आया था। शिष्य थोड़े चौंके भी, लेकिन टोकरी को उसने ढांक रखा था। उत्सुकता भी जगी। कभी वह ऐसा कुछ लेकर न आया था और आज यह टोकरी लेकर क्यों चला आया?
जैसे मैं कल टोकरी लेकर चला आऊं, तो तुम मुसीबत में पड़ जाओ--कि यह टोकरी किसलिए लाई गई है?
सब सजग, सध कर बैठ गए कि कुछ मामला होने को है। और उसने बोलना शुरू किया और वह समझाने लगा नासपातियों के संबंध में। और उसने कहा कि ऐसी-ऐसी

नासपातियां दुनिया में हैं। उनके अलग-अलग ढंग से वर्णन किए। अलग-अलग ढंग की नासपातियां हैं, उनके स्वाद, उनके रंग, उनके आकार, उनकी ताजगी। और फिर उसने कहा कि एक वैज्ञानिक ने सारे संसार की नासपातियों को इकट्ठा करके एक नई तरह की नासपाती पैदा की है। ऐसा फल तुमने देखा भी नहीं है। उसका उसने बड़ा गहरा वर्णन किया। लोगों के मुंह में पानी आ गया। और तब लोगों को थोड़ा शक भी होने लगा कि टोकरी में क्या है? लेकिन वह बातचीत ही करता रहा। और लंबी उसने चर्चा की और लोगों को बिल्कुल भाव से भर दिया उस नासपाती के लिए। तैयार ही थे कि वहां से छूटें कि बाजार जाएं। जब सारी बात हो गई तब उसने कहा कि मैं तुमसे पूछता हूं, मैंने इतनी चर्चा की, तुम्हें स्वाद मिला?
उन्होंने कहा, स्वाद तो नहीं मिला, लेकिन स्वाद की आकांक्षा जगी।
तब उसने अपनी टोकरी का कपड़ा उघाड़ दिया और उसने नासपातियां बांटीं। और उसने कहा, अब तुम स्वाद भी ले लो। और तब मुझे कहो कि जो मैंने कहा था क्या उससे तुम्हें इसकी जरा सी भी झलक मिली थी?
तब उन्होंने नासपातियां चखीं। उन्होंने कहा, हम तो सोचते थे कि आपके शब्द बड़े अनूठे हैं। आप कुछ भी प्रकट कर सकते हैं। लेकिन अब हमें पता चला कि नासपाती का स्वाद भी आप न कह सके। यह तो बात ही और है। जो आपने कहा था, उससे इसका क्या लेना-देना? वह तो ऐसे था जैसे रूखी-सूखी रेगिस्तान की चर्चा हो। और यह तो हरित उद्यान है। इसका उससे कोई लेना-देना नहीं है। वह तो जैसे मरी हुई लाश हो और यह जीवित नाचती हुई प्रतिमा है। जैसे वह कोई बासा, जन्मों-जन्मों का सूख गया फूल हो और यह अभी-अभी खिला हुआ गुलाब है। और उन्होंने कहा, लेकिन हम भी कुछ नहीं कह सकते हैं। एक युवक उठा और उसने कहा कि आप भी एक नासपाती चखें। क्योंकि हम भी कैसे कहें जो हमारे भीतर हुआ है, नासपाती से जो स्वाद हमें मिला है।
बायजीद ने उनसे कहा, परमात्मा के संबंध में मैंने तुमसे जो कहा है, वह
सब ऐसा ही है। और मेरी मजबूरी है कि मैं परमात्मा को टोकरी में भर कर नहीं ला सकता, नासपातियों की तरह तुम्हें नहीं दे सकता। आकांक्षा तुम्हें देता हूं। लेकिन ध्यान रखना, मेरी आकांक्षा को जो मैंने तुम्हारे भीतर जगाई, जो अभीप्सा पैदा की, वह बस ऐसी ही है जैसे नासपातियों के संबंध में की गई मधुर चर्चा। कितनी ही काव्यात्मक हो, कितने ही गीत से भरी हो, लेकिन स्वाद का तो मुकाबला नहीं कर सकती। तो तुम मेरे शब्दों से राजी मत हो जाना, तुम परमात्मा का स्वाद लेने निकलना। जब तक स्वाद न मिल जाए तब तक रुकना मत, तब तक यात्रा पूरी नहीं हुई। बहुत कमजोर शब्दों पर ही रुक जाते हैं। बहुत थोड़े लोग हैं जो अनुभव की यात्रा पर जाते हैं।
अद्वैत अनुभव है, स्वाद है। कोई दूसरा तुम्हें दे नहीं सकता। दूसरे
से तुम्हें थोड़ी सी प्यास मिल जाए, बस काफी है। परमात्मा नहीं मिलता किसी से।
दादू के वचन बड़े मधुर हैं। इन वचनों में उन्होंने सब भर दिया है जो वे
भर सकते थे। लेकिन इन वचनों को समझ कर मत रुक जाना। यह मत समझ लेना कि समझ लिए वचन, अब और क्या बाकी बचा! शास्त्र जब पूरा समझ लिया जाता है तभी असली यात्रा शुरू होती है। शास्त्र को पूरा समझ लेने के बाद यह मत समझना कि अब क्या बाकी बचा? समझ तो लिया पूरा! जब तुमने पूरा समझ लिया, अभी पूरा बाकी है। अभी बात ही शुरू नहीं हुई है। क्योंकि स्वाद तो अभी आया नहीं। अभी तो तुम सिर्फ नींद से जगाए गए हो। अभी तुम उठे नहीं; अभी तुम्हारे पैर बढ़े नहीं; अभी उस मंदिर की तरफ तुम चले नहीं। अभी तो दूर मंदिर की गूंजती हुई घंटियां तुम्हारे कानों में पड़ी हैं। अभी मंदिर बहुत दूर है। कितनी ही मधुर हो घंटियों की आवाज, उसी को सुनते मत बैठ जाना।
संतों की आवाज मंदिर में गूंजती घंटियों की आवाज है। वे स्वर मंदिर
से आते हैं। लेकिन वे स्वर मंदिर नहीं हैं। बहुत उनको पकड़ कर बैठ जाते हैं। तब बड़ी भ्रांति हो जाती है। तब जीवन एक डबरा बन जाता है और जीवन में गति नहीं रह जाती।
तुम जीवन को डबरा मत बनाना। दादू के वचन समझो, उनसे पुलक लो और यात्रा
पर निकल जाओ। उनसे गति लो थोड़ी सी; थोड़ा सा धक्का लो। ऐसे ही जैसे हम कार के इंजन को स्टार्ट करते हैं, तो बैटरी का थोड़ा सा धक्का। फिर बैटरी के ही

सहारे कोई इंजन नहीं चलाता है; थोड़ा सा धक्का--और इंजन शुरू हो गया। बैटरी नहीं होती तो हम किसी से धक्का लगवा लेते हैं। उससे भी काम चल जाता है। कोई नहीं होता धक्का लगाने वाला तो थोड़ा गाड़ी को उतार पर खड़ा करके चला लेते हैं। उससे भी काम चल जाता है।
बस वह पहली पुलक और गति! संत-वचन उससे ज्यादा कुछ भी नहीं कर सकते।
लेकिन वह भी बहुत बड़ा है। वह भी हो जाए तो भी सौभाग्य है।
समरथ सब बिधि साइयां, ताकी मैं बलि जाऊं।
अंतर एक जु सो बसे, औरां चित्त न लाऊं।।
वह जो साइयां है, वह जो प्यारा है, वह जो प्रियतम है...
इन शब्दों पर भी ध्यान देना। अगर तुम दार्शनिक के पास जाओगे तो वह कहेगा, सत्य। अगर तुम भक्त के पास जाओगे, वह कहेगा, साइयां, प्रियतम, पीव।
बड़ा फर्क है। सत्य तो रूखा-सूखा शब्द है। वह शब्द गणित का है, तर्क का है। वह शब्द हृदय का नहीं है, काव्य का नहीं है। उसमें बास सोच-विचार की आती है। उसमें भाव की खिलखिलाहट नहीं है।
तो जब दादू, कबीर, नानक, मीरा, चैतन्य परमात्मा के लिए कोई शब्द का प्रयोग करते हैं, तो वे बड़े मीठे शब्द का प्रयोग करते हैं। क्योंकि संतों का यह अनुभव है कि उस परमात्मा से जुड़ना हो तो तुम इस तरह न जुड़ सकोगे जैसे कोई व्यक्ति गणित और तर्क से जुड़ता है। तुम उससे ऐसे ही जुड़ सकोगे जैसे प्रेमी प्रेमी से जुड़ता है। प्रेम तुम्हारे द्वैत को अधिक से अधिक मिटाता है। बिल्कुल नहीं मिटाता, पूरा नहीं मिटाता, लेकिन प्रेम तुम्हारे द्वैत को अधिक से अधिक मिटाता है। बड़ी नदी नहीं रह जाती, किनारे बड़े दूर नहीं रह जाते, बड़ी छोटी सी झीनी धार रह जाती है। किनारे बिल्कुल करीब-करीब आ जाते हैं; कभी-कभी तो छू लेते हैं।
मैं जबलपुर में बहुत वर्षों तक था। वहां नर्मदा की बड़ी सुंदर दुनिया
है संगमरमर की चट्टानों की। उन संगमरमर की चट्टानों में, अगर आप में कोई कभी गया हो, या कभी जाए, तो एक जगह है, उसका नाम है, बंदरकूदनी। वहां दो चट्टानें दोनों किनारों से इतनी करीब आ गई हैं कि बंदर ऊपर से कूद जाते हैं। तो जब भी मैं जाता था तो मैं कहता था, प्रेम इतने ही करीब आ जाता है। बंदरकूदनी है प्रेम। किनारे दो हैं, द्वैत मिट नहीं गया है, लेकिन इतने करीब आ गए हैं किनारे, दोनों तरफ से चट्टानें उठ कर इतने करीब आ गई हैं ऊपर कि अगर कोई हिम्मत करे तो व्यक्ति भी कूद सकता है; बंदर तो कूद ही जाते हैं।
तो प्रेम बंदरकूदनी है। फासला कम से कम है। इसलिए संतों ने प्रेम से भरे शब्दों के प्रयोग किए हैं। यद्यपि द्वैत बिल्कुल नहीं मिट गया है, लेकिन शब्दों में कहना हो तो प्रेम के शब्द निकटतम हैं। सत्य तो बड़ा दूर है।
कभी तुमने सोचा? सत्य को छुओ, छूने में नहीं आता; देखो, दिखाई नहीं पड़ता; गुनगुनाओ, कंठ से संगीत नहीं पैदा होता। सत्य का स्मरण करो, पता नहीं चलता--कहां है, कैसा है! सत्य से तुम कैसे जुड़ोगे?
लेकिन दादू कहते हैंः समरथ सब बिधि साइयां।
साइयां से जुड़ सकते हो। बात बहुत करीब आ गई। परमात्मा को निकट लाना पड़ेगा। उपनिषद कहते हैं, वह दूर से भी दूर और पास से भी पास है। अगर तुमने सत्य जैसे शब्दों का प्रयोग किया तो बहुत दूर है। अगर साइयां जैसे शब्दों का प्रयोग किया तो बिल्कुल पास है, श्वासों की श्वास है। तुमसे भी तुम्हारे ज्यादा पास है। तुम भी अपने से थोड़े दूर हो सकते हो, लेकिन वह तुमसे इतना भी दूर नहीं है। लेकिन तब, जब तुम उसे भाव से देखो।
एक तो ढंग है बुद्धि से देखने का। बुद्धि तो मरुस्थल है, बिल्कुल सूखा मरुस्थल है; वहां कोई जलधार नहीं; वहां कोई काव्य के वृक्ष नहीं लगते; वहां कोई कोयल कूकती नहीं; वहां कोई इंद्रधनुष प्रेम के नहीं उत्पन्न होते। बस मरुस्थल है। पारावारहीन मरुस्थल है।
एक फिर हृदय का मरूद्यान है। वहां वृक्षों की घनी छाया है; वहां जल के शीतल झरने हैं; वहां कोई विश्राम करना चाहे तो कर सकता है। थके-मांदे यात्री के लिए वहां फिर से प्राण जीवित हो उठते हैं। टूट गए, हताश हो गए को फिर से पुनरुज्जीवन मिल जाता है।

तो एक तो भाव से देखने का ढंग है और एक बुद्धि से देखने का ढंग है। पंडित बुद्धि से देखता है। इसलिए परमात्मा जितनी दूर हो सकता है उतनी दूर दिखाई पड़ता है। पंडित सदा वहां देखता है आकाश में। उसका परमात्मा सदा दूर है। भक्त देखता है हृदय में। उसका परमात्मा सदा पास है। उसका परमात्मा इतना पास है कि वह परमात्मा के सिवाय धीरे-धीरे फिर किसी को भी नहीं देखता। वही दिखाई पड़ता है।
मैंने सुना है, एक व्यक्ति नास्तिक था। उससे गांव परेशान था। सब समझा- समझा कर हार गए। पंडितों ने बड़े तर्क दिए, लेकिन तर्कों के वह खंडन कर देता था। सभी तर्क खंडित हो सकते हैं। ऐसा कोई भी तर्क नहीं है जो खंडित न हो सके। अगर तुमसे न होता हो तो उसका इतना ही मतलब है कि तुम्हें थोड़े और तर्कवान होने की जरूरत है; और कुछ मामला नहीं है। आज तक पृथ्वी पर ऐसा कोई भी तर्क नहीं है जो खंडित न किया जा सके।
तो पंडितों ने तर्क दिए, समझाने की कोशिश की, लेकिन वह नास्तिक युवक
सब तर्क खंडित कर देता। कोई उपाय न रहा, तो उन्होंने कहा, तू एक काम कर। अब एक ही आदमी बचा है। शायद वह तुझे कुछ सहारा दे सके। तू संत एकनाथ के पास चला जा।
वह युवक गया। सोचा उसने कि शायद वहां मेरे तर्कों को शांति मिल जाए। जाकर देखा तो एक शिव के मंदिर में एकनाथ सो रहे हैं। पैर उन्होंने शिव की पिंडी पर टिका रखे हैं। यह नास्तिक भी थोड़ा घबड़ाया। इसने कहा, नास्तिक मैं कितना ही होऊं, लेकिन पैर तो मैं भी शिव की प्रतिमा पर टिकाने की हिम्मत नहीं जुटा सकता। यह तो आदमी महानास्तिक है। मैं तो अभी टटोल ही रहा हूं, यह तो सिद्ध नास्तिक है। और इसके पास भेज दिया! वह भी घबड़ाया। पर बैठा; कि अब आ गए हैं इतनी यात्रा करके तो इससे कुछ ज्ञान लेकर जाएं; लेकिन इससे कुछ आशा नहीं है अब। कोई नौ बजे एकनाथ ने आंख खोली, तो उस युवक ने उठाया संदेह पहला कि आप साधुपुरुष हैं; शास्त्रों में कहा है, साधुपुरुष ब्रह्ममुहूर्त में उठता है; और आप नौ बजे तक सो रहे हैं! और यह तो कभी किसी जगह सुना भी नहीं गया कि साधुपुरुष, परमात्मा की प्रतिमा पर और पैर टेक कर सोता है।
एकनाथ ने कहा, सब जगह पैर टेक कर देखे, सब जगह परमात्मा पाया। तो यह तो फिर बात ही न रही कि कहां पैर टेको; क्योंकि परमात्मा सभी जगह पाया। फिर तो सवाल यह रहा कि जहां पैर को सुविधा मिले वहीं टेको; क्योंकि परमात्मा तो सभी जगह है। इस पिंडी पर बड़ी सुविधा है; ठंडी भी है, शीतल भी है और सहारा भी है। कभी-कभी सिर भी टेकते हैं; ऐसा नहीं कि पैर ही टेकते हैं। जैसी सुविधा होती है।
उस युवक ने कहा, और ब्रह्ममुहूर्त?
तो एकनाथ ने कहा कि जब भीतर का ब्रह्म आंख खोलता है वही ब्रह्ममुहूर्त। हम किसी और नियम को नहीं मानते। हम तो ब्रह्म को ही मानते हैं; वही भीतर है, वही बाहर है। जब आंख बंद हो गईं तब सो गए; जब आंख खुल गईं तब जग गए।
झेन फकीर एकनाथ से राजी हो जाते। झेन फकीर कहते थे, जब नींद खुल गई तब
जग गए; जब नींद लग गई तब सो गए। और कोई नियम नहीं है। क्योंकि जिसने भी नियम थोपा ऊपर से, वह तो परमात्मा पर मनुष्य के नियम थोप रहा है।
परम संन्यासी तो अनुशासन-मुक्त होता है। प्रारंभ में नियम बनाने पड़ते हैं, क्योंकि तुम अभी परम संन्यासी होने के योग्य नहीं। जिस दिन योग्यता परम हो जाती है, उस दिन कोई नियम नहीं रह जाता। परम संन्यासी तो अमर्याद होता है; उसकी कोई मर्यादा नहीं होती। क्योंकि परम संन्यासी का मतलब यह कि अब परमात्मा पर ही सब छोड़ दिया। तो अब वही जाने अनुशासन भी। अब हम कौन रहे बीच में अनुशासन देने को? वही उठना नहीं चाहता हो तो सोए। युवक को बड़ी हैरानी हुई। इस आदमी से तो विवाद करना मुश्किल है। यह तो हाथ के बाहर है। पर यह आदमी बड़ा प्यारा लगा। इस आदमी में बड़ी मिठास लगी। इसके चारों तरफ की हवा में कुछ धुन मालूम पड़ी। कुछ बजता है, कुछ किसी और लोक की घंटियां गूंजती हैं। यह आदमी देखने जैसा है। इसका सौंदर्य अप्रतिम है, अलौकिक है। यह इस पृथ्वी पर चलता है, लेकिन कहीं और से है; कहीं और का है; किसी और लोक का है।

संदेह अभी भी मिटा नहीं कि परमात्मा के ऊपर पैर रख कर सोया है और कहता
है कि जब परमात्मा की नींद खुली तब उठे; वही ब्रह्ममुहूर्त है।
एकनाथ गए, भीख मांग कर लाए, उन्होंने बाटियां बनाईं। वे जब बाटियां बना कर तैयार ही थे और घी में डुबाने ही वाले थे, तभी एक कुत्ता आया और एक बाटी ले भागा। तो एकनाथ उसके पीछे भागे। वह युवक भी पीछे-पीछे भागा कि हद हो गई! इतना बड़ा साधुपुरुष! अब कुत्ता एक बाटी ले गया तो उसके पीछे इतनी भागदौड़ मचाने की क्या जरूरत? दो मील तक एकनाथ भागे। तो वह युवक भी भागा। थक गया, लेकिन उसने कहा, देखना जरूरी है कि यह आदमी अब करता क्या है! कुत्ते को मार डालेगा, या क्या करेगा? शक तो पहले ही हुआ था, उसने सोचा, कि परमात्मा की प्रतिमा पर पैर रख कर सोया है। यह आदमी खतरनाक मालूम होता है। या पागल भी हो सकता है।
लेकिन जब एकनाथ ने कुत्ते को पकड़ ही लिया तो कुत्ते से कहा, देख, हजार दफे तुझसे कह दिया राम कि जब तक हम घी में न डुबा लें बाटी, तब तक मत उठाया कर! जब हम नहीं खाते बिना घी में डूबी, तुझे कैसे खाने देंगे? वही राम भीतर, वही राम तुझमें।
कुत्ते को पकड़ कर कान से बाटी समेत वे वापस ले आए। उसकी बाटी डुबाई घी में, उसके मुंह में दी और कहा, कल से याद रख! भाग लेकर जब भागना हो, बाकी जब हम घी में डुबा लें तब; पहले नहीं।
अब यह एक व्यक्ति है, जिसके लिए परमात्मा सिद्धांत नहीं हो सकता। यह कोई परमात्मा एक प्रत्यय नहीं है, कोई दर्शनशास्त्र की निष्पत्ति नहीं है। यह इसके चारों तरफ जीवन का जो फैलाव है, उसी का नाम है। उसमें कुत्ता भी सम्मिलित है। उसमें वृक्ष, चट्टानें भी सम्मिलित हैं। उसमें समस्त समा गया है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, समष्टि है।
समरथ सब बिधि साइयां, ताकी मैं बलि जाऊं।
और वह सब है इसीलिए समर्थ है। अगर वह कुछ होता तो समर्थ नहीं हो सकता था। कुछ की तो सीमा हो जाती है। कुछ की तो सीमा हुई, सीमा में असामर्थ्य आया।
समरथ सब बिधि साइयां...
वह सभी विधियों से समर्थ है। वह साईं है, वह स्वामी है, वह मालिक है।
... ताकी मैं बलि जाऊं।
मैं उस पर निछावर हो जाऊं, बस इतनी ही आकांक्षा है भक्त की।
अंतर एक जु सो बसे, औरां चित्त न लाऊं।।
वह एक ही मुझमें बसे। और की स्मृति चित्त में न आए।
तुम परमात्मा की स्मृति और स्मृतियों के साथ जोड़ नहीं सकते। तुम यह नहीं कह सकते कि हमारे मन में एक फेहरिस्त है। मकान बनाएंगे, दुकान में कमाएंगे, धन जमा करेंगे, यश पाएंगे, परमात्मा भी पाएंगे। ऐसी और भी बहुत सी चीजें हैं, उनमें एक परमात्मा भी है।
अगर तुम्हारा परमात्मा तुम्हारी और बहुत सी आकांक्षाओं में एक आकांक्षा है, तो परमात्मा से तुम्हारा अभी कोई भी संबंध और रस नहीं जुड़ा। जब तुम्हारी सारी आकांक्षाएं ही परमात्मा में गिर जाती हैं, जैसे सभी नदियां सागर में गिर जाती हैं; जब एक आकांक्षा ही बचती है, तभी--तभी उसकी धुन बजती है, उसके पहले नहीं। तुमने अगर परमात्मा को बहुत आकांक्षाओं में एक आकांक्षा की तरह माना है, तो बेहतर है कि तुम उसे मानो ही मत। कम से कम ईमानदार तो रहो। क्योंकि वह मान्यता झूठ होगी। जब तुम्हारी सभी आकांक्षाएं संयुक्त हो जाएं उसी में, जब वही एकमात्र आकांक्षा हो, तभी वह सत्य हो सकता है।
लेकिन न केवल तुमने बहुत आकांक्षाओं में उसे एक आकांक्षा की तरह माना है, बल्कि तुमने और आकांक्षाओं को उसके ऊपर रखा है; वह आखिरी आकांक्षा है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान करना चाहते हैं, लेकिन समय नहीं।
और सब चीजों के लिए समय है। निश्चित ही ध्यान की आकांक्षा आखिरी होगी। वे यह कह रहे हैं कि अगर और सब कामों से समय बच जाए तो हम ध्यान करें; लेकिन बचता नहीं। समय नहीं है, यह बात झूठ है। क्योंकि समय तो चौबीस घंटे

उनके भी पास है, जितना किसी और के पास है। समय के संबंध में तो कोई गरीब और अमीर नहीं है। समय के संबंध में तो बात बिल्कुल सबके पास बराबर है।
लेकिन जब वे कहते हैं समय नहीं है, तो वे असल में यह कह रहे हैं कि समय
तो है, लेकिन परमात्मा का नंबर आने तक बचता नहीं। वह क्यू में आखिरी खड़ा है। दुकान का राशन क्यू में आगे खड़े लोगों में ही बिक जाता है, परमात्मा तक आ नहीं पाता। हम करें क्या?
सिनेमा देखने जाना पड़ता है, तो समय है। होटल में बैठना पड़ता है, तो समय है। क्लब में जाना पड़ता है, तो समय है। मित्रों से मिलना है, शादी-विवाह में जाना है, तो समय है। और ये ही लोग हैं, जो तुम्हें कभी कहते मिल जाएंगे... ताश खेल रहे हैं; पूछोः क्या कर रहे हो? वे कहते हैं, समय काट रहे हैं। समय काटे नहीं कटता, ऐसी घड़ी भी आ जाती है। लेकिन इसके भी पीछे परमात्मा का नंबर है--ताश खेलने के भी पीछे। जब कट-कट कर भी न कटे, जब कोई उपाय ही न रह जाए, जब सारा संसार समाप्त हो जाए, क्यू बिल्कुल समाप्त ही हो जाए, तब मजबूरी में वे कहते हैं, चलो अब मंदिर चले चलें।
इसलिए तो लोगों ने परमात्मा को मरने के आखिरी क्षण तक टाला हुआ है। करीब-करीब आदमी मर जाता है, पंडित आकर उसके कान में नाम लेते हैं भगवान का। यह भी बड़े मजे की बात है। इसको जिंदगी भर समय न मिला। मरते वक्त भी इसको और दूसरे काम थे। अपनी वसीयत लिखवा रहा था, उसी में इसकी सांस टूटने लगी, होश खो गया। अब इसके पास अपनी तरफ से राम का नाम लेने की भी सुविधा नहीं है। अब पंडित उधार इसके कान में राम-नाम का जाप कर रहे हैं। और ऐसा मत सोचना कि पंडित को कोई समय है राम का नाम लेने का। यह उसका व्यवसाय है। अपने लिए उसके पास भी समय नहीं है। उसके भी कान में कोई दूसरा पंडित उधार का दोहराएगा। यह तो दूसरे के लिए धंधा कर रहा है। इससे उसका कोई लेना-देना नहीं है।
तो अगर परमात्मा तुम्हें न मिलता हो तो आश्चर्य नहीं है। परमात्मा के मिलने की शर्त ही तुम पूरी न कर पाए। वह शर्त हैः परमात्मा तुम्हारी सभी आकांक्षाओं का संयुक्त रूप हो जाए। तुम सभी आकांक्षाओं में उसी को खोजो। सभी आकांक्षाएं उसी की तरफ दौड़ने लगें। तुम्हारा रोआं-रोआं, श्वास-श्वास उसी की तरफ गतिमान होने लगे। तुम उठो तो उसके लिए, बैठो तो उसके लिए, सोओ तो उसके लिए, भोजन करो तो उसके लिए।
महावीर ने कहा है अपने शिष्यों को, उतना ही भोजन करना, जितना ध्यान के लिए जरूरी हो। उससे ज्यादा क्या करना! उतना ही शरीर को बचा लेना, जितना ध्यान के लिए जरूरी हो। और ज्यादा का क्या प्रयोजन है? क्योंकि परमात्मा मिला तो सब मिला और परमात्मा खो गया तो सब खो गया।
समरथ सब बिधि साइयां, ताकी मैं बलि जाऊं।
अंतर एक जु सो बसे, औरां चित्त न लाऊं।।
बस तुम एक बसो मेरे अंतर में, कोई और मेरे चित्त में न आए।
ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे...
यह बड़ा प्यारा वचन है।
ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे, अपने बल नाहीं।
यह भक्त की भावना है। यही उसकी प्रार्थना है, यही उसकी पूजा-अर्चना है, यही उसका नैवेद्य है। वह कहता हैः
ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे, अपने बल नाहीं।
अगर तुम परमात्मा को पाने में भी अपने बल पर भरोसा करते हो, तुम न पा सकोगे। क्योंकि तुम्हारा भरोसा परमात्मा पर अभी भी नहीं है। भरोसा तुम्हारा अपने पर है। यही अपने पर भरोसा तो संसार में था। अपने ही भरोसे पर सोचते थे सफलता पा लेंगे संसार में। अपने ही भरोसे पर सोचते थे धन कमा लेंगे संसार में। अपने ही भरोसे पर सोचते थे यह कर लेंगे, वह कर लेंगे। यही भरोसा तुम फिर यहां भी ले आए, मंदिर में भी। अब तुम कहते हो, अपने ही भरोसे पर पा लेंगे भगवान को भी।
अहंकार कैसे उसे पा सकेगा? यह अपने पर भरोसा तो अहंकार है। तुम ही तो बाधा हो। तुम्हारे बल तुम उसे न पा सकोगे। तुम निर्बल होकर ही उसे पा सकोगे। यह गणित बड़ा उलटा है--निर्बल के बल राम। यहां बली हार जाते हैं, निर्बल जीत जाते हैं।

जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन हैः ब्लेसेड आर दि मीक, बिकाज दे शैल इनहेरिट दि अर्थ। धन्यभागी हैं कमजोर, निर्बल धन्यभागी हैं, क्योंकि वे ही पृथ्वी के सम्राट होंगे।
बात कल्पना की मालूम पड़ती है, सपने की मालूम पड़ती है।
लाओत्से कहे चला जाता हैः अगर जीतना है तो जीतने की आकांक्षा छोड़ दो। हारने को तैयार हो जाओ, फिर तुम्हें कोई हरा न सकेगा। निर्बल के बल राम-- सारा गणित एक है।
तो सांसारिक मनुष्य वह है जो अपने बल जीता है। चाहे वह धर्म कर रहा हो,
तो भी सांसारिक है; तपश्चर्या कर रहा हो, तो भी सांसारिक है; उपवास कर रहा हो, व्रत कर रहा हो, तो भी सांसारिक है--अपने बल। समर्पित नहीं है, संघर्ष कर रहा है, लड़ रहा है। वह कहता है, परमात्मा को भी पाकर बता देंगे। उसे भी मुट्ठी में बांध कर बता देंगे। उसे भी बांध लाएंगे अपनी संपदा के घेरे में। उसे भी खड़ा कर देंगे वहीं, जहां हमने और जीत और सफलताओं के चिह्न और प्रमाणपत्र इकट्ठे कर रखे हैं वहीं उसे भी लगा देंगे दीवाल पर।
ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे...
भक्त कहता है, तू जैसा रखेगा वैसे रहेंगे। अब हम अपनी जिद छोड़ते हैं।
अब हम अपना होना छोड़ते हैं। अब हम यह बात ही बंद करते हैं कि हम भी कुछ कर सकते हैं।
... अपने बल नाहीं।
बहुत करके देख लिया अपने बल, कुछ भी न हुआ। अपने बल सिर्फ मिटे; अपने
बल सिर्फ भटके; अपने बल अंधकार पैदा हुआ; अपने बल अज्ञान बढ़ा; अपने बल नरक और महानरक निर्मित हुए। अपने बल कोई सुख न मिला, कोई शांति न मिली।
क्योंकि वह अपना आपा ही सब दुख का जड़ है। वह अहंकार ही सारे नरकों का बीज है।
ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे, अपने बल नाहीं।
यह अनुभूति जिस दिन समझ में आ जाती है, उस दिन कुछ करने को बचता नहीं।
क्योंकि करने की बात ही तुम्हारी भ्रांत है कि तुम कुछ कर सकते हो। तुम सिर्फ हो सकते हो, कर नहीं सकते हो। तुम सोचते हो कि तुम कर रहे हो, तब भी तुम नहीं कर रहे हो। बस भ्रांति तुम ढोए चलते हो।
मैंने सुना है, एक महल के पास पत्थरों का एक ढेर लगा था। एक छोटा बच्चा वहां से निकला और उसने एक पत्थर उठा कर महल की खिड़की की तरफ फेंका। पत्थर ऊपर उठने लगा। आकांक्षा तो सभी पत्थरों की होती है कि पंख लग जाएं, आकाश में उड़ें। ऐसा पत्थर तो तुम न पा सकोगे जिसने सपना न देखा हो आकाश में उड़ने का। इस पत्थर ने भी सपने देखे थे आकाश में उड़ने के। आज घटना घट गई। उसने अपने नीचे पड़े अन्य साथियों से कहा, मित्रो! आकाश की सैर को जा रहा हूं। कसमसा गए होंगे नीचे पड़े पत्थर। आकांक्षा तो उनकी भी यही थी; मगर कोई सौभाग्यशाली, कभी कोई भाग्यशाली पंख पाता है। यह सभी के बस की बात नहीं। यह पत्थर धन्यभागी है। यह विशिष्ट है, महापुरुष है, असाधारण, अद्वितीय है। आंखें चौंक कर रह गईं नीचे पड़े पत्थरों की। कहना भी मुश्किल था, इनकार करना भी मुश्किल था। ईर्ष्या से भर गए, आग लग गई, लेकिन कुछ उपाय भी न था। पत्थर जा ही रहा था। प्रत्यक्ष था उड़ना। कुछ घटना घट गई है, पत्थर ने पंख पा लिए हैं!
पत्थर फेंका गया था। लेकिन पत्थर ने सोचा, उड़ रहा हूं।
टकराया जाकर महल की कांच की खिड़की से; कांच चकनाचूर हो गया। पत्थर ने कहा, हजार बार कहा मेरे मार्ग में कोई न आए। जो भी आएगा, चकनाचूर हो जाएगा। अब भोगो!
यद्यपि पत्थर ने कांच को चकनाचूर नहीं किया था। पत्थर का कोई भी कृत्य है क्या कांच को चकनाचूर करने में? यह तो कांच और पत्थर का स्वभाव है कि जब वे टकराते हैं, तो कांच टूट जाता है, पत्थर नहीं टूटता। इसमें पत्थर ने कांच को तोड़ा ऐसा क्या है? पत्थर ने कुछ किया क्या? क्या यह पत्थर के बस में था कि टकराता और कांच को न तोड़ता? क्या यह पत्थर के हाथ की बात थी कि चाहता तो तोड़ता और चाहता तो न तोड़ता? यह हाथ की तो बात ही न थी। यह हो रहा था। यह किया नहीं जा रहा था।

लेकिन कांच से टकराने के कारण पत्थर की गति भी टूट गई। वे जो पंख थे,
वे भी टूट गए। टकरा कर, प्रतिरोध पाकर, वह जो बल मिला था उस लड़के के हाथ से फेंकने का, वह भी खो गया। पत्थर धम से जाकर महल के भीतर बिछे कालीन पर गिरा।
पत्थर गिरा, लेकिन पत्थर ने कहा, थक गया। लंबी यात्रा--थोड़ा विश्राम जरूरी है। फिर पत्थर ने चारों तरफ देखा और उसने कहा, तो स्वागत की तैयारियां पहले से कर ली गई थीं। तो मेरे आने की खबर पहले ही पहुंच गई है। कालीन लगे हैं, बिछे हैं, चित्र सजे हैं, फानूस लटके हैं, प्रकाश जला है। तो मैं अतिथि हूं। स्वाभाविक भी है, क्योंकि मैं कोई साधारण पत्थर नहीं हूं, पत्थरों का नेता हूं। गौरव-गरिमा हूं पत्थरों की। मेरे कारण ही उनका इतिहास बनेगा कि उड़ा था कभी एक पत्थर। सदियों तक वे याद रखेंगे। कहानियां बच्चे पढ़ेंगे।
तभी नौकर भागा हुआ आया। आवाज सुनी पत्थर की, कांच के टूटने की, उठाया पत्थर को हाथ में फेंक देने के लिए। लेकिन पत्थर ने कहा, तो ठीक; खुद भवन का सम्राट हाथ में उठा कर स्वागत कर रहा है।
नौकर था, भवन के सम्राट को कोई पता भी न था। नौकर भी स्वागत न कर रहा
था, सिर्फ फेंक देने के लिए तैयारी कर रहा था। वापस पत्थर फेंक दिया गया। लेकिन तब भी पत्थर ने यह न देखा कि वापस फेंका जा रहा हूं। उसने कहा, प्रियजनों की बहुत याद आती है। घर स्वर्ग है। पराए महलों में रुकने में वह बात कहां जो अपने झोपड़ों में है। वह जैसे दिल्ली से जब लोग फेंके जाते हैं, तो वे कहते हैं, जो बात पूना में है वह दिल्ली में कहां! घर जा रहे हैं। राजधानियों में रखा ही क्या है?
पत्थर वापस ढेर पर गिरा। उसने कहा, तुम्हारी याद आती थी। महलों में मेहमान हुआ, दूर आकाश और तारों की यात्राएं कीं। कैसे-कैसे स्वागत समारंभ! कैसे कालीन! तुम सपने भी न देख सकोगे। सम्राटों ने स्वागत किए, हाथों में उठाया, अपनी आंखों से देखा, प्रेम दिया। लेकिन फिर भी तुम्हारी याद आती थी। घर स्वर्ग है। जन्मभूमि का मन में आकर्षण खिंचता रहा। छोड़ दिए सब महल, कालीन, साज-सामान, सम्राट। वापस लौट आया हूं। तुम्हारे बीच ही रहूंगा। यही सारे व्यक्तियों की कथा है। यही तुम्हारी कथा है। सबकी कथा यही है। जो हुआ है, उसे तुम कहते हो, किया है। किसी के प्रेम में पड़ गए; कहते हो, मैं इस स्त्री को प्रेम करता हूं। यह हुआ है या किया है? कोई कभी प्रेम कर सकता है? हो जाए, हो जाए; न हो, न हो। करने का कोई उपाय है? तुम्हारा बल है करने का?
जैसे ही व्यक्ति को दिखाई पड़ने लगती है जीवन की वास्तविक स्थिति, वह स्वभावतः कहेगाः ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे। क्योंकि चाहे हम कहें या न कहें, वह जैसे रखना चाहता है वैसे ही रखता है। हमारे कहने न कहने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। हमारे कहने न कहने से हमारी जीवन-दिशा में फर्क पड़ता है। उसके व्यवहार में तो कोई फर्क नहीं पड़ता। नदी तो पूरब की तरफ बह ही रही है, चाहे नदी पश्चिम की तरफ बहना चाहे। तो तकलीफ पाएगी, कष्ट पाएगी, बेचैन होगी, हारा हुआ अनुभव करेगी, हताश होगी; कहेगी कि जीवन एक विफलता है। जीवन में कोई अर्थ नहीं है। मैं पश्चिम बहना चाहती हूं, मुझे पूरब बहना पड़ रहा है। दुख से बहेगी। बहेगी तो पूरब ही।
लेकिन फिर नदी समझ ले और कहे कि ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे। अब भी पूरब
ही बहेगी। लेकिन अब बहने में बात और हो गई। अब विरोध नहीं है; अब आनंद से बहेगी। अब उसकी मर्जी है। और वह ज्यादा जानता है, क्योंकि वह समग्र है। और हम खंड हैं, वह अखंड है। हम अंश हैं, वह अंशी है। हम छोटे हैं बहुत, आणविक हैं; वह विराट है। हम उस विराट के साथ हैं। हम उस महोत्सव में एक छोटे से भागीदार हैं। हम उस विराट संगीत में एक छोटा सा स्वर हैं। हमारा स्वर उस संगीत के साथ बहे तो ही शोभा है। विपरीत बहने का उपाय ही नहीं है। जो विपरीत बहने की कोशिश कर रहा है, वह हारा हुआ अनुभव करता है, बस। उसके जीवन में विषाद होता है, इतना ही। विराट को कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जो उसके साथ बहने लगता है, विषाद छूट जाता है। उसके जीवन की धारा उन्मुक्त हो जाती है। वह प्रसन्नता से चलता है। उसके चलने में नृत्य होगा, उसकी वाणी में गीत होगा, उसकी आंखों में अहोभाव होगा।

ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे, अपने बल नाहीं।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं।।
भाग कर कहां जाएंगे? जहां भी हैं, तुम्हारे ही हाथ हैं। जहां भी हो,
तुम ही हो।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं।।
भागने का उपाय कहां?
इस बोध के आते ही व्यक्ति भागना छोड़ देता है। तुमने सुना होगा, धार्मिक लोगों को लोग पलायनवादी कहते हैं--कि भगोड़े हैं, भाग गए। सचाई बिल्कुल उलटी है। जो सांसारिक हैं वे भगोड़े हैं। धार्मिक ने तो भागना बंद कर दिया। उसने तो छोड़ दिया अपने को कि अब तू जहां ले जाए। सांसारिक अभी भी भाग रहा है। उसकी अभी भी निजी मर्जी है। वह कह रहा है कि थोड़ा पैसा और कमा लूं। तेरी इच्छा नहीं है, कोई फिक्र नहीं। तू न साथ दे तो भी कमा लेंगे। उपाय करेंगे, बुद्धि लगाएंगे, चोरी करेंगे, जालसाजी करेंगे। कुछ मार्ग खोज लेंगे। तू न भी दे साथ तो ठीक है। दे दे तो अच्छा। दे दे तो तेरी मर्जी। दे दे तो थोड़ा प्रसाद तुझे भी लगा देंगे। न दे, तू जान! फिर याद रख, मंदिर में पूजा न चढ़ेगी। मंदिर के द्वार बंद करवा देंगे।
हम तो परमात्मा से भी सौदा पटाते हैं। हम तो कहते हैं कि थोड़ा तुझे भी देंगे, तू भी भागीदार हो जा। हमारी योजना है; उसमें तू भी थोड़ा साथ दे तो तू भी पाएगा। नहीं तो हम तो पा ही लेंगे। अगर तूने साथ नहीं दिया तो तू ही वंचित रह जाएगा; फिर पछताना मत। जब हम जीतेंगे तब हमारी लूट का कोई भी हिस्सा तुझे न मिलेगा।
यह आदमी भगोड़ा है। यह जीवन के यथार्थ से भाग रहा है। यथार्थ यही है कि
न तुम्हारे हाथ में तुम्हारा जीवन है, न तुम्हारा जन्म, न तुम्हारी मृत्यु, न तुम्हारा प्रेम। तुम्हारी श्वास आती-जाती है, वह भी तुम्हारे हाथ में नहीं है। वही श्वास लेता है, वही चलता है तुम्हारे भीतर, वही जागता है, वही सोता है। यह तो यथार्थ है। इस यथार्थ से जो भी अन्यथा करने की कोशिश कर रहा है वह पलायनवादी है। और जो इस यथार्थ के साथ एक हो गया, उसको तुम पलायनवादी कहते हो? उसने भागना छोड़ दिया। दादू बिल्कुल ठीक शब्द का उपयोग किए हैं।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं।।
भागेंगे कहां? जहां भी भागेंगे वहीं तुम्हें पाएंगे। भाग कर भी जहां पहुंचेंगे, तुम्हारा ही हाथ होगा।
दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहब एक।
सो हमको क्यूं बीसरै, जे जुग जाहिं अनेक।।
दादू दूजा क्यूं कहै...
दूसरे की बात ही क्या करनी! दूसरे की चर्चा ही क्या उठानी! एक ही है।
... सिर परि साहब एक।
वह कोई हिंदू का परमात्मा और कोई मुसलमान का अल्लाह अलग नहीं। दो की बात क्या करनी! इसलिए दादू नाम भी नहीं देते उसको कुछ--साइयां, प्रेमी, प्रियतम।
दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहब एक।
सो हमको क्यूं बीसरै, जे जुग जाहिं अनेक।।
और चाहे कितने ही युग बीत जाएं, हम उसे भूल न सकेंगे।
यह बात थोड़ी समझने की है। भूल-भूल कर भी न भूल सकेंगे। कोई उपाय ही भूलने का नहीं है। तुम कितनी ही कोशिश करो भूलने की, तुम भूल कैसे सकोगे? क्योंकि वह जो भूलने वाला है वह भी वही है। भागने का उपाय नहीं है उससे। मुझसे लोग पूछते हैं, ईश्वर को कहां खोजें?
मैं उनसे पूछता हूं, तुमने खोया कहां? खोजने के पहले पक्का तो कर लो कि
खो दिया है। अगर पक्का हो जाए तो मुझसे पूछना, मैं तुम्हें रास्ता बता दूंगा। लेकिन जो भी पक्का करने गया कि खोया कहां है, वह एक दिन अचानक पाता है, खोया ही नहीं है।
तुमने भीतर झांका ही नहीं। खोया तुमने कहां है? जो खोया जा सके वह परमात्मा नहीं। इसे परिभाषा समझो। परमात्मा यानी तुम्हारा स्वभाव,

तुम्हारे होने की आत्यंतिक दशा, तुम्हारा गहनतम जीवन, तुम्हारी गहराई, तुम्हारी ऊंचाई। तुम्हारा सब कुछ परमात्मा है।
तुम उसे खोओगे कहां? तुम उसे भूल कहां आओगे? अगर तुम उसे भूल आते तो तुम होते ही कैसे? तुम यहां कैसे आते उसे भूल कर?
वह जो खोज रहा है, वह जो पूछ रहा है परमात्मा कहां है, वही है। खोजने वाले में ही छिपा है। यात्रा के बाद में नहीं है मंजिल; यात्री में है। इसलिए जिस दिन पहचान लोगे, जिस दिन जरा झकझोर दोगे अपने को और जाग जाओगे, वहीं पा लोगे। एक इंच भी कहीं और जाने की जरूरत नहीं है--न काबा, न काशी। एक रत्ती भर भी कुछ करने की जरूरत नहीं है--न पूजा, न पाठ; न मंदिर, न मस्जिद; न त्याग, न तपश्चर्या। सिर्फ जागने की जरूरत है। तुम जो हो, वही हो। जरा झपकी खा गए हो, जरा सो गए हो, जरा सपना देखने लगे हो, लेकिन कुछ भी खोया नहीं है। ऐसे ही जैसे एक सम्राट सो जाए; सपना देखे कि भिखारी हो गया है। सपने में चिल्लाने-चीखने लगे, घबड़ा जाए, रोने लगे, थरथराने लगे। पूछने लगे लोगों से कि मेरे साम्राज्य का क्या हुआ? मेरे सिंहासन का क्या हुआ? मैं भिखारी कैसे हो गया? मुझे मेरा राज्य कैसे वापस मिलेगा? रोने लगे, गांव-गांव पूछने लगे। लोगों से मंत्र और दीक्षा लेने लगे कि कैसे मैं अपने साम्राज्य को वापस पाऊं? और इसी घबड़ाहट में उसकी नींद खुल जाए और वह देखे कि सपना था। महल वहीं के वहीं है। मेरा सम्राट होना वहीं के वहीं है। क्षण भर को मैं कहीं बाहर नहीं गया हूं। सिर्फ एक सपने में हो गया था। परमात्मा को पाने का अर्थ कुछ पाना नहीं है, वरन कुछ छोड़ना है। वह सपना छोड़ना है। परमात्मा को पाने का अर्थ कुछ जोड़ना नहीं है; कुछ जुड़ गया है परमात्मा के साथ, उतना काट देना है। थोड़ी सी नींद है। कुछ पाप नहीं हो गया है। कुछ भूल नहीं हो गई है। कुछ भूल हो नहीं सकती। क्योंकि अगर वही सबके भीतर है तो भूल कैसे हो सकती है? विश्राम हो गया होगा, भूल नहीं हुई है। थोड़ा ज्यादा सो गए हैं। थोड़ी समय से ज्यादा नींद ले ली है। थोड़े सपनों में बहुत दूर निकल गए हैं।
लेकिन सपने में तुम कितने ही दूर निकल जाओ, हजार कोस की यात्रा कर लो, क्या जागने पर फिर हजार कोस वापस लौटना पड़ता है? जागे कि पाया कि वापस ही थे। सोओ पूना में, सपना देखो टिम्बकटू का; जागोगे पूना में ही, टिम्बकटू में नहीं जाग सकते। कुछ ऐसा थोड़े ही है कि जाग कर फिर अब जल्दी भागोगे, हवाई जहाज पकड़ोगे कि अब जाएं पूना।
सोए हो परमात्मा में; जागोगे भी परमात्मा में ही। बीच में सब संसार है। कितने ही टिम्बकटू हैं। कितनी ही लंबी यात्रा है।
दादू दूजा क्यूं कहै, सिर परि साहब एक।
सो हमको क्यूं बीसरै, जे जुग जाहिं अनेक।।
अनेक-अनेक युग बीत जाएं, उसे बिसरने का उपाय नहीं। भूल कर भी भूलने का
उपाय नहीं। खोकर भी खोया न जा सके जो, वही परमात्मा है।
कर्म फिरावै जीव को, कर्मों को करतार।
करतार को कोई नहीं, दादू फेरनहार।।
कर्म फिरावै जीव को...
व्यक्ति भटकता है कर्मों के कारण। वह जो-जो करता है, सोचता है मैंने किए हैं। मैंने किए--और अहंकार निर्मित हुआ। और फिर अहंकार भटकाता चला जाता है।
कर्म फिरावै जीव को, कर्मों को करतार।
और भ्रांति यह है कि कर्मों को चलाने वाला परमात्मा है, तुम नहीं। जिस दिन यह तुम्हें समझ में आ गया कि कर्मों को चलाने वाला वह है, मैं नहीं; कर्ता मैं नहीं हूं, कर्ता वह है; उसी दिन तुम बाहर हो गए नींद के। नींद की कुल कला इतनी है कि तुम सोचते हो, कर्ता मैं हूं।
कर्ता परमात्मा है। जैसे कि कोई कठपुतलियों को नचाता है। धागे छिपे होते हैं भीतर। भीतर छिपा होता है नचाने वाला। धागे तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते। कठपुतलियां नाचती दिखाई पड़ती हैं। न मालूम कितने कृत्य करती हैं। दर्शक धोखा खा जाए, वह तो ठीक है। क्योंकि दर्शक को कुछ पता नहीं कौन पीछे छिपा है; धागे छिपे हैं; कठपुतलियां नाचती हैं, लड़ती हैं, प्रेम करती हैं, विवाह करती हैं, सब होता है। लेकिन कठपुतलियों को भी भ्रांति हो सकती है

अगर होश हो। क्योंकि कठपुतलियों को तो बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ेगा कि धागे पीछे बंधे हैं, कोई पीछे नचा रहा है। कठपुतलियां तो समझेंगी, हम नाचते हैं। वही कहानी जो पत्थर की हुई, कठपुतलियों की होगी।
वही सारे मनुष्य की कथा है भ्रांति की। सारा कृत्य परमात्मा का है, समग्र का है। परमात्मा शब्द न लेना हो, कोई हर्जा नहीं। कृत्य अस्तित्व का है। तुम सिर्फ कठपुतली हो पांच तत्वों से बने। धागे सब पीछे छिपे हैं। उन्हीं धागों के अनुसार सारा खेल चलता है।
लेकिन तुम सोचते हो, कर्ता मैं हूं। बस, तब फिर कर्म तुम्हें भटकाने लगते हैं। तब तुम गहरी नींद में खो गए। जैसे ही समझ लोगे कि कर्ता सिर्फ परमात्मा है--कर्मों को करतार--वही फिरा रहा है कर्मों को, तुम बाहर हो गए। तब तुम कठपुतली की तरह नाचो।
कृष्ण गीता में अर्जुन से यही कह रहे हैं कि तू कठपुतली हो जा। तू यह सोच ही मत कि तू मारने वाला है, कि तू मरने वाला है, कि तू करने वाला है। तू निमित्त हो जा, तू कठपुतली हो जा। उसे खींचने दे धागे, उसे करने दे खेल, तू बीच में मत आ। बस फिर तेरा कोई कर्म नहीं है। फिर कोई कर्म बांधता नहीं है। करतार को कोई नहीं, दादू फेरनहार।।
और परमात्मा के पार कोई भी नहीं है, जो उसे फिरा दे। यद्यपि तुम्हारी चेष्टा न केवल तो यह होती है, तुम यह तो मानते ही हो कि तुम अपने को चलाते हो, तुम परमात्मा को भी चलाने की कोशिश करते हो। जाते हो, प्रार्थना करते हो कि देखो पत्नी बीमार है, इसे ठीक करो। नारियल चढ़ाएंगे, पूजा करेंगे, श्रद्धा करेंगे, प्रार्थना करेंगे। लड़का नहीं है, लड़का दे दो। अदालत में मुकदमा है, जिता दो। तुम परमात्मा को भी फिराने की कोशिश करते हो। तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं परमात्मा को फिराने की चेष्टाएं हैं। इसलिए तो तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं व्यर्थ चली जाती हैं। उनका कोई परिणाम नहीं होता। क्योंकि उनका आधार गलत है। परमात्मा को फिराने की कोशिश तो हद पागलपन हो गई। अपने को चलाते थे, यह मानना ही भ्रांति है, अब तुम परमात्मा को भी चलाने लगे! यह तो तुम मानते ही नहीं कि तुम्हारे धागे उसके हाथ में हैं; तुम्हारी चेष्टा यह है कि उसके धागे भी तुम्हारे हाथ में हो जाएं। और इसको तुम प्रार्थना कहते हो! इसको तुम धार्मिक व्यक्ति कहते हो!
यह अधार्मिक व्यक्ति का लक्षण है। सौ में निन्यानबे प्रार्थनाएं अधार्मिक हैं। धार्मिक प्रार्थना तो वही हो सकती है जो दादू कह रहे हैं-- ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे, अपने बल नाहीं।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं।।
काफी है! अगर इतना ही तुम्हारे हृदय का भाव रोज-रोज उठने लगे, अहर्निश
एक छोटी सी पंक्ति तुम्हारे भीतर गूंजने लगेः
ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे, अपने बल नाहीं।
सबै तुम्हारे हाथि है, भाजि कत जाहीं।।
पर्याप्त है। और क्या प्रार्थना चाहिए?
और ये भी कोई शब्द थोड़े ही दोहराने हैं, यह भाव भर रह जाए गूंजता भीतर;
यह तुम्हारे हृदय पर छा जाए; उठो, बैठो, यह तुम्हारे भीतर रहे। कोई शब्दों में कहने की बात थोड़े ही है। परमात्मा को शब्द से कहने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह तुम्हारे निःशब्द को समझता है; वह तुम्हारे शून्य को भी पहचानता है; वह तुम्हारे मौन को भी पढ़ता है। मुखर होने की बात गलत है। उससे कुछ कहना नहीं है, उसके सामने सिर्फ होना है।
सूफियों में एक कहावत है कि जब फकीर सच में ही प्रार्थना को उपलब्ध होता है तो वह एक भी शब्द का उपयोग नहीं करता--न बाहर, न भीतर। वह सिर्फ खड़ा हो जाता है--चुप।
बायजीद से किसी ने पूछा कि तुम्हारी प्रार्थना क्या है? क्योंकि हमने कभी तुम्हारे मुंह से शब्द निकलते नहीं देखे। तुम भीतर क्या गुनगुनाते हो?
बायजीद ने कहा, बात ही मत करो गुनगुनाने की। उससे छिपा क्या है? उसे बताना क्या है? उसे समझाना क्या है? उससे कहना क्या है? मेरी हालत उस फकीर जैसी है, जो एक बार सम्राट के सामने खड़ा हो गया था--नग्न, फटे कपड़े, सूखी देह, पेट पीठ से लगा, बस आंखों में टिमटिमाता जीवन। सम्राट ने उससे पूछा कि

कहो, क्या चाहते हो? उसने कहा, अगर मुझे देख कर तुम्हें समझ में नहीं आता कि क्या चाहता हूं, तो मेरे कहने से क्या खाक समझ में आएगा! मुझे देखो, इतना काफी है। तो बायजीद ने कहा कि सम्राट भला न समझ पाया हो, लेकिन वह आखिरी सम्राट तो समझ ही लेगा। मैं सिर्फ उसके द्वार पर खड़ा हो जाता हूं।
वह मस्जिद के सामने जाकर खड़ा हो जाता था। घंटों खड़ा रहता था, चला आता था। कभी एक शब्द न कहा, भीतर भी न उठाया। प्रार्थना का शब्दों से कुछ लेना- देना नहीं। प्रार्थना, उसके सामने, तुम जैसे हो वैसे ही खड़े हो जाने का नाम है। तुम जैसे हो अपनी निपट निजता में, नग्नता में, बिना कुछ छिपाए उसके सामने प्रकट हो जाने का नाम है। प्रार्थना एक प्रागट्य है अपने भाव का। अगर दोहराने से न छुटकारा मिलता हो, कुछ न कुछ दोहराने का मन होता हो,
तो दादू का वचन अच्छा हैः ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे। इसको मंत्र बना लेना। इसकी अहर्निश गूंज को गूंजने देना। धीरे-धीरे गूंज रह जाएगी, मंत्र खो जाएगा। फिर गूंज भी खो जाएगी, भाव रह जाएगा। फिर भाव भी खो जाएगा, तुम्हारा शुद्ध अस्तित्व रह जाएगा।
आप अकेला सब करै, औरुं के सिर देई।
दादू सोभा दास कूं, अपना नाम न लेई।।
दादू कहते हैं, कर्ता वही एक है और सभी के सिरों पर बांट देता है।
आप अकेला सब करै, औरुं के सिर देई।
कर्ता अकेला है, लेकिन सभी को मजा दे देता है कि तुम्हें अपना-अपना अहंकार पूरा करना है, कर लो। कोई कहता है कि मैं महाज्ञानी! कर्ता एक है।
कोई कहता है, मैं महापुण्यात्मा! कर्ता एक है; औरुं के सिर देई। कोई कहता है, मैं महात्यागी! कर्ता एक है।
लेकिन ये सिर भारी हुए जा रहे हैं।
इस धोखे में मत पड़ो। जब वह तुम्हारे सिर देने लगे, उससे कहना, तू ही सम्हाल। हमारे सिर मत दे।
दादू सोभा दास कूं...
दास की तो शोभा यही है, दादू!
... अपना नाम न लेई।
कह दे कि मेरा नाम बीच में मत ला। तू ही कर रहा है। तू ही करने वाला, तू
ही न करने वाला। मुझे बीच में मत ला।
अगर तुम यह याद रख सको, अगर यह स्मरण तुम्हारे जीवन में बैठ जाए, एक दीये की तरह जलने लगे भीतर कि जब भी भ्रांति तुम्हें पकड़ने लगे कर्ता की, तत्क्षण छोड़ दो। हंस कर आकाश की तरफ देख लेना और कहनाः फिर! फिर वही! मेरे सिर दिया! तू ही सम्हाल।
थोड़े दिन में दीया ठीक से जलने लगेगा। फिर यह कहने की सोचने की भी जरूरत न रह जाएगी। जो कुछ भी होगा, तुम जानोगे, वही कर रहा है; अच्छा हो, बुरा हो। फिर तुम जब बीच में न रहे तो क्या अच्छा और क्या बुरा! जब सभी उसका है तो अच्छा ही होगा। फिर दोनों नदी के किनारे स्वर्ग हैं। फिर दूसरा किनारा नरक नहीं है।
मैं तुमसे कहता हूं, स्वर्ग के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। नरक आदमी की ईजाद है। स्वर्ग अस्तित्व है। नरक आदमी का ख्याल है। क्योंकि तुम्हें नरक तो बनाना ही पड़ेगा; दुश्मनों को कहां डालोगे? शत्रुओं को कहां डालोगे? कोई जगह तो चाहिए। और इस नरक के साथ तुमने जिस स्वर्ग की कल्पना की है, वह भी झूठ है। क्योंकि वह असली स्वर्ग नहीं हो सकता। असली स्वर्ग में तो नरक है ही नहीं। बुरा तो है ही नहीं। यही तो धार्मिक व्यक्ति की परम क्रांति की दशा है, जहां उसे बुरा दिखाई ही नहीं पड़ता। भला ही है, क्योंकि सभी पर उसी एक का हस्ताक्षर है। सभी स्वर उसके हैं, तो बुरा हो कैसे सकता है?
अगर तुम्हें बुरा भी दिखाई पड़ता हो तो समझना कि अपनी आंख की ही कोई भूल होगी, अपनी दृष्टि की कोई भूल होगी, अपनी व्याख्या की कोई भूल होगी। लेकिन बुरा हो नहीं सकता।
जिस दिन तुम्हें शुभ ही शुभ दिखाई पड़ने लगे, उस दिन तुम परमात्मा को उपलब्ध हुए। उस दिन तुमने वह भवन खोज लिया जिसका नाम नेति-नेति है--न यह, न वह। द्वंद्व गया। अद्वैत का स्वाद आना शुरू हुआ। और वही एक स्वाद पा लेने जैसा है। और सब स्वाद तुम पाते रहो, वे कोई भी स्वाद तुम्हें तृप्त न कर

सकेंगे। परितृप्ति उन स्वादों में नहीं है। उस एक स्वाद को पाकर ही सारी भूख मिट जाती है, सारी स्वाद की आकांक्षा मिट जाती है। उस गहन परितोष की उपलब्धि होती है, जिसका कोई अंत नहीं है।
आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
छठवां प्रवचन

तथागत जीता है तथाता में

पहला प्रश्नः क्या झेन संत बोकोजू का अपनी मृत्यु का पूर्व-नियोजन तथाता के विपरीत नहीं था?

ऊपर से देखने पर लग सकता है। लेकिन संतों को जो भी ऊपर से देखेगा, वही उन्हें देखने से वंचित रह जाएगा। संत को देखने का वह ढंग ही नहीं है। संत को देखने की दृष्टि और ढंग मूलतः और प्रकार का है। गौर से बोकोजू में देखोगे, तो न तो वहां किसी संत को पाओगे और न किसी बोकोजू को। यही संत का होना है कि वह शून्य है।
मृत्यु का पूर्व-नियोजन किया नहीं; जो हुआ, उसे होने दिया। यह घटना जो घटी कि मृत्यु के पहले बोकोजू उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मुझे मरघट तक चलने दो, क्योंकि मैं न चाहूंगा कि किसी के कंधे पर लद कर जाऊं। मेरी मृत्यु तक मुझे ही जाने दो। मेरा जीवन था, मृत्यु भी मेरी हो। और वह मरघट तक गया। उसने अपने हाथ अपनी कब्र खोदी, लेट गया और उसके प्राण विसर्जित हो गए। ऊपर से देखने पर लगेगा कि यह तो कर्ता की बात हो गई। भीतर से देखने पर कर्ता का कोई सवाल नहीं है। ऐसा बोकोजू को हुआ। उस क्षण ऐसी ही भाव-दशा बनी, ऐसा ही फूल खिला।
हां, बोकोजू अगर सोचता कि यह तो पूर्व-नियोजन हो जाएगा, यह मुझे नहीं करना, तो कर्ता पैदा हो जाता; तो तथाता से चूक जाता। अगर वह कहता कि यह बात लोग सोचेंगे पीछे, ऐसा करना उचित नहीं, कभी किसी ने किया नहीं। वह जो आविर्भाव हुआ था, उससे भिन्न अगर वह विचार करता और तय करता, निर्णय लेता बुद्धि से, तो तथाता के विपरीत होता। लेकिन जो हुआ वह होने दिया। जैसे वृक्ष में फूल खिलता है, ऐसा उस घड़ी यह भाव बोकोजू में खिला।
एक साधक अपने गुरु के पास था। उसने वर्षों तक गुरु ने जैसा कहा वैसा
ही किया। जितनी प्रार्थना करनी थी उतनी प्रार्थना की--दिन में पांच बार। सूफी फकीर का शिष्य था। उसकी दूर-दूर तक ख्याति हो गई। हजारों लोग उस शिष्य को भी सदगुरु की तरह मानने लगे। लेकिन गुरु ने कभी उसकी प्रशंसा न की; एक बार भी उसके सम्मान में एक शब्द न कहा। और ऐसा नहीं था कि गुरु शब्दों में कृपण था; जब भी वह किसी में कुछ घटते देखता तो जरूर दो प्रशंसा के शब्द उसके मुंह से निकलते थे। लोग चकित थे कि और पीछे आने वाले लोग भी स्वीकृत-सम्मानित हुए; लेकिन जिसकी सर्वाधिक ख्याति है, उसके संबंध में गुरु ने एक शब्द भी न कहा।
और एक दिन ऐसा हुआ कि सुबह की प्रार्थना चूक गया शिष्य। पहली प्रार्थना, पहली नमाज में न आया। और जब दोपहर को लौटा, तो गुरु ने पहली दफे उसकी तरफ प्रशंसा से देखा, और कहा कि जो होना था वह आज हुआ।
लोग तो चकित हुए। उन्होंने कहा, यह कौन सा गणित है? आज तो हम सोचते थे
कि यह आपकी नजर से और भी गिर जाएगा। कभी उठा ही न था आपकी नजर में, और आज तो और गिर गया।
पर गुरु ने कहा, नहीं। यह प्रार्थना तो करता था; लेकिन करनी चाहिए इसलिए करता था। यह सहज न था। इसकी प्रार्थना भीतर से आविर्भूत न होती थी। नियम था, पालन करता था। आज पहली बार यह सहज हुआ। अब इससे जो प्रार्थना होगी वही प्रार्थना है।
नियम से कहीं प्रार्थना हुई है? विधि-विधान से कहीं पूजा हुई है? कर्तव्य पूरा हो जाता है; लेकिन हृदय का आवेदन कैसे होगा? हृदय कहीं बंधे हुए नियमों को मान कर चलता है? हृदय के अपने ही ढंग हैं। गुरु ने कहा, आज यह सरल हुआ। आज नियम के कारण नहीं आया है। आज जब इसकी सरलता ही इसे ले आई है तब आया है। आज अपने कारण नहीं आया है; आज परमात्मा ही ले आया है तब आया है। बस आज से पुराना आदमी मरा, नये का जन्म हुआ।
ऊपर से देखने पर हमें लगेगा कि बोकोजू तो तथाता में नहीं चल रहा है; यह
तो आयोजन कर रहा है।

तथाता अगर आयोजन करा रही है, तो आयोजन कर रहा है; तथाता अगर न कराएगी आयोजन, तो न करेगा। तुम बाहर से न जांच सकोगे। बात तो भीतर की है। करने वाले का भाव न हो, तो जो भी होगा वह तथाता से हो रहा है। करने वाले का भाव हो, तो जो भी होगा वह अहंकार से घटित हो रहा है। तुम करने वाले हो। तुम कैसे जांचोगे बाहर से? तुम तो एक ही बात जानते हो कि अगर कोई जाता है, तो जाना चाहता होगा इसलिए जाता है; करता है, तो करना चाहता होगा इसलिए करता है; उठता है, तो उठना चाहता होगा इसलिए उठता है। अपने आप तो तुमने जीवन में कुछ होने नहीं दिया। सहज से तो तुम्हारा कोई संबंध नहीं बना। तुमने तो सब किया है।
तुमने तो जीवन की ऐसी अनूठी बातें, जो की ही नहीं जा सकतीं, वे भी की हैं। प्रेम किया है। घर लौटे हो तो पत्नी के प्रति प्रेम दर्शाया है, बच्चे की पीठ ठोंकी है। वह भी तुम कर रहे हो। वह भी तुमसे हो नहीं रहा है। उसका भी आविर्भाव नहीं हो रहा है। वह भी ऐसा नहीं है कि तुम अगर न करते तो भी होता; तुम न करते तो होता ही नहीं। तुम अगर न मुस्कुराते तो मुस्कुराहट न आती। कोई मर गया है, तुम अगर चेष्टा न करते तो आंसू न बहते; तुमने चेष्टा की है तो आंसू बहे हैं।
आंसू और प्रेम और मुस्कुराहट जैसी अनूठी घटनाएं भी तुम्हारे कृत्य से
हो रही हैं। इसलिए तुम बाहर से बोकोजू जैसे व्यक्तियों को न पहचान पाओगे। उनको पहचानना हो तो तुम्हें थोड़ी सी उनकी दुनिया में प्रवेश करना होगा। एक बार ऐसा करो कि चौबीस घंटे के लिए कर्ता-भाव से छुट्टी ले लो। वही छुट्टी सार्थक है, और कोई छुट्टी सार्थक नहीं। तुम करने से तो बहुत बार छुट्टी ले लेते हो कि आज दफ्तर न जाएंगे, कि आज दुकान न खोलेंगे। कर्म से तो तुम बहुत बार छुट्टी ले लेते हो। लेकिन वह कोई छुट्टी है! तुम चौबीस घंटे के लिए एक बार कर्ता से छुट्टी ले लो कि चौबीस घंटे अब जो होगा वही होने देंगे, हम न करेंगे। शायद कुछ बातें घटें उन चौबीस घंटों में, जो अपने आप हों।
तब तुम्हें पहली दफा स्वाद मिलेगा कि जब अपने आप कोई बात होती है तो कैसी होती है। उसकी गंभीरता और! उसका सौंदर्य और! उसकी गहराई और! वह इस जगत की ही नहीं है। वह किसी और लोक से आती है और तुम पर आविष्ट हो जाती है। परमात्मा तुम्हें उठाता है, चलाता है, बिठाता है। तुम न उठते, तुम न चलते, तुम न बैठते।
लेकिन इसका स्वाद न हो तो नहीं होगा। तुम कभी कोशिश करो। चौबीस घंटे में कुछ बिगड़ न जाएगा, संसार बरबाद न हो जाएगा। चौबीस घंटे में कुछ भी हानि न होगी। अगर चौबीस घंटे में एक क्षण को भी ऐसा हो गया कि कर्ता न रहा; तुम उठे--उठाए गए; बैठे--बिठाए गए; तुम्हारे भीतर कोई सोच-विचार, योजना न रही। भूख लगी--तुमने भोजन मांगा। प्यास लगी--तुमने पानी पीया। नींद आई--तुम सो गए; तो शायद तुम बोकोजू को थोड़ा समझ पाओ; तो ही शायद तुम दादू को समझ पाओ।

दूसरा प्रश्नः किसी और ने इस संबंध में पूछा है। दादू कहते हैं--ज्यूं राखै त्यूं रहेंगे, अपने बल नाहीं। इसी तरह का एक पद संत मलूक का है--
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम।।
और यह लोकप्रिय पद हम तमाम आलसी लोगों के लिए नारा बन गया है। क्या संत मलूक भी सही हैं?

संत मलूक ही सही हैं। लेकिन उन्हें समझना बहुत कठिन है। आलसियों ने नारा बना लिया है, क्योंकि मनुष्य तो सत्य से भी अपने असत्य को ही सहारे खोजता है। मनुष्य तो धर्म में से भी धन को ही खोदने की चेष्टा करता है। मनुष्य तो प्रेम के आधार पर भी घृणा के ही संप्रदाय निर्मित करता है। मनुष्य तो असीम की भी बात सुनता है तो सीमा को बनाता है। इसमें कोई दास मलूक का कसूर नहीं। दास मलूक तो शुद्धतम सत्य कह रहे हैं, सभी संतों का सार कह रहे हैं। और जिस ढंग से मलूक ने कहा है, किसी ने भी नहीं कहा है।
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सब के दाता राम।।

वे कह रहे हैं कि अजगर चाकरी नहीं करता, फिर भी भोजन तो मिल ही जाता है। पक्षी काम नहीं करते, फिर भी जीते तो हैं ही, और मनुष्य से बेहतर जीते हैं। तो एक बात तो सुनिश्चित है--मलूक कहते हैं--कि देने वाला राम है। अगर तुम करने वाले न भी बनो तो भी देना जारी है। चाकरी नहीं कर रहा अजगर, उसको मिल रहा है। पक्षी काम नहीं कर रहे हैं, वे भी पा रहे हैं। तुम करते हो, इसलिए मिलता है--यह तुम्हारी भ्रांति है। क्योंकि यहां चारों तरफ बिना किए भी मिल रहा है। तुम न करो तो भी मिलेगा।
लेकिन न करने का मतलब आलस्य नहीं है। वहीं थोड़ा सा फर्क है। जब तुम मलूक को पढ़ते हो तो तुम सोचते हो, कर्म छोड़ने की बात कह रहे हैं। मलूक कर्ता को छोड़ने की बात कह रहे हैं। वही छुट्टी, जो मैंने तुमसे कही। बस उतना सा फर्क हो जाता है--कर्म और कर्ता। मलूक कह रहे हैं, कर्ता-भाव छोड़ो। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम कुछ भी न करोगे; बहुत कुछ होगा, करने वाले तुम न रहोगे।
पक्षी काम नहीं करते?
एक अर्थ में नहीं करते। क्योंकि न तो किसी एम्पलायमेंट दफ्तर के सामने क्यू लगा कर खड़े होते हैं, न कहीं कोई अर्जी देते हैं; न कोई वर्दी पहन कर पुलिस में भर्ती होते हैं कि मिलिट्री में खड़े होते हैं; न हर महीने तनख्वाह लेने जाते हैं, न कोई तनख्वाह मिलती है; न कोई पदोन्नति होती है, न किसी की खुशामद करते हैं; न कोई सीनियारिटी है, न कोई जूनियारिटी है; कुछ भी नहीं है।
लेकिन इसका यह मतलब मत समझना कि पक्षी काम नहीं करते। सुबह से सांझ तक काम में लीन हैं। पक्षियों को देखो! घोंसला बना रहे हैं, घास-पात ला रहे हैं, भोजन जुटा रहे हैं--काम तो चल रहा है, कर्ता नहीं है। अजगर भी किसी की चाकरी नहीं करता, अपने भोजन की तलाश तो करता ही है; हिलता-डुलता है, चलता- फिरता है, खोजबीन करता है। लेकिन कर्ता का भाव नहीं है।
मलूक इतना ही कह रहे हैं कि पूरी प्रकृति बिना कर्ता के भाव के चल रही है। परमात्मा उसे चलाता है। तुम नाहक बोझ लिए हो। तुम भी ऐसा ही चलो जैसे पक्षी चलते हैं।
इसका यह मतलब नहीं है कि तुम काम मत करना; इसका इतना ही मतलब है, काम तुम परमात्मा को करने देना तुम्हारे द्वारा, तुम मत करना। परमात्मा करने लगे काम तुम्हारे माध्यम से। वही कर रहा है, तुम्हें समझ में आ जाए--बस इतना ही फर्क है। तो तुम्हारा बोझ चला जाएगा, चिंता मिट जाएगी। काम तो जारी रहेगा, चिंता और बोझ और भार, तुम्हारी थकान, तुम टूटे-टूटे हुए जा रहे हो--उतना भर विसर्जित हो जाएगा। तुम्हारे जीवन में तब काम एक खेल होगा। तब तुम्हारे भीतर कर्ता का अहंकार न होने से वजन नहीं होगा, तुम निर्भार होओगे; तुम पक्षियों की भांति उड़ सकोगे, फूलों की भांति खिल सकोगे।
यह संदेश आलस्य का नहीं है; यह संदेश अकर्ता-भाव का है। और मलूक ठीक कह रहे हैं, सभी संतों का सार कह रहे हैं।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि मन के पार हुए बिना मुक्ति संभव नहीं। इस संदर्भ में कृपापूर्वक बताएं कि साधक या भक्त के लिए मन का कोई विधायक उपयोग है अथवा नहीं!

यही विधायक उपयोग है कि उसको सीढ़ी बनाओ और उसके पार हो जाओ। इससे अन्यथा कुछ भी किया तो नकारात्मक उपयोग हो जाएगा। अगर मन मंजिल हो गई और तुम वहीं रुक रहे सीढ़ी पर, तो तुमने आत्महत्या कर ली; तुम जीवन को कभी जान ही न पाओगे।
मन का इतना ही उपयोग है कि उसे पार कर जाओ। गुजरो उससे जरूर, क्योंकि
इस सीढ़ी से गुजरना ही होगा। रुको मत। गुजरो पूरी तरह, पूरे होश से, ताकि इस सीढ़ी का पूरा अनुभव हो जाए और वापस लौट-लौट कर इस सीढ़ी को देखने की इच्छा न हो। पीछे लौटने का मन ही न हो, इस तरह चलो। क्योंकि पीछे लौट कर देखने का मन भी यही कहता है कि तुम जहां से गुजर गए, वहां पूरी तरह अनुभव नहीं हो पाया, कुछ अधूरा रह गया, कुछ अपरिपक्व रह गया, कुछ होने-होने को था, हो नहीं पाया--तो फिर तुम पीछे लौट कर देखोगे।

यह जो पुनर्जन्म की जीवन-चिंतना है, वह इतनी ही है--वह पीछे लौट-लौट कर देखना है। तुम गुजरे बहुत बार जीवन से, लेकिन भोग न पाए; मन में खटक रह गई; ऐसा लगता ही रहा कि अभी कुछ और मिलने को था। थोड़ा और धन मिल जाता तो सुख मिलता, थोड़ा और पद मिल जाता तो आनंद मिलता, थोड़ी देर और जी लेते, थोड़ी देर और युवा रह लेते, तो शायद सुख की थोड़ी सी प्रतीति होती--बस ऐसा पीछे लौट कर देखने का मन रह गया। जिस दृश्य से तुम गुजर गए, गुजर न गए, आंखें अटकी ही रहीं, पीछे तुम देखते ही रहे; चले आगे को, देखा पीछे को--यही पुनर्जन्म का सिद्धांत है। लौट तुम आओगे। तुम अपने ही हाथ से लौटने का इंतजाम कर रहे हो। वापस-वापस उसी गड्ढे में गिरते रहोगे, जब तक कि तुम इस गड्ढे से पूरी तरह मुक्त न हो जाओ। और मुक्त होने का एक ही ढंग है कि तुम इसे पूरा का पूरा अनुभव कर लो। अनुभव के अतिरिक्त कोई मुक्ति नहीं है।
मैं त्याग को मुक्ति नहीं कहता; मैं भोग को मुक्ति कहता हूं।
उपनिषदों ने कहा हैः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। उन्हीं ने त्यागा जिन्होंने भोगा।
यह वचन बड़ा क्रांतिकारी है। क्योंकि जिसने भोगा ही नहीं वह त्यागेगा कैसे! तुम बिना भोगे भी त्याग सकते हो; तब तुम लौट आओगे। तुम्हें वह दृश्य पीछा करता रहेगा। अनभोगा रस तुम्हें बुलाएगा, बार-बार उसी जगह बुलाएगा। तुम लाख उपाय करो, तुम कुछ कर न पाओगे; तुम्हें आना ही पड़ेगा। शरीर चलता जाएगा, मन पीछे लौटता रहेगा। लेकिन अगर तुमने किसी बात को पूरा भोग लिया, जान लिया, सब पहलुओं से पहचान लिया, कुछ छोड़ा नहीं, निचोड़ लिया सारा सार, देख लिया पूरा का पूरा, कुछ देखने को न बचा--तो लौट कर आने का सवाल कहां? लौट कर देखोगे भी क्यों? वहां से मुक्ति हो गई। जो जान लिया, उसी से मुक्त हो गए।
ज्ञान मुक्ति है। अनुभव मुक्ति है। और जो अनुभव में जल्दी करेगा, कच्चा भागना चाहेगा, वह फिर लौट आएगा। ऐसे देर ही होगी। ऐसे ही तो अनंत जन्मों की देर हो गई है।
तो मन का एक उपयोग है, और वह है, उसके पार होना। जल्दी में उसे छोड़ना मत। नहीं तो छूटेगा नहीं। कोई जल्दी नहीं है। ठीक से पहचान लो, ठीक से जान लो। मन को ठीक से देख लो। जितना तुम जानोगे, जितना देखोगे, उतना ही पाओगे-- रेत है। इस रेत से हम तेल निकालने की चेष्टा कर रहे हैं। जिस दिन यह तथ्य पूरी तरह आत्मसात हो जाएगा कि रेत से तेल नहीं निकलता, मन से शांति नहीं मिलती, उसी दिन तुम मुक्त हो गए, मन के पार हो गए। विधायक उपयोग यही है मन का। उसकी सीढ़ी बनाओ। उस पर पैर रखो और आगे निकल जाओ।
व्यर्थ नहीं है मन। कोई सीढ़ी व्यर्थ नहीं है। लेकिन तुम उस पागल की तरह हो, जो सीढ़ी को पकड़ लिया। भला सीढ़ी सोने की हो, हीरे-जवाहरात जड़ी हो, तो भी सीढ़ी सीढ़ी है। उस पर बैठ कर तुम रोते रहोगे, उस पर बैठ कर तुम नाच न सकोगे। यात्रा करनी है, आगे जाना है।
मन एक पड़ाव है, उससे गुजर जाओ। वह एक सेतु है, उस पार जाना है। बीच सेतु
पर मत बैठ रहो। अन्यथा बहुत धक्के-मुक्के खाओगे, क्योंकि हजारों लोग गुजर रहे हैं सेतु से। तुम्हें कभी शांति न मिलेगी, चैन न मिलेगा।
मन को ठीक से पहचानते ही ध्यान का जन्म होता है। मन ध्यान के आगे की सीढ़ी है। ध्यान पर भी रुकना नहीं है। क्योंकि ध्यान पर जो रुक गया, वह समाधि तक न पहुंच पाएगा। समाधि तक पहुंचना है। समाधि का अर्थ होता हैः समाधान हो गया, अब कुछ प्रश्न न रहा, न कोई जिज्ञासा रही, न कोई अनुभव करने की आकांक्षा रही, न कोई जिजीविषा रही--सब शांत हो गया। समाधि का अर्थ हैः सभी लहरें झील में शांत हो गईं, कोई तरंग नहीं उठती, झील परिपूर्ण मौन है। इस समाधि की अवस्था में ही सत्य का, परमात्मा का, साइयां का मिलन है।
मन से जाना है ध्यान पर, ध्यान से जाना है समाधि पर।
ये तीन अवस्थाएं हैं। तुम अभी मन पर खड़े हो। अगर तुमने मन को ही पकड़ लिया और समझा कि यही सब कुछ है--तुम रोओगे, दुखी होओगे, नरक भोगोगे। इसलिए तो सभी ज्ञानी पुरुष तुम्हें मन से ध्यान की तरफ खींचना चाहते हैं। ध्यान मन की कोई क्रिया नहीं है, मन का शांत हो जाना है। मन का अभाव है ध्यान। जैसे एक कांटे को हम दूसरे कांटे से निकाल लेते हैं, ऐसे ही मन के कांटे को ध्यान के कांटे से निकाल लेते हैं। लेकिन फिर दूसरे कांटे को भी

सम्हाल कर रखने की जरूरत नहीं। वह भी बेकार हो गया। फिर दोनों कांटों को फेंक देते हैं।
बहुत नासमझ, अधिक नासमझ, मन से जकड़े हुए हैं। फिर तुम्हारे साधु- संन्यासी हैं, वे ध्यान से जकड़े हुए हैं। उन्होंने पहला कांटा तो छोड़ दिया, वह बाजार का कांटा तो छोड़ दिया, आश्रम का कांटा पकड़ गया। दुकान का कांटा छोड़ दिया, मंदिर का कांटा पकड़ गया। बही-खाते का कांटा छूट गया, गीता- कुरान-बाइबिल का कांटा पकड़ गया। मन के कांटे से किसी तरह छुटकारा किया बामुश्किल, अब वह जिस कांटे से मन के कांटे को निकाला है, अब उसकी पूजा जारी है, अब उसको उन्होंने घाव में रख लिया है। वह उतना ही कांटा है। उसे धन्यवाद दो, उसे भी फेंक दो। जिस दिन मन और ध्यान दोनों ही फिंक जाते हैं, उस दिन समाधि।
समाधिस्थ व्यक्ति ध्यान करता नहीं। मन ही न रहा तो अब ध्यान का क्या सवाल है? बीमारी ही न रही तो औषधि का क्या करेंगे? जिस दिन तुम्हारी बीमारी ठीक हो जाती है, तुम औषधि की शीशी को कचरे में फेंक आते हो। क्या करोगे औषधि का?
ध्यान औषधि है। और जब बीमारी और औषधि दोनों ही चली गईं... क्योंकि कुछ पागल ऐसे हैं कि बीमारी चली जाए तो औषधि की बोतल छाती से लगाए घूम रहे हैं। यह एक नई बीमारी हो गई। अब वे कहते हैं, हम यह बोतल न छोड़ सकेंगे, क्योंकि इस बोतल ने बड़ा सहारा दिया।
माना कि सहारा दिया, धन्यवाद दो और छुटकारा पाओ। अन्यथा तुमने बीमारी
की जगह फिर कुछ पकड़ लिया। थोड़े दिन में यह बोतल ही बीमारी हो जाएगी। थोड़े दिन में ध्यान ही फिर तुम्हारा मन बन जाएगा। क्योंकि यह भी कांटा है, यह भी घाव पैदा करेगा।
इसलिए बुद्धपुरुषों ने कहा है, जब ध्यान का काम पूरा हो जाए, एक क्षण रुकना मत, ध्यान को फेंक देना। उस पर मोह मत करना। संसारी मन पर मोह करता है, साधक ध्यान का मोह करने लगता है। धार्मिक वही है जो दोनों को छोड़ देता है। तब समाधि है।

चौथा प्रश्नः आपने कहा, अस्तित्व एक दर्पण है जिसमें हम अपने को ही देखते हैं। पाप-पुण्य, अशुभ-शुभ, दुख-सुख, नरक-स्वर्ग, सब हमारे ही प्रक्षेपण हैं। यदि यह सच है, तो सर्वथा शुद्ध और शून्य हो गए संतों को हम सांसारिकों की पीड़ा, पाप और नरक कैसे दिखाई पड़ते हैं?

बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ते। यही तो उलझन है। जिसको दिखाई पड़ता हो, वह तुम्हारी ही दुनिया का हिस्सा है। इसलिए जिन संतों को तुम्हारा नरक, दुख और पीड़ा दिखाई पड़ती हो, वे अभी संत नहीं हैं जानना। वे तुम्हारा दुख मिटाने की चेष्टा करेंगे। जैसे तुम दुख मिटाने की चेष्टा कर रहे हो, वे भी तुम्हारा दुख मिटाने की चेष्टा करेंगे। वे बड़े सेवक बन जाएंगे, महात्मा हो जाएंगे। लेकिन संत नहीं हैं। क्योंकि भूल तो वही है।
तुम्हें भूल है कि तुम दुख में हो; और वे भी उसी भूल में हैं कि तुम दुख में हो। तुम्हारी भी भूल यही है कि यह दुख कैसे मिटे; और उनकी भी भूल यही है कि तुम्हारा दुख कैसे मिटाया जाए। तुम इन संतों की बड़ी पूजा करोगे, क्योंकि वे बड़े सेवक होंगे। लंगड़े-लूलों के हाथ-पैर दबाएंगे, अंधों की सेवा करेंगे, बीमारों की चिकित्सा करेंगे, दीन-दरिद्र के लिए फिक्र करेंगे। वे चौबीस घंटे सेवा में रत रहेंगे। भले लोग हैं, लेकिन संत नहीं। भला होना संतत्व के लिए काफी नहीं है। संतत्व बहुत बड़ी घटना है; भले-बुरे से बहुत दूर है। नेति-नेति का भवन है, दोनों किनारों के पार है।
तुम संत को समझने में बड़ी अड़चन पाओगे। क्योंकि संत को यह दिखाई पड़ता
है कि तुम दुख में नहीं हो, तुम माने हुए हो। उसे तुम्हारा दुख दिखाई ही नहीं पड़ता। तुम्हारी अवस्था संत के सामने ऐसे है जैसे सन्निपात में पड़े हुए, बुखार में डूबे हुए आदमी की। वह आदमी चिल्लाता है कि मेरी खाट आकाश में उड़ रही है। तुम क्या करोगे? तुम उसकी खाट पकड़ कर जमीन पर ठोंकने की कोशिश करोगे? खूंटियों से बांधोगे? तुम जानते हो कि यह आदमी सन्निपात में

है; खाट कहीं उड़ नहीं रही है, खाट जमीन पर रखी है। तुम इस आदमी को होश में लाने की कोशिश करोगे, खाट पकड़ने की कोशिश नहीं करोगे।
सेवक, जिनको तुम महात्मा कहते हो, वे खाट को पकड़े हुए हैं। जो इस सन्निपात में पड़े आदमी की भ्रांति है कि मैं दुख में हूं, वही उनकी भी भ्रांति है। वे भी मानते हैं कि यह ठीक कह रहा है। लेकिन वास्तविक जिसको बोध हुआ है, वह देख रहा है कि कहीं खाट नहीं उड़ रही है। तुम्हें होश में लाना है। तुम्हारे बुखार को कम करना है। तुम जब होश में आओगे, तब तुमको भी दिखाई पड़ जाएगा कि खाट नहीं उड़ रही है, कोई दुख नहीं है।
तो वास्तविक संतपुरुषों ने सेवा नहीं की है, सत्संग किया है। वास्तविक संतपुरुषों ने तुम्हारा दुख नहीं मिटाया है, तुम्हारे चित्त को जगाया है। यह बड़ी अलग बात है।
बुद्ध ने या महावीर ने या कृष्ण ने किसकी सेवा की है? तुम उनको सर्वोदयी नहीं मान सकते हो। किसकी सेवा की है? बुद्ध को तुमने कभी अस्पताल में देखा? कि तुमने उन्हें भूदान करते-करवाते देखा? नहीं, सच तो यह है, अब सर्वोदयी ढंग से सोचने वाले लोग कहते हैं, इसका मतलब है कि बुद्ध के संतत्व में थोड़ी कुछ कमी है। क्योंकि संत तो सेवक होगा। वह तो जी-जान लगा देगा, कुर्बान हो जाएगा--तुम्हारा दुख मिटाने को।
लेकिन बुद्ध ने ऐसा कुछ किया नहीं। कारण? कारण साफ है। बुद्ध ने तुम्हें जगाने की कोशिश की है। क्योंकि बुद्ध को तो दिखाई ही नहीं पड़ता कि कहीं दुख है। दुख तुम्हें दिखाई पड़ रहा है। बुद्ध तुम्हारी दृष्टि में सहभागी नहीं हो सकते।
ऐसा ही समझो कि मैं बैठा हूं और मुझको दिखाई पड़ रहा है कि एक रस्सी पड़ी है। तुम वहां दूर खड़े हो और चिल्ला रहे हो कि सांप! सांप! अब दो ही उपाय हैं। या तो मैं भी लकड़ी लेकर तुम्हारे साथ सांप को मारने निकल चलूं। और मुझे दिखाई पड़ रहा है कि सांप वहां है नहीं, केवल रस्सी पड़ी है। अगर मैं तुम्हारे दुख को मिटाने में लग जाऊं तो उसका मतलब यह है कि मैंने लकड़ी उठा ली और तुम्हारे साथ चल पड़ा सांप को मारने। तुम्हें सांप दिखाई पड़ रहा है, यह सच है। तुम्हारी पीड़ा भी मैं समझता हूं। लेकिन लकड़ी उठा कर तुम्हारे साथ न चलूंगा। ज्यादा से ज्यादा लालटेन लेकर तुमसे कहूंगा, आओ, थोड़ा चल कर देख लें, सांप है भी? अगर होगा तो लकड़ी उठा लेंगे। पर इस लालटेन से पहले ठीक पहचान हो जाए।
संतपुरुषों ने तुम्हें ध्यान दिया है, बोध दिया है, होश दिया है। ताकि तुम ठीक से देख लो कि दुख है? या कि दुख तुम्हारी मान्यता है? नरक है? या नरक तुम्हारे भीतर घिरे हुए भय का नाम है? तुम्हें कोई सता रहा है? या कि तुमने मान रखा है कि तुम सताए जा रहे हो? यह तुम्हारी विक्षिप्तता है। वास्तविक गहराई में तुमने न तो कभी दुख पाया है, न तुम्हें दुख दिया जा सकता है।
इसलिए कृष्ण गीता में कहते हैं, न हन्यते हन्यमाने शरीरे। शरीर भी काट डाला जाए तो तुम्हें काटा नहीं जा सकता। अग्नि में जलाया जाए तो तुम्हें जलाया नहीं जा सकता। शस्त्रों से छेदा जाए तो तुम्हें छेदा नहीं जा सकता। तो तुम्हें दुख कैसे दिया जा सकता है? तुम दुखी हो कैसे सकते हो? दुखी होना असंभव है। लेकिन तुम दुखी हो, यह मैं देखता हूं।
संत को तुम्हारा दुख दिखाई नहीं पड़ता; तुम दुखी हो, इतना दिखाई पड़ता है। इस फर्क को ठीक से समझ लेना। उसे यह दिखाई पड़ता है कि तुम काफी शोरगुल मचा रहे हो, हाथ-पैर पीट रहे हो, डूब रहे हो; नदी कहीं नहीं दिखाई पड़ती जिसमें तुम डूब रहे हो। चिल्लाते तुम दिखाई पड़ते हो, उछलते-कूदते हो कि मारा, मरा! कि डूबा, बचाओ! लेकिन नदी कहीं नहीं दिखाई पड़ती। किसी स्वप्न की नदी में तुम डूबते हो। तुम्हारी चिल्लाहट, तुम्हारी पुकार उसे सुनाई पड़ती है।
अब दो उपाय हैंः या तो संत भी कूद पड़े नदी में जो है ही नहीं; तब वह सर्वोदयी हो गया। या संत तुम्हें जगाने की कोशिश करे कि सपना है, एक दुखस्वप्न तुम देख रहे हो।
लेकिन तुम भी पसंद करोगे कि संत भी कूद पड़े तुम्हारी नदी में।
क्योंकि तब तुम्हें लगेगा कि इसमें दया है, करुणा है। संत वहीं बैठा रहे

नदी के किनारे पर--तुम्हारी नदी के, क्योंकि उसके लिए तो कोई नदी है नहीं-- और वह मुस्कुराता रहे और कहे कि ठीक है, थोड़ा और उछल-कूद करो, थोड़ी देर में समझ आएगी। तो तुम कहोगे, यह आदमी दुष्ट है।
बुद्धपुरुष तुम्हें कठोर मालूम पड़े हैं, क्योंकि तुम्हारे दुख की दुनिया में उतर नहीं आते। ठंडे मालूम पड़े हैं, पिघलते नहीं। तुम इतनी पीड़ा से भरे हो और ये सच्चिदानंद की बात करते चले जाते हैं! संसार इतने दुख में है... ।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, संसार इतने दुख में है और आप ध्यान की बात कर रहे हैं? पहले दुख मिटना चाहिए।
संसार सदा से दुख में है। और अगर पहले दुख मिट सकता होता तो मिट गया होता। पहले ध्यान होगा तो ही दुख मिट सकता है, दूसरा कोई उपाय नहीं है। क्योंकि दुख होता तो मिट भी जाता। दुख है नहीं; मान्यता है, बड़ी गहरी मान्यता है। ऐसा ही नहीं कि गरीब दुखी है, अमीर भी दुखी है। ऐसा ही नहीं कि जिनके पास कुछ नहीं है, वे दुखी हैं; जिनके पास सब कुछ है, वे भी दुखी हैं। तो होने न होने से दुख का कोई संबंध मालूम नहीं पड़ता; झोपड़े-महल से कोई संबंध मालूम नहीं पड़ता; दृष्टि से मालूम पड़ता है, बेहोशी से मालूम पड़ता है। और अगर बेहोशी है, तो अब दो उपाय हैंः या तो तुम्हारे दुख को मिटाया जाए, जो कि बेहोशी से पैदा हो रहा है। तो हम उस दुख को मिटाते रहेंगे, और दुख पैदा होता रहेगा। एक मिटाएंगे, दो दुख पैदा हो जाएंगे। पत्ते काटेंगे, नये पत्ते निकल आएंगे। वृक्ष समझेगा कि कलम की जा रही है, और प्रसन्नता से पत्ते पैदा करने लगेगा।
तो संसार में दुख मिटाने वाले लोग भी सदा से रहे हैं। वे अपनी कोशिश करते रहते हैं मिटाने की, दुख मिटता नहीं।
एक दूसरा वर्ग है, छोटा सा वर्ग है--जागे हुए व्यक्तियों का--जो देखता
है कि जड़ कहां है! जड़ तुम्हारी मूर्च्छा में है। वह तुम्हारे दुख की चिंता नहीं करता। दुख है ही नहीं जिसकी चिंता करनी पड़े। वह तुम्हारी मूर्च्छा की फिक्र करता है। वह मूर्च्छा को काटता है।
लेकिन तुम्हें भी उसका काम काम जैसा नहीं मालूम पड़ता। तुम्हें भी ऐसा लगता है कि यह आदमी कुछ भी नहीं कर रहा है।
बुद्ध बैठे हैं वृक्ष के नीचे, क्या कर रहे हैं? कुछ भी नहीं कर रहे, खाली बैठे हैं। उठो, कुछ मरीजों की सेवा ही करो। इतने दीन-दुखी हैं। लोगों को समझाओ कि दहेज मत लो। विधवाओं का विवाह करवा दो।
जैसे कि जिनका विवाह है, वे बड़े सुखी हैं! जैसे सधवाएं बहुत सुखी हों! सधवाएं दुखी हैं, विधवाएं दुखी हैं। दहेज लेने वाले दुखी हैं, न लेने वाले दुखी हैं। गरीब दुखी हैं, अमीर दुखी हैं। बीमार दुखी हैं, स्वस्थ दुखी हैं। अलग-अलग दुख हैं। बीमार का दुख है कि स्वस्थ नहीं है। स्वस्थ का दुख है कि अब क्या करें? स्वास्थ्य है, अब करना क्या? इसको कहां बरबाद करें? कहां जाएं? शराबघर में जाएं? वेश्यालय में जाएं? कहां जाएं? अब यह स्वास्थ्य है, इसका क्या करें?
बीमार को पता नहीं कि स्वस्थ आदमी की क्या तकलीफ है। गरीब को पता नहीं
कि अमीर की क्या तकलीफ है। और मजा यह है कि अमीर भी सोचता है, गरीब ज्यादा सुखी है। और गरीब भी सोचता है, अमीर ज्यादा सुखी है। शहरों में रहने वाले लोग सोचते हैं, गांवों में रहने वाले लोग सुखी हैं। गांव में रहने वाले तड़पते हैं, किसी तरह शहर पहुंच जाएं।
हमेशा दूसरा सुखी दिखाई पड़ता है, क्योंकि दूसरे की स्थिति का हमें कुछ पता नहीं। उसके भीतर की परेशानियों का हमें कुछ पता नहीं। गरीब मान ही नहीं सकता कि अमीर को रात नींद क्यों नहीं आ रही है! कोई कारण ही नहीं है। तुम्हारे पास सब है, अब सो जाओ। मगर अमीर नहीं सो पाता। सच तो यह है कि यह अमीर होने की योग्यता का हिस्सा है कि नींद खो जाए। अगर नींद आती रहे तो इसका मतलब है, अभी तुम थोड़े गरीब हो, अभी ठीक अमीर नहीं हुए हो।
असफल आदमी सोचता है कि अब तुम सफल हो गए, अब क्या कर रहे हो! लेकिन सफल आदमी चालीस और पैंतालीस साल के बीच में हार्ट अटैक, अल्सर, सब तरह के उपद्रव से घिर जाता है। अमरीका में तो ऐसी कहावत हो गई है कि अगर पैंतालीस साल के पहले हार्ट अटैक न हो तो जीवन बेकार गया। क्योंकि उसका मतलब है, तुम

असफल मर रहे हो। सफल आदमी को हो ही जाता है हार्ट अटैक उस समय तक। इतनी दौड़-धूप, इतना उपद्रव, इतनी चिंता, इतनी परेशानी, बेचैनी, कि हार्ट अटैक न हो चालीस-पैंतालीस के बीच में, तो जीवन ऐसे ही गंवा दिया, सस्ते में बीत गया। इस सारे दुख को दूर करना है--सीधा? तो जो दुख दूर करने में लगा है, उसे
भी अभी जागरण नहीं है, वह भी जागा नहीं है। जिसने अपने भीतर का दुख दूर किया, उसको यह भी दिखाई पड़ गया है कि मूर्च्छा कटे तो ही दूर हो सकता है। तो तुम्हारे दुख में सिर्फ तुम्हारा अज्ञान दिखाई पड़ता है उसे। तुम्हारा शोरगुल, उछलकूद दिखाई पड़ती है, सामने पड़ी हुई रस्सी भी दिखाई पड़ती है, सांप नहीं दिखाई पड़ता। और तुम किस चीज को मारने के लिए तत्पर खड़े हो तलवार उठा कर, वह भी दिखाई नहीं पड़ता। वह तुम्हारे उपद्रव को देख कर तुम्हें शांत करने की कोशिश करेगा, जगाने की कोशिश करेगा। सांप को नहीं मारना है, तुम्हारी बेहोशी को मारना है। दुख को नहीं मिटाना है, तुम्हारी मूर्च्छा को मिटाना है। जड़ कट जाए, वृक्ष अपने आप सूख जाता है।
नहीं, संतपुरुषों को तुम्हारी पीड़ा नहीं दिखाई पड़ती। तुम पीड़ित हो रहे हो, यह दिखाई पड़ता है। और तुम पीड़ित नाहक हो रहे हो, यह भी दिखाई पड़ता है। संतपुरुष तुम पर हंस सकते हैं, दया का कोई कारण नहीं है। तुम्हारी बात मूढ़तापूर्ण है। तुम्हारी अवस्था मूढ़तापूर्ण है। नहीं हंसते, क्योंकि तुम और परेशान होओगे। चेहरा गंभीर बनाए रखते हैं, कि नाहक तुम और नाराज न हो जाओ, नहीं तो सांप को छोड़ कर उन्हीं पर हमला करने लगोगे। वे तुम्हें सांत्वना दिए रहते हैं कि ठीक है, बहुत दुख में हो माना, धीरे-धीरे कुछ उपाय होगा। लेकिन तुम्हारा दुख बिल्कुल मूढ़ताजन्य है।
यही तो अर्थ है। सारे शास्त्र यही कह रहे हैं कि अज्ञान से जन्मता है दुख--मूर्च्छा से, बेहोशी से। तो मूर्च्छा ही तोड़नी है। दीया जलाना है।

पांचवां प्रश्नः आपने कहा कि चित्त की अनेक आकांक्षाओं के साथ भगवत-प्राप्ति को एक अतिरिक्त आकांक्षा की तरह नहीं जोड़ा जा सकता।
अंतर एक जु सो बसे, औरां चित्त न लाऊं।
इस संदर्भ में बताएं कि धर्म-पथ की यात्रा फिर आरंभ कैसे होगी?

बहुत आकांक्षाएं हैं। हजारों चीजें पानी हैं। स्वभावतः लगता है कि परमात्मा की आकांक्षा भी पैदा होगी तो इन्हीं आकांक्षाओं में एक आकांक्षा की तरह पैदा होगी। अगर सभी आकांक्षाएं मिट जाएं और तब परमात्मा की आकांक्षा सार्थक हो सकती है तो वह पैदा कैसे होगी?
समझें! हजार आकांक्षाएं हैं, परमात्मा एक हजार एकवीं आकांक्षा नहीं
हो सकता। फिर प्रारंभ कहां से होगा? प्रारंभ यहां से होगा कि ये जो हजार आकांक्षाएं हैं, इनकी व्यर्थता तुम्हें दिखाई पड़ने लगे। हजार तो सार्थक रहें और एक हजार एकवीं और सार्थक हो जाए, तो तुम्हारा संसार ही बड़ा हो रहा है, धर्म का जन्म नहीं हो रहा है। ये हजार में तुम्हें दिखाई पड़ने लगे कि ये तो व्यर्थ हैं। यह तो मैं मृग-मरीचिकाओं के पीछे दौड़ रहा हूं। इनमें से एक-एक आकांक्षा गिरने लगे, नौ सौ निन्यानबे रह जाएं, तो वह जो जगह खाली हो गई वह जगह परमात्मा को समर्पित हुई। नौ सौ अट्ठानबे रह जाएं, और थोड़ी जगह खाली हो गई, वह जगह भी परमात्मा को समर्पित हो गई। अभी वहां परमात्मा की आकांक्षा पैदा नहीं हो सकती, लेकिन जगह पैदा हो रही है, जहां आकांक्षा समाविष्ट हो सकेगी।
ऐसे तुम्हारी रोज-रोज आकांक्षाओं का बोध आकांक्षाओं को मारता जाएगा, गिराता जाएगा। एक दिन ऐसी घड़ी आती है कि तुम्हारी हजार ही आकांक्षाएं गिर गईं, उनकी बैसाखियां टूट गईं, उनका अर्थ खो गया। उस शून्य-दशा में, जहां बाकी सब आकांक्षाएं गिर गईं, एक प्रचंड तूफान की भांति एक आकांक्षा का जन्म होता है। वह आकांक्षा परमात्मा की आकांक्षा है। वह विराट की आकांक्षा है। वह और आकांक्षाओं के साथ नहीं हो सकती; वह अकेली ही हो सकती है।
एक कदम--कि जब और आकांक्षाएं गिर जाएं तब परमात्मा की आकांक्षा पैदा होती है। दूसरा कदम--जब परमात्मा की भी आकांक्षा गिर जाए तो परमात्मा से मिलन होता है। क्योंकि उतनी एक आकांक्षा भी बाधा रहेगी।

इसलिए पहले तो संतपुरुष समझाते हैं कि सब आकांक्षाओं को गिरा दो, परमात्मा की आकांक्षा को जगाओ। फिर जब ऐसी घड़ी आ जाती है, सौभाग्य की घड़ी, कि तुम्हारे भीतर एक ही अभीप्सा रही परमात्मा की, तब संतपुरुष समझाते हैं, अब इसे भी छोड़ दो। आकांक्षा मात्र छोड़ दो। और सब आकांक्षाएं छोड़ दीं, अब यह आकांक्षा भी जाने दो; अब तुम निराकांक्षा से भर जाओ, निर्वासना में खड़े हो जाओ। उसी क्षण तुम परमात्मा हो गए। अब कुछ बाधा न रही।
यह अपने आप घट जाता है। क्योंकि जब संसार की आकांक्षाएं व्यर्थ हो जाती हैं तो आधी घटना तो घट गई कि संसार की सब आकांक्षाएं व्यर्थ हैं। जब परमात्मा की आकांक्षा से तुम चलना शुरू करते हो तो तुम्हारे जीवन में प्रार्थना पैदा होती है, भक्ति पैदा होती है, भाव पैदा होता है, बड़ी उत्फुल्लता आती है, एक नया उन्मेष होता है, एक नये नृत्य का जन्म होता है। लेकिन तुम पाते हो कि यह छोटी सी जो आकांक्षा है परमात्मा को पाने की, यह एक पर्दे की तरह है। परमात्मा आमने-सामने है अब, लेकिन एक झीना सा परदा है। हाथ तुम बढ़ाते हो, परदे से ही टकराता है। आंख परदे को ही देखती है। उसके पीछे छिपी हुई झलक दिखाई पड़ती है। लेकिन सीधा-सीधा परमात्मा प्रकट नहीं होता। तब तुम्हें समझ में आएगा कि यह जो छोटी सी आकांक्षा अभी शेष रह गई है परमात्मा को पाने की--पाने की आकांक्षा जो शेष रह गई है--वही तुम्हें पूरा नहीं होने दे रही है। इसे भी छोड़ दो।
वह भी गिर जाती है। उस परदे के गिरते ही फिर भक्त भगवान है। फिर ऐसा नहीं कि भक्त खड़ा है, भगवान सामने खड़े हैं, आरती उतार रहा है। नहीं, तब भक्त ही भगवान है। तब सब फासले गिर गए, तब अद्वैत का जन्म हुआ।
तो तुम एक हजार आकांक्षाओं में परमात्मा की आकांक्षा को मत जोड़ लेना।
वे एक हजार आकांक्षाएं तो गलत हैं ही, उन एक हजार आकांक्षाओं में तुम परमात्मा की आकांक्षा भी जोड़ लोगे, वह आकांक्षा भी दूषित हो जाएगी, उसकी भी पवित्रता नष्ट हो जाएगी।
मैंने सुना है कि एक सूफी फकीर अपने एक शिष्य के साथ हज की यात्रा को गया। हजारों मील से पैदल चल कर वे आ रहे थे। मरुस्थल में मार्ग खो गया। बड़ी प्यास लगी। किसी तरह खोज कर एक छोटा सा झरना मिल गया। बड़े प्रसन्न हुए। न केवल झरना मिला, बल्कि झरने के पास ही पड़ा एक पात्र भी मिल गया, क्योंकि उनके पास पात्र भी न था। उनके आनंद का कोई ठिकाना न रहा। उन्होंने उस पात्र में झरने का पानी भरा, लेकिन जब पीने गए तो वह इतना तिक्त और कड़वा था, जहरीला था, कि घबड़ा गए कि यह तो मरने की बात हो जाएगी। यह तो झरना जहर का है।
उस झरने को तो छोड़ा, दूसरे झरने की तलाश में निकले, लेकिन पात्र को साथ
ले लिया। दूसरे झरने पर जाकर पानी पीया, वह भी जहरीला था। अब तो बहुत घबड़ा गए कि मौत निश्चित है। जल सामने है, पी नहीं सकते। कंठ सूख रहा है।
तीसरे झरने की तलाश में गए, वह भी मिल गया; लेकिन पानी पीया तो वह भी कड़वा था। पर तीसरे झरने पर एक और आदमी, एक फकीर बैठा था। उससे उन्होंने कहा कि हम समझते नहीं कि यह मामला क्या है, सब झरने कड़वे हैं! उस फकीर ने गौर से देखा उन्हें और कहा कि झरने तो कड़वे नहीं हैं, जरूर तुम्हारे पात्र में कुछ खराबी होगी। क्योंकि मैं तो इन्हीं झरनों पर जी रहा हूं। तुम झरने से सीधा पानी पीओ, पात्र में मत भरो।
सीधा पानी पीया तो ऐसा मीठा पानी कभी पीया ही न था। वह पात्र गंदा था।
वह पात्र जहरीला था।
तो जिस आकांक्षा के पात्र में तुमने सारे संसार के जहर भोगे हैं, उसी आकांक्षा के पात्र में परमात्मा को भी डाल लोगे, वह भी कड़वा हो जाएगा। इसीलिए तो तुम्हारी परमात्मा की आकांक्षा भी दुख ही देती है, सुख कहां देती है!
अक्सर मैं देखता हूं कि धार्मिक आदमी जिसे तुम कहते हो, वह उससे भी ज्यादा दुखी होता है जिसको तुम सांसारिक कहते हो। सांसारिक को धन चाहिए, पद चाहिए--ठीक है; यह धार्मिक को धन भी चाहिए, पद भी चाहिए, परमात्मा भी चाहिए। इसकी बीमारी और भी भयंकर है। सांसारिक का गणित कम से कम सीधा-साफ-सुथरा हैः पद चाहिए, धन चाहिए, यश चाहिए; ठीक है; खाओ-पीओ, मौज करो। तुम उसे थोड़ा कभी-कभी मुस्कुराते भी देख लोगे, हंसते भी देख लोगे। धार्मिक आदमी की

हालत तो बहुत ही खस्ता है। उसके हाल तो बड़े बुरे हैं। उसको धन भी चाहिए, पद भी चाहिए, यश भी चाहिए, परमात्मा भी चाहिए, ध्यान भी चाहिए, शांति भी चाहिए। उसकी हालत ऐसी है जैसे एक ही बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जुते हों। अस्थिपंजर बैलगाड़ी के डगमगा जाएंगे, दोनों तरफ बैल खींच रहे हैं। यात्रा तो हो ही नहीं सकती।
उस पात्र को ही गिरा देना पड़ेगा। जिससे संसार के जल पीए, जहर पीए, जिससे केवल दुख जाने, उस पात्र को ही गिरा देना होगा। उस पात्र में परमात्मा की आकांक्षा को मत रखना। अगर पात्र न हो तो हाथों से अंजुलि भर कर ही परमात्मा का जल पी लेना, लेकिन उस गंदे पात्र में उसको मत गिरने देना।
और एक दिन तुम पाओगे कि आकांक्षा मात्र ही गंदा पात्र है। आकांक्षा
की किसी चीज की, कि वह गंदी हो गई। मांगा, कि विषाक्त हुए। बिन मांगे जो मिल जाए, बिन चाहे जो मिल जाए, वही परमात्मा है। और मिल जाता है बिन मांगे, बिन चाहे।
असली सवाल न तो मांगने का है, न चाहने का है; असली सवाल अपने को देने का है। अपने को देने को जो राजी है, उसे मिल जाता है।

आखिरी प्रश्नः हमें आश्रम से नगर में जाने का अवसर आता है। कभी-कभी नगरवासी आपके और आश्रम के संबंध में प्रश्न पूछते हैं। हम तो अपनी ओर से संत-श्रेष्ठ दादू का यह वचन दोहराना पसंद करते हैंः समरथ सब बिधि साइयां, ताकी मैं बलि जाऊं। लेकिन इससे उन मित्रों की तसल्ली नहीं होती। उनके कुछ प्रश्न इस प्रकार हैंः

पहला प्रश्नः आपके भगवान का पूरे दिन का कार्यक्रम क्या है?

कोई कार्यक्रम नहीं। करने को कुछ बचा नहीं। करने की कुछ आकांक्षा भी नहीं। करना हो सकता है, इसकी संभावना भी नहीं। कर्ता ही टूट जाए, तभी तो भगवत्ता का अनुभव शुरू होता है।
तो जब पूछे कोई कि तुम्हारे भगवान का पूरे दिन का कार्यक्रम क्या है?
तो कहना, कोई कार्यक्रम नहीं है। उन्हें तसल्ली हो या नहीं, यह सवाल नहीं है। क्योंकि उनकी तसल्ली होनी चाहिए, इसकी हमारी जिम्मेवारी है क्या? उत्तर सही होना चाहिए, तसल्ली की फिक्र मत करना। क्योंकि जिसने तसल्ली की फिक्र की, उसके उत्तर का सही होना खंडित हो जाता है। क्योंकि तब ध्यान यह होता है कि इसकी तसल्ली होनी चाहिए। अब अज्ञानी की तसल्ली करनी हो तो झूठ बोले बिना कोई रास्ता नहीं। मूढ़ की तसल्ली करनी हो तो मूढ़तापूर्ण उत्तर चाहिए। तसल्ली की चिंता ही मत करना। इस संसार में कोई किसी को तसल्ली देने के लिए नहीं है। और हम किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रति उत्तरदायी है। तुम तो जो सत्य हो वह कह देना।
सत्य इतना ही है कि यहां कोई कार्यक्रम नहीं है। यहां तुम सुबह मुझे सुनने आते हो। शायद तुम सोचते होओ कि चूंकि तुम आठ बजे आते हो, इसलिए मैं आठ बजे बोलता हूं। तुम गलती में हो। चूंकि मैं आठ बजे बोलता हूं, इसलिए तुम आठ बजे आते हो। इसका ध्यान रखना। तुम्हारी व्यवस्था से मैं नहीं बोल रहा हूं। यह वक्त बोलना होता है, तुम्हें बुला लेता हूं। जिस दिन नहीं होगा उस दिन तुमसे कह दूंगा कि अब नहीं होता।
जब मुझे नींद आती है तब सो जाता हूं; जब बोलने का मन होता है, बोलता हूं; जब चुप होने का मन होता है तब चुप होता हूं। कोई कर्तव्य नहीं है। तुम्हारी कोई सेवा नहीं कर रहा हूं। इस भ्रांति में मत पड़ना कि तुम्हारी कोई सेवा कर रहा हूं। यह मेरा आनंद है। जैसे फूल खिलता है अपने आनंद से। किसी को सुगंध मिल जाए, बात और; न मिले, कोई हर्ज नहीं। अगर मुझे बोलना ही हो, तुम न भी होओगे तो भी बोल लूंगा--वृक्षों से बोल लूंगा, पक्षियों से बोल लूंगा।
पक्षी सुबह गीत गाते हैं। उनका गीत जैसे अर्थहीन है, प्रयोजनहीन है, वैसे ही मेरा बोलना है। तुममें कोई परिवर्तन हो, यह आकांक्षा नहीं है। क्योंकि दूसरे में परिवर्तन की आकांक्षा भी दूसरे को नियंत्रित करने की

चेष्टा है। परिवर्तन हो जाए, बात और; न हो, सब ठीक है, कोई अंतर नहीं पड़ता है। मैं बोलता हूं अपने आनंद से, तुम सुनते हो अपने आनंद से। अगर इन दोनों के बीच कुछ घटता हो अपने आप, घट जाए; न घटता हो, न घटे। लेकिन ध्यान रखना कि कोई कार्यक्रम मेरा नहीं है।
मुझसे भी लोग आकर पूछते हैं कि आपका मिशन क्या है?
मैं कोई पागल हूं? पागलों के मिशन होते हैं। मिशन का मतलब हैः दूसरों
के लिए कुछ करना है, दूसरों को सुधारना है, दूसरों को बदलना है। दूसरे को कभी कोई बदला है? दूसरे को कभी कोई बदल सका है? मेरा कोई मिशन नहीं है। मैं अपने आनंद में आनंदित हूं। अगर तुम्हें मेरे साथ नाचने में आनंद आता हो तो नाच लेना; मेरे पास बैठने में आनंद आता हो तो बैठ लेना। मैं अपने आनंद से बैठा हूं, तुम अपने आनंद से बैठ लेना। न तुम मुझ पर कृपा करना, न मैं तुम पर कृपा कर रहा हूं। न मैंने तुम्हारी कोई सेवा की है, न तुम्हें मेरी सेवा करने की कोई जरूरत है। तुम अपने आनंद की तलाश में हो। अगर मेरे पास तुम्हें कोई झलक मिलती है तो ठीक, अन्यथा तुम अपनी यात्रा पर आगे बढ़ जाना। हमारे बीच कोई सौदा नहीं है, धर्म का भी सौदा नहीं है। मैं तुम्हें कुछ दे नहीं रहा हूं। मैं कुछ हूं। अगर मेरे पास होने से तुम्हारे भीतर कोई प्रतिसंवेदन पैदा हो जाता हो--जो मैं हूं, उसमें से तुम्हें कुछ देने का उपाय नहीं है--अगर उसके पास होने से तुम्हारे भीतर भी कोई धुन पैदा होने लगे और तुम्हारा स्वभाव प्रकट होने लगे, तो बस बात हो गई।
यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। जिस दिन तुम पाओगे उस दिन तुम ऐसा न पाओगे
कि मैंने दिया था; उस दिन तुम ऐसा पाओगे कि मेरे पास, तुम्हारे पास जो छिपा था, उसका तुम्हें पता चल गया। न मैंने कुछ दिया, न तुमने कुछ लिया; सिर्फ मेरे पास तुम्हें यह अहसास आ गया कि अगर एक व्यक्ति को ऐसा हो सकता है, तो मुझे क्यों नहीं? जैसे कोई बीज किसी वृक्ष के पास आ जाए और उसे यह अहसास आ जाए कि अगर एक बीज वृक्ष हो गया, तो मैं भी बीज हूं, मैं भी वृक्ष हो सकता हूं। बस इतनी प्रतीति तुम्हें हो जाए। वह भी मैंने दी नहीं, वह भी तुमने ही ली। क्योंकि मैं कैसे दे सकता हूं? कौन किसको दे सकता है?
इस संसार में प्रत्येक स्वयं होने को है। और प्रत्येक अपने भीतर पूरा
का पूरा छिपाए बैठा है। सिर्फ किसी में वैसी घटना घटती देख कर तुम्हें अपनी संभावना की प्रतीति हो जाए, तुम्हें अपने भविष्य की थोड़ी झलक मुझमें मिल जाए, बस समाप्त हो गई बात। तुम यात्रा पर चल पड़े।
कोई कार्यक्रम नहीं है।
पूछना लोगों का स्वाभाविक है। क्योंकि उनकी इच्छा होती है, संतपुरुष उनकी सेवा करें। लोग कहते तो हैं ऊपर से कि हम संतों की सेवा करते हैं, लेकिन भीतर से चाहते हैं कि संतपुरुष उनकी सेवा करें। मैं किसी की सेवा करता दिखाई नहीं पड़ता। मेरा कोई समाज-उद्धार और समाज-रूपांतरण का कोई आयोजन नहीं है, क्योंकि मैं ऐसी मूढ़ता में विश्वास ही नहीं करता।
समाज सदा ऐसा ही रहेगा, क्योंकि समाज सोए हुए लोगों की भीड़ है। इसमें
से कुछ लोग जाग सकते हैं। जो जाग जाएंगे, वे तत्क्षण इस समाज के हिस्से नहीं रह जाते; वे किसी एक और दूसरे ही लोक के हिस्से हो जाते हैं। सोया हुआ आदमी और जागा हुआ आदमी दो अलग तरह के आदमी हैं। एक सपनों में खोया है, एक सत्य में उठ गया है। जो कुछ होता है इस जगत में, वह व्यक्ति में घटित होता है, भीड़ में नहीं; क्योंकि भीड़ के पास कोई आत्मा नहीं है।
मैं तुमसे अलग-अलग बोल रहा हूं, तुम्हारी भीड़ से नहीं। भीड़ से क्या बोलना है? भीड़ कोई है? तुममें से एक-एक व्यक्ति उठ कर चला जाएगा, फिर पीछे भीड़ छूट जाएगी? कोई भी नहीं बचेगा, जगह खाली हो जाएगी, शून्य रह जाएगा। मैं तुमसे एक-एक से बोल रहा हूं सीधे-सीधे। तुम एक-एक मुझे सुन रहे हो। समुदाय और समाज और राष्ट्र कोरे शब्द हैं; इन शब्दों के पीछे कुछ भी नहीं है। और इन शब्दों ने बड़े उपद्रव पैदा कर दिए हैं।
तो मेरा न तो कोई कार्यक्रम है, न कोई मिशन है, न किसी को बदलने की कोई इच्छा है। क्योंकि मैं तो मानता हूं, वह भी हिंसा है। दूसरे को बदलने की इच्छा गहरी हिंसा है। मैं कौन हूं बदलने वाला? यह मेरा आनंद था मैं बदल गया। तुम्हारा आनंद होगा तुम बदल जाओगे। और अगर तुमने यही तय किया है कि नहीं बदलना है, यही तुम्हारा आनंद है, तो मेरे आशीर्वाद। तुम्हें

तुम्हारे स्वभाव से जरा भी च्युत करने की आकांक्षा नहीं है। तुम जो हो सकते हो, वही हो जाओ। उसमें जरा भी बाधा मेरे कारण न पड़े। इसलिए तुम्हारे मार्ग पर बिल्कुल नहीं आता। इसलिए तुम्हें कोई ऐसा अनुशासन नहीं देता कि जिससे तुम कारागृह में बंद हो जाओ; तुम्हें कुछ ऐसे विधि-विधान नहीं देता जिनमें तुम जकड़ जाओ। यही तो अड़चन है बाहर लोगों को कि मैं अपने शिष्यों को, अपने संन्यासियों को एक विशिष्ट आचरण की विधि, एक अनुशासन, एक ढांचा, एक मर्यादा क्यों नहीं देता?
मर्यादा तुम्हारे बोध से आनी चाहिए। मैं तुम्हें बोध देता हूं। और अगर बोध मैं न दे पाऊं और मर्यादा दे दूं, तो मैं तुम्हारा दुश्मन हूं। वही तो तुम्हारे अन्य धर्मों ने किया है। उन्होंने तुम्हें बोध नहीं दिया, मर्यादा दी। उन्होंने तुम्हें आंख नहीं दी, उन्होंने लकड़ी दी है टटोल-टटोल कर चलने के लिए। मैं तुम्हें लकड़ी नहीं देता; मैं तुम्हें आंख देता हूं। तुम्हें दिखाई पड़ने लगे। फिर भी तुम्हें अगर गड्ढे में गिरना हो तो मौज से गिरना, देख कर गिरना। अगर तुम्हारी यही आकांक्षा है गड्ढे में गिरने की, तो शायद यही परमात्मा की आकांक्षा होगी, इसे ही होने देना। इतना ही कहता हूं, आंख से, खुली आंख से गड्ढे में गिरना, देखते हुए गिरना। अगर देखते हुए कोई गड्ढे में गिर सकता है तो कोई हर्जा नहीं।
लेकिन मैंने कभी देखते हुए किसी को गड्ढे में गिरते देखा नहीं। आंख रहते कौन दीवाल से निकलने की कोशिश करता है?
मैं तुम्हें दरवाजा नहीं बताता, मैं तुम्हें आंख देता हूं। इस फर्क
को बहुत गौर से समझ लो। क्योंकि जिन्होंने दरवाजे बताए हैं, उन सबने तुम्हें कारागृह में बंदी बना दिया। उन सबने बंधे नियम दे दिए हैं--कि दिन में भोजन करना, रात में भोजन मत करना, तो एक बंधी हुई बात हो गई। अब तुम दिन में भोजन कर लेते हो, रात में भोजन नहीं करते। लेकिन तुम दिन में भोजन करने वाले और रात में भोजन करने वाले आदमी में कोई फर्क देखते हो? कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता। कुछ फर्क होना चाहिए था। शायद मूल बात चूक गई।
वह जिसने कहा था तुमसे कि रात भोजन मत करना, उसकी आकांक्षा रात और दिन
का सवाल न थी, उसने चाहा था कि तुमसे हिंसा न हो। महावीर ने जब लोगों से कहा कि रात भोजन मत करना, तब प्रकाश न था, घरों में दीये न थे; केवल सम्राट और बहुत धनी-मानी व्यक्तियों के घर में दीये हो सकते थे। गरीब आदमी अंधेरे में ही सोता, अंधेरे में ही खाता, अंधेरे में कीड़े-मकोड़े भी गिर जाते। वह न तो स्वास्थ्यकर था, न स्वच्छतापूर्ण था और हिंसात्मक भी था। महावीर ने कहा, रात मत खाना। लेकिन मतलब यह था कि हिंसा मत करना।
अब आज बिजली है। दिन से ज्यादा प्रकाश रात में तुम कर सकते हो। अब कोई अड़चन नहीं है। मगर तुम नियम मान कर चल रहे हो कि रात भोजन नहीं करना। और हिंसा से तुम्हें कोई चिंता नहीं है, हिंसा जितनी करनी हो करना--दिन में कर लेना। पानी छान कर पीना, खून बिना छाने पी जाना! तो एक बड़े आश्चर्य की बात देखने में आती है कि तुम जैनों को जितना क्रोधी पाओगे उतना तुम दूसरों को क्रोधी न पाओगे। क्योंकि हिंसा को निकलने की कोई जगह तो रह नहीं जाती। मनोवैज्ञानिकों ने गहरे अध्ययन किए हैं। और एक बड़ी हैरानी की बात पता चली है कि शिकारी, जो लोग जंगलों में जानवरों का शिकार करते रहते हैं, वे बड़े सरल-चित्त लोग होते हैं। क्योंकि हिंसा निकल जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने यह भी अनुभव किया है कि जो लोग लकड़ी काटने का काम करते हैं, वृक्षों को काटने का काम करते हैं, वे लोग सरल-चित्त होते हैं। काटने- पीटने में काटने-पीटने का मन हलका हो जाता है। उठाई कुल्हाड़ी, मारी वृक्ष पर--उतना ही मजा आ जाता है जैसे किसी की गर्दन में मारने का आता हो और चित्त हलका हो जाता है।
लेकिन जो आदमी न कुल्हाड़ी से जंगल में लकड़ी काटता, न शिकार करता, चौबीस घंटे पानी छान कर पीता है, रात भोजन नहीं करता, सब तरह से अपने को बचाए चले जाता है हिंसा से--उसके भीतर महाक्रोध इकट्ठा हो जाता है। इसलिए जैन साधुओं से ज्यादा क्रोधी साधु तुम्हें दूसरे न मिल सकेंगे। तुम्हें क्रोध पता न चलता हो तो थोड़ा उकसा कर देखना, तब तुम्हें पता चलेगा। नाम उनका भला शांतिनाथ हो, बाकी शांति तुम न पाओगे।

जीवन जटिल है। वह बोध से बदलता है, नियमों से नहीं। अंधों की तरह लकीरों पर चलने से कोई क्रांति घटित नहीं होती। इसलिए मैं तुम्हें कोई मर्यादा नहीं देता; मैं तुम्हें सिर्फ एक मर्यादा देता हूं, वह बोध की मर्यादा। तुम जाग कर जीना! फिर तुम्हें जो ठीक लगे, तुम करना। और वह भी मैं तुम पर थोपना नहीं चाहता। वह भी, उस ढंग से मुझे जीवन में आनंद हुआ है, तो मैं निवेदन कर देता हूं। शायद किसी को रुच जाए, जंच जाए, प्रीतिकर लगे। काम आ जाए किसी के तो ठीक; किसी के काम न आए तो कुछ हर्जा नहीं है। क्योंकि मेरे काम आ गया है, मेरा काम पूरा हो गया है।
तुम्हारे रूपांतरण पर मेरा सुख निर्भर नहीं है; मैं पूरा सुखी हूं। तुम बदलोगे, तब तक मैं प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूं सुखी होने की। तब तो कोई सुखी न हो पाएगा। मैं सुखी हूं। तुम सब भी आनंद को उपलब्ध हो जाओ, परमात्मा को, तो मेरे आनंद में रत्ती भर बढ़ती नहीं होगी। और तुम नरक में भटकते रहो तो मेरे आनंद में रत्ती भर कमी नहीं होगी।
इसलिए मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। बस ऐसे ही है जैसे कि राह पर मुझे दिखाई पड़ रहा है कि पास में गड्ढा है, तुम जा रहे हो, तुमसे कह देता हूं कि पास में गड्ढा है, गिरना हो तो देख कर गिरना, न गिरना हो तो देख कर आगे निकल जाना। और अगर देखने की क्षमता आ जाए, तो इस गड्ढे से तो बचोगे ही, भविष्य के सारे गड्ढों से भी बच जाओगे।
अगर बंधा हुआ नियम कोई दे दे, तो हो सकता है एक गड्ढे से तुम बच जाओ, लेकिन बाकी गड्ढों से कैसे बचोगे? खुली आंख चाहिए।

दूसरा प्रश्नः लोग पूछते हैं कि वे लोगों को खानगी मुलाकात क्यों नहीं देते?

कोई प्रयोजन नहीं है। जो मुझे कहना है, वह सबके काम का है। जो मुझे कहना है, वह किसी एक व्यक्ति के काम का है, ऐसा नहीं है। वह सभी के काम का है।
और फिर, तुम्हारी बीमारियों को मैं बहुत दिन अनुभव करके इस नतीजे पर पहुंचा कि वे अलग-अलग नहीं हैं। अगर दस आदमी हों और उनको मैं अलग-अलग मौका दूं बात करने का, तो एक-एक को आधा-आधा घंटा लगेगा। प्रश्न वही हैं--क्रोध है, कामवासना है, लोभ है, अशांति है, बेचैनी है। अगर दस लोग हों, आधा-आधा घंटा दूं, तो पांच घंटे जाएंगे। अगर उन दसों को इकट्ठा बिठाल लूं, तो वही सवाल हैं, आधे घंटे में काम हो जाता है।
मैंने बहुत दिन तक लोगों को खानगी मुलाकात दी। फिर मैंने पाया, यह तो व्यर्थ है, इसमें कोई सार नहीं है। लोगों के अलग-अलग सवाल नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। आदमी की बीमारियां एक जैसी हैं। मात्राओं के थोड़े-बहुत भेद होंगे। किसी को थोड़ा लोभ ज्यादा सताता है, किसी को क्रोध थोड़ा ज्यादा सताता है। वे मात्राओं के भेद हैं। तो अब एक-एक आदमी को अलग-अलग उसकी बीमारी की चर्चा करना अकारण है।
लेकिन मैं जानता हूं कि लोग खानगी में मिलना पसंद करते हैं--कई कारणों से। मैं क्यों खानगी मुलाकात नहीं देता, वह मैंने बता दिया कि मुझे व्यर्थ लगता है; समय खोने की कोई जरूरत नहीं है। लोग क्यों खानगी मुलाकात चाहते हैं? पहला तो यह कि दूसरों के सामने वे अपनी बीमारी बताने में डरते हैं। अगर दस लोग बैठे हैं तो तुम्हें डर लगता है बताने में--मैं कैसे बताऊं कि मुझे कामवासना सताती है? तुम एकांत चाहते हो।
अब यह तुम्हारी समस्या है, मेरी नहीं है--एकांत। तुम अपनी समस्या मुझ
पर क्यों थोप रहे हो? और अगर इतना डर है तुम्हें अपनी समस्या रखने में तो मैं नहीं मानता कि तुम हल कर पाओगे। इतने साहसहीन लोग कहीं समस्याओं को हल कर पाते हैं? जो प्रकट तक नहीं कर पाते, वे हल क्या खाक करेंगे! और कौन सा कारण है तुम्हें डर का कि तुम बताने में डर रहे हो कि मेरी कामवासना की समस्या है? वह अहंकार है। बाहर शायद तुम चर्चा कर रहे हो कि मैं ब्रह्मचारी हूं।

साधु-संन्यासी मेरे पास आते हैं, वे तो बिल्कुल खानगी में चाहते हैं।
वे कहते हैं, कभी नहीं सामने दूसरों के। क्योंकि उनकी समस्याएं वे हैं, जो कि अगर उनके शिष्य सुन लें तो भाग खड़े होंगे।
एक जैन मुनि मुझे मिलने आए। उनके साथ उनके कुछ दस-पांच शिष्य थे।
उन्होंने आते से ही मुझसे कहा, एकांत में! तो मैंने कहा, ये शिष्य आपके ही हैं, मेरे नहीं हैं। इनसे क्या छिपाना? मेरे भी होते तो कुछ डर की बात थी।
न, उन्होंने कहा कि वह ठीक है, लेकिन खानगी में ही ठीक होगा।
उनके शिष्यों को बाहर विदा कर दिया, तो उनके प्रश्न वही हैं जो कि किसी साधारण आदमी के होते। कुछ छिपाने का नहीं है उनमें।
लेकिन अब उन्होंने एक अपनी प्रतिमा बना रखी है कि वे गुरु हैं अनेक लोगों के। और शिष्यों को अगर पता चल जाए कि स्वामी जी को भी कामवासना सता रही है, तो शिष्य दूसरे स्वामी जी को खोजेंगे; कि स्वामी जी को भी अभी लोभ सताता है, भय सताता है; कि स्वामी जी को भी अभी ध्यान नहीं आता, चित्त में विचार चलते रहते हैं; तो यह शिष्य जो स्वामी जी की मान कर उपवास कर रहा है, व्रत कर रहा है, पर्युषण-पर्व रख रहा है, इसकी तो सारी नैया डगमगा जाएगी--कि जब अभी इन्हीं को ही शांति नहीं मिली तो इनकी मान कर हमें कैसे शांति मिलने वाली है?
तो एक धंधा है, उसको बचाना है; एक अहंकार है, एक प्रतिमा है, उसको बचाना है।
यह मेरे निदान का हिस्सा है और चिकित्सा का भी हिस्सा है--कि तुमसे मैं कहता हूं कि तुम अपनी समस्या को ऐसा निवेदन कर दो सबके सामने कि जैसे कोई भी मौजूद न हो। आधी बीमारी तो इसी से हल हो जाएगी। क्योंकि जिस व्यक्ति ने इतना साहस जुटा लिया--अपनी प्रतिमा को नीचे उतारने का, अपने अहंकार को नीचे उतारने का, चार लोगों के सामने जिसने अपनी बीमारी की स्वीकृति कर ली--यह आधा तो हलका अभी हो जाएगा। एकांत में यह हलका न हो पाता।
फिर मैंने यह भी अनुभव किया कि जब यह अपनी बीमारी प्रकट करेगा दस लोगों के सामने, और दस लोग भी अपनी बीमारियां प्रकट करेंगे इसके सामने, तब इसे एक अहसास होगा कि मनुष्य मात्र की तकलीफ यही है। मैं कुछ अलग और विशिष्ट नहीं हूं। लोग बीमारी तक में विशिष्ट होना चाहते हैं--कि मेरी बीमारी भी कुछ खास है, वह किसी दूसरे की नहीं है। अहंकार ऐसा विक्षिप्त है कि बुराई में भी पृथकता चाहता है, भेद चाहता है। और जब तुम्हें ऐसा पता चलता है कि सबकी यही तकलीफ है, तब तुम्हें एक गहरी आत्मीयता का बोध होता है मनुष्य मात्र के साथ। तब तुम्हें लगता है कि प्रश्न मेरी बीमारी का नहीं है, पूरी मनुष्यता के भीतर बीमारी का है। आधे तो तुम यहीं हलके हो जाते हो। क्योंकि अब तक तुम अपने भीतर जो निंदा का स्वर सुनते थे, कि मैं अपने को निंदित कर रहा था चौबीस घंटे कि मैं बुरा हूं, पापी हूं; तुम्हें पता चलता है कि न तुम बुरे हो, न तुम पापी हो, तुम सिर्फ मनुष्य हो। ऐसे ही और भी मनुष्य हैं। सभी मनुष्य ऐसे हैं।
यह एक बहुत बड़ी क्रांतिकारी प्रतीति है कि मनुष्य मात्र एक ही तरह की बीमारी से रुग्ण है, एक ही बीमारी ने ग्रसा हुआ है। तो इससे तुम्हारी एक तो आत्मनिंदा का भाव कम होगा।
दूसरी बात, तुम्हें मनुष्य के प्रति एक करुणा का उदय होगा कि सभी इसी तरह परेशान हैं। हम सभी एक ही नाव पर सवार हैं। और एक-दूसरे के खिलाफ लड़ने की जरूरत नहीं है, एक-दूसरे को साथ देने की जरूरत है। नाव हमारी एक साथ डूबेगी।
ऐसी हालत है, मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन यात्रा कर रहा था नाव से। वह जहां बैठा था नाव में, वहां एक छेद करने लगा। लोग चिल्लाए, उन्होंने कहा कि तू यह क्या कर रहा है?
उसने कहा कि तुम अपनी जगह का ख्याल रखो, इस जगह के पैसे मैंने चुकाए हैं। और यहां अगर मैं छेद कर रहा हूं तो तुम्हारी जगह में छेद नहीं कर रहा हूं। अगर डूबेंगे तो हम डूबेंगे अपने छेद से, तुम क्यों परेशान हो रहे हो? लेकिन नाव में एक छेद हो तो पूरी नाव डूब जाती है। तुम्हारी बीमारी से तुम अकेले नहीं डूब रहे हो; तुम्हारी बीमारी सारी मनुष्यता से जुड़ी है,

संयुक्त है। तुम उठोगे तो सारी मनुष्यता भी तुम्हारे साथ उठेगी; तुम गिरोगे तो सारी मनुष्यता भी तुम्हारे साथ गिरेगी।
तुम जब सारे मनुष्यों के भीतर के रोग को ठीक से देख पाते हो, तुम्हें
एक महाकरुणा का उदय होता है। तुम्हें अपने पर भी दया आती है, दूसरों पर भी दया आती है; कठोरता पिघल जाती है। तब तुम किसी आदमी को चोर देख कर, बेईमान देख कर एकदम हिंसक और हत्यारे न हो जाओगे। तुम कहोगे, यह सामान्य है। यह प्रत्येक मनुष्य के भीतर छिपा है। इसमें कुछ बहुत अनूठा नहीं हो गया है। यह व्यक्ति क्षमा योग्य है।
अदालतों में जो मजिस्ट्रेट चोरों को सजा दे रहे हैं, अगर उनको यह समझ में आ जाए कि जो चोर सामने खड़ा है, वही चोर उनके भीतर भी बैठा हुआ है; जो चोर, सजा दी जा रही है जिसको, और जो सजा दे रहा है, वे एक ही मनुष्यता के हिस्से हैं। और अगर मजिस्ट्रेट गौर से देखे तो उसको भी पता चल जाएगा-- कितनी बार उसने चोरी की है! कितने सूक्ष्म रास्तों से! हो सकता है उसके रास्ते ज्यादा कुशल हों। वह ज्यादा पढ़ा-लिखा है, होशियार है। यह आदमी गंवार है। यह पकड़ा गया, यह बचा न सका अपने को। इसके पास बचने की सुविधा नहीं है।
लेकिन अगर यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए कि सारी मनुष्यता एक ही नाव में सवार है, तो मजिस्ट्रेट को सजा देने में कठिनाई मालूम पड़ेगी। शायद मजिस्ट्रेट चाहेगा कि इस व्यक्ति की चिकित्सा की जाए, बजाय इसकी फांसी लगाई जाए। इसे सहारा दिया जाए, इसे शिक्षा दी जाए, इसे रोटी-रोजी दी जाए। क्योंकि मजिस्ट्रेट समझेगा कि जो मेरे भीतर छिपा है मनुष्य, वही इसके भीतर भी छिपा है।
मैंने बहुत अलग-अलग लोगों से बात करके देख ली। मैंने पाया कि जब मैं लोगों को निजी मुलाकात देता था तो मेरे पास और तरह के लोग आते थे। राजनेता, धनपति, सम्मानप्राप्त समाज के लोग, पंच, मेयर--इस तरह के लोग आते थे, क्योंकि एकांत!
अब मेरे पास ज्यादा सीधे-सादे लोग आ रहे हैं, जिनके ऊपर कोई अहंकार का रोग नहीं है। क्योंकि अहंकार का रोग वाला तो वहीं डर जाता है।
यहां एक सरकारी अधिकारी ने आने की आज्ञा चाही थी। मैंने कहा, मजे से आ जाएं। मैं बाहर बगीचे में बैठा था, दस-पंद्रह लोगों से उनके प्रश्नों की बात कर रहा था। वे सज्जन आए। वे बगीचे के किनारे तक आए, वहां खड़े होकर एक क्षण उन्होंने देखा, फिर वहां से एकदम लौट गए। मैंने पुछवाया कि क्या हुआ? उन्होंने कहा कि मैं एकांत में मिलना चाहता था। मैं बड़े पद पर हूं। अगर लोगों को पता हो जाए कि मैं भी वहां आया, और मेरे भी मन की ऐसी-ऐसी छोटी- छोटी बातें हैं, बीमारियां हैं, तो मेरे पद का क्या होगा? तो आपसे तभी मिलने आ सकता हूं जब एकांत हो।
तो मैंने पाया कि इन अहंकारियों को मिलने का न कोई अर्थ है... । क्योंकि अगर इनका अहंकार मेरे पास आकर भी नहीं टूटता है, अगर यह टूटने की तैयारी नहीं है, तो मेरी बातें भी इन तक पहुंचेंगी नहीं। वह अहंकार की दीवार भीतर जाने ही न देगी।
फिर मैंने यह भी अनुभव किया कि जब तुम आकर मुझसे कोई सवाल पूछते हो सीधा-सीधा अपने संबंध में--तुम पूछते हो कि कामवासना से पीड़ित हूं, क्या करूं--तो तुम सवाल से इतने ग्रसित होते हो, तुम इतने चिंतित होते हो, तुम इतने व्यथित होते हो कि जो मैं कहता हूं उसे तुम ठीक से सुन नहीं पाते। लेकिन दस जो दूसरे लोग बैठे हैं उनका भी सवाल तो यही है, जब मैं तुमसे बात कर रहा हूं तब वे गौर से सुन लेते हैं। उनकी कोई चिंता नहीं, उनका यह सवाल नहीं है। अनजाने ही, ज्यादा शांत, ज्यादा सौमनस्य, ज्यादा धीरता से सुन लेते हैं, कि यह दूसरे का सवाल है, अपना क्या लेना-देना! हालांकि सवाल यह उनका भी है, मनुष्य मात्र का है। लेकिन उस शांति में सुन लिया गया जो विचार है, वह गहरे में उतर जाता है। फिर जब उनसे मैं बात करूंगा, तब तुम भी सुन लोगे; क्योंकि तब तुम निश्चिंत बैठे हो, अब तुम्हारी कोई झंझट नहीं है। मैंने यह अनुभव किया कि जब मैं किसी से सीधा-सीधा बोलता हूं तो सुनना मुश्किल होता है; जब मैं किसी और से बोलता हूं तब सुनना आसान होता है, तब चीजें ज्यादा साफ हो जाती हैं।

तुम्हें भी अनुभव में आया होगा कि अगर कोई दूसरा मुसीबत में हो तो तुम अच्छी सलाह दे पाते हो; वही मुसीबत तुम पर हो तो तुम खुद ही अपनी सलाह भूल जाते हो।
जैसे किसी के घर में कोई मर गया। तुम चले जाते हो, एकदम आत्मज्ञानी हो जाते हो कि आत्मा तो अमर है। आप क्यों रो रहे हैं? क्या सार है? शरीर तो पड़ा रह जाएगा, मिट्टी तो मिट्टी मिलती है; आत्मा का तो परमात्मा से मिलन हो गया। रोना बेकार है। सभी को जाना है।
कल तुम्हारे घर जब कोई मरेगा तब तुम यही बातें अपने से न कह पाओगे। हो सकता है पड़ोसी, जिसे तुम कह आए थे, वह आकर तुमसे कहे, क्यों रो रहे हो? क्या परेशान हो रहे हो? आत्मा तो अमर है।
दूसरे को सलाह देना आसान क्यों होता है? और दूसरे को अच्छी सलाह मिलती है, लेकिन आसान होती है देना। कारण यह होता है कि तुम्हारी कोई अपनी परेशानी तो होती नहीं; तुम तटस्थ होते हो। तटस्थ भाव से जो भी दिखाई पड़ता है वह ज्यादा साफ-सुथरा होता है। उलझन अपनी नहीं होती, दूसरे की है। तुम दूर खड़े हो, तुम द्रष्टा मात्र हो।
तो मैंने भी अनुभव किया कि जब मैं किसी से बात कर रहा हूं, तब दूसरों
को ज्यादा समझ में आ जाती है। जिससे बात कर रहा हूं, वह तो परेशान होता है। पहले तो पूछना कैसे? पूछना कि नहीं? पूरी बात कहना कि नहीं? किसी तरह घबड़ा कर कह भी देता है, तो फिर डरता है कि पता नहीं लोग क्या सोच रहे हैं! अब वह इतनी उलझन में पड़ा है कि वह सुन न पाएगा।
इसलिए मैंने खानगी मुलाकात तो बंद ही कर दी। मुझे दिखाई पड़ा कि मनुष्य मात्र बीमार है। यह कोई व्यक्तिगत बीमारी नहीं है, व्यक्तिगत सवाल नहीं है। और अहंकारियों से मैं बचना चाहता हूं; वे न ही आएं वही अच्छा है।

तीसरा प्रश्नः आश्रम में इतनी गोपनीयता क्यों है?

आश्रम कोई बाजार नहीं है, भीड़-भाड़ के लिए खुला नहीं है। यहां मैं उन थोड़े से लोगों के लिए उपलब्ध हूं, जो वस्तुतः रूपांतरित होना चाहते हैं। तमाशबीन, राह चलते लोग, उनके लिए कोई यहां आने का प्रयोजन नहीं है। यहां तो उन्हीं के लिए निमंत्रण है जो सच में ही रूपांतरित होने के करीब आ गए हैं, उन थोड़े से लोगों के लिए है।
इसलिए सब तरह की गोपनीयता है। और गोपनीयता बढ़ती जाएगी। क्योंकि जैसे- जैसे मैं पाऊंगा कि और व्यर्थ लोग छांटे जा सकते हैं, उनको मैं छांट दूंगा। क्योंकि न तो उनको कोई लाभ होता, न उनके कारण दूसरों को वे लाभ होने देते।
मैंने बहुत दिन सबके लिए खुला रह कर देख लिया। मैंने पाया, उसमें जो व्यर्थ के लोग हैं उनकी भीड़ इतनी हो जाती है कि सार्थक आदमी को मौका ही नहीं मिल पाता। उसमें कुतूहल वाले लोग इतना घेर लेते हैं कि जिज्ञासु पीछे ही खड़ा रह जाता है। मुमुक्षु तो विनम्र होता है। वह कहता है, जब मुझे मौका मिलेगा तब मैं पूछ लूंगा। उसको मौका ही नहीं मिलता। जो व्यर्थ कूड़ा- करकट पूछने चले आए हैं, वे आगे खड़े हो जाते हैं--अखबारनवीस, जर्नालिस्ट, वे आगे आ जाते हैं। उन सबसे छुटकारा कर लिया है।
गोपनीयता का कुल कारण इतना है कि अब उन्हीं के साथ--केवल उन्हीं के साथ--गहराई का संवाद करना चाहता हूं, जो बिल्कुल ही तैयार हैं बदलने को। जो देख लिए जीवन को और कुछ न पाया। जिनकी हजार आकांक्षाओं में मैं भी एक आकांक्षा नहीं हूं, जिन्होंने हजार आकांक्षाएं गिरा दीं और अब मेरे पास होने की एकमात्र आकांक्षा जिनकी आकांक्षा है, बस उनके लिए हूं। इसलिए गोपनीयता है। और गोपनीयता बढ़ती जाएगी, क्योंकि कूड़े-करकट को लेने का कोई प्रयोजन नहीं है। उससे उसको भी कोई सार नहीं है। समय भी व्यतीत होता है। और जिनके लाभ का मैं हो सकता था, वे भी वंचित रह जाते हैं।

चौथा प्रश्नः आश्रम में इतने अधिक विदेशी क्यों हैं, भारतीय क्यों नहीं हैं?

आश्रम न तो भारत का है, न चीन का है, न जापान का है; आश्रम मनुष्यों का है। यह एक अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी है। और स्वभावतः विदेश का मतलब शायद लोग समझते नहीं कि क्या होता है। जब विदेश शब्द का लोग उपयोग करते हैं तो ऐसा लगता है कि विदेश किसी देश का नाम है। भारत को छोड़ कर सारा जगत विदेश है। दुनिया में छह आदमियों में एक भारतीय है, वही अनुपात इस आश्रम में भी होना चाहिए। छह विदेशी, उसमें एक भारतीय; तो ही यह अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी होगी। तो भारत का अनुपात थोड़ा ज्यादा है, जितना होना चाहिए उससे। वह भी स्वाभाविक है, क्योंकि भारत करीब है आश्रम के, इंग्लैंड थोड़ा दूर है।
भारत का नहीं है आश्रम--याद रखना। भारत में हो सकता है, लेकिन भारत का नहीं है; इंग्लैंड का नहीं है, अमरीका का नहीं है। भारत पास हो सकता है, अमरीका थोड़ा दूर हो सकता है; लेकिन आश्रम के लिए न भारतीय से कुछ लेना-देना है, न अमरीकी से कुछ लेना-देना है।
आश्रम राजनीति में भरोसा नहीं करता। देशों का विभाजन राजनीति का भरोसा है। यह भारत है, यह पाकिस्तान है, यह चीन है--ये राजनीति की सीमाएं हैं। और अगर धर्म भी इन सीमाओं को मानता है तो उसे भी मैं राजनीति कहता हूं, वह धर्म नहीं है।
यहां तो अनुपात यही होगाः छह व्यक्ति होंगे तो एक भारतीय होगा, पांच विदेशी होंगे। और विदेश कोई एक देश नहीं है। भारतीयों का अनुपात जरूरत से ज्यादा है। वह भी स्वाभाविक है। उनको आना सुगम है। वे पास हैं। अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी, एक ऐसा छोटा सा परिवार यहां बसता जाता है, बसेगा--जिसमें कोई भारतीय न होगा, कोई विदेशी न होगा; कोई अपना न होगा, कोई पराया न होगा। छोटा है आश्रम, लेकिन आज पृथ्वी पर कोई ऐसी दूसरी जगह खोजनी मुश्किल है जहां सभी जातियों, सभी धर्मों, सभी राष्ट्रों के लोग हों, और बिना किसी भेद-भाव के जहां संगम पूरा हुआ हो।
यू. एन. ओ. में लोग मिलते हैं, लेकिन दुश्मन की तरह। वह कोई बिरादरी नहीं है। वह कोई दोस्ती नहीं है। वहां हाथ बढ़ता भी है तो सशर्त; उसके पीछे शर्त है। यहां सारा भेद-भाव मिट गया है। यहां एक संगम बनाने की चेष्टा है, एक तीर्थ बनाने की चेष्टा है।
लेकिन भारतीयों को, खासकर जो बाहर हैं आश्रम से, उनको लग सकता है कि विदेशी क्यों हैं?
तुम्हारी आंखें अंधी हैं। तुम्हें आदमी नहीं दिखाई पड़ता; तुम्हें सिर्फ देशी-विदेशी दिखाई पड़ते हैं, गोरा-काला दिखाई पड़ता है; भीतर की आत्मा नहीं दिखाई पड़ती, जिसका किसी देश से कोई लेना-देना नहीं है। यहां परमात्मा के खोजी हैं। यहां न कम्युनिस्ट हैं, न गैर-कम्युनिस्ट हैं, न सोशलिस्ट हैं, न चीनी हैं, न भारतीय हैं, न पाकिस्तानी हैं; यहां परमात्मा की खोज पर निकले लोग हैं, जो अपने को खोने को तैयार हैं। उसमें वे अपने देश को भी खोने को तैयार हैं, अपनी जाति को भी खोने को तैयार हैं, अपने धर्म को भी खोने को तैयार हैं।
स्वभावतः बाहर के राजनैतिक बुद्धि के लोगों को तकलीफ होती होगी, क्योंकि उन्हें इसमें अड़चन लगती होगी। मगर उनकी अड़चन के लिए हम जिम्मेवार नहीं हैं। उनको अपनी बुद्धि को थोड़ा हलका, स्वच्छ करना चाहिए। उनको तृप्त करने के लिए कोई चेष्टा मत करना। जो सच हो वैसा ही उनसे कह देना। वे तृप्त हों न हों, यह उनकी मर्जी है।

पांचवां प्रश्नः यहां आश्रम में सुंदर और युवा युवतियों का इतना आधिक्य क्यों है?

यह बात जरूर सोचने जैसी है। क्योंकि आमतौर से आश्रम में वृद्धा, बूढ़ी, लंगड़ी, लूली, इस तरह की स्त्रियां दिखाई पड़ेंगी। क्योंकि आमतौर से आश्रम में स्त्रियां तभी जाती हैं जब संसार में उनके लिए कोई उपाय नहीं रहता। आश्रम तो ऐसे हैं जैसे कबाड़खाने, जब जिंदगी का कोई उपयोग न हो किसी का तो वहां लोगों को फेंक देते हैं।

तुम सुंदर स्त्रियों को आश्रम में न पाओगे। क्योंकि सुंदर स्त्री धर्म में उत्सुक ही नहीं होती; उसे जीवन में काफी रस है। कुरूप स्त्रियां धर्म में उत्सुक हो जाती हैं; क्योंकि जीवन में रस नहीं है और जीवन का उनमें रस नहीं है। तो अब उनके लिए कोई उपाय नहीं बचता, वे आश्रमों को घेर लेती हैं।
एक नगर में मैं एक घर में मेहमान था। एक अखिल भारतीय कवयित्री सम्मेलन हो रहा था। तो घर के लोग जाते थे, वे मुझे भी कहने लगे कि आप भी चलें।
मैंने कहा, मैं तो उत्सुक नहीं हूं। तुम जाते हो तो एक बात ख्याल रखना, कितनी कवयित्रियां आई हैं, उनमें कितनी सुंदर हैं, वह तुम मुझे खबर करना। वे कहने लगे, क्यों?
मैंने कहा, आप लौट कर आएं, फिर देखेंगे।
वे आए, उन्होंने कहा कि ग्यारह कवयित्रियां हैं। पर आपने हद कर दी, सब असुंदर हैं!
मैंने कहा, कोई सुंदर स्त्री कविता लिखती नहीं। वह खुद ही कविता है,
वह क्या खाक कविता लिखेगी! जब स्त्री कुरूप होती है तब वह कुछ उपद्रव करती है। साधारणतः, स्त्री अगर सुंदर हो, स्वस्थ हो, तो वह पर्याप्त है; उसको कुछ और करने की जरूरत नहीं। न वह समाज-सेवा करती, न वह कविता करती, न वह आश्रम में जाकर बैठती, न वह राजनीति करती, उस सबसे कोई मतलब नहीं है। इसलिए उनकी अड़चन स्वाभाविक है, क्योंकि उन्होंने लूले-लंगड़े-अंधे, उनके आश्रम देखे हैं, स्वस्थ-सुंदर व्यक्तियों के नहीं।
लेकिन यहां हम सौंदर्य का ही प्रयोग कर रहे हैं। मेरी तो मान्यता ही
यह है कि धर्म असुंदर और कुरूप व्यक्तियों और लंगड़े-लूलों के कारण लंगड़ा- लूला हो गया। वहां तो जीवंत व्यक्तियों का आगमन होना चाहिए। धर्म तो एक उत्सव है। वहां तो श्रेष्ठतम इकट्ठे होने चाहिए। इसका यह मतलब नहीं है कि वहां दूसरे इकट्ठे न हों; लेकिन दूसरे भी आएं, वे गौण ही हों, वे प्रमुख न हो जाएं। जीवन का राग वहां प्रमुख हो, मृत्यु का स्वर वहां जोर से न बजने लगे। मृत्यु आए तो भी जीवन के पीछे छिपी-छिपी। इसलिए मैं तो सौंदर्य का पक्षपाती हूं, यौवन का पक्षपाती हूं।
फिर भी, और भी बात समझ लेनी चाहिए। स्त्रियां यहां उतनी ही हैं जितने पुरुष हैं, ज्यादा नहीं हैं। और यही सम्यक अनुपात होना चाहिए। जिस मस्जिद में तुम सिर्फ पुरुषों को नमाज पढ़ते देखते हो, वह मस्जिद झूठी है; क्योंकि स्त्रियों का क्या हुआ? वह सच्ची नहीं है।
जैन कहते हैं, स्त्री-पर्याय से मोक्ष ही नहीं हो सकता, पुरुष-पर्याय
से ही होता है।
यह पुरुषों की राजनीति होगी, धर्म का इससे कोई संबंध नहीं। स्त्री और पुरुष से क्या लेना-देना है मोक्ष का? मोक्ष आत्मा का होता है कि शरीर का? यह तो शरीर के ढांचों का सवाल हो गया। यह तो हड्डी-मांस-मज्जा का मोक्ष हो गया। आत्मा भी कहीं स्त्री और पुरुष होती है!

लेकिन जहां भी जीवन घटेगा और जहां भी जीवन संतुलित होगा, वहां स्त्री
और पुरुष हमेशा समान मात्रा में होंगे। होने ही चाहिए। मैं इस आश्रम को पुरुषों का क्लब नहीं बनाना चाहता, न स्त्रियों का। यहां स्त्री-पुरुषों का समान अनुपात होना चाहिए। और जहां भी स्त्री-शक्ति और पुरुष-शक्ति समान होती है, वहां एक तरह का संगीत बजता है, जो और कहीं नहीं बज सकता।
तुमने कभी ख्याल किया? अगर दस पुरुष एक कमरे में बैठे हों तो एक तरह का रूखापन होता है। एक स्त्री कमरे में आ जाए--एक ताजगी चली आती है, एक हवा का झोंका आ जाता है। दस पुरुष रूखे हो जाते हैं। दस पुरुष ऐसे ही हैं जैसे एक ही ढंग की विद्युत हो, जो एक-दूसरे को विकर्षित करती है। चुंबक को तुमने देखा? ऋण और ऋण चुंबक एक-दूसरे से अलग हटते हैं, धन और धन चुंबक एक-दूसरे से अलग हटते हैं। ऋण और धन चुंबक पास आते हैं, निकट आते हैं। एक नैकट्य और एक आत्मीयता घटती है।

स्त्री और पुरुष का अनुपात सारी पृथ्वी पर समान है। जब परमात्मा उस अनुपात को मानता है तो इस आश्रम में हम उसी का प्रतिनिधित्व करते हैं, उससे भिन्न नहीं। वही अनुपात होगा।
और क्यों युवक और सुंदर और स्वस्थ लोग हैं? होने ही चाहिए। अब तक धर्म
को लोगों ने समझा है, मरने के वक्त आखिरी काम। मैं उसे जीवन का प्रधान मूल आधार मानता हूं। तुम जब युवा हो, जवान हो, ऊर्जा से भरे हो, तभी प्रार्थना करना, तभी तुम्हारी प्रार्थना की उत्तुंग ऊंचाई होगी। जब तुम्हारी सांस टूटने लगेगी, जराजीर्ण देह होगी, तब तुम राम-राम भी कहोगे, लेकिन वह तुम्हारे हृदय की हड्डियों के बाहर आवाज न जा सकेगी।
इसका मतलब यह नहीं कि मैं वृद्धों को नहीं कहता कि वे आएं। इसका मतलब यही है कि मेरे पास तो वे ही वृद्ध आएंगे जो किसी अर्थ में जवान हैं। तुम अगर किन्हीं दूसरे आश्रमों में कभी किसी जवान को भी देखोगे तो तभी, जब वह जवान किसी अर्थ में वृद्ध होगा।
इस फर्क को तुम ठीक से समझ लेना।
मेरे पास तो वृद्ध भी आएंगे तो तभी, जब वे किसी अर्थ में युवा हैं और उन्होंने जीवन की ऊर्जा नहीं खो दी है। नहीं तो उनसे उनका-मेरा संबंध ही नहीं बन सकेगा। मेरी बात ही उन्हें न जंचेगी। उनके भीतर की युवा क्षमता को ही मेरी बात जंच सकती है। और दूसरे आश्रमों में तुम अगर युवक को भी पाओ तो तुम मरे हुए युवक को पाओगे; वह किसी कारण वृद्ध हो गया होगा समय के पहले, इसीलिए वहां पहुंच गया है; नहीं तो वहां उसकी कोई जगह नहीं है।
अब तक धर्म आखिरी जीवन का हिस्सा रहा है; मैं उसे प्रथम बनाना चाहता हूं। और धर्म को मैं जीवन के सौंदर्य, जीवन के काव्य और जीवन की महिमा से मंडित करना चाहता हूं। इसलिए तुम्हें जो भी यहां दिखाई पड़ रहा है, वह बिल्कुल स्वाभाविक है। और अगर तुम्हें उसमें प्रश्न उठते हैं तो सिर्फ इसलिए कि तुम्हारा मन दूषित है, और तुम्हारा मन बहुत अस्वाभाविक धारणाओं से भरा है।

छठवां प्रश्नः कुछ विदेशी संन्यासिनियों के गर्भवती होने की खबर क्या सच है?

बिल्कुल सच है। वृक्षों में फूल लगते हैं, स्त्रियों में बच्चे लगते हैं। लगने ही चाहिए। हम यहां कोई स्त्रियों को बांझ करने के लिए नहीं बैठे हैं, न पुरुषों को नपुंसक करने की कोई आकांक्षा है। यहां तो हम उनकी जीवन की धारा को कितनी सम्यक, कितनी संगीतपूर्ण बना सकें। यहां हम जीवन से तोड़ने का कोई विचार ही नहीं रखते; यहां तो हम जीवन को ही उसकी समग्रता में परमात्मा को समर्पित कर देने की धारणा लिए बैठे हैं।
संन्यासिनी को बच्चे होने चाहिए। सुंदर बच्चे होंगे; साधारण स्त्री
से ज्यादा सुंदर बच्चे होंगे; ध्यान से आएंगे, समाधि से आएंगे, भीतर के गहन आनंद से आएंगे। संसार सुंदर होगा। संसार को उजाड़ने का कोई सवाल नहीं है; संसार को ज्यादा परमात्म-भाव से भरने का सवाल है।
लोगों की अड़चन स्वाभाविक है। संन्यासियों से मतलब उनका होता हैः बांझ, जिनमें कुछ फल नहीं लगते, फूल नहीं लगते। मेरे संन्यासी और ही ढंग के हैं--जैसे वृक्ष में फूल लगते हैं, फल लगते हैं। तुम किसी ऐसे वृक्ष की प्रशंसा कभी नहीं करते--कि इसमें फल-फूल नहीं लगते, बड़ा महान वृक्ष है। बिल्कुल स्वाभाविक है। स्वभाव से विपरीत जाने की यहां कोई आकांक्षा नहीं है। अगर स्वभाव ही किसी को ब्रह्मचर्य में ले जाए--ठीक, धन्यभाग! अगर स्वभाव किसी को विवाह में ले जाए, प्रेम में ले जाए--धन्यभाग! सौभाग्य! सहजता से जीने का नाम संन्यास है।

और आखिरी सवालः आश्रम के लिए धन कहां से आता है?

लक्ष्मी की बात लक्ष्मी से पूछनी चाहिए।
आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
सातवां प्रवचन

इसक अलह का अंग

सूत्र

जब लगि सीस न सौंपिए, तब लगि इसक न होई।
आसिक मरणै न डरै, पिया पियाला सोई।।

दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोई।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होई।।

प्रीति जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं।
रोम-रोम पिव-पिव करै, दादू दूसर नाहिं।।

आसिक मासूक हुई गया, इसक कहावै सोई।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होई।।

इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग।।

मनुष्य की भाषा में प्रेम से बड़ा कोई शब्द नहीं। उस एक शब्द को जिसने जान लिया, उसने सब जान लिया। जो इस एक शब्द से वंचित रह गया, उसने सब भी जान लिया हो, तो उस जानने का कोई मूल्य नहीं।
स्वभावतः प्रेम को जानने का कोई उपाय प्रेम के अतिरिक्त नहीं है। शब्द को जान लेने से जानना न होगा। प्रेम गहनतम अनुभव है। और अनुभव इतना गहरा है कि प्रेमी भी अगर बच जाए, तो भी अनुभव नहीं हो पाएगा। प्रेमी भी मिट जाए प्रेम में, तो ही अनुभव पूरा हो सकता है।
तो प्रेम को कोई द्रष्टा की तरह नहीं जान सकता; दूर खड़े होकर दर्शक की भांति नहीं जान सकता। मिट कर ही जान सकता है।
जैसे सरिता सागर में खो जाती है तो जानती है कि सागर होना क्या है; वैसे ही जब कोई जीवन-धारा प्रेम के सागर में खो जाती है, तभी जानती है, प्रेम क्या है।
कबीर ने कहा हैः
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।
पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।।
कितने ही शास्त्र कोई पढ़े, सारा पढ़ना बाहर-बाहर से है। जानना तो भीतर
से होगा। मंदिर के बाहर तुम कितनी ही परिक्रमाएं करो, इससे मंदिर में विराजमान देवता का स्पर्श न होगा, न दर्शन होंगे। मंदिर के संबंध में तुम कितना ही जान लो, तो भी मंदिर में जो विराजमान है उसकी कोई प्रतीति और झलक न मिलेगी। मंदिर की दीवालों के संबंध में जानकारी मिल जाएगी, लेकिन मंदिर के प्राण अपरिचित रह जाएंगे। भीतर ही जाना होगा।
और भीतर जाने का अर्थ नहीं कि तुम मंदिर की प्रतिमा की परिक्रमा करोगे तो भीतर पहुंच जाओगे; तो भी तुम प्रतिमा के बाहर-बाहर घूमोगे। तो भी तुम जो जानोगे वह प्रतिमा की रूप-रेखा होगी। मंदिर में भीतर जाने का अर्थ तो है कि जब तुम प्रतिमा में भीतर चले जाओ। जब परिक्रमा देने वाला कोई भी न बचे। जब तुम बचो ही न। जब प्रतिमा ही रह जाए। तुम ऐसे खो जाओ जैसे सागर में सरिता खो जाती है; तभी तुम जान सकोगे।
प्रेम ज्ञान है। एकमात्र ज्ञान प्रेम ही है। बाकी सब जानना ऊपर-ऊपर है। क्योंकि ऐसा और कोई भी जानना नहीं है जिसमें जानने वाले को मिटना पड़ता हो। वह प्रेम की पहली शर्त हैः मिट जाना, खो जाना।
जन्म होता है, मृत्यु होती है। सभी का जन्म होता है, सभी की मृत्यु होती है। जन्म और मृत्यु के बीच जो व्यक्ति प्रेम से परिचित हो जाता है, वह

अमृत को उपलब्ध हो जाता है। फिर उसका कोई जन्म नहीं होता, फिर उसकी कोई मृत्यु नहीं होती। जन्म और मृत्यु के बीच, इन दो किनारों के बीच जो प्रवाह है, वही प्रेम है। जन्मते तो सभी हैं, मरते भी सभी हैं, प्रेम को बहुत थोड़े लोग जान पाते हैं। अवसर तो सभी को मिलता है जानने का, अवसर का उपयोग बहुत थोड़े लोग कर पाते हैं।
जो कर लेते हैं, वे धन्यभागी हैं। जो कर लेते हैं, फिर उन्हें दुबारा जन्म और मृत्यु के बीच में नहीं उतरना पड़ता। जिसने जान लिया प्रेम को, वह पार हो गया। एक ही नाव है जो पार ले जाएगी, वह नाव प्रेम की है।
जीसस से किसी ने पूछा है कि तुम्हारे परमात्मा का ढंग क्या, रूप क्या? जीसस ने कहा है, परमात्मा प्रेम है।
काश, जीसस को दादू के वचन मालूम होते। तो दादू ने और भी प्यारे ढंग से कहा हैः
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग।।
परमात्मा की जाति प्रेम; परमात्मा की देह प्रेम; परमात्मा की आत्मा, अस्तित्व प्रेम; परमात्मा का ढंग, होने का रंग, रूप-रेखा प्रेम।
जीसस का यह वचन कि परमात्मा प्रेम है, बहुत गहरे में खोजने जैसा है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा प्रेमी है। इसका यह अर्थ नहीं कि परमात्मा करुणावान है। इसका यह अर्थ नहीं कि परमात्मा दयावान है। जैसा कि बहुत से ईसाइयों ने इसका अर्थ किया है। अगर ऐसा ही कहना होता जीसस को तो वे कहतेः परमात्मा प्रेमी है, परमात्मा महाकारुणिक है, परमात्मा दयावान है। पर उन्होंने ऐसा नहीं कहा। उन्होंने कहा, परमात्मा प्रेम है। प्रेमी नहीं, दयावान नहीं, करुणावान नहीं; सिर्फ प्रेम है। परमात्मा का सारा रूप व्यक्तित्व का नहीं है, ऊर्जा का है। प्रेम ऊर्जा है; शुद्ध शक्ति है; शुद्धतम शक्ति है। वह श्रेष्ठतम है, अंतिम है।
जैसे बीज को हम बोते हैं, वह पहला चरण है। वृक्ष होता है, वह दूसरा चरण। फूल लगते हैं, वह तीसरा चरण। फिर सुवास आकाश में उड़ जाती है, वह चौथा चरण। प्रेम सुवास है। बीज कामवासना के हैं। प्रेम आखिरी घटना है। उसके पार फिर कुछ भी नहीं है। बीज का तो रूप है; सुवास का कोई रूप है? बीज का तो पता-ठिकाना है; सुगंध का कोई पता-ठिकाना है? बीज को तो तुम पकड़ लोगे। वृक्ष को भी पकड़ लोगे। फूल को भी मुट्ठी में ले सकते हो। लेकिन सुवास का क्या करोगे? मुट्ठी बांधोगे तो मुट्ठी में सुवास न रह जाएगी।
प्रेम को कोई बांध नहीं सकता। और जिसने भी प्रेम को बांधने की कोशिश की, उसके हाथ में कूड़ा-करकट लगेगा। सुवास को बांधने का यह ढंग नहीं। सुवास के साथ तो स्वयं जो उड़ जाए; सुवास के साथ तो स्वयं जो लीन हो जाए; सुवास के अंतहीन, आकारहीन अस्तित्व के साथ जो अपनी एकता साध ले; गिर जाए बूंद की भांति सागर में, वही जान पाएगा। जो सुवास हो जाए वही जान पाएगा।
स्वभावतः जरूर कोई बड़ी बाधा होगी कि इतने लोग जन्मते हैं, बहुत कम लोग प्रेम को जान पाते हैं। इतने लोग मरते हैं, बिना प्रेम को जाने मर जाते हैं। कोई गहरी बाधा होनी चाहिए। बाधा है। उसे हम ठीक से समझ लें तो फिर ये सूत्र समझ में आ जाएंगे।
कामवासना प्रेम की निम्नतम दशा है। है तो प्रेम की ही, पर बड़ी सीमाओं में बंधी है, क्षुद्र से घिरी है। कामवासना का अर्थ हैः शरीर का शरीर के प्रति आकर्षण। स्वभावतः कामवासना पृथ्वी की है; बहुत स्थूल है। उसमें बास भूमि की है। वह मिट्टी से ही पैदा हुई है और मिट्टी में ही गिर जाएगी। मिट्टी से ऊपर उसका कोई अस्तित्व नहीं है।
फिर जीवन में जिसे हम साधारणतः प्रेम कहते हैं, वह है। उसको प्रेम दादू नहीं कहते, हम उसे प्रेम कहते हैं। वह प्रेम है दो मनों का आकर्षण। शरीर से ऊपर है। थोड़ी यात्रा ऊपर उठी। थोड़ी सीढ़ी पर ऊपर चढ़े। जो इतने प्रेम को भी उपलब्ध हो जाए वह भी धन्यभागी है।
अधिक लोग तो शरीर पर ही समाप्त हो जाते हैं। उन्हें पता ही नहीं चलता
कि शरीर से और भी ऊंचाइयां थीं, और भी गहराइयां थीं। उन्हें यह भी पता नहीं चलता कि शरीर तो एक पायदान था। उस पर पैर रखना था, ऊपर उठ जाना था। लेकिन जिनके जीवन में थोड़ी सी प्रेम की झलक आती है, जो शरीर के आकर्षण के कारण

नहीं है, जो दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसके मन--शरीर के पार थोड़ा सा उठता है भाव--जिन्होंने यह प्रेम भी जान लिया, उनको एक बात समझ में आ जाती है कि जानने को और भी बाकी हो सकता है। द्वार खुलता है। अब दीवार नहीं रह जाती। जो शरीर पर ही समाप्त हो जाते हैं, उनके लिए सिर्फ दीवार ही रह जाती है।
फिर एक तीसरा और प्रेम है, जिसको भक्तों ने प्रार्थना कहा है। जब दो शरीर के बीच आकर्षण होता है तो काम; जब दो मनों के बीच आकर्षण होता है तो प्रेम--जिसे हम प्रेम कहते हैं; जब दो आत्माओं के बीच आकर्षण होता है तब प्रार्थना; और जब दो बिल्कुल खो जाते हैं, दो ही नहीं रह जाते, तब इसक। जिसको दादू प्रेम कहते हैं; जिसको जीसस ने प्रेम कहा है। वह आखिरी ऊंचाई है।
वे सीढ़ियां तुम्हारे भीतर हैं। तुम पहली ही सीढ़ी पर खड़े रह जाओ तो कोई
और जिम्मेवार नहीं है। दूसरी सीढ़ी पास ही थी। लेकिन कोई अड़चन होनी चाहिए। कोई गहरी बाधा होनी चाहिए। इतने लोग चूक जाते हैं कि करीब-करीब ऐसा लगता है, चूकना स्वाभाविक है। और इतने कम लोग उपलब्ध हो पाते हैं कि ऐसा लगता है, पाना अपवाद है, नियम नहीं। कोई बुद्ध, कोई चैतन्य, कोई दादू, कोई नानक-- कभी करोड़ों लोगों में एक।
बाधा हैः मरने का डर। क्योंकि जितनी ऊंचाई पर तुम जाते हो, उतना ही तुम्हारा अहंकार क्षीण होने लगता है, गलने लगता है। जितनी ऊंचाई होगी, उतने ही तुम कम हो जाओगे। यह डर है। जितनी नीचाई होगी, उतने ही तुम रहोगे। ठीक जमीन पर पड़े रहो तो पत्थर की चट्टान की तरह तुम होओगे। स्वभावतः ऊपर उठना हो तो पत्थर की चट्टानें ऊपर नहीं उठतीं; सुगंध उठती है, अग्नि की शिखा उठती है, भाप उठती है। विरल हो जाना पड़ता है। स्वयं को खोना पड़ता है। कामवासना में कोई खोता नहीं अपने को। कामवासना में तुम तुम रहते हो। तुम दूसरे का उपयोग कर लेते हो। तुम मिटते नहीं, वस्तुतः तुम दूसरे को मिटाने की चेष्टा करते हो।
इसीलिए तो पति-पत्नियों में इतनी कलह है सारे संसार में पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में। हजार तरह से सोचा गया है कि पति-पत्नी की कलह कैसे मिटे। कोई उपाय नहीं दिखता। कलह मिट नहीं सकती, ऐसा लगता है।
जब तक मनुष्य ऊपर न उठना सीखे, कलह नहीं मिट सकती। कलह यही है कि पत्नी पति को मिटाने की चेष्टा कर रही है, पति पत्नी को मिटाने की चेष्टा कर रहा है। एक गहन संघर्ष है, जो चाहे उन्हें ज्ञात भी न हो। पति कोशिश कर रहा है कि मैं सब कुछ हूं, तू मेरी परिधि है। पत्नी भी यही कोशिश कर रही है कि मैं केंद्र हूं, तुम परिधि हो। दोनों के अहंकार अपने को बचाने की चेष्टा में संलग्न हैं। कहीं दूसरा मिटा न दे। इसके पहले कि दूसरा मिटाए, मैं उसे मिटा दूं; यही सुरक्षा का उपाय मालूम पड़ता है।
इसलिए कामवासना प्रेम की तो बड़ी दूर की खबर है, हिंसा की ज्यादा। और अगर ज्ञानियों ने कामवासना से ऊपर उठने को कहा है, तो इसीलिए कहा है। महावीर ने तो स्पष्ट कहा है कि कामवासना हिंसा है। ये जैन शास्त्र अब तक नहीं समझा पाए हैं इस बात को कि कामवासना को हिंसा कहने का अर्थ क्या है? उन्होंने मूढ़तापूर्ण बातें खोज ली हैं, पंडितों ने, कि संभोग करने में कीटाणुओं की हिंसा होती है। क्योंकि दो शरीर का घर्षण होता है, इसलिए कुछ कीटाणु छोटे हवा के मर जाते हैं। इसलिए महावीर ने कामवासना को हिंसा कहा है।
पंडितों से मूढ़ आदमी खोजने मुश्किल हैं। उनके पास आंखें तो नहीं हैं, अंधे हैं। शब्दों के कुछ भी अर्थ तो निकालने ही पड़ेंगे। तो वे अपने अंधेपन से यह अर्थ निकाल लेते हैं। कामवासना को महावीर ने इसलिए हिंसा नहीं कहा है। इसलिए हिंसा कहा है कि जहां भी काम है वहां दूसरे को मिटाने की चेष्टा है। वही हिंसा है। और जब तक काम प्रेम न बन जाए तब तक हिंसा जारी रहेगी। और जब तक काम प्रेम न बन जाए तब तक ब्रह्मचर्य का कोई आविर्भाव न होगा।
तो ब्रह्मचर्य कामवासना का त्याग नहीं है, बल्कि कामवासना के भीतर जो छिपे हुए प्रेम का तत्व है, उसको मुक्त करना है। कामवासना की हत्या नहीं कर देनी है। यह तो ऐसे हुआ जैसे बीज को कुचल कर मार डाला। अब तुम बैठे रहो, सुगंध न आएगी। यद्यपि बीज के रहते भी सुगंध न आ सकती थी। बीज को टूटना था--

टूटना था भूमि में; ताकि बीज तो मिट जाए, लेकिन बीज में छिपी हुई जो सुवास है वह मुक्त हो जाए। उसको मुक्त होने पर लंबी यात्रा करनी पड़ेगी। बीज को वृक्ष बनना पड़ेगा, वृक्ष को फूल बनना पड़ेगा, फूल से सुवास मुक्त होगी। लंबी यात्रा है।
लेकिन अगर तुमने पत्थर उठा कर बीज मिटा दिया, जैसा कि बहुत से लोग करते हैं, साधु-संन्यासी करते हैं; उन्होंने कामवासना को पत्थर से मार डाला। अब वे बैठे हैं। ब्रह्मचर्य की कोई गंध नहीं आती। कामवासना मिटा दी और ब्रह्मचर्य की कोई सुगंध नहीं आती। तुम उनके जीवन को बड़े अधर में लटका हुआ पाओगे, त्रिशंकु की भांति पाओगे। न तो वे इस जगत के रहे, न उस जगत के। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी की बड़ी दुर्गति है। वे तुमसे भी बुरी स्थिति में हैं। तुम्हारे पास कम से कम बीज है। तुम भला बीज में ही अटके हो, लेकिन अभी भी संभावना है कि बीज को तुम बो दो, अंकुर आ जाए। अभी भी देर नहीं हो गई है। कभी भी देर नहीं हो गई है। जब भी तुम बीज को बो दोगे तभी अंकुर आ जाएगा। लेकिन तुम्हारे साधु-संन्यासी ने तो बीज को तोड़ डाला, इस डर से कि कामवासना में हिंसा है। बीज तो मर गया। उस बीज के साथ ही सुवास की संभावना भी मर गई।
कामवासना के विपरीत नहीं है ब्रह्मचर्य, कामवासना का शुद्धतम रूप है। बीज के विपरीत नहीं है सुगंध, बीज की ही शुद्धतम अभिव्यक्ति है। क्या फर्क है बीज में और सुगंध में? बीज में जो-जो पृथ्वी का अंश था वह पृथ्वी में डूब गया और जो-जो आकाश का अंश था वह सुवास से मुक्त हो गया। तुम्हारे भीतर जो-जो पृथ्वी का अंश है, वह कामवासना के धीरे-धीरे छूटते-छूटते पृथ्वी में लीन हो जाएगा। और तुम्हारे भीतर जो आकाश है--आत्मा कहो, परमात्मा कहो, वह मुक्त हो जाएगा। उसकी कोई जड़ें जमीन में न रह जाएंगी। वह उड़ जाएगा आकाश में। यही मोक्ष है, यही निर्वाण है।
लेकिन मेरी बात ठीक से समझ लेना। मैं ब्रह्मचर्य के पक्ष में हूं और कामवासना के विपक्ष में नहीं हूं। क्योंकि कामवासना के विपक्ष में होते ही ब्रह्मचर्य का तो उपाय ही खो गया। यह तो तुमने सीढ़ी का पहला पायदान ही तोड़ दिया। अब इस पर दूसरे पर तो जाने का उपाय न रहा। तुमने सीढ़ी जला दी। सीढ़ी जला कर तुम ऊपर न पहुंच जाओगे, तुम सीढ़ी से भी नीचे गिर जाओगे।
इसलिए मैं कहता हूं कि जिसने कामवासना को ठीक से समझा नहीं, वह ब्रह्मचर्य को तो नहीं होगा उपलब्ध, नपुंसकता को उपलब्ध हो जाएगा। वह सीढ़ी से भी नीचे गिर जाएगा। अगर सिर्फ नपुंसकता ही परमात्मा को पाने का उपाय होती, तो सभी नपुंसक पा लेते। लेकिन तुमने कभी सुना है किसी नपुंसक को मुक्त होते? कोई इतिहास में उल्लेख है किसी नपुंसक का, जो कि परम ज्ञान को उपलब्ध हुआ हो? वह असंभव है; इसलिए उल्लेख नहीं है। असंभव है इसलिए कि उसके पास बीज ही नहीं है। वह बो नहीं सकता। वह फसल नहीं काट सकता। वह सुगंध को फैला नहीं सकता आकाश में।

कामवासना में बुराई कुछ भी नहीं है, उस पर रुक जाने में बुराई है। कामवासना के पार जाना है। तब तुम उसे भी धन्यवाद दोगे। तब तुम कहोगे, तेरे बिना ऊपर भी न उठ सकते थे। तब तुम्हारा मन वासना के प्रति भी अनुग्रह से भरा होगा; क्रोध से, निंदा से नहीं।
दो शरीरों के बीच जो आकर्षण है उसमें हिंसा रहेगी। क्योंकि शरीर आपस में मिल कैसे सकते हैं? ठोस हैं। उनका मिलना संभव नहीं है। कामवासना में भी मिलते हैं तो मिलना क्या है? कहां मिलते हैं? मिलने का धोखा है। इतनी ठोस चीजें कहीं मिली हैं! तुम दो दीयों को मिलाने की कोशिश कर रहे हो।
दो ज्योतियां मिल सकती हैं। दो दीयों की ज्योतियां करीब ले आओ, एक ज्योति हो जाएगी। कोई बाधा न पड़ेगी। कोई संघर्षण भी न होगा। जरा भी आवाज न होगी कहीं। किसी को कानों-कान खबर न होगी कि दो ज्योतियां मिल गईं। क्योंकि दो ज्योतियों के बीच मिलने में कोई बाधा नहीं। सूक्ष्म सूक्ष्म से मिल जाता है, आत्मा आत्मा से मिल जाती है।
लेकिन दो दीयों को टकराओ! बड़ी कलह होगी, आवाज मचेगी, शोरगुल होगा, हिंसा होगी। हां, दीये एक-दूसरे को तोड़ सकते हैं; मिल नहीं सकते। और अगर मिलें तो मिलने का एक ही उपाय है कि दोनों टूट जाएं। तो उसको अगर तुम मिलना

कहते हो तो बात दूसरी। लेकिन जितने वे टूटने के पहले अलग थे, उतने ही टूटने के बाद भी अलग होंगे।
स्थूल मिल ही नहीं सकता। सब मिलन सूक्ष्म का है। इसलिए जितना सूक्ष्म होते जाओगे उतना मिलन सघन होता जाएगा। और एक ऐसी भी घड़ी आती है, अंतिम घड़ी, जिसको दादू ने कहा हैः इसक अलह औजूद है। परमात्मा का अस्तित्व प्रेम है। जहां दो बिल्कुल मिल जाते हैं कि फिर तुम उन्हें दुबारा अलग भी न कर सकोगे। उनकी रूप-रेखा ही खो जाती है। उनको अलग करने का उपाय ही समाप्त हो जाता है। लेकिन यह तो ऊंचाई पर होगा।
कामवासना को प्रेम बनाओ। दो व्यक्तियों के मन मिल सकते हैं--थोड़े से मिल सकते हैं। शरीर से ज्यादा मिल सकते हैं, क्योंकि मन थोड़ी सूक्ष्म बात है। कभी-कभी ऐसी घटना घट जाती है।
मैं बोल रहा हूं। जब मैं बोल रहा हूं तो मैं मन का उपयोग कर रहा हूं।
तुम जब सुन रहे हो तो मन का उपयोग कर रहे हो। कभी-कभी ऐसी घड़ी आ जाती है जब तुम वहां नहीं होते, मैं यहां नहीं होता। कभी-कभी सुनने वाला बोलने वाले से एक क्षण को एक हो जाता है। उसी घड़ी तुम्हें एक स्वाद मिलेगा ध्यान का।
जो तुम्हें कर-कर के भी नहीं मिलता होगा, अचानक मिल जाएगा।
दो मन मिल गए, करीब आ गए। दो लपटें पास आईं और एक हो गईं। फिर दूर हो जाएंगी। क्योंकि मन सदा पास नहीं हो सकता। मन कोई स्थिर तत्व नहीं है। इसलिए मिल सकता है, अलग हो जाएगा। मन के साथ कोई स्थिरता नहीं है। वह गति तत्व है। वह भाग रहा है। वह दो नदियों की तरह है भागता हुआ। कभी पास आ जाएंगे किनारे तो मिल जाएंगे; फिर अलग हो जाएंगे।
मन एक प्रवाह है। वह शाश्वतता नहीं है। इसलिए प्रवाह का तो थोड़ी देर
के लिए मिलना हो सकता है। वह तो ऐसा ही है, जैसे दो व्यक्ति रास्ते पर दौड़ते थे; करीब आ गए; फिर दूर हो गए। दौड़ते ही दौड़ते थोड़ी बात हो गई, थोड़ा मिलन हो गया, फिर अपने-अपने रास्तों पर विदा हो गए। दो पक्षी आकाश में उड़ते हुए करीब आए, फिर दूर हो गए।
लेकिन मन शरीर से ज्यादा करीब आ सकता है। कभी किसी संगीतज्ञ को सुनते वक्त कुछ लीन हो जाता है, कोई तल्लीनता जग जाती है। संगीतज्ञ नहीं रह जाता, श्रोता नहीं रह जाता, संगीत ही रह जाता है। उस संगीत में दोनों मिल गए होते हैं।
यह घटना कभी-कभी घटती है। जिनके जीवन में प्रेम की घटना घटती है उनको दिखाई पड़ता हैः कैसा अभाग्य होता अगर हम शरीर पर ही रुक जाते।
इसलिए शरीर की वासनाओं से मन की वासनाएं ऊपर हैं। जैसे एक आदमी खाने में रस लेता है; यह भी वासना है। और एक आदमी संगीत में रस लेता है; यह भी वासना है। लेकिन भोजन का रस शरीर का रस है। बहुत स्थूल है। संगीत का रस सूक्ष्म है, मन का है, थोड़ा गहरा है। थोड़े गहरे संस्कार होंगे उसके। और आगे की यात्रा के लिए थोड़े संकेत मिलेंगे। थोड़े शरीर से हटे।
और जिसके जीवन में मन के रस की संभावना खुल गई, उसे एक दिन कभी दो आत्माओं के मिलने का रस भी आ जाता है। गुरु और शिष्य के बीच वैसी घटना घटती है; जहां शिष्य बड़ी गहन श्रद्धा में अपने को सौंप देता है। इस भांति सौंप देता है कि जरा भी संदेह मन में नहीं होता। अपने को बचाता नहीं जरा भी। सौंप देता है पूरा। शिष्य का अर्थ ही है, जिसने अपने को सौंप दिया और जिसने कहा--अब जैसी तेरी मर्जी!
मैंने सुना है, एक सूफी फकीर के पास एक युवक आया। और उस युवक ने कहा, मैं आपका शिष्य होना चाहता हूं।
फकीर ने कहा, तुझे पता है कि शिष्य होने का अर्थ क्या है? बड़ी कठिन तपश्चर्या है। प्रशिक्षण से गुजरना होगा। बहुत से कर्तव्य साधने होंगे।
निखरना होगा।
उस युवक ने कहा, मुझे एक अवसर दें अपने को सिद्ध करने का। मेरी ईमानदारी को सिद्ध करने का मुझे मौका दें। जो भी आज्ञा होगी, मैं करूंगा।
गुरु ने कहा, देख, वर्षा करीब आती है, जंगल से लकड़ियां काटनी होंगी।
लकड़ियों को इकट्ठा करना होगा वर्षा के लिए। फिर छप्पर आश्रम का खराब हो रहा है, छप्पर ठीक करना है। फिर बगीचे में काम करना है, क्योंकि वर्षा आने

के करीब है, बगीचे को पुनः तैयार करना है। फिर चौके में भोजन बनाने के काम में लग जाना। ऐसे सब काम करने होंगे।
उस युवक ने कहा, ठीक। मैं समझा कि ये शिष्य के कर्तव्य हैं। गुरु के क्या कर्तव्य हैं?
गुरु ने कहा, गुरु का कोई कर्तव्य नहीं है। गुरु बैठा रहता है और आज्ञा देता है।
वह शिष्य चरणों पर गिर पड़ा। और उसने कहा, ऐसा क्यों न करें कि मुझे गुरु होने की ही शिक्षा दे दें। जब तैयार ही कर रहे हैं तो फिर मुझे गुरु ही होने के लिए तैयार कर दें।
बहुत से शिष्य, शिष्य अपने को मानते हैं, लेकिन गहरे में गुरु होने की आकांक्षा है। तो चूक जाएंगे। शिष्य भी बने होंगे वे तो इसी आशा में बने हैं कि आज नहीं कल गुरु हो जाना है। थोड़े दिन की मुसीबत है, झेल लेंगे। सीखने का समय है, जल्दी बीत ही जाएगा। कोई दुख सदा तो रहता नहीं। दुख भी बीत जाता है। ये दिन भी बीत जाएंगे, फिर गुरु हो जाएंगे।
अहंकार मिटना नहीं चाहता, सौंपना नहीं चाहता। कभी-कभी मिटने का खेल
भी करता है। लेकिन खेल से कुछ होने वाला नहीं है। खेल से तुम किसी और को धोखा नहीं देते सिवाय अपने को।
तो तुम्हें फिर गुरु के पास होने का--जो संभावना है प्रार्थना की, वह न खुल पाएगी। तुम मंदिर की पत्थर की मूर्तियों के सामने प्रार्थना न सीख सकोगे।
इसे तुम ठीक से समझ लो। क्योंकि पत्थर की मूर्ति के सामने तुम्हारे अहंकार को कोई अड़चन ही नहीं होती झुकने में। वहां दूसरा कोई है ही नहीं जिसके सामने अड़चन हो। जीवन की वास्तविक प्रार्थना तो किसी जीवंत गुरु के पास ही पैदा होती है। क्योंकि वहीं तुम्हें झुकने की अड़चन मालूम होती है-- कैसे झुकें? किसी जीवित व्यक्ति के सामने कैसे झुकें? आसान है किसी पत्थर के सामने झुक जाना। क्योंकि वहां कोई है ही नहीं जिसके सामने तुम झुक रहे हो। वस्तुतः तुम पत्थर की मूर्ति के सामने जब झुकते हो तो तुम अपने ही मन की धारणा के सामने झुक रहे हो।
मुसलमान मस्जिद में झुक जाता है, क्योंकि मस्जिद उसकी मन की धारणा है। हिंदू मंदिर में झुक जाता है, क्योंकि वह मंदिर उसका मंदिर है। हिंदू को मस्जिद में झुकाओ, तब बड़ी कठिनाई होगी। जैन को हिंदू मंदिर में झुकाओ, तब बड़ी कठिनाई होगी। रीढ़ अकड़ी रहेगी। सिर नीचे नहीं झुकेगा। क्योंकि यह मेरी धारणा नहीं है, इसके सामने मैं कैसे झुकूं!
इसे थोड़ा समझ लो। हम अपनी ही धारणा के सामने झुक जाते हैं। इसको अगर ठीक से कहा जाए तो ऐसा हुआः हम अपने ही चरणों में झुके रहते हैं। यह तो अहंकार का खेल है। कृष्ण तुम्हारे भगवान हैं, इसलिए तुम झुक जाते हो। तुम्हारी मान्यता है कि वे भगवान हैं, इसलिए झुक जाते हो।
तुम अपनी ही मान्यता के सामने झुकते हो, कृष्ण के सामने नहीं। कृष्ण
के सामने झुकते तो रूपांतरित हो जाते। अपनी ही मान्यता के सामने हजारों बार झुकते रहोगे, कुछ भी न होगा। व्यर्थ की कवायद हो रही है। नाहक शरीर को कष्ट दे रहे हो। इतना समय तुमने यूं ही गंवाया।
लेकिन जब तुम किसी जीवंत व्यक्ति के पास पहुंचते हो, कोई जीवित व्यक्ति तुम्हारी धारणा के अनुकूल नहीं हो सकता। मुर्दे ही केवल तुम्हारी धारणा के अनुकूल हो सकते हैं। जीवंत व्यक्ति तो इतनी महा घटना है कि तुम्हारी सब धारणाओं को तोड़ कर बहेगा। वह तो बाढ़ आई गंगा है। वह कोई नहरों में बहता हुआ पानी नहीं है कि तुमने लकीरें बांध दी हैं, वहीं-वहीं बहता है। जहां तुम ले जाना चाहते हो, वहीं जाता है। जीवंतता तो बाढ़ है; जीवन की बाढ़ है। वह कोई कूल-किनारा नहीं मानता। उसके सामने जब तुम झुकोगे, तो एक ही उपाय हैः तुम अगर मिटो तो ही झुक सकते हो। तुम्हारी अगर जरा सी भी धारणा शेष है, तो तुम झुकने में अड़चन पाओगे।
तुम्हारी धारणा कहेगी, इस आदमी के सामने झुकते हो? पहले पक्का तो कर
लो कि तुम जिसे मानते हो ज्ञानी है, यह वैसा ज्ञानी है? पहले पक्का तो कर लो कि तुम जिसे आचरण कहते हो, वैसा आचरण इसका है? तुम पहले पक्का तो कर लो कि तुम जिस शास्त्र को मानते हो, यह उस शास्त्र के अनुकूल है? तुम सारी

बातें पक्की कर लो। हां, अगर तुम्हारी धारणा के अनुकूल पड़ता हो तो झुक जाना।
तब तुम ध्यान रखना, तुम फिर भी अपनी धारणा के सामने ही झुक रहे हो।
गुरु की खोज एक ऐसे व्यक्ति की खोज है जो तुम्हारी धारणाओं को तोड़ दे।
वह तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल व्यक्ति की खोज नहीं है। वह किसी जीवंत घटना की खोज है जहां तुम्हारी सारी धारणाएं डगमगा जाएं, टूट जाएं, छितर-बितर जाएं। जो तुम्हारे विचारों को उखाड़ दे; जो तुम्हारी नींद को तोड़ दे। और तुम्हारी नींद टूटे, मूर्च्छा टूटे, तो तुम शायद झुको। क्योंकि अहंकार मूर्च्छा है। वह गहरी नींद है। तुम सब उपाय कर लो, उससे कुछ भी न होगा, जब तक तुम्हारी नींद न टूटे।
मैंने सुना है कि एक आदमी ने एक बहुत सुंदर बगीचा लगाया। लेकिन एक अड़चन शुरू हो गई। कोई रात में आकर बगीचे के वृक्ष तोड़ जाता, पौधे उखाड़ जाता। सुबह सारा बगीचा आधी उजड़ी हालत में आ जाता। शक हुआ कि पड़ोसी शरारत कर रहे हैं। ईर्ष्या हो गई है। उसने आदमी रखे, जासूस लगाए। लेकिन पता चला, कोई पड़ोसी कोई गड़बड़ नहीं कर रहा है। कोई आता नहीं।
तब तो बड़ी मुश्किल हो गई। तो उसे शक हुआ कि शायद भूत-प्रेत, शायद कोई दुष्टात्माएं उपद्रव कर रही हैं। उसने गंडे-ताबीज बंधवाए।
कुछ भी परिणाम न हुआ। भूत-प्रेतों का काम जारी रहा।
तब वह घबड़ा गया। एक फकीर गांव में आया था, वह उसके पास गया। उसने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में आ गया हूं। अपनी सारी कथा सुनाई।
उस फकीर ने कहा, तू एक काम कर। ठीक आधी रात का अलार्म अपनी घड़ी में भर दे। और सात दिन तक जब अलार्म बजे तो जाग कर, पांच मिनट जाग कर अपने आस-पास देखना और सो जाना। सात दिन में कोई घटना तुझे दिखाई पड़े तो मेरे पास आ जाना।
उसे कुछ भरोसा न आया कि अलार्म इसमें क्या करेगा! मेरा जागना इसमें क्या करेगा! लेकिन अब फकीर ने कहा है तो सात दिन की ही बात है, कर ही लेनी चाहिए। और सब उपाय कर ही चुके हैं, कुछ हुआ नहीं। अलार्म भर कर घड़ी में सो गया। दो दिन तो कुछ भी न हुआ। व्यर्थ नींद टूटी। नाराज भी हुआ। फकीर को गाली भी दी मन में। लेकिन तीसरे दिन उसने पाया कि जब अलार्म बजा तो वह बगीचे में खड़ा नींद में अपने झाड़ उखाड़ रहा था।
भागा हुआ फकीर के चरणों में गिर गया। उसने कहा कि तुम अगर मुझे न जगाते तो मैं न मालूम और कितने उपाय करता। वे सब उपाय व्यर्थ थे। क्योंकि कोई दूसरा हानि नहीं पहुंचा रहा था। मैं ही अपनी नींद में अपने वृक्षों को उखाड़ रहा था।
और ऐसी ही दशा प्रत्येक की है। कोई तुम्हें दुख नहीं पहुंचा रहा है। कोई तुम्हारी बगिया नहीं उजाड़ रहा है। न तो पड़ोसी नष्ट कर रहे हैं, न कोई भूत-प्रेत तुम्हें सता रहे हैं। तुम ही अपनी नींद में अपनी जीवन की बगिया को उजाड़ते हो, दुख पाते हो, पीड़ा पाते हो। नींद टूटनी चाहिए।
और अहंकार नशा है। इसलिए तो हमने उसको मद कहा है। अहंकार के नशे में तुम सोए हो। किसी के चरणों में जब तुम छोड़ दोगे अपने को... ।
और ध्यान रखना, सूक्ष्म बात है, ख्याल रख लेनी। अगर किसी व्यक्ति से तुम्हारे विचार मेल खाते हों और तुम छोड़ो, तो वह नंबर दो की घटना होगी--मन और मन के मिलने की। लेकिन ऐसे व्यक्ति के चरणों में अपने को छोड़ो, जिससे तुम्हारे विचार मेल न भी खाते हों, लेकिन जिसमें तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता है जो तुमसे पार है। भला तुम्हारे विचार उससे सब तरह मेल न भी खाते हों, कई जगह वह तुम्हारे विचार के प्रतिकूल हो, भिन्न हो, विपरीत हो; लेकिन जिस व्यक्ति में तुम्हें ऐसी झलक मिलती हो कि वह तुम्हारी जीवन-चेतना से ऊपर है। विचार की फिक्र मत करना। क्योंकि अंततः विचारों का कोई मूल्य नहीं है। अंततः तो जीवन-चेतना की स्थिति-सोपान का मूल्य है। जिसके पास जाकर तुम्हें लगता हो कि सिर उठा कर ऊपर देखना पड़ता है तब इस आदमी की थोड़ी प्रतिमा दिखाई पड़ती है, उसके चरणों में अपने को छोड़ देना; तो तीसरी घटना घटेगी प्रार्थना की।
और इस तीसरे के बाद ही चौथे का उपाय है, जिसकी दादू चर्चा कर रहे हैं।
उस चौथे को वे इसक कहते हैं, प्रेम कहते हैं। उसी चौथे का नाम परमात्मा है।

तब तुम किसी खास व्यक्ति के चरणों में अपने को नहीं छोड़ रहे हो। तीसरी घटना गुरु के चरणों में घटती है। गुरु का आकार है, रूप है, रंग है। चौथी घटना अरूप और निराकार के चरणों में घटती है। फिर तुम सिर्फ अपने को छोड़ देते हो। तुम फिर यह भी नहीं पूछते, किसके चरणों में? समग्र के चरणों में तुम अपने को छोड़ देते हो। तुम समग्र के साथ बहने लगते हो।
जब लगि सीस न सौंपिए, तब लगि इसक न होई।
आसिक मरणै न डरै, पिया पियाला सोई।।
जब तक सिर सौंपने की तैयारी न हो तब तक प्रेम न होगा।
सिर के दो अर्थ हैं। एक तो तुम्हारा सोच-विचार; और दूसरा तुम्हारा अहंकार। सिर तुम्हारी अकड़ है और सिर तुम्हारा चिंतन भी। तुम्हारे विचार भी सारे सिर में संगृहीत हैं और तुम्हारी अस्मिता भी, मैं-भाव भी।
जब लगि सीस न सौंपिए...
जब तक इस सिर को ही उतार कर न दे दोगे कहीं...
... तब लगि इसक न होई।
तब तक तुम्हें प्रेम का पता न चलेगा। मिटोगे नहीं, प्रेम का पता न चलेगा। तुम्हारे रहते प्रेम का पता न चलेगा, तुम्हारे मिटते ही पता चलेगा। तुम्हारे मिटने पर ही प्रेम पैदा होता है। जैसे बीज के मिटने पर वृक्ष पैदा होता है। ठीक तुम बीज की तरह हो। मिटोगे तो ही कुछ बड़ा तुम्हारे भीतर पैदा होगा। और यही बाधा है। तुम डरते हो मिटने से। तुम मृत्यु से भयभीत हो कि कहीं मिट न जाऊं! तुम अपने को बचाते हो। बचाने से हिंसा पैदा होती है। तुम दूसरे को मिटाने में लग जाते हो।
दो तरह के लोग हैं संसार में। एक, जो अपने को बचाने में लगे हैं। स्वभावतः जो अपने को बचाने में लगता है, वह दूसरे को मिटाने में लग जाता है। दूसरे, जिन्होंने यह समझ लिया कि मिटना तो होगा ही, मौत तो आने ही वाली है। इसलिए उसकी चिंता छोड़ दी। विपरीत, उन्होंने अपने को मिटाने में लगा दिया। जो अपने को मिटाने में लगता है, वह दूसरे को मिटाने में नहीं जाता। और जो स्वयं को पूरी तरह मिटा देता है, उसी के जीवन में प्रेम की सुगंध का जन्म होता है।
आसिक मरणै न डरै...
वह जो प्रेमी है, वह मरने से नहीं डरता।
... पिया पियाला सोई।।
वही प्रेम के प्याले को पीने का हकदार हो पाता है।
यह तुमने कभी ख्याल किया कि साधारण जीवन में भी प्रेमी मरने से नहीं डरता। साधारण जीवन के प्रेम में भी! इस बड़े प्रेम को हम छोड़ दें। मजनू- फरिहाद जैसे साधारण प्रेमी भी मरने से नहीं डरते। प्रेम में कुछ बात है। प्रेम मृत्यु से बड़ा है। और जो प्रेम मृत्यु से डर जाए वह प्रेम ही नहीं है।
अगर तुम्हारे जीवन में कभी प्रेम क्षण भर के लिए भी उतरा हो तो तुम अपने को पूरा मिटाने को राजी हो जाओगे। तुम कहोगे, यह क्षण मेरे लिए पर्याप्त है। यह एक क्षण जान लिया, सब जान लिया। यह एक क्षण मेरे लिए शाश्वतता है। अब इसके पार कुछ जानने को नहीं बचा। अब अगर मर भी जाऊं, तो मैं तृप्त मर रहा हूं, अतृप्त नहीं।
जब साधारण प्रेम में ऐसी घटना घटती है तो उस असाधारण प्रेम की तो बात
ही क्या कहनी, जो व्यक्ति और गुरु के बीच पैदा होता हो या व्यक्ति और परमात्मा के बीच पैदा होता हो। उस प्रेम की दशा में ऐसा अहसास ही नहीं होता कि मैं मर सकता हूं। प्रेम अमृत है। जिसने प्रेम को जाना, उसने मृत्यु के भय को भी उसी क्षण छोड़ दिया।
यहां तुम जीवन में अगर निरीक्षण करोगे, तो तुम उन लोगों को सर्वाधिक मृत्यु से डरता हुआ पाओगे जिन्होंने न कभी प्रेम किया और न कभी प्रेम दिया। उन्हें तुम धन को पकड़ते हुए पाओगे, क्योंकि धन मौत से रक्षा का आश्वासन है। तुम कृपण आदमियों को प्रेम करते न पाओगे। कृपण आदमी धन को पकड़ता है। क्योंकि धन से ऐसा आश्वासन मिलता है कि शायद मौत से बचने का कोई उपाय धन में छिपा हो। वह बड़े मकान बनाएगा, बड़ा धन इकट्ठा करेगा, बड़ी तिजोड़ी सुरक्षा करेगा, लेकिन प्रेम नहीं करेगा। क्योंकि प्रेम में बांटना पड़ता

है। कृपण बांट नहीं सकता। कृपण दे नहीं सकता। वह केवल ले सकता है। कृपण की केवल मांग है; दान उसने जाना नहीं। और जिसने देना न जाना, वह प्रेम कैसे जानेगा! क्योंकि प्रेम तो देने की शुद्धतम भाव-दशा है। कोई अपने को पूरा दे डालना चाहता है। कोई इसमें ही प्रसन्न है कि जिसे मैंने प्रेम किया है उस पर सब भांति न्यौछावर हो जाऊं। कुछ भी मेरे पास न बचे, सब दे डालूं। उस सब देने में ही अमृत की पहली झलक आती है।
आसिक मरणै न डरै, पिया पियाला सोई।।
वही उस प्रेम का, प्रेमी का प्याला पीने में समर्थ हो पाता है।
दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोई।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होई।।
प्रेम की पुस्तक कोई भी पढ़ता नहीं, क्योंकि बड़ा महंगा सौदा है। सिर से चुकानी पड़ती है कीमत।
दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोई।
कोई साहसी, कोई विरला वीर पुरुष, जो अपने को दांव पर लगाने को तैयार है, प्रेम की पाती बांचता है। प्रेम की गीता पढ़ता है।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ै...
वेद-पुराण कोई कितना ही पढ़ता रहे, कुछ भी न होगा।
... प्रेम बिना क्या होई।
क्योंकि वेद और पुराण सस्ते में मिल जाते हैं; कौड़ियों में मिल जाते हैं। प्रेम तो अपने को ही देकर मिलता है। प्रेम बाजार में नहीं बिकता। प्रेम दुकानों पर नहीं मिलता। प्रेम को किसी और सिक्के से खरीदने की कोई संभावना नहीं है। तुम्हें अपने को ही देना पड़ेगा। प्रेम तुम्हें मांगता है, उससे कम नहीं। तुम अपनी सब संपदा दे दो, तो भी कुछ न होगा। तुम अपना सब कुछ दे डालो, अपने को बचा लो; प्रेम कहेगा, इससे कुछ न होगा, यह सौदा नहीं होगा। तुम्हें अपने को ही दे देना होगा।
बेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होई।
दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोई।।
प्रीति जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं।
रोम-रोम पिव-पिव करै, दादू दूसर नाहिं।।
यह बड़ा प्यारा वचन है।
प्रीति जो मेरे पीव की...
यह चौथे प्रेम की बात है, जब प्रेम प्रार्थना से भी ऊपर उठता है।
क्योंकि प्रार्थना में भी थोड़ा द्वैत शेष रहता हैः शिष्य और गुरु; पूज्य और पूजा और पूजक। जब चौथी घड़ी आती है प्रेम की--
प्रीति जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं।
अब वह मेरी हड्डी-हड्डी में समा गई। अब मुझे उसका नाम नहीं लेना पड़ता, दादू कहते हैं। नाम गूंजता ही रहता है। वह मेरे रोएं-रोएं से उठ रही है पुकार। मुझे करनी नहीं पड़ती। अब मैं प्रार्थना करता नहीं हूं, होती है। अब मैं कुछ भी न करूं, तो भी प्रार्थना होती है। कुछ और भी करूं, तो भी प्रार्थना होती है। प्रार्थना की एक अंतर्धारा बहती रहती है। ऊपर-ऊपर कुछ भी करता रहूं, भीतर वही रोम-रोम में गूंजता रहता है।
प्रीति जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं।
वह मेरी हड्डी-हड्डी में समा गई है।
रोम-रोम पिव-पिव करै, दादू दूसर नाहिं।।
और वह इतनी गहरी समाविष्ट हो गई है मेरे रोएं-रोएं में, रोआं-रोआं पिव-पिव कर रहा है। और मैं खोजता हूं तो मैं दादू को और कहीं नहीं पाता, बस उस पिव-पिव की आवाज में ही पाता हूं। दादू दूसर नाहिं! अब दादू दूसरा नहीं रहा, अब प्रार्थना ही हो गया है। अब ऐसा नहीं है कि दादू प्रार्थना कर रहा है। अब दादू प्रार्थना है।
... दादू दूसर नाहिं।।
अगर तुम कभी छोटे से प्रयोग करो प्रार्थना के, मंत्रोच्चार के, तो तुम्हें समझ में आ सकता है। पहले जब तुम मंत्रोच्चार करोगे तो वह बीज की तरह होगा। तुम्हें शब्द का उच्चारण करना होगा। समझो, ओम-ओम की तुम धुन लगाओगे। तुम्हें श्रम करना होगा। तुम्हें कहना होगा यह ओम। यह पहली सीढ़ी

है। फिर तुम्हारे ओंठ धीरे-धीरे बंद हो जाएंगे। बाहर किससे कहना है! किसी को सुनाना थोड़े ही है, कहना है। किसी को दिखाना थोड़े ही है, अपने भीतर गुंजाना है। ओंठ बंद हो जाएंगे, अब तुम भीतर ही ओम की गुंजार करोगे। लेकिन अभी भी थोड़ा प्रयत्न रहेगा, कंठ का उपयोग रहेगा। ओंठ तो बंद हो गए, लेकिन कंठ का उपयोग रहेगा।
ऐसा कुछ दिन ओम का गुंजार तुम भीतर चलाते रहोगे। फिर किसी दिन अचानक बिना खबर दिए, तुम कुछ और काम कर रहे होओगे, अचानक तुम्हें होश आएगा--यह क्या हुआ! तुमने तो ओम की गुंजार नहीं की और भीतर गुंजार उठने लगी!
यह चौंकाती है भक्त को बात। क्योंकि पहले तो वह करता था, कर-कर के खींच-खींच कर लाता था, तब भी छूट-छूट जाती थी। फिर चेष्टा करता था तो आता था नाम; नहीं चेष्टा करता था तो भूल जाता था। चेष्टा भी करता था तो भी कभी-कभी भूल जाता था। बीच-बीच में चूक जाती थी, विस्मृति हो जाती थी। लेकिन अगर जारी रहे धारा, तो धीरे-धीरे रोएं-रोएं में समाने लगती है। एक दिन अचानक बाजार जाते तुम भीतर सुनोगे, मंत्रोच्चार हो रहा है। तुम करने वाले नहीं हो, तुम सुनने वाले हो गए।
फिर चौथी घटना घटती है जिसकी दादू बात कर रहे हैं। एक दिन ऐसा होता है
कि न तुम करने वाले होते हो, न तुम सुनने वाले होते हो, उच्चार ही रह गया। ... दादू दूसर नाहिं।।
तब अचानक तुम चौंक कर देखते हो, मैं कहां खो गया? सिर्फ ओंकार गूंज रहा है। न तो मैं कर रहा हूं, न मैं सुन रहा हूं; मैं हूं ही नहीं। दादू दूसर नाहिं!
प्रीति जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं।
रोम-रोम पिव-पिव करै, दादू दूसर नाहिं।।
आसिक मासूक हुई गया, इसक कहावै सोई।
वह जो प्रेमी था, प्रेमिका हो गया।
यह थोड़ा समझने जैसा है। इसका क्या अर्थ है? और भक्त के जीवन में इसका बड़ा अर्थ है। भक्त के जीवन में यह बड़ी क्रांति का सूचक है।
आसिक मासूक हुई गया...
प्रेमी प्रेमिका हो गया।
प्रेमी है पुरुष। पुरुष में थोड़ा आक्रमण है। पुरुष में थोड़ी हिंसा है। पुरुष प्रार्थना भी करता है तो ऐसे जैसे दावा कर रहा हो। पुरुष मंदिर के द्वार पर भी जाता है तो ऐसे जैसे आक्रामक हो। वह पुरुष का गुण है। पुरुष चित्त आक्रामक है।
स्त्रैण चित्त आक्रामक नहीं है। इसलिए कोई स्त्री अपनी तरफ से कभी किसी पुरुष से नहीं कहती कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। वह प्रतीक्षा करती है, पुरुष ही कहे। क्योंकि उतना कहना भी स्त्रैण गुणधर्म के विपरीत होगा। वह भी आक्रमण हो गया। किसी से यह कहना, मैं तुझे प्रेम करता हूं-- आक्रमण हो गया। यह दूसरे की सीमा का उल्लंघन हो गया। यह दूसरे के साथ जबरदस्ती की शुरुआत हो गई। हो सकता है दूसरा इसे पसंद न करे। या हो सकता है सिर्फ संस्कारवश स्वीकार कर ले। हो सकता है करुणावश, दयावश, सहानुभूतिवश इनकार न करे। यह आक्रमण हो गया।
स्त्री कभी किसी पुरुष को नहीं कहती अपनी तरफ से। जब पुरुष बहुत बार
कह चुका होता है और स्त्री आश्वस्त हो गई होती है कि अब कोई आक्रमण नहीं है, तभी वह कहती है कि मैं भी तुम्हें प्रेम करती हूं। ऐसा नहीं है कि उसने कभी पहले प्रेम नहीं किया। स्त्री भी प्रेम करती है। लेकिन उसका प्रेम प्रतीक्षा का है, आक्रमण का नहीं। वह राह देखेगी। अगर पुरुष न आएगा तो पुरुष के पीछे न भागेगी। बुलावा उसने दे दिया है बड़े गहरे हृदय से। आमंत्रण उसने भेज दिया है। लेकिन वह स्थूल में नहीं है, वह बड़े सूक्ष्म में है। वह प्रतीक्षा करेगी। जाल उसने फेंक दिया है। लेकिन वह जाल पृथ्वी का नहीं है। उसे तुम पकड़ नहीं सकते उसके जाल को। उसका रोआं-रोआं तुम्हें बुला रहा है। उसकी श्वास-श्वास तुम्हें पुकार रही है। लेकिन फिर भी वह आक्रमण न करेगी। वह रोक कर तुम्हारा हाथ यह न कहेगी कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। पहल न लेगी, इनिशिएटिव न लेगी। पहल तो पुरुष को ही लेनी होगी।

तो आसिक मासूक हुई गया। दादू कहते हैं, जब शुरू की थी तेरी तरफ यात्रा,
तो हम आशिक थे। दौड़ रहे थे तेरी तरफ। तुझे खोजते थे, दीवाने थे, पागल थे, मजनू की तरह थे। चिल्लाते थे लैला-लैला, ऐसा अल्लाह-अल्लाह, या राम-राम की बड़ी जोर से गूंज मचाते थे। पहाड़ों में, गुफाओं में, हिमालय में तुझे खोजते फिरते थे। काशी में, काबा में तुझे पुकारते फिरते थे। एक आक्रमण उठा रखा था। एक झंडा लेकर चल रहे थे। खोज कर रहेंगे, कहां तू छिपा है। तुझे उघाड़ लेंगे, तेरे रहस्य को तोड़ेंगे। तुझे जीत कर रहेंगे। उसमें गहरे में जीत थी।
आसिक मासूक हुई गया...
फिर एक ऐसी घड़ी आती है, जब प्रेम गहराता है, तो यह आक्रमण नष्ट हो जाता है। अब दादू कहते हैं, अब हम तुझे खोजते नहीं, हम प्रतीक्षा करते हैं कि कब तू आएगा। अब हम तुझे खोजते नहीं, क्योंकि अब हमें समझ में आ गया कि खोजना भी अहंकार है। हम तुझे खोज सकते हैं, यह बात ही अहंकार है। हम तुझे कैसे खोज सकेंगे? तेरी ही कृपा होगी तो ही तू मिलेगा। तेरे प्रसाद से तू मिलेगा, हमारे प्रयास से नहीं। हम थक गए। हमने सब तरफ तेरे द्वार खटखटा लिए। लेकिन सब जगह हमने मकान खाली पाया। अब हम समझ गए कि मकान खाली न था, हमारे आक्रमण के कारण ही तू हट गया था।
परमात्मा पर कोई आक्रमण कर सकता है? परमात्मा के प्रति कोई हिंसक हो सकता है? इसलिए तार्किक व्यक्ति उसे नहीं खोज पाता। तर्क हिंसा है। वह प्रमाण करता है, सिद्ध करता है। वैज्ञानिक परमात्मा को नहीं खोज पाता, क्योंकि विज्ञान हिंसा है।
मार्क्स ने कहा है कि मैं परमात्मा को उसी दिन स्वीकार करूंगा, जिस दिन प्रयोगशाला की परखनली में वैज्ञानिक उसे पकड़ कर सिद्ध कर देगा। लेकिन यह कोई बात हुई! और अगर किसी दिन परमात्मा पकड़ में आ गया और परखनली में रख लिया गया, टेस्ट-ट्यूब में, और जांच-पड़ताल हो गई, उसको कोई परमात्मा कहेगा? वह कोई कीड़ा-मकोड़ा होगा। उसकी कौन पूजा करेगा? उसको मानेगा कौन? जो हमारी परखनली की पकड़ में आ गया वह हमसे ऊपर नहीं हो सकता। उसके मंदिर गिरा दिए जाएंगे। फिर ठीक है। केमिस्ट की दुकान पर तुम खरीद लेना परमात्मा डब्बी में बंद या एक कैप्सूल में बंद। वह एक दवाई हो जाएगा। विटामिन होगा। उसको ले लिया, थोड़ी ताकत आएगी। लेकिन परमात्मा नहीं बचेगा। यह बात मार्क्स को भी समझ में आ गई। जब उसने लिखा, तो उसने बाद में यह
भी जोड़ा कि यह भी मैं समझता हूं कि अगर परमात्मा टेस्ट-ट्यूब में पकड़ में आ जाए तो वह परमात्मा न रह जाएगा।
विज्ञान परमात्मा को खोज ही नहीं सकता। जिसे खोज ले वह परमात्मा नहीं
हो सकता। पुरुष चित्त आक्रामक है। विज्ञान पुरुषों की खोज है। तर्क पुरुषों की खोज है। उसमें बड़ी आतुरता है, जल्दबाजी है, बेचैनी है, पा लेने की चेष्टा है, दौड़-धूप है, लेकिन समझ नहीं है। हृदय की समझ नहीं है कि कुछ चीजें हैं, जो प्रतीक्षा से मिलती हैं। कुछ चीजें हैं, जिन्हें तुम निमंत्रण दे सकते हो, आक्रमण नहीं कर सकते। जिन्हें तुम बुलावा दे सकते हो, वे अतिथि हो सकती हैं, लेकिन उनको तुम कैदी बना कर नहीं ला सकते। परमात्मा तुम्हारा अतिथि है। तुम द्वार खुले रखना, बस! जब वह आए तो शय्या तैयार रखना। जब वह आए तो ऐसा न हो कि तुम्हारा घर तैयार ही न हो अतिथि को स्वीकार करने को। कहीं ऐसा न हो कि घर साफ-सुथरा न हो। वह जब आए तो सब तैयार पाए। बस इतना तुम्हें करना हैः
आसिक मासूक हुई गया...
तब तुम प्रतीक्षा करते हो। तुम जोहते हो बाट। राह पर तुम्हारी आंख लगी रहती है। पत्ता भी खड़कता है तो तुम चौंकते हो, शायद उसका आना हो गया! हवा का झोंका आता है, तो शायद उसने द्वार पर दस्तक दी! तुम जागरूक हो, प्रतीक्षारत हो, लेकिन आक्रामक नहीं। क्योंकि तुमने जान लिया, खोजने तुझे हम कहां जाएंगे? अगर तूने तय ही किया है छिपने का तो हम तुझे उघाड़ न सकेंगे। वह तो तेरी ही मर्जी होगी तो ही तू उघाड़ेगा। और तुझे उघाड़ने की चेष्टा एक तरह का बलात्कार है।
जैसे कोई किसी स्त्री के साथ जबरदस्ती बलात्कार कर दे। तो देह से तो बलात्कार हो जाएगा, लेकिन स्त्री के मन को और आत्मा को तो छुआ भी नहीं जा

सकता। बलात्कार के क्षण में स्त्री की आत्मा तो वहां होगी ही नहीं। वह आत्मा तो केवल प्रेमी को उपलब्ध हो सकती है।
विज्ञान को मैं बलात्कार कहता हूं। तर्क को बलात्कार कहता हूं। काव्य प्रेम है। प्रार्थना प्रेम है। हृदय से ही हृदय के पास जाने का उपाय है। तो दादू ने बड़ी गजब की बात कही है। शायद ही किसी संत ने कही है। मैं किसी संत की वाणी के भीतर इस वचन को अब तक नहीं पाया।
आसिक मासूक हुई गया...
यह जानने वाला ही कह सकता है। जिसने इस प्रक्रिया को जाना हो, और जिसने भीतर पहचाना हो कि यह क्या हो गया? पुरुष की तरह चले थे, स्त्री की तरह हो गए! खोजने निकले थे, कितना बड़ा अभियान था! थक कर बैठ गए, राह देखने लगे तेरी!
आसिक मासूक हुई गया, इसक कहावै सोई।
और दादू कहते हैं, जब पुरुष मिट जाता है और स्त्री ही रह जाती है; जब प्रतीक्षा ही रह जाती है; खुले द्वार बाट जोहती आंखें ही रह जाती हैं अनंत तक, आकाश पर टिकी--तेरी राह... और तेरी राह... और तेरी राह... । और तू जब आएगा, तब की प्रतीक्षा। जल्दी भी नहीं। प्राण आतुर हैं, फिर भी जल्दबाजी नहीं, अनंत की प्रतीक्षा की तैयारी है। तू जब भी आएगा तभी जल्दी है। रोएंगे, नाचेंगे, गाएंगे; मगर तुझे खोजने कहां जाएंगे? अपने को तैयार करेंगे, ताकि तू ही खोज ले।
स्त्री लुभाती है, ताकि पुरुष चल पड़े। स्त्री नाचती है, मुस्कुराती है, उसकी आंखों में निमंत्रण होता है, ताकि पुरुष आतुर हो जाए; ताकि पुरुष के भीतर आकांक्षा का ज्वार उठ जाए, ताकि पुरुष के भीतर एक प्यास उठे, कुछ अंकुरित हो, वह दौड़ उठे।
दादू कहते हैं, तभी प्रार्थना पूरी, जब वह स्त्रैण हो जाती है।
जीसस ने कहा है, जब तक तुम स्त्रियों की भांति न हो जाओगे तब तक तुम उसे न पा सकोगे।
नीत्शे ने तो बुद्ध और जीसस का विरोध करने के लिए कहा है कि ये दोनों व्यक्ति पुरुष कम थे, स्त्रैण ज्यादा थे।
उसने तो नाराजगी में कहा है, उसने तो उनके खिलाफ कहा है, लेकिन बात तो ठीक ही है। बुद्ध को बैठे देखा तुमने? इनके शरीर को गौर किया? इस शरीर में स्त्रैण सुडौलता तो दिखाई पड़ती है, पुरुष की रुक्षता दिखाई नहीं पड़ती। इस चेहरे पर पुरुष नहीं दिखाई पड़ता, बड़ी शांत स्त्रैण भाव-दशा दिखाई पड़ती है। बुद्ध की मूर्ति को देख कर तुम्हें ऐसा लग सकता है कि यह आदमी आक्रामक हो सकता है? न, यह सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा है। इसका मौन, इसका ध्यान, इसकी समाधि क्या है? सिवाय इसके कि यह प्रतीक्षा कर रहा है।
कुछ करने को नहीं है। सिर्फ राह देखनी है। और इस भांति राह देखनी है
कि पूरे प्राण बस राह पर पट जाएं, आंखें बिछ जाएं। अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम उन सभी को, जिन्होंने परमात्मा को पाया, आखिरी घड़ी में तुम स्त्रियों की भांति पाओगे। इतने ही कोमल हो जाएंगे। इतने ही प्रतीक्षारत हो जाएंगे--अनाक्रामक! सिर्फ खुले द्वार!
आसिक मासूक हुई गया, इसक कहावै सोई।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होई।।
और जब प्रेमी प्रेमिका बन गया, तभी परमात्मा उस प्रेमिका का प्रेमी बनता है। जब तुम स्त्रैण हो रहते हो, तब परमात्मा भागा चला आता है। भक्त लुभाता है, भगवान भागा चला आता है।
जिन्होंने जाना है उन्होंने यही कहा है, परमात्मा को तुम खोज न सकोगे; तुम अपने को तैयार कर लो, वह आ जाएगा। तुम बुलाओ, मगर ओंठ से आवाज न निकले। हृदय में ही हो आवाज। शून्य में उठे स्वर। तुम पुकारो, हृदयपूर्वक पुकारो; लेकिन तुम्हारी पुकार अभद्र न हो जाए, किसी को कानों-कान खबर न हो जाए। तुम पातियां लिखो उसे, लेकिन इस तरह के अक्षरों से लिखना जो अदृश्य हों। तुम चिट्ठियां भेजो उसे, लेकिन डाकियों के हाथ मत भेजना। शून्य आकाश में ही जाने दो।
तुम तैयार हो जाओ, वह तुम्हारा प्रेमी हो जाएगा।

यह बड़ी क्रांतिकारी बात है। तुम जब तक प्रेमी की तरह हो, तब तक तुम परमात्मा को प्रेयसी की तरह खोज रहे हो। वहीं तुम्हारी भूल है। तुम आक्रामक रहोगे और वह प्रेयसी छुपती रहेगी, छुपाती रहेगी। खेल चलता रहेगा। वह हजार-हजार अवगुंठनों में छिप जाएगी। तुम छोड़ो दौड़, तुम इस खेल को तोड़ो अपनी तरफ से, तो वह भी तोड़ देगा। तुम प्रेयसी हो रहो। फिर तुमसे छिपने का कोई कारण न रहा। फिर वह तुम्हारे पास चला आएगा।
आसिक मासूक हुई गया, इसक कहावै सोई।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होई।।
अल्लाह स्वयं उस प्रेयसी का प्रेमी हो जाता है।
और तब आता है यह परम वचनः
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग।।
और तब दादू ने पूरी परिभाषा परमात्मा की जिस ढंग से की है, तुम उसकी तुलना न खोज सकोगे।
इसक अलह की जाति है...
अगर तुम पूछो कि परमात्मा की जाति क्या है? प्रेम उसकी जाति है।
यह बड़ी विरोधाभासी बात है। क्योंकि जाति प्रेम की होती ही नहीं। जाति
तो घृणा की होती है। तुम हिंदू हो, क्योंकि मुसलमान से तुम्हारी घृणा है। अगर मुसलमान से तुम्हारी घृणा निश्चित ही गिर जाए, तो क्या तुम हिंदू रह जाओगे? तुम कैसे हिंदू रहोगे? तुम जैन हो, क्योंकि हिंदू से तुम्हारी घृणा है। अगर हिंदू से तुम्हारी घृणा वस्तुतः ही गिर जाए, तुम किस आधार पर जैन रहोगे?
मेरे घर की जो सीमा-रेखा है, वह मेरे पड़ोसी के डर के कारण है। अगर पड़ोसी का डर ही चला जाए तो वह सीमा-रेखा समाप्त हो गई। पड़ोसी से दुश्मनी के कारण तुम्हारे घर के पास की सीमा है। अगर दुश्मनी ही नहीं तो बात खतम हो गई, सीमा का कोई अर्थ न रहा।
इसे तुम ध्यान रखना! तुम हिंदू होने के कारण हिंदू नहीं हो। तुम हिंदू
के प्रेम के कारण हिंदू नहीं हो। तुम मुसलमान की घृणा के कारण हिंदू हो। अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में, मेनकैम्फ में लिखा है कि अगर राष्ट्रों को बलशाली बनाना हो तो उन्हें सदा अपनी दुश्मनी जीवित रखनी चाहिए; नहीं तो वे कमजोर हो जाते हैं। अगर हिंदुस्तान को ताकतवर रखना हो तो पाकिस्तान से दुश्मनी जारी रखनी चाहिए; नहीं तो कमजोर हो जाएगा। तुम्हारी सारी ताकत घृणा की है। तुम थोड़ी देर को सोचो, अगर तुम्हारी किसी से कोई दुश्मनी नहीं है, तो तुम्हारी कौन सी जाति है? कौन सा देश है? कौन सा समाज है? तब सभी तुम्हारे हो गए।
प्रेम की कोई सीमा नहीं है। सब सीमाएं घृणा की हैं। बड़ी अच्छी बात दादू ने कही है, बड़ी मधुर, विरोधाभासी।
अगर पूछते हो अल्लाह की जाति--हिंदू कह सकते थे, मुसलमान कह सकते थे, ईसाई कह सकते थे। लेकिन नहीं, वह जाति नहीं कही। ब्राह्मण, शूद्र कह सकते थे; लेकिन नहीं, वह जाति नहीं कही। क्योंकि वे सब तो घृणा की जातियां हैं। वे तो खड़ी ही इसलिए हैं कि आदमी विक्षिप्त है, पागल है। तुम्हारे पागल होने की वजह से तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, जैन हो। जिस दिन तुम पागल न रहोगे, उस दिन तुम अचानक पाओगे, तुम कोरे निपट मनुष्य हो--खाली, सुंदर, असीम! उस दिन कोई रूप-रेखा तुम्हें न घेरेगी। कोई छोटी बातें तुम्हें न घेरेंगी। कोई विशेषण तुम्हारे ऊपर लागू न होंगे। तुम विशेषण-शून्य हो जाओगे।
लेकिन उस दिन तुम्हारे हृदय से उठता हुआ एक अहर्निश भाव होगा प्रेम का।
इसलिए दादू कहते हैंः इसक अलह की जाति है।
अगर पूछते ही हो, जिद ही करते हो, उसकी कोई जाति तो है नहीं, लेकिन अगर कहना ही पड़े कि क्या उसकी जाति है, मानोगे ही न... जैसे कि कभी जनगणना करने वाला अधिकारी आ जाता है। वे मुझे भी मिल जाते थे पहले। तो उनको मैं कहता, मेरी कोई जाति नहीं। वे कहते, ऐसा कैसे चलेगा? कुछ तो लिखवाइए। आपका धर्म क्या है? मेरा कोई धर्म नहीं। वे मुस्कुराते, वे कहते, मजाक छोड़िए। कोई तो

धर्म होगा ही। बिना धर्म के कहीं कोई आदमी होता है? कुछ भी लिखवा दीजिए; मगर झंझट मिटाइए। खाली कैसे छोड़ें? खाने बने हुए हैं, इसमें लिखा है कि... नहीं तो वे लोग कहेंगे कि तुम पूरा काम करके नहीं आए। खाना भर दो। कोई भी-- उसकी कोई चिंता नहीं है उन्हें।
तो अगर जिद ही करते हो कि ईश्वर की जाति क्या है? क्योंकि बिना जाति के तुम समझ ही न पाओगे। तो दादू कहते हैं, प्रेम उसकी जाति है।
प्रेम की कोई जाति हो नहीं सकती। प्रेम की कोई सीमा नहीं है। प्रेम का कोई विशेषण है? हिंदू प्रेम, मुसलमान प्रेम, ऐसा कभी तुमने सुना है? नहीं, प्रेम कोई सीमा नहीं मानता। प्रेम किसी सीमा का दावा नहीं करता। प्रेम तो असीम में अवतरण है।
इसक अलह की जाति है...
और जो परमात्मा की तरफ जा रहे हैं, अगर उनकी भी जाति प्रेम की ही न हो,
तो वे कभी न जा पाएंगे। छोड़ना होगा हिंदू को, मुसलमान को, ईसाई को, सिक्ख को। उन्होंने आदमी को बांटा है, जोड़ा नहीं। छोड़ना होगा उन सारे विशेषणों को। उन्होंने लड़ाया है, उन्होंने सिर्फ घृणा उपजाई है। क्योंकि मूल ही उनका आधार घृणा पर है। दूसरे की दुश्मनी पर उनका आधार है।
और जब तक तुम इतने प्रेम से न भर जाओ कि तुम्हें कोई दुश्मन न दिखाई पड़े, कोई पराया न दिखाई पड़े, तब तक तुम जानना कि तुम्हारा अहंकार नहीं मिटा। तब तक तुमने सीस नहीं सौंपा। जिस दिन तुम अपने सीस को ही सौंप दोगे, उस दिन तुम हिंदू बचोगे? मुसलमान बचोगे? कौन बचोगे? तुम कोई भी न रहोगे। प्रेम तुम्हारी भी जाति हो जाएगा।
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
तुम उसकी पूछते हो, उसका आकार कैसा है? चतुर्भुज है? तीन सिर हैं उसके
कि चार सिर हैं? त्रिमूर्ति है? कैसा रूप-रंग है? आंखें कैसी हैं? चेहरा कैसा है? हिंदुओं ने अपना बनाया है, ईसाइयों ने अपना बनाया है, यहूदियों ने अपना बनाया है। लेकिन उसका रंग कैसा? उसका ढंग कैसा? उसका अंग कैसा? उसकी देह कैसी है? दादू कहते हैं, अगर जिद ही करते हो, तो प्रेम उसकी देह है। बस वह प्रेम में ही घिरा जीता है। उसके चारों तरफ प्रेम ही प्रेम है, वही उसकी देह है। उसके बीच में ही, इस प्रेम के ही तेल के बीच में उसकी जीवन-ज्योति जलती है।
इसक अलह का अंग।
और जिस दिन प्रेम तुम्हारी भी देह बन जाए, उसी दिन तुम्हें अपने भीतर परमात्मा की प्रतीति होनी शुरू हो जाएगी। शरीर को अपनी देह मत मानो, मन को अपनी देह मत मानो; सिर्फ प्रेम को, हार्दिकता को, भाव को अपनी देह मानो। अगर भाव तुम्हारी देह बन गया, भक्ति तुम्हारी देह बन गई, तो भगवान का दीया जल उठेगा। वह जल ही रहा है, पहचान हो जाएगी।
अभी पहचान नहीं होती, क्योंकि तुमने मिट्टी-पत्थर को अपनी देह मान रखा है। ज्यादा से ज्यादा अगर तुम भीतर प्रवेश करते हो तो तुम विचारों को अपनी देह मान लेते हो। या तो शरीर, या मन; भाव तक तुम नहीं पहुंच पाते। इसलिए तो दादू कहते हैं, भाव भगति बेसास। भाव दे, भक्ति दे, विश्वास दे। विचार नहीं, चिंतन नहीं, मनन नहीं। भाव भगति बेसास।
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है...
यह औजूद शब्द बड़ा बहुमूल्य है। इसका अर्थ होता हैः अस्तित्व, एक्झिस्टेंस, आत्मा, सारभूत, होना मात्र।
इसक अलह औजूद है...
यह जो मौजूद दिखाई पड़ रहा है चारों तरफ, यह इश्क है। यह अस्तित्व के होने का ढंग प्रेम है। यह सारा अस्तित्व प्रेम से चल रहा है, प्रेम में ही चल रहा है।
जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ जाएगा कि प्रेम के ही सागर में हम पैदा होते हैं और प्रेम के ही सागर में हम लीन हो जाते हैं, उसी दिन तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित हो जाएगी। उसी दिन धर्म का तुम्हारे जीवन में जन्म होगा। प्रेम की पहचान धर्म है।
इसक अलह औजूद है...

वह अल्लाह का अस्तित्व है प्रेम। तुम उसे न तो मूर्तियों में खोजना, क्योंकि तुम उसे वहां न पा सकोगे। हां, अगर तुमने प्रेम में पा लिया तो मूर्ति में भी पा लोगे। तुमने मूर्ति में ही खोजा, तुम उसे न पा सकोगे। उसे खोजने का ढंग एक ही है कि प्रेम में खोजना।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग।।
और प्रेम का ही रंग है उसके ऊपर। और कोई रंग उसके ऊपर नहीं है।
पंडितों ने परमात्मा की परिभाषा में तीन शब्दों का प्रयोग किया है।
मैं कहता हूं, पंडितों ने। क्योंकि दादू जैसे प्रेमी ने तो एक ही शब्द का प्रयोग किया हैः प्रेम। पंडित कहते हैं, वह सर्वशक्तिमान है, ओम्नीपोटेंट; सर्वज्ञ है, ओम्नीसायंट; सब जगह मौजूद है, ओम्नीप्रेजेंट।
लेकिन दादू कहते हैं सिर्फ प्रेम।
यह सर्वशक्तिमान है, यह भी हमारे अहंकार की धारणा है। क्योंकि हम शक्ति के पूजक हैं। अहंकार शक्ति चाहता है। वह परमात्मा की भी जब व्याख्या करता है तो शक्ति को ही बीच में ले आता है।
सर्वज्ञ है! क्योंकि अहंकार सब कुछ जानना चाहता है। ज्ञान की बड़ी आकांक्षा है अहंकार की। इसलिए जब वह परमात्मा की व्याख्या करता है तो सर्वज्ञ।
और अहंकार सब जगह मौजूद होना चाहता है। कोई ऐसी जगह न रह जाए जहां अहंकार मौजूद न हो। क्योंकि जिस जगह मौजूद नहीं होगा, वह जगह अपनी सामर्थ्य के बाहर रह जाएगी, अपनी सीमा के बाहर रह जाएगी, उससे भय होगा।
तो अहंकार ने जो परमात्मा की परिभाषाएं की हैं, उनमें सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सब जगह वही मौजूद है। दादू तो सिर्फ एक शब्द कहते हैं, प्रेम। और मजा यह है कि प्रेम बिना सर्वशक्तिमान हुए सर्वशक्तिमान है। शक्ति का वहां कोई सवाल ही नहीं है, और इसीलिए महाशक्तिमान है।
तुमने प्रेम की शक्ति कभी अनुभव की? प्रेम शक्ति की घोषणा नहीं करता, क्योंकि शक्ति की घोषणा तो कमजोर ही करते हैं। प्रेम इतना शक्तिमान है कि उसे पता ही नहीं शक्ति क्या होती है! वह तो कमजोर का अनुभव है शक्ति। प्रेम की शक्ति इतनी स्वाभाविक है, इतनी पर्याप्त है, हीनता का उसे कभी बोध ही नहीं हुआ है कि शक्ति का पता चल जाए।
मैं एक यहूदी फकीर बालसेम के वचन पढ़ता था। तो उसमें कुछ वचन मुझे बड़े प्यारे लगे। उसमें एक वचन हैः संतोष तब पूरा है, जब तुम्हें संतोष का पता न चले। जब तक पता चल रहा है, तब तक कुछ अड़चन है। कहीं कुछ असंतुष्टि होगी। उसने यह भी लिखा है कि संतोष तभी पूरा है, जब संतोष की भी जरूरत न रह जाए। जब तक संतोष की जरूरत है, उसका मतलब है, तुम कुछ दबा रहे हो, सांत्वना कर रहे हो। संतोष से तुमने कुछ छिपा रखा है।
तो परिपूर्ण संतुष्ट व्यक्ति वह होगा जिसे संतोष का पता ही नहीं। तुम उससे पूछो, संतोष! वह कहेगा, मिले नहीं, कभी मिलना नहीं हुआ, संतोष क्या है? असंतोष का ही पता न हो तो संतोष का कैसे पता होगा! वह कहेगा, संतोष की जरूरत ही क्या है? बिना संतोष के ही बड़े संतुष्ट हैं। संतोष की जरूरत क्या है? प्रेम की शक्ति ऐसी अनिर्वचनीय है कि उसे सर्वशक्तिमान होने की जरूरत नहीं, वह है वही। वह तो हमारे अहंकार की ही घोषणा है कि परमात्मा सर्वशक्तिमान है। क्योंकि हम शक्ति को मानते हैं। अगर उसमें जरा भी शक्ति की कमी हो तो हम किसी और परमात्मा को खोजेंगे। क्योंकि वह परमात्मा हमारे योग्य न रहा।
सर्वज्ञ है! सब कुछ जानता है! यह भी हमारा पागलपन है कि सब कुछ जाना ही जाना चाहिए। इसीलिए तो विज्ञान बढ़ता जाता है। आदमी का पागलपन--सब जान लेना है।
असली सवाल जानने का नहीं है, असली सवाल होने का है। जान कर भी क्या करोगे? सब भी जान लिया और जीवन गंवा दिया जानने ही जानने में, और कभी जीए न, तो क्या सार होगा उसका! जीवन तो होना होना चाहिए।
प्रेम होना है। प्रेम जानना नहीं है। यद्यपि जो प्रेम से भर जाता है,
वह सब जान लेता है। वह जानना प्रेम की छाया की तरह आता है। वह उसका लक्ष्य नहीं है, वह उसका परिणाम है।

और प्रेम सब जगह भर जाता है। क्योंकि प्रेम के लिए कोई सीमा नहीं है, जहां वह रुके। इसलिए कहने की कोई जरूरत नहीं है कि वह सर्वव्यापक है।
प्रेम है ही सर्वव्यापक।
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग।।
तो तुम इश्क में रंग जाओ तो अल्लाह में रंग गए। तुम इश्कमय हो जाओ तो तुम अल्लाहमय हो गए। तुम्हारा औजूद, तुम्हारा होने का ढंग ही प्रेमपूर्ण हो जाए, तो बस प्रार्थना हो गई। फिर तुम परमात्मा को मानो न मानो, कोई अंतर नहीं पड़ता।
बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की। कोई जरूरत नहीं है; प्रेम काफी है। महावीर ने परमात्मा को इनकार ही कर दिया कि यह और झंझट क्यों खड़ी करनी। प्रेम काफी है।
इसलिए मैंने कहा कि प्रेम से बड़ा शब्द मनुष्य की भाषा में दूसरा नहीं है। परमात्मा से भी बड़ा शब्द है प्रेम। क्योंकि परमात्मा के बिना तो तुम रह सकते हो, प्रेम के बिना नहीं। परमात्मा को इनकार करके भी जी सकते हो। प्रेम को इनकार किया कि सड़े। फिर नहीं जी सकते। और प्रेम को जान लिया तो परमात्मा को जान ही लोगे। परमात्मा को जानने का और कोई उपाय नहीं है। तो यदि मनुष्य परमात्मा को भूल भी जाए, कोई हानि न होगी। सिर्फ प्रेम स्मरण रहे।
यह वचन दादू का तुम्हारे लिए उपनिषद बन जाए। यह तुम्हारे हृदय पर खुद जाए। इसे तुम कभी-कभी गुनगुनाना, ताकि तुम्हारी हड्डी-मांस-मज्जा में समा जाए। इसे कभी-कभी तुम बैठ कर शांति से सोचना, विचारना, मनन करना। कभी इस पर ध्यान करना कि क्या अर्थ होगा। और कभी छोटे-छोटे जीवन में इसके प्रयोग शुरू करना। कभी मुसलमान आता हो, मुसलमान को हटा देना अपने पर्दे से आंख के, और आदमी को उघाड़ कर देखना। तब तुम अपने ही जैसा आदमी वहां छिपा पाओगे। और हो सकता था, किसी झगड़े-झांसे में तुम इस आदमी को छुरा मार देते। तुम अपनी ही तरह का कमजोर, दुखी, पीड़ित, परेशान, परमात्मा की खोज में भटकता हुआ आदमी मुसलमान में भी पाओगे, ईसाई में भी पाओगे, हिंदू में भी पाओगे। सभी के भीतर वही एक की खोज चल रही है। कितना ही कोई भटका हो, उस भटकाव में भी उसी की तरफ यात्रा चल रही है।
तो तुम जरा देखने की कोशिश करना। कभी अपनी जाति को भी प्रेम बना लेना
और जरा देखना। जैसे ही तुम अपनी जाति को प्रेम अनुभव करोगे, वैसे ही पाओगेः न मालूम कितनी सीमाएं तत्क्षण तिरोहित हो गईं; न मालूम कितनी बाधाएं गिर गईं; न मालूम कितनी दीवालें, जो बड़ी मजबूत होती थीं, अब नहीं रहीं।
इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग।।
आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
आठवां प्रवचन

प्रेम जीवन है

पहला प्रश्नः ध्यान, समाधि और प्रेम के अंतर्संबंध को समझाने की कृपा करें। वे तीनों एकरूप कब होते हैं?

ध्या न विधि है, प्रेम भी विधि है; समाधि लक्ष्य है।
दो तरह के व्यक्ति हैंः हृदय-केंद्रित या मस्तिष्क-केंद्रित। जो बुद्धि-केंद्रित हैं, प्रेम उनके लिए मार्ग नहीं है। वे कितनी ही चेष्टा करें, प्रेम आरोपित मालूम होगा, प्रेम एक प्रयत्न मालूम होगा, सहज प्रवाह नहीं। और जो सहज न हो जाए, वह परमात्मा तक न ले जा सकेगा।
यह कोई छोटी यात्रा नहीं है कि खींच-तान कर पूरी कर ली जाए। यह तो श्वास जैसी सहज हो जाए तो ही पूरी हो सकती है।
तो अगर बुद्धि-केंद्रित व्यक्ति भूल से भी प्रेम के मार्ग पर पड़ गया
तो भटकेगा, पहुंच न सकेगा। उसके लिए ध्यान ही मार्ग है। ध्यान है बुद्धि का धीरे-धीरे निराकार-निर्विचार हो जाना। ध्यान की परिपूर्णता पर समाधि प्रकट होगी, व्यक्ति मिट जाएगा। और तब इस तरह के साधक के जीवन में प्रेम का आविर्भाव होगा। ध्यान से चलने वाला साधक प्रेम से शुरुआत नहीं करेगा, प्रेम पर उसका अंत होगा। ध्यान से शुरुआत करेगा, समाधि पर पहुंचेगा। ध्यान होगा मार्ग, समाधि होगी मंजिल, प्रेम होगा परिणाम। अंततः अचानक वह पाएगा, उसके जीवन में चारों तरफ प्रेम फैलने लगा। लेकिन यह आखिर में घटेगा।
जो हृदय-केंद्रित व्यक्ति है, भाव-केंद्रित व्यक्ति है, जिसके जीवन में विचारों का ऐसे भी कोई बहुत मूल्य नहीं है; जिसकी बुद्धि गौण है; जो जीता है भावनाओं से, संवेदनाओं से; जिसके हृदय पर आघात पड़ता है; जिसके जीवन का संबंध सीधा हृदय से है; सोचता कम है, भावता ज्यादा है; वैसा व्यक्ति प्रेम से ही शुरू कर सकेगा। उसने अगर ध्यान से शुरू करने की कोशिश की तो उसका रास्ता भटकेगा। वह लाख उपाय करे ध्यान करने का, उसमें उसे सफलता न मिलेगी। वह चेष्टा ही रहेगी। वह लाख उपाय करे मन को शांत करने का, मन उसका इतना अशांत है ही नहीं कि वह उसे शांत कर सके। उसे तो हृदय की ऊर्मि को जगाना होगा। उसे ध्यान की बजाय प्रार्थना, पूजा, अर्चना और प्रेम के रूप ज्यादा सहज मालूम होंगे। उसकी आंख से आंसू बहेंगे, तब उसके भीतर सन्नाटा होगा। उसके पैर नाचेंगे, तब उसके भीतर सन्नाटा होगा। जब वह किसी के प्रेम में मदमस्त होगा, तभी उसके भीतर ध्यान लगेगा। उसका ध्यान सीधा नहीं हो सकता कि वह शांत बैठ जाए और ध्यान लग जाए। उसका ध्यान परमात्मा के माध्यम से होगा। उसे कोई चाहिए प्रेमपात्र। प्रेमपात्र के बिना उसके हृदय में शांति न होगी।
तो अगर प्रेम के मार्ग से चलने वाले व्यक्ति को ध्यान आकर्षित कर ले
तो अड़चन होती है। वह असहज होगा। वह बात जमेगी ही नहीं। वह मार्ग उसका है नहीं। उसे प्रेम से ही चलना होगा।
प्रेम से जो चलेगा वह अनायास समाधि को उपलब्ध होगा। लेकिन यह समाधि उसकी भाव-समाधि होगी। और ऐसे व्यक्ति को ध्यान परिणाम में मिलेगा। ऐसे व्यक्ति को जो निर्विचारता है, वह परिणाम में मिलेगी। समाधि में जब वह तल्लीन हो जाएगा, तब अचानक पाएगा कि जिस ध्यान को साध-साध कर नहीं साध पाया, वह अपने आप सध गया है।
प्रेम से जो चलता है, ध्यान उसके लिए परिणाम में मिलता है। ध्यान से
जो चलता है, प्रेम उसे परिणाम में मिलता है। और दोनों से चलने वाले को समाधि तो सुनिश्चित मिलती है।
इसलिए सवाल यह नहीं है कि कौन सा मार्ग ठीक है--प्रेम का या ध्यान का। दोनों मार्ग ठीक हैं और दोनों मार्ग गलत हैं। सवाल तुम्हारा है। तुम्हें जो ठीक लग जाए दो में से। और एक ही ठीक लगेगा, दोनों ठीक नहीं लग सकते। जो तुम्हें ठीक लग जाए वह ठीक है। जो ठीक न लगे वह ठीक नहीं है। तुम भूल कर भी

दूसरे की झंझट में मत पड़ना। दूसरे को भला ठीक लग रहा हो, इससे तुम परेशान न होना। दूसरों के वस्त्र मत ओढ़ना। दूसरों से उधार मत लेना अपनी जीवन-दृष्टि को। ठीक-ठीक अपने को ही पहचानने की कोशिश करना। इसलिए स्वाध्याय-- चाहे भक्त बनना हो, चाहे साधक बनना हो--स्वाध्याय सभी के लिए अनिवार्य हैः स्वयं का अध्ययन। ताकि तुम्हें ठीक-ठीक पता हो जाए, तुम किस प्रकार के व्यक्तित्व हो। वह पहली बात ठीक से पता चल जाए तो फिर सब सुलभ हो जाता है, सब आसान हो जाता है।
जीवन में सबसे बड़ी बात पहले कदम को ठीक-ठीक उठाना है। आखिरी कदम तो पहले कदम के सिलसिले में आ जाता है। लेकिन अगर पहले कदम पर भूल हो गई तो आखिरी कदम कभी भी नहीं आता। तो पहला कदम ही आखिरी कदम है। अगर वह बिल्कुल ठीक उठ गया, तुम्हारे अनुकूल उठ गया, रास आ गया, तुम्हारा जोड़ बैठ गया, तुम्हारे भीतर की वीणा बजने लगी, ठीक जगह चोट पड़ गई, भीतर के जलस्रोत फूट पड़े, तो मंजिल दूर नहीं है। मंजिल अपने आप आ जाएगी। अब तुम बहे जाओ। तुम पहले कदम में ही बहे जाओ। उसी में डूबे चले जाओ।
पहले कदम पर सर्वाधिक सावधानी की जरूरत है। और वहीं लोग असावधानी करते हैं। वहीं न मालूम किस-किस कारणों से लोग मार्ग चुन लेते हैं। तुम किसी घर में पैदा हुए। हो सकता है घर परंपरा से भक्ति संप्रदाय को मानता हो, तो तुमने भी भक्ति को शुरू कर दिया। अगर यह तुम्हारे लिए योग्य न था, तो तुम जीवन भर भटकोगे। अनंत जीवन भटक सकते हो और मंजिल न मिलेगी। मनुष्य-जाति को भटकाने में जन्म के द्वारा धर्म की धारणा ने बहुत बड़ा हाथ बंटाया है।
तुम भाव वाले व्यक्ति हो; किसी ऐसे घर में पैदा हो गए जो ध्यान की परंपरा का भरोसा करता है, तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम चुनाव इस तरह करोगे कि पिता का धर्म क्या है।
अब पिता के धर्म से बेटे के धर्म का कोई लेना-देना नहीं है। मां के धर्म से बेटे के धर्म का कोई लेना-देना नहीं है। बेटे को अपना धर्म खोजना होगा। स्वधर्म की खोज करनी होगी। वह स्वाध्याय से होगी। वह कोई जाकर जन्म के दफ्तर को, जन्म की रजिस्ट्री को देख लेने से नहीं हो जाती। तुम कहां पैदा हुए हो, इससे तुम्हारे किस धर्म में आविर्भाव, तुम्हारा उत्थान, तुम्हारे जीवन की क्रांति होगी, इसका कोई पता नहीं चलता।
लेकिन सारी पृथ्वी पर मनुष्य को अधार्मिक बनाने वाले बड़े से बड़े कारणों में जो कारण है, वह यह है कि लोग जन्म के कारण धर्म को स्वीकार कर लेते हैं। फिर उसकी धारणा बंध जाती है।
तुम जैन घर में पैदा हुए तो भक्ति की तुम्हारे जीवन में कोई धारणा न होगी, क्योंकि वह मार्ग ध्यानियों का है। अब तुम उलझन में पड़ोगे। अगर तुम उस मार्ग पर चले तो तुम्हारा तालमेल न बैठेगा। अगर न चले तो तुम्हें अड़चन होगी कि मैं मार्ग से च्युत हो रहा हूं। अगर तुम कृष्ण के मंदिर में गए और नाचे तो तुम्हें ग्लानि होगी कि मैं महावीर को छोड़ कर कृष्ण के साथ जा रहा हूं। तुम्हें अंतर्पीड़ा होगी। क्योंकि बचपन से तुम्हारे मन में जो धारणा डाली गई है, उस धारणा ने काफी जगह बना ली है। वह धारणा कहती है कि यही करना ठीक है, और कुछ करना गलत है। अगर तुम उसी धारणा को मान कर चलो तो जीवन में तृप्ति नहीं मिलती। जहां तृप्ति मिलती है वहां लगता है अपराध हो गया, यह तो उचित नहीं है।
तो भूल कर भी जन्म के द्वारा धर्म का निर्धारण मत होने देना। तुम्हें अपना धर्म खोजना होगा, स्वधर्म खोजना होगा। स्वधर्म कोई देता नहीं। न जन्म से मिलता है, न जाति से मिलता है, न राष्ट्र से मिलता है। स्वधर्म को प्रत्येक व्यक्ति को खोजना होता है। टटोलना होता है अंधेरे में। जिस दिन स्वधर्म तुम्हें मिल जाता है, बस! फिर बहुत ज्यादा नहीं है मामला। बात आसान हो जाती है।
और ये दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैंः ध्यान या भक्ति; ध्यान या प्रेम। और आधी मनुष्यता ध्यान से जाएगी, आधी मनुष्यता प्रेम से जाएगी। अनुपात बराबर होगा। विशेषकर स्त्रियां भाव से जाएंगी, पुरुष ध्यान से जाएंगे। सामान्यतया यह कह रहा हूं। क्योंकि पुरुषों में बहुत होंगे जो भाव वाले होंगे; स्त्रियों में भी बहुत होंगी जो ध्यान वाली होंगी। लेकिन

मोटे अर्थों में स्त्रियां भाव से जाएंगी, पुरुष ध्यान से जाएंगे। क्योंकि पुरुष मूलतः सक्रियता, कुछ करना, उस पर भरोसा करता है। प्रेम तो ना-करना है। वह निष्क्रिय है। वह प्रतीक्षा है। वह स्त्री के लिए सुगम है। अब यह बड़ी कठिनाई की बात है। क्योंकि अगर हम मनुष्य-जाति को ठीक-ठीक बांटें तो दुनिया में दो धर्म काफी होंगेः एक पुरुष का धर्म और एक स्त्री का धर्म। कुछ पुरुष स्त्रियों के धर्म में सम्मिलित होंगे, कुछ स्त्रियां पुरुष के धर्म में सम्मिलित होंगी, लेकिन मोटा विभाजन दो होगाः भक्ति का धर्म और ध्यान का धर्म। लेकिन पति की इच्छा होती है, उसकी पत्नी भी उसी धर्म को माने जिसको वह मानता है। मां की इच्छा होती है, उसका बेटा भी उसी धर्म को माने जिसको वह मानती है। इस तरह दुनिया में विकृति फैली।
स्त्री का धर्म अलग ही होगा। उसकी सारी जीवन-दृष्टि, सोचना, विचारना, होना, पुरुष से भिन्न है। इसलिए स्त्री कभी ज्ञान को उपलब्ध होगी तो वह मीरा जैसी दशा में ही उपलब्ध होगी। वह नाचती हुई उपलब्ध होगी। नाचते हुए कभी कोई चैतन्य भी उपलब्ध होता है, लेकिन वह अपवाद मानना चाहिए। पुरुष तो बुद्ध और महावीर जैसा ही उपलब्ध होगा। यह अनुकूल बैठेगा।
और कृष्ण ने कहा है, स्वधर्मे निधनं श्रेयः। अपने धर्म में मर जाना भी बेहतर।
लेकिन अपने धर्म से तुम यह मत समझना कि हिंदू, मुसलमान, ईसाई।
स्वधर्म--जिसकी मैं बात कर रहा हूं। पहले तो स्वयं के धर्म को खोजना। और फिर अगर उसमें मृत्यु भी हो जाए तो भी श्रेयस्कर है।
परधर्मो भयावहः। दूसरे का धर्म खतरनाक है, उससे भयभीत रहना।
दूसरे में तुम्हारे पिता, तुम्हारी मां, तुम्हारे भाई, तुम्हारी बहन, पत्नी, पति, सब सम्मिलित हैं। दूसरे से मतलब पाकिस्तानियों का नहीं, चीनियों का नहीं। तुम्हारे अतिरिक्त जो भी हैं वे सभी दूसरे हैं। उनके धर्म से सावधान रहना। क्योंकि उसमें खतरा है।
इसको अगर कोई गौर से समझ ले तो यह बड़ी गहरी मनोवैज्ञानिक बात है जो कृष्ण ने कही। स्व को पहचानना, स्वधर्म को पहचानना। उसमें चलते-चलते मृत्यु भी मिले तो भी अमृत जैसी होगी। और दूसरे के धर्म में चलते-चलते अमृत भी मिले तो जहर सिद्ध होगा। क्योंकि जो तुमसे मेल न खाएगा, वह तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता है। जो तुमसे इतना मेल खा जाएगा कि तुममें और उसमें जरा भी फासला न रहेगा, वही तुम्हारी मुक्ति बन सकता है।
मैंने सुना है, सूफियों में एक कहानी है कि एक पहाड़ के पास एक झील है।
और उस झील के पास जब भी कोई साधक पहुंच जाता है और आग्रह करता है झील से, और आग्रह अगर वस्तुतः प्रामाणिक होता है, तो झील से उत्तर मिलते हैं।
एक फकीर वर्षों की तलाश के बाद अंततः उस झील के पास पहुंच गया। और उसने चिल्ला कर जोर से पूछा कि मेरा एक ही सवाल हैः जीवन क्या है? झील चुप रही। लेकिन वह पूछता ही गया। कहते हैं तीन दिन अहर्निश, रात और दिन उसने एक कर डाले। एक ही सवाल कि जीवन क्या है? आखिर झील के देवता को भी झुकना पड़ा। और उसने कहा कि तेरी निष्ठा पूरी है। तू कोई साधारण कुतूहल से नहीं आया। तू साधारण जिज्ञासु भी नहीं है, तू मुमुक्षु है; इसलिए तेरे प्रश्न का उत्तर हम देते हैंः जीवन एक वीणा है।
उस आदमी ने कहा, और पहेलियां अब नहीं चाहता। सीधा-सीधा उत्तर दो। मैं कोई संगीतज्ञ नहीं हूं। वीणा मैंने अपने जीवन में अभी तक देखी भी नहीं।
सुना है नाम; लेकिन मुझे जीवन का भी पता नहीं, वीणा का भी पता नहीं। अब यह एक और उलझन हो गई। अभी मैं जीवन को हल करता रहा, अब वीणा का भी पता लगाऊं! तुम मुझे सीधा-सीधा ही कह दो।
झील ने कहा, उत्तर दे दिया गया है।
तो उस आदमी ने कहा, थोड़े संकेत दो जिससे कि मैं रास्ता खोजूं।
तो झील से उत्तर आया कि तू गांव में जा और पहली तीन दुकानों पर गौर से देख। और जो भी तू पाए, लौट कर उत्तर दे।
वह आदमी गया। उसने पहली दुकान पर देखा, वहां कुछ भी न था, लोहे-लंगर की दुकान थी, धातुओं के अलग-अलग तरह के रूप-रंग के ढेर लगे थे। वह कुछ समझा नहीं कि जीवन से इसका क्या लेना-देना! दूसरी दुकान पर गया। वह एक तारों की

दुकान थी। वहां भी उसको समझ में नहीं आया कि जीवन से तारों का क्या लेना- देना? तीसरी दुकान एक बढ़ई की दुकान थी।
वह बड़ा नाखुश लौटा। उसने सोचा कि इससे तो हम पहले ही बेहतर थे। इस झील
से पूछने के पहले ही बेहतर थे। कम से कम इस तरह की मूढ़ता तो दिमाग में न थी। इससे जीवन का क्या लेना-देना? यह तो ज्ञान न मिला और अज्ञानी हो गए। लौट कर नाराज आया और उसने झील से कहा कि यह-यह मैंने देखा। पर इससे जीवन का क्या संबंध है?
झील ने पुनः कहा कि जीवन एक वीणा है। अब तू इस सूत्र को पकड़ ले और इसकी खोज कर।
वर्षों बीत गए। वह आदमी करीब-करीब भूल ही गया वह खोज--जीवन का वीणा होना। एक दिन अचानक एक बगीचे के पास से गुजरते वक्त उसने किसी को वीणा बजाते सुना। वह स्वरलहरी उसे खींच ली। वह खिंचा हुआ जादू के वश बगीचे के भीतर पहुंच गया।
कोई कलाकार वीणा बजा रहा था। साधक को पहली दफा दिखाई पड़ा कि वही तार हैं जो दुकान पर पड़े थे। वही धातुएं हैं जो दुकान पर पड़ी थीं, वीणा में लग गईं। और उस बढ़ई ने भी काम किया है। लकड़ी का भी इंतजाम है।
आज उसे सूत्र साफ हुआ। आज उसे साफ हुआ कि जीवन एक वीणा है। लकड़ी भी है, तार भी हैं, धातुएं भी हैं; अलग-अलग पड़े हैं। कोई संगीत पैदा नहीं होता। तीनों जुड़ जाएं, एक ढंग में बैठ जाएं, तालमेल आ जाए, तो संगीत उठ सकता है। इतना अदभुत संगीत उठ सकता है--निराकार! इतना प्राणों को मोहित कर लेने वाला संगीत उठ सकता है! ऐसी जादूभरी रहस्यपूर्ण घटना घट सकती है!
मैं भी तुमसे यही कहता हूंः जीवन एक वीणा है। लेकिन तुम्हें अपनी वीणा जमानी है। दूसरों की नकल मत करना। उन्हें अपनी वीणा जमानी है। वीणाएं बहुत तरह की हैं। और हरेक व्यक्ति के पास अपने तरह की वीणा है और अपने ही तरह का छिपा हुआ संगीत है।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः।
तुम अपनी वीणा को बजाते हुए मर जाओ तो भी तुम महाजीवन को उपलब्ध हो जाओगे। तुम दूसरे की वीणाओं को ढोते-ढोते मरोगे, उनसे कितना ही सुंदर संगीत पैदा हो, तुम कोरे ही आए, कोरे ही जाओगे। तुम्हारे हाथों में कोई संपदा न होगी। तुमने जीवन व्यर्थ ही गंवाया।
और इस संसार में बड़े से बड़ा खतरा यही है कि कहीं तुम दूसरे के प्रभाव में न पड़ जाओ। तुम प्रभावित होने को बिल्कुल तैयार बैठे हो। क्योंकि अपनी वीणा को जमाना दुष्कर काम है। उधार वीणा ले लेना बहुत सरल बात है। खुद खोजना, स्वाध्याय करना जोखम से भरी बात है। भूल-चूक हो सकती है। दूसरे से ज्ञान उधार ले लेना जोखमरहित है, सुरक्षित है। और अगर कभी उलझन भी हो जाए तो जिम्मेवार दूसरा होगा। तुम्हें कोई पीड़ा न होगी कि मैंने कोई भूल की। तुम एक गुरु को पकड़ लेते हो। तुम सोचते हो, समर्पण किया। समर्पण सौ में से कभी एकाध शिष्य करता है। निन्यानबे तो धोखा कर रहे हैं। निन्यानबे समर्पण नहीं कर रहे हैं, सिर्फ गुरु को उत्तरदायित्व दे रहे हैं कि अब अगर भटके हम, तुम जिम्मेवार। वे यह नहीं कह रहे हैं कि हम समर्पण करते हैं अपने को। वे यह कह रहे हैं कि अब देख लो। अब ख्याल रखना। भटके हम, जिम्मेवार तुम। डूबेंगे हम, बदनामी तुम्हारी होगी। अब तुम्हीं बचाना; नहीं तो तुम्हीं फंसोगे।
कहीं जीवन के दायित्व इस तरह टाले जा सकते हैं? गुरु से सीखा जा सकता है, लेकिन गुरु पर दायित्व नहीं टाला जा सकता। गुरु से मार्ग समझा जा सकता है, लेकिन गुरु का मार्ग उधार नहीं लिया जा सकता। गुरु से संकेत लिए जा सकते हैं, इशारे लिए जा सकते हैं, ताकि तुम्हें तुम्हारे स्वाध्याय में सुविधा हो जाए।
तो वास्तविक गुरु तुम्हें जीवन का ढंग नहीं देता; वास्तविक गुरु तुम्हें सिर्फ दीया देता है, ताकि तुम अपने जीवन में अपने ढंग को खोज लो। इस फर्क को याद रखना। वास्तविक गुरु तुम्हें अनुशासन नहीं देता, आचरण नहीं देता, तुम्हें अंतःकरण का जागरण देता है। तुम्हें होश देता है, ताकि तुम अपने को पहचान कर अपना रास्ता बना लो। झूठा गुरु तुम्हें होश नहीं देता, तुम्हें आचरण देता है। वह कहता है, चोरी मत करना, बेईमानी मत करना, सच

बोलना; ऐसा नहीं करना, वैसा नहीं करना--वह तुम्हें बंधी हुई लकीरें देता है। उन बंधी लकीरों पर चल कर तुम भटकोगे। परधर्म बहुत भयावह है। वह तुम्हें अपना मार्ग पकड़ा देता है। और जिस गुरु ने तुम्हें मार्ग पकड़ा दिया वह तुम्हारा दुश्मन है। कोई सदगुरु मार्ग नहीं पकड़ाता। सदगुरु केवल मार्ग की पहचान देता है। वह कहता है, यह पहचान है।
इस फर्क को ठीक से समझ लेना; बारीक है। असदगुरु तुम्हारे हाथ में देता
है और वह कहता है, यह रहा सोना; सम्हालो। इसको खो मत देना। इसको सम्हाल कर रखना, बहुमूल्य है। सदगुरु तुम्हें देता है कसौटी का पत्थर; सोना नहीं देता। वह कहता है, यह कसौटी का पत्थर; जहां कहीं सोना मिले, कस लेना। ठीक उतरे तो समझना ठीक है; गलत उतरे तो समझना कि गलत है।
शायद असदगुरु और सदगुरु दोनों तुम्हारे सामने खड़े हों तो तुम असदगुरु
की तरफ मोहित हो जाओगे, क्योंकि उसके हाथ में सोना है। और सदगुरु के हाथ में तो केवल काला पत्थर है। तुम भी सोचोगे, यह काला पत्थर लेकर क्या करेंगे?
लेकिन सदगुरु केवल कसौटी देता है कि जीवन में जहां भी जरूरत हो, कस लेना; सोने को तुम पहचान लोगे। और ध्यान रखना, मनों सोने से छोटा सा कसौटी का पत्थर ज्यादा बहुमूल्य है।
प्रज्ञा देता है तुम्हें सदगुरु--पहचानने की। बंधा हुआ आचरण नहीं देता, स्वतंत्र बोध देता है। स्वधर्म ही मार्ग है। सदगुरु तुम्हें इतनी ही सूचनाएं देता है कि ऐसे-ऐसे स्वधर्म को खोजा जाता है। ऐसे-ऐसे मैंने अपना स्वधर्म खोजा; ऐसे-ऐसे तुम भी तुम्हारा स्वधर्म खोज लेना।
स्वधर्म को खोजने की विधियां एक जैसी हैं, लेकिन जब तुम स्वधर्म को खोजोगे तो तुम्हारी वीणा अनूठी ही होगी। तुम्हारी वीणा तुम्हारे गुरु जैसी नहीं होगी। अगर ठीक गुरु जैसी हो तो समझना कि यह नकली है। क्योंकि दो वीणाएं एक जैसी परमात्मा पैदा ही नहीं करता। अगर तुम ठीक गुरु जैसे खड़े हो जाओ, वैसे ही वस्त्र पहन लो या नग्न हो जाओ, सिर घुटा लो--या गुरु ने जैसा किया हो वैसा तुम कर लो--तो तुम एक अभिनेता हो; तुम संन्यासी नहीं हो। तुम शिष्य नहीं हो, तुम नकलची हो। तुम किसी सर्कस में होते, अच्छा था। जीवन के विराट में, विराट आंगन में तुम्हारी कोई भी जरूरत नहीं। तुम छोटे-मोटे नाटक के काम के लायक थे। तुम नकली हो।
और तुम किसी और को धोखा नहीं दे रहे, अपने को ही धोखा दे रहे हो। अपने
को ही धोखा देकर तुम मिटा लोगे।

दूसरा प्रश्नः क्या प्रेम ही जीवन है? जीवंतता है?

निश्चय ही। क्योंकि प्रेम का अर्थ है, देने की क्षमता। और देने की क्षमता उसी में हो सकती है जिसके पास हो। तुम वही दे सकते हो जो तुम्हारे पास है।
प्रेम जीवन का दान है।
जब भी तुम प्रेम से किसी की तरफ देखते हो, तुम उसके जीवन में हजार चांद जोड़ देते हो। जब भी तुम प्रेम से किसी का हाथ हाथ में ले लेते हो, तुम उसके बुझते दीये को फिर ज्योति दे देते हो। जब भी तुम प्रेम से किसी को गले लगा लेते हो, तब तुमने उसके आयुष्य को बढ़ा दिया।
वैज्ञानिक बड़ा अध्ययन करते हैं इस बात का कि बच्चा मां के दूध से ही बचता है, या दूध के अतिरिक्त कोई और भी अदृश्य प्रवाह है जो मां बच्चे को देती है? और अब तक बहुत से प्रयोग किए गए हैं, सभी से यह सिद्ध हुआ है कि दूध तो शरीर को पोषण देता है, लेकिन दूध जीवन नहीं है। दूध देकर देख लिया गया है, और बच्चे सिकुड़ गए, समाप्त हो गए, अपने में ही बंद हो गए और मर गए। दूध के साथ मां के स्तनों से प्रेम की धारा भी बह रही है। दूध ही नहीं दिया जा रहा है बच्चे को, मां के हृदय की ऊष्मा भी बच्चे को जा रही है। दूध से भी ज्यादा पोषक मां के हृदय की ऊष्मा है; प्रेम से भरे हृदय की ऊष्मा है। बिना दूध के बच्चा थोड़े दिन बच जाए, बिना प्रेम के न बच सकेगा। और बिना प्रेम के बच जाए तो भी मुर्दा होगा।

प्रेम अदृश्य जीवन है। इसलिए जब भी तुम्हें ऐसा लगता है, तुम्हें कोई प्रेम करने वाला नहीं, तुम किसी को प्रेम करने वाले नहीं, तभी तुम्हें आत्मघात का विचार आ जाता है। आत्मघात का विचार ही तब उठता है जब तुम पाते हो जीवन में प्रेम नहीं है। जहां प्रेम नहीं है, वहां मरने की धारणा उठने लगती है कि मिट जाओ! अब सार क्या है? अब होने का अर्थ क्या है? प्रयोजन क्या है? अब जीना किसलिए है?
जब भी तुम्हारे मन में आत्महत्या का भाव उठता हो--और ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसको न उठा हो--तो तुम विचार करनाः कब उठता है यह भाव?
तुम सदा पाओगे कि प्रेम जब नहीं होता जीवन में, तभी उठता है। तब बात साफ हो जाती है कि प्रेम जीवन है। प्रेम का अभाव मृत्यु को पास लाने लगता है।
तुमने कभी ख्याल किया कि तुम बीमार पड़े हो, और अगर चिकित्सक तुम्हारे प्रति अति प्रेमपूर्ण है, तो औषधियां शीघ्रता से काम करती हैं। और चिकित्सक अगर सिर्फ उपेक्षा से भरा है, एक पेशेवर की तरह आता है और देख कर चला जाता है, तटस्थ है; तुम्हारी तरफ उसका कोई ध्यान नहीं है; बीमारी और दवा, इसमें उसका विचार है, लेकिन तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है; तुम हो या नहीं, इससे कोई संबंध नहीं है, यंत्रवत तुम्हारे साथ व्यवहार करता है; तुम्हारी बीमारी लंबी हो जाएगी। जो बड़े से बड़े चिकित्सक हुए हैं दुनिया में, उन सभी के संबंध में यह बात है कि उनकी दवा से ज्यादा उनके हाथ में गुण है। हाथ में गुण का क्या मतलब होता है? हाथ में गुण का मतलब यह है कि दवा गौण है; जिस ढंग से वे देते हैं, वह महत्वपूर्ण है। उस देने में वे कुछ और भी देते हैं।
कभी तुमने ख्याल किया कि तुम बीमार हो, चिकित्सक आया--अगर वह प्रेमपूर्ण है, तो उसने अभी दवा भी नहीं दी है, तुम्हारी जांच ही की है, लेकिन जांच में ही तुम्हारी बीमारी आधी हलकी हो जाती है। निरीक्षण करोगे तो साफ हो जाएगा। क्योंकि अभी दवा नहीं दी गई, इसलिए चिकित्सक ने कुछ किया तो है नहीं; सिर्फ नब्ज ली, हृदय की धड़कन सुनी; लेकिन उसका ढंग, उसका प्रेमपूर्ण व्यवहार, उसका आश्वस्त भरोसा कि तुम ठीक हो जाओगे; उसका तुम्हारे प्रति इतनी उत्सुकता से निरीक्षण करना कि तुम मूल्यवान हो, तुम्हारा बचना जरूरी है--तुम्हारे भीतर कोई चीज बदल गई। अब तुम उतने बीमार नहीं हो। अभी चिकित्सक ने कुछ किया भी नहीं है, लेकिन चिकित्सा शुरू हो गई।
ऐसे प्रयोग किए गए हैं कि प्रेमपूर्ण चिकित्सकों ने सिर्फ पानी दिया
है और बीमार ठीक हो गए हैं। और तटस्थ चिकित्सकों ने कीमती से कीमती दवाएं दी हैं और मरीज पर परिणाम नहीं हुआ है। पानी भी संवाहक हो जाए अगर प्रेम का, तो औषधि हो जाती है। स्वर्ण-भस्में भी दी जाएं और प्रेम का हाथ पीछे न हो, तो शरीर पर केवल बोझ-रूप हो जाती हैं, औषधि नहीं बनतीं।
अब तो वैज्ञानिक कहते हैं, वृक्षों-पौधों को भी अगर तुम प्रेम से देख
लो तो उनकी बढ़ती तेज हो जाती है। अगर तुम रोज उसे पौधे को आशीर्वाद के भाव से देख लो, उसके लिए प्रार्थना करो परमात्मा से, तुम पाओगे कि दूसरे पौधे पीछे रह गए। जिस पौधे के लिए तुमने रोज-रोज प्रार्थना की है वह दुगुना हो गया। कम दिनों में उसमें फूल आ जाएंगे। असमय में फल भी लग सकते हैं।
तुम ऐसा ही इससे विपरीत व्यवहार दूसरे वृक्ष के साथ करो कि रोज उसको गालियां दो और रोज उसे अभिशाप दो कि तू नाहक परेशान हो रहा है। तू बड़ा होने वाला नहीं, तू सड़ेगा। पानी दो, खाद दो, लेकिन गालियां देते चले जाओ--तुम पाओगे कि वह सिकुड़ गया।
अब ये वैज्ञानिक प्रमाण हैं। अब इनके लिए कोई कविता की बात नहीं है, कहानियां नहीं हैं। दुनिया की बहुत सी प्रयोगशालाओं में निर्णीत निष्कर्ष ले लिए गए हैं कि प्रेम जीवन को बढ़ाता है। जिस गुलाब को तुमने प्रेम किया, उसके फूल बड़े होंगे। होने ही चाहिए। क्योंकि तुमने उसे गरिमा दी। पौधे के प्राण पुलकित हैं। वह तुम्हें प्रसन्न करना चाहता है; तुमने उसे प्रसन्न किया। तुमने उसे दिया; वह तुम्हें लौटाना चाहता है। वह एक बड़े फूल की तरह--और क्या कर सकता है? --एक बड़े फूल की तरह खिलेगा।

सदगुरुओं के प्रेम के नीचे शिष्य परमात्मा को उपलब्ध हो गए हैं। बिना कुछ किए भी कभी यह घटा है। और कभी-कभी बहुत कुछ करने पर भी, अगर सदगुरु की प्रेम-छाया न हो, तो कुछ भी नहीं घटा है। इसलिए तो समर्पण का इतना मूल्य है। समर्पण का कुल इतना ही अर्थ है कि गुरु के जीवन से जो प्रेम की धारा बह रही है, उसके लिए तुम दीवाल मत बनो, दरवाजा बन जाओ। उसे आने दो, ताकि वह तुम्हें रूपांतरित कर दे।
प्रेम जीवन है। प्रेम से रहित जीवन का कोई अर्थ नहीं है। और प्रेम से भरी हुई मृत्यु भी सार्थक हो जाती है। प्रेम से भरी मृत्यु में भी एक काव्य प्रकट होता है--अलौकिक। और प्रेम से रहित जीवन में एक दुर्गंध होती है, एक सड़ांध होती है। आदमी जीता है, लेकिन जीता नहीं। भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर सब खाली है।
प्रेम से रहित आदमी ऐसा है जैसे तुमने खेतों में खड़े आदमी देखे हों-- झूठे, हंडी का सिर, डंडा अटका बीच में। कुरता पहने रहते हैं। पशु-पक्षियों को डराने के काम आते हैं। बस, प्रेम से रहित आदमी खेत में खड़ा झूठा आदमी है--खाली! उसके भीतर कोई आत्मा नहीं है।
इसे तुम भलीभांति जानते हो। तुम्हारे अनुभव से भी जानते हो कि जब भी तुमने प्रेम किया है, तभी तुम्हारे भीतर एक पुलक उठी है, एक लपट उठी है। तुमने जीवन को उसकी चरमता में जाना है। तुम्हारे भीतर मशाल दोनों तरफ से एक साथ जलने लगी है। एकदम आलोकित हो गया है सब। कभी-कभी क्षण भर को ऐसा हुआ है, लेकिन फिर भी बिजली कौंध गई है।
और जब तुम्हारे जीवन में कोई प्रेम न रहा, एक रोजमर्रा की आदतन जिंदगी रही--उठना है, बैठना है, दफ्तर जाना है, कमाना है--कर्तव्य तो रहे, प्रेम न रहा; तभी तुमने पाया कि तुम्हारे भीतर कुछ मर गया है। तुम खिंचे जा रहे हो, चले जा रहे हो, लेकिन अब चलने में नृत्य नहीं है। बोलते हो, लेकिन बोलने में अब गीत नहीं है। देखते हो, लेकिन आंखों से कुछ बरसता नहीं। आंखें कोरी और खाली हैं। छूते हो, लेकिन स्पर्श में ऊष्मा नहीं है। ऐसे छूते हो जैसे किसी ने मुर्दे का हाथ छू लिया हो; ठंडा है, उसमें कोई भाव-दशा नहीं है; कोई लहर नहीं है; कोई स्पंदन नहीं होता। एक ठूंठ की तरह हो गए हो, जिसमें न अब पत्ते लगते हैं, न फल आते हैं, न फूल खिलते हैं; न पक्षी जिस पर घोंसला बनाते हैं, न राहगीर जिसके नीचे बैठ कर विश्राम करते हैं। एक ठूंठ की तरह तुम खड़े हो। प्रतीक्षा में हो कि कभी कोई लकड़हारा आएगा, काट कर ले जाएगा, झंझट मिटेगी। राह देख रहे हो मरने की। हिम्मत नहीं है, नहीं तो तुम खुद ही अपने को समाप्त कर लेते। इसलिए प्रतीक्षा कर रहे हो कि मौत तो आती ही होगी, जल्दी भी क्या करनी! ले जाएगी। या इतने मुर्दा हो गए हो कि अब मरने की भी हिम्मत नहीं है। वह भी तो थोड़ी जिंदगी चाहती है--मरने की हिम्मत। मरने का निर्णय भी तो थोड़ा सा जीवन मांगेगा। पहाड़ के कगार तक जाने के लिए भी जाना तो पड़ेगा। अब उतनी भी चलने की इच्छा नहीं रह गई है। जहां हो, पड़े हो। वहीं राह देख रहे हो।
अधिकतम लोग जीते नहीं, केवल मरने की प्रतीक्षा करते हैं। ऐसा होगा ही; क्योंकि प्रेम के बिना कोई जीवन नहीं है। और बहुत कम लोग प्रेम से परिचित हो पाते हैं।
प्रेम है दान। और मजा यह है कि जितना तुम देते हो, उतना बढ़ता है तुम्हारे भीतर। और जितना तुम रोकते हो, उतना सड़ जाता है। जैसे कुआं भरा है; मत खींचो पानी, मत उलीचो पानी। सड़ जाएगा। और इस बुरी तरह सड़ जाएगा कि सब झरने धीरे-धीरे धूल-धवांस से भर जाएंगे, बंद हो जाएंगे। उलीचो; और रोज झरने नये पानी को ले आते हैं। कुआं चुकेगा नहीं। तुम जितना उलीचोगे, उतने ही नये जलस्रोत आते जाएंगे।
ऐसा ही जीवन का कुआं हो तुम। अगर दोगे, बांटोगे, उछालोगे, कृपणता न करोगे जीवन की, जहां भी मौका पाओगे उलीचोगे अपने को, बांटोगे, दोगे, तुम पाओगे नये जलस्रोत तुम्हारे खुलते जाते हैं। तुम एक दिन पाओगे कि तुम कुआं नहीं, सागर हो।
कुआं है क्या आखिर? कुआं सिर्फ एक खिड़की है जिससे सागर झांक रहा है। नीचे तो कुआं सागर से जुड़ा है, अनंत-अनंत झरनों से जुड़ा है। कुआं एक झरोखा है, जहां से सागर ने झांका है। घबड़ाओ मत। तुम भी एक झरोखे हो, जहां से

परमात्मा ने झांका है। डरो मत। तुम भी जुड़े हो। उलीचो; और तुम पाओगे कि तुम बढ़ते हो। रोको; और तुम पाओगे कि तुम घटते हो और सड़ते हो। और एक दुष्टचक्र है। अगर तुमने रोका, न बांटा, प्रेम न दिया, तो तुम डरने लगोगे कि वैसे ही तो सड़ा जा रहा है सब, वैसे ही तो सब चुका जा रहा है, अगर दिया तो और मुसीबत होगी और कम हो जाएगा। तुम और घबड़ा कर रोक लोगे। जितना रोकोगे, उतना ही कम होता जाएगा, सूखते जाओगे।
हिम्मत करो। देकर देखो। और तुम पाओगेः जैसे ही तुमने दिया, कोई जलस्रोत खुल गया, झरना सक्रिय हो गया, और जल आने लगा। तब तुम पाओगे कि देते जाओ, बढ़ता जाता है। तब तुम बात ही छोड़ दोगे रोकने की। तुम देने में ही लग जाओगे।
कबीर ने कहा हैः दोनों हाथ उलीचिए। एक हाथ से भी मत उलीचना, दोनों हाथ! उलीचने में प्रेम है। प्रेम है अपने आनंद को बांटना।
पर आनंद तुम्हारे पास हो तभी न! तुम्हारे पास अभी दुख है। अगर तुम देने भी जाते हो तो दूसरे को दुख ही देते हो। प्रेम के नाम पर भी तुम दूसरे को दुख ही देते हो। तुम्हारे पास कुछ और है नहीं। तुम्हारे पास आत्मा तो नहीं है कि तुम दे सको। तुम्हारे पास एक गहन अंधकार है, वही तुम दे आते हो। दूसरे के मार्ग में वैसे ही बहुत अड़चनें थीं, तुम और थोड़ी अड़चनें बढ़ा देते हो। दूसरा वैसे ही मुश्किल में पड़ा था, तुम्हारी मुश्किल का और बोझ बढ़ जाता है। प्रेम के नाम पर तुम मुक्त थोड़े ही करते हो, बांधते हो। प्रेम के नाम पर तुम दूसरे के गले में फांसी लगाते हो। पंख नहीं देते कि दूसरा भी खुले आकाश में उड़ सके। पर जो तुम्हारे पास नहीं है वह तुम दोगे कैसे? इसलिए मैं कहता हूं, पहले स्वयं को खोजो; पहले स्वयं को पहचानो; पहले स्वयं को बढ़ाओ; पहले स्वयं को विकसित करो, प्रौढ़ करो; पहले स्वयं की संपदा में नये-नये फल लगने दो; कुछ घटने दो भीतर; तो तुम बांट सकोगे। मनुष्य-जाति की बड़ी से बड़ी भूलों में एक भूल यह है कि प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि प्रेम करने की क्षमता उसे जन्म से ही मिली है। इस भूल ने जितना नुकसान किया है, किसी और भूल ने नहीं किया। हर आदमी यही सोचता है कि प्रेम तो जन्मगत मिला ही हुआ है। पैदाइश से ही हम प्रेम करने की कला जानते हुए आए हैं। इसलिए अगर प्रेम नहीं घट रहा है तो दूसरे की कोई भूल होगी। हम तो प्रेम करने में समर्थ ही हैं।
अगर इस गलत तर्क में तुम पड़ गए तो भटक जाओगे। प्रेम सीखना पड़े। प्रेम अदभुत कला है। उससे कोई सूक्ष्म कला नहीं। उससे ज्यादा कोई अदृश्य शिल्प नहीं। बड़ी सूक्ष्म है। तुम सीखोगे धीरे-धीरे तो ही ख्याल में आएगी। बड़ा नाजुक गीत है; उसे गाने के लिए कंठ को साधना होगा। तुम भर्राए गले से उसे न गा सकोगे, अन्यथा गीत मर जाएगा।
तो क्या करोगे? कैसे प्रेम को तुम सीखोगे?
संवेदनशीलता बढ़ाओ और तुम्हारी प्रेम की कला बढ़ती जाएगी। चट्टान पर भी बैठो, तो चट्टान को स्पर्श करो, छुओ, दोस्ती बनाओ। आसान है आदमी की बजाय। क्योंकि आदमी के साथ तो अहंकार खड़ा हो जाता है। वृक्ष के पास जाओ, उसे गले लगाओ। थोड़ी देर वृक्ष के कंधे पर सिर रख कर रुक जाओ। किसी आदमी के कंधे पर सिर रखने में तुम्हें अड़चन होगी। पता नहीं, वह इनकार कर दे, अस्वीकार कर दे। अस्वीकार का एक भय है। तुम प्रेम का निवेदन लेकर जाओ, और वह कह दे कि हटो भी! क्या बकवास लगा रखी है! क्या समझा है, यह मेरा कंधा है या कोई विश्राम करने की जगह? कि तुम किसी को गले लगाने जाओ और वह हटा दे दूर।
यही तो भय है प्रेम का। छुटपन से ही छोटे-छोटे बच्चे भी डर जाते हैं। बच्चे की समझ में ही नहीं आता। वह बड़े प्रेम से आया है, मां की साड़ी खींच रहा है, और मां झिड़क देती है कि दूर हट! उसे पता ही नहीं कि मां अभी नाराज है, पिता से झगड़ा हुआ है, या बर्तन टूट गया है, या आज रेडियो बिगड़ गया है, या दूधवाला नहीं आया--हजार मुश्किलें हैं। इस बच्चे को तो इसका कुछ पता नहीं है--इस मां की अड़चन का। और मां को कुछ पता नहीं है कि बच्चे को उसकी अड़चन का कोई भी पता नहीं है। वह तो बड़े प्रेम से आया था, साड़ी पकड़ कर एक प्रेम का निवेदन करने आया था और झिटक दिया।
बच्चा सहम गया। अब दुबारा जब वह साड़ी के पास आएगा तो हाथ में भय होगा। सोचेगा दो बार, दस बार--पकड़ना साड़ी कि नहीं पकड़ना! पहले मां के चेहरे को

पहचान लो। पता नहीं इनकार हो जाए। क्योंकि तब बड़ा दुख सालता है, घाव हो जाता है। जब तुम्हारे प्रेम को कोई इनकार कर दे, तो इससे बड़ी कोई पीड़ा संसार में दूसरी नहीं।
वह बड़े प्रेम से आया था कि पिता की गोद में बैठ जाएगा। लेकिन पिता ने
आज कीमती वस्त्र पहने हैं, वे किसी शादी-विवाह में जा रहे हैं। अब यह उनकी सब क्रीज बिगाड़े दे रहा है। इसे कुछ पता नहीं कि क्रीज भी होती है, कि शादी- विवाह में क्रीज बिगाड़ कर नहीं जाना होता। इसे कुछ पता नहीं है। बाप ने झिटकार दिया। कहा कि दूर हट, खेल; अभी पास मत आ। इसकी कुछ समझ में नहीं आता कि क्या मामला है! कब पास जाना, कब नहीं जाना? कब प्रेम का निवेदन स्वीकार होगा, कब अस्वीकार होगा, कुछ पक्का नहीं है। बच्चा नियम नहीं बना पाता। दुविधा खड़ी हो जाती है। बच्चा भयभीत हो जाता है। और जब अपनों से इतना डर है, तो परायों का तो कहना ही क्या! जब अपनों पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता कि हर घड़ी प्रेम मिलेगा, तो दूसरों का तो क्या भरोसा!
फिर बच्चा बड़ा होता है; स्कूल जाता है। वहां कोई अपना नहीं है। शिक्षक अपना नहीं, संगी-साथी अपने नहीं, वह सिकुड़ा हुआ है। धीरे-धीरे बड़ी दुनिया में प्रवेश करता है, वह सिकुड़ जाता है। अब वह डरता है। अब उसको भय है कि वह किसी के पास प्रेम का निवेदन करे और वह कह दे, हटो भी! अपनी शक्ल आईने में देखो!
तो इससे तो बेहतर है, अपमान से तो बेहतर है इस उपाय को ही कभी न करना। चुप रहो। कभी कोई प्रेम करेगा तो शायद खुद आ जाएगा।
लेकिन दूसरे की भी यही मुसीबत है। वह भी डरा हुआ है।
लोग प्रेम करने को पैदा हुए हैं, और प्रेम से भयभीत हैं। लोग बिना प्रेम के जीवन की गहनता को न जान पाएंगे, और प्रेम से भयभीत हैं। लोग बढ़ना चाहते हैं, प्रेम करना चाहते हैं, लेकिन डर है अस्वीकार का। चोट लगेगी। उससे बेहतर अकेले जी लेना है। कम से कम किसी को चोट देने का मौका तो नहीं दिया; अपमान तो नहीं हुआ।
इसलिए तुमसे कहता हूं कि चट्टान से, वृक्ष से--वे तुम्हें इनकार न करेंगे। और वे उतने ही प्रेम के लिए आतुर हैं जितना कोई और। और उनसे तुम्हें कभी चोट न पहुंचेगी।
मनुष्य की पीड़ा का तुम्हें अंदाज नहीं। मैं एक अंग्रेज लेखिका का जीवन पढ़ रहा था। उसने लिखा हैः वह इतनी अकेली है और प्रेम से इतनी डरी है, क्योंकि हर बार असफलता मिली है। और कभी-कभी आधी रात अकेले घर में--बड़ा घर; समृद्ध है और अकेली--इतना भय लगने लगता है और एकांत इस बुरी तरह सालने लगता है कि कुछ और उपाय न देख कर वह टेलीफोन दफ्तर को फोन नंबर उठा लेती है--घड़ी, समय पूछने के लिए। घड़ियां उसके पास बहुत हैं। और वहां कोई आदमी जवाब नहीं देता; वहां तो टेप-रिकार्ड किया हुआ सब रखा है। टेप-रिकार्ड से आवाज आती है--लेकिन मधुर--कि इस समय रात के ग्यारह बजे हैं।
वह लिखती है कि मुझे पता है कि वहां कोई बोलने वाला भी नहीं है; वहां
सब टेप किया हुआ है। वह आवाज जो मधुर है, वह भी जीवित नहीं है। लेकिन फिर भी किसी की आवाज सुन कर राहत मिलती है कि मैं बिल्कुल अकेली नहीं हूं।
उसने लिखा है, मैंने कुत्ता पाल रखा है, तोता पाल रखा है। तोते को मैंने सिखा दिया है कि जब भी मैं उसके पास जाऊं, वह हमेशा कहता हैः आई लव यू। मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। इसमें कभी भूल-चूक नहीं होती, क्योंकि तोते के लिए तो यह रटंत है। इस पर हमेशा भरोसा किया जा सकता है। आदमियों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। कभी कहें, कभी न कहें। यह तोता भरोसे-योग्य है। पश्चिम में लोग कुत्ते, बिल्लियां, तोते पालने में लग गए हैं, क्योंकि आदमी से भय हो गया है, घना हो गया है। यहां भी वही हालत है। यहां भी एक आदमी दूसरे आदमी से डरा है। सोच-सोच कर हाथ बढ़ाता है। इस तरह हाथ बढ़ाता है कि समय रहते वापस लौटाने की सुविधा रहे। कहीं अगर दूसरे की नजर बदल जाए, तो उसके पहले मैं हाथ लौटा लूं। ऐसा न हो कि मैंने हाथ बढ़ाया और तुमने इनकार किया। मैंने हाथ बढ़ाया ही न था।
तुमने कभी ख्याल किया? रास्ते पर तुम जा रहे हो, कोई आता है, तुम नमस्कार करते हो, लेकिन उसने देखा ही नहीं तो तुम सिर खुजलाने लगते हो।
दिखाने के लिए कि हमने हाथ जोड़े ही नहीं थे; हम तो सिर खुजला रहे थे।

अस्वीकृत न हो जाऊं किसी के द्वारा, इसकी बड़ी संवेदना मन में बनी रहती है कि कोई इनकार न कर दे। मैंने नमस्कार किया और तुमने नमस्कार न किया? अपमान हो गया, चोट लग गई। हम नमस्कार कर ही न रहे थे।
ऐसा भय है। इसलिए तुमसे कहता हूं, प्रेम के पहले पाठ सीखने हों तो चट्टानों के पास, पहाड़ों के पास, नदियों के पास, वृक्षों के पास। फिर धीरे- धीरे बढ़ना। और जब तुम प्रेम का पाठ खूब सीख जाओ, जब तुम्हें यह पता चल जाए कि प्रेम की इसकी कोई प्रयोजना ही नहीं है कि दूसरा लौटाएगा कि नहीं; प्रेम सिर्फ दान है। जब तुम वृक्षों को दे-दे कर आनंदित होओगे और वृक्षों जैसी हरियाली तुम्हारे भीतर छा जाएगी; जब तुम नदी, चांद-तारों को दे-दे कर आनंदित होओगे और ठीक वैसी ही स्वच्छता तुम्हारे भीतर उतर आएगी; तब तुम इसकी फिक्र छोड़ दोगे कि दूसरा लौटाता या नहीं; दूसरा अस्वीकार करता या नहीं। तब तुम उन्मुक्त भाव से दोगे। अगर दूसरे ने न लौटाया, तो तुम्हें दया आएगी कि बेचारा! प्रेम में यह तो इतना असमर्थ हो गया है कि मैंने नमस्कार किया और वह नमस्कार भी न लौटा सका। कितना सिकुड़ गया होगा! तुम्हें दया आएगी, अनुकंपा आएगी। क्रोध नहीं आएगा और न ही पीड़ा होगी।
और एक बार तुम यह राज जान गए कि प्रेम का मजा उसके देने में है, तब तुम चकित होओगे कि हजारों तरफ से प्रेम हजारों गुना होकर लौटने लगता है। क्योंकि प्रत्येक तैयार खड़ा है--कोई प्रेम दे, वह लौटा दे। क्योंकि वह भी डरा हुआ है। तुम जैसा ही डरा हुआ है। एक बार तुम देना शुरू करो, लौटना शुरू हो जाता है।
लेकिन लौटना प्रयोजन नहीं है; न भी लौटे, तो देना ही इतना महत्वपूर्ण
और आनंदकारी है कि कौन फिक्र करता है लौटने की? तुमने गीत गाया, यह इतना सुखद था कि किसी ने ताली बजाई या न बजाई, यह बात अर्थहीन है।
कोयल गीत गाती है, किसी की ताली की कोई फिक्र नहीं। ऐसा ही प्रेमी वस्तुतः बांटता है, कोयल के गीत की भांति। कोई ताली बजाता है, नहीं बजाता, यह उसकी मौज। बजाई तो खुद भी थोड़ा आनंदित ज्यादा हो लेगा। नहीं बजाई तो दया का पात्र है। गीत सुन कर ताली न बजी, इससे केवल इतना ही पता चलता है कि गीत सुनना भी न आया; गाना तो बहुत दूर। गीत सुनने का भी सलीका न आया। ताली भी न बजा सके, ऐसी कंजूसी! कुछ भी न लगता था; अहोभाव प्रकट न कर सके, तो गा तो सकोगे ही नहीं।
जो ताली बजाता है गीत सुन कर, वह गाने की तरफ कदम उठा रहा है। वह आज नहीं कल गाएगा भी। आज नहीं कल सोचेगा कि दूसरे के गाने से इतना आनंद मिलता है, अपना गीत जब फूटेगा प्राणों से तो कितना आनंद न मिलेगा! जब दूसरे के झरने को बहते देख कर ऐसी पुलक छा जाती है, तो अपना झरना जब बहेगा तो कैसा नृत्य न घटेगा!
जब तुम दूसरे के प्रेम को अहोभाव से स्वीकार करते हो तो तुम्हारे प्रेम को फैलने की सुविधा बनती है, रास्ता मिलता है।
प्रेम सीखना होगा।
और मनुष्य-जाति ने तुम्हें जिस तरह से बड़ा किया है, वह बिल्कुल विपरीत ढंग है। वह घृणा का ढंग है; वह प्रेम का ढंग नहीं है। तुम्हें तैयार किया गया है घृणा करने के लिए। इसलिए तुम्हें भयभीत कर दिया गया है।
लेकिन अब इस बात को बार-बार दोहराने से कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि तुम पैदा हो चुके, बचपन जा चुका, जो होना था हो गया। अब इस बात को रोने से कोई सार नहीं है कि बचपन में गलत संस्कार डाले गए हैं। वह हो चुकी बात। अगर तुम समझ जाओ, जाग जाओ, उन संस्कारों को पोंछा जा सकता है। वे संस्कार तुम्हारे सहयोग से जी रहे हैं। तुम्हारा सहयोग टूट जाए, वे विसर्जित हो जाएंगे। तुमने उन्हें सम्हाला है। तुम हाथ हटा लो, वे गिर जाएंगे।
प्रेम सीखना होगा। प्रेम देना होगा। दे-दे कर बढ़ेगा। और जब तुम पाओगे
कि जितना तुम देते हो उतना बढ़ता जाता है, तो तुम्हारा जीवन सघन होता है। उसकी त्वरा बढ़ती है। वह घनीभूत होता है। तुम एक छोटे से घर में विराट जीवन के मालिक हो जाते हो। छोटी सी देह में अनंत समा जाता है। जैसे बूंद में सागर सिकुड़ गया हो; जैसे एक किरण में पूरा सूरज समा गया हो; ऐसे तुम्हारी छोटी सी देह में और छोटे से आंगन में अपूर्व नृत्य होता है विराट का।

और जब तक कोई वैसी स्थिति को न पहुंच जाए तब तक कैसे धन्यवाद देगा परमात्मा को? जिस जीवन में धन्यवाद के योग्य कुछ भी नहीं है, उससे प्रार्थना कैसे उठेगी?
इसलिए मैं कहता हूं, प्रेम हो तो ही प्रार्थना होती है। अगर प्रेम न
हो तो प्रार्थना के नाम से शिकायत होगी, प्रार्थना नहीं हो सकती। तुम्हारी प्रार्थनाओं में तुम्हारी शिकायतों का पता चलता है। तुम्हारी प्रार्थनाओं में तुम्हारा अहोभाव निनादित नहीं होता। तुम यह नहीं कहते मुक्त कंठ से कि मैं धन्यभागी हूं कि तूने मुझे पैदा किया। मैं धन्यभागी हूं कि मैं हूं। मैं धन्यभागी हूं कि श्वास चलती है। मैं धन्यभागी हूं कि मैं तेरे इस विराट उत्सव में सम्मिलित होने का हकदार माना गया। मैं धन्यभागी हूं कि तेरे चांद-तारे देखे, तेरे फूलों को खिलते देखा, तेरे फूलों की सुवास को आकाश में उड़ते देखा। मैं धन्यभागी हूं कि तेरे झरने, तेरे पहाड़ देखे। तेरे सागर, तेरी अनंत लीला देखी।
जिस दिन तुम्हारी प्रार्थना धन्यवाद की होगी, उसी दिन प्रार्थना है। लेकिन वह प्रार्थना के पहले तुम्हें प्रेम की प्रक्रिया सीखनी होगी। उसमें देर मत करो। जितना समय बीता वह व्यर्थ ही गया। जल्दी करो और प्रेम को बुलाओ और प्रेम को अपने घर में बसाओ। और प्रेम के बढ़ने में जिससे भी सहायता मिले, वह सब करो। और प्रेम के घटने में जिन-जिन चीजों से सहायता मिलती हो, वह भूल कर मत करो। क्योंकि तुम्हारे भीतर अगर प्रेम घना न हो, तो घृणा घनी होगी। तुम बच न सकोगे--या प्रेम, या घृणा; या प्रेम, या भय; या प्रेम, या मौत। तुम बच न सकोगे। चुनाव तो करना ही होगा।
तुम इतने डरे हो मौत से इसीलिए कि तुम प्रेम को नहीं जान पाए। प्रेमी मौत से नहीं डरता। प्रेमी की कोई मौत ही नहीं है, क्योंकि प्रेम शाश्वत है। उसका मृत्यु से कभी मिलना नहीं हुआ, ऐसे ही जैसे सूरज का कभी अंधकार से मिलना नहीं हुआ है।

तीसरा प्रश्नः जिसके प्रति भी समर्पण का भाव हो, चाहे परमात्मा के प्रति या गुरु के प्रति, उसके संबंध में कोई न कोई धारणा तो होगी ही। तो यह समर्पण भी एक धारणा के प्रति ही होगा न! अथवा समर्पण इससे भिन्न होता है? कृपया समझाएं।

धारणा हो तो समर्पण नहीं होता। धारणा तुम्हारी है। तो तुम जो समर्पण करोगे वह भी तुम्हारा अपने ही प्रति है। वह तुमने झुक कर अपने ही पैर छू लिए। तुमने दर्पण के सामने खड़े होकर अपनी ही आरती उतार ली। तुम्हारी धारणा के कारण अगर समर्पण होगा तो समर्पण नहीं हुआ। तुम्हारी धारणा तुम्हारी धारणा है। समझो!
समझो तुमने एक सूत्र बना लिया अपनी धारणा का कि ऐसा व्यक्ति मिलेगा
तो हम समर्पण करेंगे। तुमने कहा कि वह नग्न खड़ा होगा, दिगंबर होगा, रात खाना नहीं खाता होगा, पानी छान कर पीता होगा, मांसाहारी नहीं होगा--तुमने एक धारणा बना ली। या तुमने कोई और दूसरी धारणा बना ली--कि मोर-मुकुट लगाए खड़ा होगा, बांसुरी बजाता होगा, गौएं चराता होगा--उसके प्रति हम समर्पण करेंगे। या तुमने धारणा बना ली कि बैठा होगा बोधिवृक्ष के नीचे, हिलता- डुलता न होगा, आंख बंद होंगी, शांत चित्त होगा, परम वीतरागता होगी--उसके प्रति हम समर्पण करेंगे।
समर्पण के पूर्व तुमने धारणा बना ली। धारणा तुम्हारी है। अब तुम धारणा को लेकर चले जांचने। कभी कोई आदमी अगर तुम्हारी धारणा से मेल खा जाएगा तो तुम समर्पण कर दोगे। वह समर्पण तुमने उसके प्रति किया? या तुमने अपनी ही धारणा के प्रति किया? वह तुमने झुक कर अपने ही पैर छू लिए। वह आदमी तो बहाना हुआ, खूंटी हुआ। तुमने अपने को ही उस पर टांग दिया।
और इस तरह का समर्पण हमेशा अधूरा रहेगा; पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि तुम कभी भी पूरे तृप्त नहीं हो सकते, कि पता नहीं यह आदमी कल बदल जाए, कल बिना छाने पानी पीने लगे। फिर क्या करोगे? कल का क्या भरोसा है! आज बांसुरी बजाता है, कल फेंक दे। जिंदा आदमी है। मर गया होता तो बांसुरी रखे रहता। मंदिर का कृष्ण है, वह बांसुरी रखे है। कोई उपाय नहीं है। जब तक

तुम्हीं न हटाओ, बजानी पड़ेगी। लेकिन इस आदमी का क्या भरोसा! यह आज नग्न खड़ा है, कल कंबल ओढ़ ले। तो संदेह तो रहेगा ही।
और फिर इस आदमी की पूरी जिंदगी का तो तुम्हें पता ही नहीं है। अतीत का कोई पता नहीं है, कैसा आदमी था। पता नहीं आज ही नग्न खड़ा हो गया हो। आज ही पानी छान कर पीने लगा हो। और कल तक पापी रहा हो, आज पुण्यात्मा बन गया हो। इसका पुण्य कितना गहरा है, इसका कैसे पता चले? और फिर जो तुम देख रहे हो वह तो एक छोटा सा हिस्सा है; इसके जीवन की समग्रता तो नहीं। वह तो ऐसे ही है जैसे किसी ने एक छेद से दीवाल के आकाश देखा हो। या किसी को रामायण का फटा हुआ एक पन्ना मिल गया हो, उसमें रामायण पढ़ ली हो। तो पूरी रामायण का तो कोई पता नहीं होगा। जो दिखाई पड़ता है वह तो बहुत थोड़ा है, जो छिपा है वह बहुत ज्यादा है। इसलिए तुम्हारी धारणा कल टूट न जाएगी, और ज्यादा जानने से बिखर न जाएगी, इसका कहां पक्का भरोसा है? तो तुम्हारा समर्पण सशर्त होगा। तुम कहोगे, अगर तुम ऐसे ही रहे सदा, तो मेरा समर्पण है। जिस दिन देखूंगा कि बदलाहट हुई, उसी दिन हट जाऊंगा।
तुम मुर्दा की पूजा करोगे, जीवित की नहीं। जीवित तो सतत प्रवाहमान है। इसीलिए तो मंदिर में मूर्ति की पूजा चलती है। वह जीवित गुरु से बचने का उपाय है। मूर्ति बिल्कुल तुम्हारी है। जैसा करवाओ वैसा करती है। जब तुम कहो कि अब सो जाओ, तो सो जाती है। जब तुम कहते हो, अब पट खुल गए, उठो; तो उठ आती है। दतौन रख देते हो तो मुंह साफ कर लेती है।
मैं एक घर में पंजाब में मेहमान था। कमरे से गुजर रहा था, गुरुग्रंथ साहब के सामने दतौन और लोटा भर पानी रखा था। मैंने पूछा कि यह कहीं लुढ़क जाए तो गुरुग्रंथ खराब हो जाएं, किसने रखा है यहां? तो उन्होंने कहा कि नहीं, ऐसा आप मत कहना। आपको पता नहीं है। गुरुग्रंथ साहब की दतौन है।
अब वे गुरुग्रंथ साहब हो गए, तो आदमी हो गए! किताब आदमी हो गई है। दतौन
के लिए! फिर भोजन लगा देंगे।
तुम कठपुतलियां चाहते हो, भगवान नहीं। जीवित भगवान मिल जाए तो तुम्हारी सब धारणाएं तोड़ देगा। क्योंकि वह तुम्हारी धारणाएं पूरी करने को थोड़े ही बैठा है! और जहां तुम्हारी धारणा टूटी, वहीं तुमने अपना समर्पण समेटा और भागे। तुमने अपनी पोटली बांधी समर्पण की। तुमने कहा, रहने दो, कहीं और दे देंगे। यहां हमारी धारणा पूरी नहीं होती।
तुम्हारी धारणा से समर्पण नहीं होता। जहां तुम्हारी सारी धारणाएं छूट जाती हैं वहां समर्पण है। जिस व्यक्ति के पास आकर तुम अपनी सब धारणाएं नीचे रख देते हो। तुम कहते हो कि बहुत धारणाओं से देख लिया; सिवाय अंधेपन के कुछ भी न पाया। अपनी धारणाओं के चश्मों से लगा-लगा कर बहुत देखा, कहीं परमात्मा न दिखा। अब हम सब धारणाएं चरणों में रख देते हैं। अब हम निर्धारणा होते हैं। अब हम शून्य होकर तुम्हें देखते हैं।
समर्पण का यही अर्थ है। किसी व्यक्ति के पास शून्य होकर बैठ जाना समर्पण है। तुम शून्य हो जाओ, समर्पित हो गए। समर्पण कोई घोषणा थोड़े ही है कि तुम बैंड-बाजा बजाओ। समर्पण तो शून्य का स्वर है। वह चुप्पी में घट जाता है। कुछ शोरगुल थोड़े ही करना है। कोई दावेदारी थोड़े ही करनी है। कोई गवाह थोड़े ही जुटाने हैं। तुम जिस व्यक्ति के भी पास जाकर शून्य बैठ गए, वहीं समर्पण हो गया। और तब व्यक्ति की भी क्या बात है! तुम अगर वृक्ष के पास भी शून्य होकर बैठ गए, समर्पण वहीं हो गया। तुम अगर आकाश के पास शून्य होकर बैठ गए, समर्पण वहीं हो गया। समर्पण तुम्हारे न होने का नाम है। समर्पण कोई कृत्य नहीं है कि तुमने किया। तुम करने वाले रहे तो समर्पण तो होना ही नहीं है। वह तो तुम ही रहोगे पीछे। समर्पण तो ऐसी दशा है, तुम्हें पता चला कि मैं हूं ही नहीं।
जिस व्यक्ति के पास तुम्हें अपने न होने का पता चले, वही गुरु है।
जिसके पास तुम्हें अपने होने का पता चले, वहां से भागना। वह महामारी है।
क्योंकि वही तो तुम्हारी बीमारी है जन्मों-जन्मों की कि मैं हूं। जिस व्यक्ति के पास तुम्हारे मैं की सब दीवालें गिरने लगें, वहां टिक जाना।
कहना कि अब यहीं रुकेंगे। यहां मिटने की जगह है।
लेकिन यही मुश्किल है। जहां तुम देखते हो कि मिटने का डर है वहां से तुम भागते हो। यह आदमी तो सब उजाड़ देगा। यह तो सब धारणाएं मिटा देगा।

हमारा शास्त्र छीन लेगा, ज्ञान छीन लेगा, आचरण नष्ट कर देगा। यह आदमी तो खतरनाक है। भागो, अपने को बचाओ।
जिससे तुम भागते हो, वही था आदमी जहां तुम्हें रुकना था। क्योंकि वहीं तुम्हारा निखार होता, वहीं तुम्हारा कूड़ा-करकट जलता, तुम्हारा सोना निखरता। वहीं तुम्हारा व्यर्थ कटता और सार्थक का उदय होता। वहीं शून्य फलित होता।
समर्पण यानी शून्य भाव। जिसके पास भी तुम शून्य होकर बैठ गए, वहीं समर्पण है। और जहां समर्पण हो, वहीं परमात्मा है। समर्पण की आंख से जहां तुमने देख लिया वहीं परमात्मा है। शून्य आंख से अगर तुमने वृक्ष को देख लिया, वृक्ष मिट जाएगा, तुम परमात्मा को ही उन पत्तों में लहलहाते पाओगे। शून्य आंख से तुमने झील को देख लिया, लहरें खो जाएंगी, तुम परमात्मा को ही वहां चंचल पाओगे। अगर किसी मनुष्य के पास तुमने शून्य-भाव से बैठ कर देख लिया तो वहां व्यक्ति मिट जाएगा, तुम्हें वहां भगवत्ता के दर्शन शुरू हो जाएंगे।
भगवान सूनी आंख से देखा गया जगत है। भरी आंख से देखा गया भगवान संसार मालूम पड़ता है। खाली आंख से देखा गया संसार भगवान हो जाता है। असली बात खाली आंख है। निर्धारणा से आंख खाली होगी।
तो धारणा से संकल्प पैदा हो सकता है, धारणा से समर्पण पैदा नहीं हो सकता। समर्पण तो मिटना है, खोना है, विसर्जित होना है। तुम अपनी धारणा पकड़े रहोगे तो मिटोगे कैसे? तुम अगर मेरे पास आकर हिंदू बने रहे, मुसलमान बने रहे, जैन बने रहे, तो मुझसे चूक जाओगे। तुम मेरे पास आकर कुछ भी न रहे, तुम्हें खुद ही पता-ठिकाना न रहा कि मैं कौन हूं, तुम्हारे सब तादात्म्य टूट गए, तुम्हारे सब विशेषण गिर गए, तुम्हारे नाम-रूप का कुछ तुम्हें पता न रहा, तुम कोरे होने लगे, तुम्हारी स्लेट पर जो भी लिखा था वह पुंछने लगा, तो--तो ही तुम लाभान्वित हो पाओगे।
तुम्हारा एक ही लाभ है; और वह लाभ यह है कि तुम न रहो। तुम्हारी एक ही हानि है; वह तुम ही हो। एक ही शत्रु है तुम्हारा--तुम्हारा होना। और एक ही तुम्हारे जीवन में कल्याण की घटना होगी कि तुम मिट जाओ। समर्पण यानी मिट जाना।
बाकी तो सब बहाने हैं। तुम गुरु के बहाने मिट जाओ, गुरु तो बहाना है। तुम मूर्ति के बहाने मिट जाओ, मूर्ति भी बहाना है। बहाना तुम कोई भी ले लो। अगर तुम बिना बहाने के मिटने में समर्थ हो, बिना बहाने मिट जाओ; सिर्फ मिट जाओ; बिना किसी के चरणों में गिरे सिर्फ गिर जाओ; तो भी परिणाम वही हो जाएगा।

चौथा प्रश्नः भक्त कितना ही भाव में गहरा जाए, लेकिन अंत तक भी शायद उसका संबंध द्वैत का ही बना रहता है। और द्वैत बना रहे तो मुक्ति क्या संभव है?

"अंत तक" तो संबंध द्वैत का बना रहता है, लेकिन "अंत में" संबंध द्वैत
का नहीं रह जाता।
आखिरी-आखिरी तक दो बने रहते हैं। पास आ जाते हैं, एक-दूसरे को छूने लगते हैं, भक्त को भगवान का स्पर्श होने लगता है। लेकिन फिर भी स्पर्श भी होता है तो भी दो तो होते ही हैं--अंत तक। पर अंत में--वह अंत तक के भी आगे की बात है--अंत में वहां दोनों खो जाते हैं। न भक्त होता है, न भगवान होता है। वहां एक ही बचता है। भक्ति ही बचती है। न भक्त बचता है, न भगवान बचता है। भाव ही बचता है। उस भाव में दोनों लीन हो जाते हैं।
तभी मुक्ति है। एक बच रहे तो मुक्ति है। इसलिए हमने मोक्ष का नाम दिया हैः कैवल्य; एक। केवल एक बच रहे तो मुक्ति है। जब तक दो हैं तब तक बंधन है। क्योंकि वह दूसरा तुम्हें घेरेगा। वह दूसरा तुम्हारी परिभाषा बनाएगा। वह दूसरा तुम्हारी सीमा बनाएगा, तुम असीम न हो सकोगे। दूसरे की मौजूदगी सीमा होगी। तुम भी मिट जाओ, दूसरा भी मिट जाए, होना मात्र रह जाए। उस घड़ी में मोक्ष है।

अंत तक तो ठीक है लेकिन अंत में दो नहीं रह जाते, एक ही रह जाता है। इसलिए अंत में, तुम ध्यान से चलो कि प्रेम से, कोई फर्क नहीं पड़ता। भेद यात्रा के प्रारंभ में है। जैसे-जैसे यात्रा आगे बढ़ती है, यात्री करीब आने लगते हैं।
ऐसे ही जैसे किसी पहाड़ के शिखर पर कोई जा रहा है; कोई पूरब से चढ़ा है, कोई पश्चिम से चढ़ा है, वे अलग-अलग चढ़े हैं। शायद प्रथम चरण में यात्रा के उनको दूसरा दिखाई भी नहीं पड़ता था, इतना फासला था। लेकिन जैसे-जैसे पहाड़ का शिखर करीब आने लगेगा, कभी-कभी दूसरा भी उन्हें दिखाई पड़ेगा--पास आने लगे। एक ऐसी घड़ी आएगी जब वे पहाड़ के आखिरी शिखर पर पहुंच जाएंगे। तब अचानक वे पाएंगे कि दूसरा भी वहीं आ गया। पूरब, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, सब खो जाते हैं। एक ही शेष रह जाता है।
कहां से तुम चले, यह सवाल नहीं है। किस ढंग से तुम चले, यह सवाल नहीं है। किस वाहन पर तुमने यात्रा की, या पैदल चले, यह भी सवाल नहीं है। अंतिम मंजिल तो एक है। मनुष्य की नियति तो एक है। एक को पा लेना ही वह नियति है। चलने के प्रथम तुम अपने हिसाब को समझ कर चलना। तुम अपना ढंग, अपनी रुचि, रुझान को देख कर चलना। तुम्हें जो रास्ता मौजू पड़े, उससे चलना। पैदल चल सको, पैदल चलना। घोड़े पर चल सको, घोड़े पर चलना। बैलगाड़ी पर सवार होना हो, बैलगाड़ी पर सवार होना। अपने को देख कर चलना। अपने को जिसमें सुख मिले, शांति मिले, एक-एक कदम पर तुम्हारी शांति गहरी होने लगे, इस बात को जांचते हुए चलना।
लेकिन अक्सर तुम्हें उलटी बातें सिखाई गई हैं। तुम्हें सिखाया गया है
कि यह तो बड़ा कष्टपूर्ण है मार्ग। तो अक्सर ऐसा हो जाता है, तुम किसी और के मार्ग पर चलते हो, कष्ट पाते हो, लेकिन अपने को समझाते हो कि मार्ग तो कष्टपूर्ण है। आनंद तो अंत में मिलेगा, अभी तो कष्ट भोगना ही पड़ेगा। तुम्हें समझाया गया है कि जन्मों-जन्मों में तुमने जो कर्म किए हैं, उनके पाप-फल भोगने पड़ेंगे। तो तुम सोचते हो, शायद पाप-फल भोग रहे हैं। फिर तुम्हें यह भी समझाया गया है, यह कोई छोटी घटना तो नहीं कि आज घट जाए। यह तो जन्म-जन्म लगेंगे। तो भोगो कष्ट को।
लेकिन मैं तुमसे दूसरी बात कहता हूं। मैं तुमसे कहता हूं, अगर मार्ग तुमसे मेल खा जाए, तुम्हें पहले ही कदम से शांति मिलनी शुरू हो जाएगी। पूरी शांति नहीं मिल जाएगी, लेकिन शांति के आसार! पूरी शांति आज नहीं मिल जाएगी, लेकिन शांति की संभावना की प्रतीति तो होने लगेगी।
जैसे कोई नदी के करीब आता है तो हवा शीतल होने लगती है। अभी नदी नहीं आ गई, दिखाई भी नहीं पड़ती, पर हवा में शीतलता आ गई। कोई बगीचे के करीब आता है, अभी बगीचा दिखाई भी नहीं पड़ता, लेकिन फूलों की बास हवा में तैरती हुई आने लगती है।
मंजिल पर पहुंचने के पहले भी मंजिल की थोड़ी सुगंध तो आने ही लगेगी। और मैं तुमसे कहता हूं, पहले कदम से ही आने लगेगी। अन्यथा हो ही नहीं सकता। जब तुम ठीक मार्ग पर खड़े हो गए तो तुम मंजिल से जुड़ गए। हजार मील दूर हो मंजिल, तो भी कोई बात नहीं। लेकिन जब तुम ठीक मार्ग पर खड़े हो गए, तो हजार मील का फासला भला हो, लेकिन मंजिल से तुम जुड़ गए। थोड़े तो तुम मंजिल के पास आ ही गए। मंजिल से संबंध तो हो ही गया।
तालमेल अगर बैठ गया तो तुम्हें पहले ही दिन से शांति मिलनी शुरू हो जाएगी। आनंद का एक भाव तुम्हें घेरने लगेगा। कभी-कभी तुम चौंक कर देखोगे कि क्या कारण है, तुम क्यों इतने प्रसन्न हो! क्योंकि कोई कारण दिखाई न पड़ेगा। मंजिल बहुत दूर है। मोक्ष अभी बहुत दूर है। लेकिन अचानक तुम पाओगे, थोड़ी-थोड़ी मुक्ति फलित होने लगी। कुछ-कुछ बंधन गिरने लगे। अब तुम्हारे पैर जंजीरों में उतने नहीं बंधे हैं जितने कल तक बंधे थे। तुम्हारी गर्दन से फांसी का फंदा थोड़ा ढीला हो गया। अब इतनी फांस नहीं लग रही है गले में। गला थोड़ा मुक्त है। तुम गा सकते हो। तुम थोड़े दौड़ सकते हो। यह तुम्हें पहले ही क्षण से मालूम पड़ना शुरू हो जाएगा।
अगर यह मालूम न पड़े, तो मैं तुमसे न तो कहता हूं कि तुम अतीत जन्मों की फिक्र करना, कर्मों की फिक्र करना। मैं तुमसे इतना ही कहता हूं, तुम फिक्र करना, तुम गलत रास्ते पर खड़े हो, जो तुम्हें मौजू नहीं पड़ता होगा।

अगर दवा ठीक बैठ जाए तो पहली खुराक से ही राहत शुरू हो जाती है। दवा ठीक न बैठे तो ही बात और है।

आखिरी प्रश्नः शरीर बंधन है, ऐसा कहा गया है। तो क्या शरीर में रहते हुए चरम अद्वैत की उपलब्धि संभव नहीं है?

किसने तुम्हें कहा है कि शरीर बंधन है? जिसने भी तुम्हें कहा है, गलत कहा है। शरीर बंधन नहीं है, शरीर के साथ आसक्ति बंधन है। शरीर के साथ मोह बंधन है। मैं शरीर हूं, ऐसी धारणा बंधन है। शरीर बंधन नहीं है। शरीर क्यों बंधन होगा?
तुम्हारे कपड़े बंधन हैं? हो सकते हैं बंधन, अगर तुम इतने मोहग्रस्त हो जाओ कि तुम कहो, मैं कपड़े उतार ही नहीं सकता। मैं मर ही जाऊंगा अगर कपड़े उतारूंगा। कपड़े मैं बदल ही नहीं सकता, क्योंकि इसमें तो मैं मर ही जाऊंगा। मैं कपड़ा हूं।
अगर तुम्हें कपड़े के साथ ऐसी भ्रांति हो जाए कि मैं कपड़ा हूं। अगर मेरा कपड़ा किसी ने छीन लिया तो मरे। कपड़ा अगर चोरी चला गया तो मर गए। फिर जरा-जीर्ण भी हो जाए कपड़ा, सड़-गल जाए, तो भी तुम बदल नहीं सकते, नया कपड़ा नहीं ले सकते, क्योंकि यह कपड़ा ही तुम हो। तो फिर कपड़ा भी बंधन हो जाएगा। कपड़ा अभी बंधन नहीं है। क्योंकि तुम जानते हो, कपड़ा अलग है, तुम अलग हो। शरीर भी कपड़ा है। शरीर बंधन नहीं है। जिन्होंने कहा, गलत कहा होगा। या तुमने गलत समझा होगा। शरीर बंधन है, अगर तुमने समझा कि मैं शरीर हूं। तब मन भी बंधन है, अगर तुमने समझा कि मैं मन हूं। तो आसक्ति बंधन है, तादात्म्य बंधन है। न तो शरीर बंधन है, न मन बंधन है। अगर तुमने जान लिया कि मैं शरीर में हूं, लेकिन शरीर नहीं हूं, तुम मुक्त हो गए। तुमने अगर पहचान लिया कि मैं मन के भीतर हूं, मन नहीं हूं, तुम मुक्त हो गए। कोई न रोकेगा। तुम्हें कोई नहीं रोक सकता, कहीं भी नहीं रोक सकता। तुम्हारी आसक्ति ही रोक सकती है।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लो, क्योंकि ऐसी बहुत सी भ्रांतियां तुम्हारे मन में भरी हैं।
अब यह तरकीब बड़ी गहरी है। आसक्ति को तो बंधन नहीं कहते, शरीर को बंधन कहते हो। क्योंकि आसक्ति को कहोगे तो तुम जिम्मेवार होओगे, शरीर को कहा तो तुम जिम्मेवार नहीं हो, शरीर जिम्मेवार है। दूसरे पर जिम्मेवारी टालने का हमारा बड़ा मन होता है। उससे हमारी झंझट मिट जाती है। कह दिया शरीर बंधन है, बिल्कुल निश्चिंत हो गए। अब करें भी क्या? शरीर है, इसके रहते तो मोक्ष हो नहीं सकता। मन जब तक मिटेगा नहीं, कैसे मोक्ष होगा? मन बंधन है। तुम निश्चिंत हुए, तुम्हारा दायित्व समाप्त हुआ। तुम्हें ऐसा लगने लगा कि किसी और के कारण तुम बंधे हो, अपने कारण थोड़े ही! और यही बड़ी से बड़ी भूल है। धार्मिक व्यक्ति सदा जिम्मेवारी अपनी खोजता है। क्यों? क्योंकि जिस बात के लिए तुम जिम्मेवार हो, उसी से मुक्त हुआ जा सकता है। जिसके लिए तुम जिम्मेवार ही नहीं हो, उससे तुम मुक्त कैसे होओगे? आसक्ति बंधन है। लेकिन आसक्ति कहो तो तुम्हें लगता है, यह तो झंझट हुई। यह तो अपराधी
हम सिद्ध हुए। क्योंकि शरीर तुमसे आसक्त नहीं है, ध्यान रखना। अगर हाथ तुम्हारा काटा जाए तो हाथ नहीं चिल्लाता कि मैं मर जाऊंगा! मुझे मत काटो! मुझे दूर मत करो! मेरा बड़ा मोह है! तुम चिल्लाते हो।
सूफी फकीर हुआ बायजीद। वह अपने शिष्यों के साथ एक सड़क से गुजरता था और
एक आदमी एक गाय को बांध कर ले जा रहा था। वह गाय जा नहीं रही थी और वह जबरदस्ती घसीट रहा था। तो बायजीद ने अपने शिष्यों को कहा, खड़े हो जाओ, घेर लो इस आदमी को। एक स्थिति मौजूद हो गई है, इससे कुछ शिक्षा लेनी है।
वे घेर कर खड़े हो गए। वह आदमी थोड़ा चौंका भी। पर बायजीद बड़ा जाहिर फकीर था। उस आदमी ने भी कहा, होगा कुछ; शिष्यों को समझाता होगा। बायजीद ने शिष्यों से पूछा कि तुम मुझे यह बताओ, यह आदमी गाय से बंधा है कि गाय इस आदमी से बंधी है?

जाहिर था। लोगों ने कहा कि गाय आदमी से बंधी है। आदमी क्यों बंधेगा गाय से? हाथ में रस्सी आदमी के है; गाय के गले में है। जाहिर है, गाय बंधी है, आदमी मुक्त है।
बायजीद ने कहा, अब दूसरा सवाल--अगर हम रस्सी तोड़ दें तो गाय आदमी के पीछे जाएगी कि आदमी गाय के पीछे जाएगा?
उन्होंने कहा, आदमी गाय के पीछे जाएगा।
तो उसने कहा, फिर पहले सवाल का उत्तर गलत है। गाय नहीं बंधी है। गाय तो छूटने की कोशिश कर रही है, नासमझो! वह तो पीछे खिंच रही है। आदमी उसको खींच रहा है। रस्सी टूटते ही गाय भाग खड़ी होगी। आदमी खोजेगा गाय को। तो बंधा कौन है?
शरीर ने तुम्हें नहीं खोजा है, ध्यान रखना। तुमने अपनी वासनाओं के कारण शरीर खोजा है। तुमने गर्भ खोजा है, गर्भ ने तुम्हें नहीं खोजा। अगर शरीर तुम्हें छोड़ने लगे तो तुम डाक्टर को बुलाओगे, शरीर डाक्टर को नहीं बुलाएगा। शरीर तो झंझट से छूटना चाहता है। तुमने काफी सता रखा है। उसको तो विश्राम मिलेगा। मिट्टी मिट्टी में गिर जाएगी, प्रसन्न होगी। पानी पानी में मिल जाएगा, झंझट मिटी। आकाश आकाश में लीन हो जाएगा, हवा हवा में लीन हो जाएगी। काफी तुम्हारे फेफड़ों में कष्ट भोग लिया।
न, शरीर क्षण भर को भी न कहेगा कि मुझे कुछ नुकसान हो रहा है। शरीर तो मुक्त हो जाएगा। तुम रोओगे, चिल्लाओगे। जब तुम मरते हो तो शरीर रोता है कि तुम रोते हो? शरीर तो शांति से मरने को तैयार है, विश्राम में जाने को तैयार हो गया है। तुम पकड़ रहे हो। तुम कह रहे हो डाक्टर से कि आक्सीजन का सिलिंडर लगा दो। कि कुछ भी हो जाए, मगर रहेंगे शरीर में। चाहे बेहोश रहें, मगर रहेंगे।
पश्चिम के अस्पतालों में बहुत से लोग बेहोश पड़े हैं। बस आक्सीजन के सिलेंडर से लटके हैं। मगर उनके पास पैसा है। वे कहते हैं, मरेंगे नहीं। चाहे बेहोश ही पड़े रहेंगे, कभी तो ठीक होंगे। यहां तक बात पहुंच गई है कि कुछ लोगों ने अपनी लाशों को सुरक्षित करवा लिया है अमरीका में। क्योंकि इस बात की आशा है कि बीस साल के भीतर मुर्दे को जिलाने की संभावना है। तो जो मर गए हैं करोड़पति लोग... कम से कम इस तरह की हजार लाशें अमरीका में सुरक्षित हैं। एक-एक लाश पर दस हजार रुपये रोज का खर्च है। क्योंकि जिंदा आदमी का मामला नहीं है, लाश को सुरक्षित रखना बहुत मुश्किल मामला है। जरा गड़बड़ हो जाए, सड़ जाए। जरा यहां-वहां भूल-चूक हो जाए, सड़ जाए। क्योंकि जीवन तो रहा नहीं। भीतर का बचाने वाला तो अब बचा नहीं। भीतर की सुरक्षा तो खो गई। अब तो सिर्फ रासायनिक द्रव्यों के आधार पर बचाया जा रहा है। दस हजार रुपये रोज का खर्च एक लाश पर बीस साल तक! लेकिन जो लोग छोड़ गए हैं, वे करोड़ों डालर छोड़ गए हैं अपने लिए। वे कहते हैं, जब तक कि खोज न हो जाए कि मुर्दा जिलाया जा सके, तब तक हमारी लाश को बचाना। जिस दिन खोज हो जाए उस दिन हमारी लाश को जिला लेना।
कौन किसको पकड़ रहा है? मर जाने के बाद बीस साल तक भी पीछा कर रहे हो गरीब शरीर का! उसको जाने दो, उसको विश्राम करने दो। नहीं लेकिन, नहीं करने देंगे। अभी और इरादा उनका फिर से आने का है इसी शरीर में।
नहीं, शरीर बंधन नहीं है, आसक्ति बंधन है। और अगर आसक्ति बंधन है तो मोक्ष का उपाय है। अगर शरीर बंधन है तो फिर मोक्ष का उपाय ही नहीं है। तब तो बुद्ध भी शरीर में थे, महावीर भी शरीर में थे। महावीर और बुद्ध दोनों चालीस साल के करीब उम्र के थे जब ज्ञान को उपलब्ध हुए, मुक्त हुए। फिर चालीस साल और जिंदा रहे। तो यह तो कहानी झूठ हो गई। मुक्त हो ही नहीं सकते, अगर शरीर बंधन है।
लेकिन हम जानते हैं कि लोग शरीर में रहते मुक्त हो गए। क्योंकि मुक्त होना शरीर से संबंधित नहीं है, आसक्ति के टूट जाने से संबंधित है। आसक्ति का सेतु हट गया। शरीर जारी रहा, शरीर अपना कृत्य करता रहा, लेकिन भीतर से उस कृत्य को पकड़ रखने की कोई आकांक्षा न रही। जब तक चला, अपने से चला। जब गिर गया, अपने से गिर गया। लेकिन भीतर से कोई आसक्ति न रही कि यह मैं हूं। अपना भिन्न होना प्रतीत हो गया, अनुभव हो गया। शरीर से अतिक्रमण हो गया।
शरीर के भीतर रहते जान लिया कि मैं शरीर के पार हूं; मुक्ति हो गई।

मोक्ष स्वयं की पहचान है। शरीर से उसका कुछ लेना-देना नहीं। स्वयं की ठीक-ठीक पहचान, सम्यक ज्ञान मोक्ष है। शरीर हो या न हो, इससे कुछ लेना-देना नहीं।
शरीर न हो और आसक्ति बनी रहे, तो तुम नया शरीर ग्रहण कर लोगे, नया गर्भ खोज लोगे। शरीर रहते भी आसक्ति छूट जाए, तो गर्भों की खोज बंद हो गई। अब तुम्हारा फिर कोई जन्म न होगा। शरीर के कारण तुम नहीं जन्मे हो, तुम्हारे कारण शरीर पकड़ा गया है। तुम आधार हो। तुम्हारी आसक्ति बंधन है। सार में कहें तो आसक्ति बंधन है, अनासक्ति मोक्ष है।
आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
नौवां प्रवचन

भीतर के मल धोई

सूत्र

ऊपरि आलम सब करै, साधु जन घट मांहि।
दादू ऐतां अंतरा, ताथैं बनती नाहिं।।

झूठा सांचा कर लिया, विष अमृत जाना।
दुख को सुख सबके कहै, ऐसा जगत दिवाना।।

सांचे का साहब धनी, समरथ सिरजनहार।
पाखंड की यह पिर्थवी, परपंच का संसार।।

पाखंड पीव न पाइए, जे अंतर सांच न होई।
ऊपर थैं क्यों ही रहौ, भीतर के मल धोई।।

जे पहुंचे ते कहि गए, तिनकी एकै बात।
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जात।।

एक शब्द है हमारे पासः नीति। उसे ठीक से समझ लेना जरूरी है।
नीति है ऐसा आचरण, जो हमारे भीतर से नहीं उपजता, जिसे हम दूसरे को दिखाने के लिए करते हैं; जिसकी जड़ें हमारे भीतर अंतरात्मा में नहीं होतीं, जिसे हम ऊपर से ओढ़ते हैं; जिससे हम भिन्न होते हैं। न केवल भिन्न, बल्कि विपरीत होते हैं। जिससे हमारा कोई तालमेल नहीं होता, लेकिन सम्मान के लिए, समादर के लिए, आस-पास की भीड़ को राजी करने के लिए, समूह के लिए उसे हम अपने ऊपर ओढ़ते हैं। नीति ओढ़ी गई घटना है।
एक तो फूल हैं, वृक्षों में लगते हैं। उन फूलों का संबंध जड़ों से होता है, भीतर भूमि से होता है, ऊपर आकाश के सूरज से होता है, चांद-तारों से होता है। फिर ऐसे भी फूल हैं प्लास्टिक के कि तुम उन्हें वृक्षों पर लटका दो, शायद दूर से गुजरने वालों को धोखा भी दे दें, लेकिन वे फूल वृक्ष में नहीं लगे होते, ऊपर से चिपके होते हैं।
नीति प्लास्टिक के फूलों जैसी है। उससे तुम्हारे और समाज के बीच सुविधापूर्ण संबंध निर्मित हो जाएंगे, लेकिन तुम्हारे और परमात्मा के बीच सब संबंध टूट जाएंगे। जिसने समाज को बहुत ज्यादा ध्यान दिया वह आत्मा से वंचित हो जाएगा।
नीति अगर सड़ जाए तो राजनीति का जन्म होता है। नीति अपने आप में झूठ पाखंड है, लेकिन उसका भी सबसे सड़ा हुआ रूप, सबसे विकृत रूप राजनीति है। जैसे कि प्लास्टिक के फूल भी सड़ गए। राजनीति का अर्थ है, तुम्हें कुछ प्रयोजन ही नहीं है उससे, तुम जो कर रहे हो। तुम्हारे लक्ष्य कुछ और हैं। तुम करते कुछ और हो, तुम चाहते कुछ और हो। तुम्हारा सारा आचरण साधन की भांति है, साध्य नहीं। तुम मुस्कुराते हो, अगर तुम्हें वोट लेनी है। तुम उपेक्षा से भर जाते हो, अगर वोट मिल गई। तुम्हारी मुस्कुराहट भी झूठी है। तुम्हारी मुस्कुराहट भी सहज नहीं है, क्षण की घटना नहीं है, वास्तविक नहीं है। उसके पीछे भी लक्ष्य है, साधन है। तुम मुफ्त में मुस्कुराते भी नहीं। उसके पीछे भी लोभ है। तुम मुस्कुराते हो कुछ पाने को। तुम भला व्यवहार करते हो कुछ पाने को। तुम्हारा व्यवहार वेश्या की भांति है।
राजनीतिज्ञ वेश्या का पूरा का पूरा प्रतिबिंब है। वेश्या प्रेम नहीं करती, फिर भी प्रेम दिखलाती है। नजर उसकी जेब पर लगी है। अगर जेब खाली हो, उसकी मुस्कुराहट खो जाएगी। वह तुम्हारे लिए नहीं हंसती थी, तुम्हारी जेब के लिए हंसती थी। तुम्हारी जेब भरी है, वह पांव में बिछ जाएगी। तुम्हारी जेब खाली है, तुम बाहर निकाल दिए जाओगे। वह तुम्हें पहचानेगी भी नहीं।

तुमसे उसका कोई संबंध नहीं बनता। तुम्हारी तिजोड़ी से भला उसका संबंध हो, तुम्हारे हृदय से कोई संबंध नहीं होता। इसलिए तो वेश्या को हमने सबसे ज्यादा पतित माना है। वह अपने व्यक्तित्व को बेचती है, अपनी मुस्कुराहट को, अपने हृदय को, अपने प्रेम को।
राजनीतिज्ञ वेश्या जैसा है। उससे भी बदतर है। उसका सारा जीवन ही व्यवसाय है। वह जो भी करता है, यही ध्यान में रख कर करता है कि इसका परिणाम क्या होगा? आखिरी अंततः पद की दौड़ में कितना लाभ इससे मुझे मिलेगा? मनुष्य उसे मनुष्यों जैसे नहीं दिखाई पड़ते--सीढ़ियां हैं, जिन पर चढ़ना है। और जिनको चढ़ कर भूल नहीं जाना, जिनको चढ़ कर मिटा भी देना है। क्योंकि जिस सीढ़ी से तुम चढ़े हो, उसी से तुम्हारे प्रतिद्वंद्वी भी चढ़ सकते हैं। सीढ़ी पर चढ़ कर उसे मिटा देना है, गिरा देना है, ताकि वह सीढ़ी बची न रह जाए। अन्यथा पीछे से तुम्हारे प्रतिद्वंद्वी भी उन्हीं सीढ़ियों से चढ़ कर तुम्हारे पास पहुंच जाएंगे।
तो राजनीतिज्ञ चढ़ता है सीढ़ियों से और खोदता चलता है। वह जिन नावों में सवार होता है, उन्हीं को डुबाता चलता है। क्योंकि खतरा है। वे नावें खतरनाक हैं। नावों को किससे क्या प्रयोजन है! तुम्हें ले आईं राजधानी तक, दूसरों को ले आएंगी।
उसका सारा आचरण अहंकार की पूजा के लिए समर्पित है। वह सिंहासनों पर होना चाहता है, समादर चाहता है।
लेकिन ध्यान रखना, नीति में भी वह बीज तो छिपा ही हुआ है।
तुम मनुष्यों को दो प्रकार में बांट सकते हो। एक, जो समाधि चाहते हैं, समाधान चाहते हैं। और दूसरे, जो सम्मान चाहते हैं, समादर चाहते हैं। जो समाधि चाहता है, उसे तो भीतर की यात्रा पर जाना होगा। जो सम्मान-समादर चाहता है, उसे दूसरों की आंखों के इशारों को समझना होगा। उसे दूसरों के इशारों पर नाचना होगा। क्योंकि दूसरे तभी तुम्हें आदर देंगे जब तुम उनकी धारणाओं के अनुकूल होओगे। वे तुम्हें तभी आदर देंगे जब तुम मरी हुई प्रतिमा की तरह होओगे--भला संगमरमर की सही! जब तुममें अपने जीवन की कोई झलक भी न होगी। जब तुमसे कोई भी खतरा न होगा तुम्हारे व्यक्तित्व के प्रकट होने का। जब तुम एक आदर्श मात्र होओगे, आत्मा न होगी तुम्हारे भीतर। तुम एक लाश की भांति होओगे--सजी-संवरी, आभूषणों से लदी, लेकिन तुम्हारी श्वास न चलती होगी। क्योंकि जब भी तुम्हारी श्वास चलेगी तभी खतरा है। जहां श्वास है वहां स्वतंत्रता है। जहां स्वतंत्रता है वहां तुम समाज के बाहर और समाज के विपरीत भी जा सकते हो।
इसलिए समाज मरे-मराए आदर्शों में भरोसा करता है। वह तुमसे चाहता है
कि तुम आदर्श पूरे कर दो, तुम्हारा भी सम्मान है। ध्यान रखना, समाज को तुम्हारे सम्मान से मतलब नहीं, उसके अपने आदर से है। अगर तुम उनके अनुकूल बैठ जाओ, अगर तुम उनके तराजू पर तुल जाओ, अगर तुम उनकी कसौटी पर ठीक पड़ जाओ, तो तुम्हारा सम्मान है। समाज को तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है। समाज की अपनी धारणाएं हैं, जो उसकी आंतरिक सुरक्षा के लिए नियत की गई हैं। तुम्हें भी समाज से कुछ मतलब नहीं है। तुम्हें अपना सम्मान चाहिए। समाज के साथ व्यक्ति के सारे संबंध झूठे होते हैं। दोनों अपना-अपना लाभ देख रहे हैं। व्यवसाय का संबंध है।
नीति का अर्थ है, व्यक्ति की सारी आकांक्षा सम्मान की है। तुम अपने बच्चों को भी समझाते हो, तुम्हारे माता-पिता ने भी तुम्हें समझाया था--कि अगर सम्मान चाहते हो, ईमानदार बनना।
लेकिन सम्मान चाहने के लिए बनी गई ईमानदारी कितनी ईमानदारी हो सकती है! बात बीज से ही झूठ हो गई। अगर अपमान मिलता हो तब? तब ईमानदार होना या नहीं होना? तब जरा खतरा है।
सम्मान चाहते हो तो ईमानदार होना। लेकिन चाह सम्मान की है। सम्मान यानी अहंकार की पूजा और प्रतिष्ठा चाहते हो। अहंकार से ईमानदारी का क्या संबंध हो सकता है?
समाज ने सिखाया है कि अगर पूजा चाहते हो तो सच्चे होना। अगर पूजा चाहते हो तो आचरणवान होना।

लेकिन पूजा की चाह ही तो सबसे बड़ा दुराचरण है। तो तुम दुराचरण की सेवा में आचरण को संलग्न कर रहे हो। तुमने झुठला दिया व्यक्ति को प्रारंभ से ही।
तुमने अहंकार के आधार पर ही सारी व्यवस्था खड़ी की है। और जब भी व्यक्ति पाता है, अपमान मिल रहा है, तब अहंकार को चोट लगती है। तब वह फिर सम्मान को पाने की चेष्टा शुरू कर देता है। जितना ज्यादा सम्मान मिलता जाता है, उतना ही अहंकार पूजित होता चला जाता है। और अहंकार जितना भरता है, उतने स्वयं से संबंध टूट जाते हैं। अहंकार तुम्हारी तुमसे ही दूरी का नाम है। तुम कितने अपने घर से दूर निकल चुके हो, उस फासले का नाम ही अहंकार है। एक दूसरे तरह का व्यक्ति है, जो समादर नहीं चाहता, समाधान चाहता है।
जो चाहता है कि मेरे भीतर एक अपूर्व शांति हो। मेरे भीतर एक आनंद की वर्षा हो। जो चाहता है कि मैं जीवन की कृतकृत्यता को उपलब्ध हो जाऊं। कि मैं जान लूं जीवन क्या है। कि मेरा जीवन ऐसे ही न खो जाए। व्यर्थ के चांदी-सोने के ठीकरे इकट्ठे करने में मैं व्यतीत न हो जाऊं। मैं ऐसे ही समाप्त न हो जाऊं बिना कुछ जाने, बिना कुछ भीतर के रस को उपलब्ध हुए। भीतर की वीणा न बजे और कहीं जीवन का अवसर न चूक जाए। ऐसा व्यक्ति धार्मिक है।
नीति धर्म नहीं है; नीति धर्म का धोखा है। धोखा है और बड़ा कुशल धोखा है। क्योंकि जो व्यक्ति भीतरी समाधान चाहता है, वह भी सच्चा होता है; लेकिन उसकी सचाई का कारण सम्मान पाने की आकांक्षा नहीं होती, वह सम्मान पाने के लिए सच्चा नहीं होता। वह सच्चा होता है इसलिए सम्मान मिलता है, यह बात दूसरी। वह सच्चा ही रहेगा, चाहे अपमान मिले। वह सच्चा ही रहेगा, चाहे नरक में फेंक दिया जाए। क्योंकि उसने सच्चाई के स्वर्ग को अनुभव कर लिया। अब कोई और चीज उसकी सच्चाई को हटा नहीं सकती।
इस फर्क को फिर से मैं दोहरा दूं। भीतर का समाधान खोजने वाला आदमी भी नीति के गहनतम आदर्शों को पूरा करता है; लेकिन वे उसका लक्ष्य नहीं होते, वे छाया की तरह आते हैं। जैसे-जैसे भीतर की समाधि बढ़ती है और भीतर की अराजकता मिटती है और भीतर की समस्वरता पैदा होती है, भीतर का नाद जैसे- जैसे बजता है, वैसे-वैसे उस व्यक्ति के जीवन से अंधकार गिरने लगता है, उसका बाहर का व्यवहार भी बदलने लगता है। लेकिन बदलता है भीतर के कारण। बदलता है भीतर की क्रांति के कारण।
अंतस पहले बदलता है, आचरण पीछे आता है, तब तो फूल जड़ों से जुड़े हैं। अगर आचरण तुमने बदल लिया और अंतस बदला ही नहीं, तो फूल कागजी हैं। वे जड़ों से नहीं जुड़े हैं, झूठे हैं। झूठे फूलों को सम्मान भला मिल जाए, लेकिन झूठे फूलों से तुम्हारी संतुष्टि न होगी। आखिर में तुम पाओगे, व्यर्थ ही गंवा दिया सब।
नीति अनिवार्य रूप से धर्म नहीं है। धर्म अनिवार्य रूप से नीति है। धार्मिक व्यक्ति नैतिक है ही। उसे नैतिक होने के लिए कुछ भी करना नहीं होता। धार्मिक होने से उसकी नीति ऐसे ही निकलती है जैसे फूलों से गंध निकलती है, दीये से प्रकाश निकलता है, सुबह पक्षियों के कंठ से गीत निकलते हैं। कुछ उन्हें गाना नहीं पड़ता। किसी को उनकी खुशामद नहीं करनी पड़ती कि आप गाओ। किसी को फर्माइश नहीं करनी पड़ती कि आप गाओ। कोई सुनने वाला हो न हो, कंठ से गीत फूटता है। वह सुबह की सहज घटना है। सूरज के उगते ही भीतर भी कुछ उगता है। सारे जगत के जागते ही भीतर भी कुछ जागता है। फूल खिलने लगते हैं, पक्षी गीत गाने लगते हैं। कोई भी न हो सुनने वाला। सुनने वाले से कोई प्रयोजन ही नहीं है।
नीति ऐसा गीत है जो तुमने दूसरों के लिए गाया। भला तुम्हारे कंठ में उठता हो, न उठता हो। भला तुम्हारे हृदय से आया हो, न आया हो। भला तुम्हारे प्राण गाना चाहते थे कि नहीं गाना चाहते थे। तुम गौण हो। तुम हो ही नहीं। तुमने अपने को बाद दे दी है। दूसरों के लिए गाया, सम्मान के लिए गाया, तालियों के लिए गाया, पुरस्कारों के लिए गाया।
धर्म ऐसा गीत है जो तुमने अपने लिए गाया। किसी ने सुन लिया, बात और। और कोई आनंदित हुआ, धन्यभाग! कोई सुनने न आया, कुछ भेद नहीं पड़ता। क्योंकि मजा गाने में है, किसी के सुनने में नहीं। आनंद तो था गीत के फूटने में, अभिव्यक्ति में। वह किसी ने तालियां बजाईं या निर्जन एकांत ने उसे सुना,

कोई भेद नहीं पड़ता। तुम्हारा आनंद पूरा है। तुम्हारे आनंद से ही तुम्हारा गीत जन्मा है। गीत के कारण तुम्हें आनंद मिलने वाला नहीं है; आनंद से ही गीत बहा है।
तो एक तो दरबारी गवैया है, एक सुबह के पक्षी हैं। दरबारी गवैया गाता
है दरबार के लिए।
अकबर ने तानसेन से पूछा एक बार कि मैं सदा सोचता हूं--तुझसे श्रेष्ठ कोई गायक नहीं हो सकता।
तानसेन ने कहा, रुकें। मेरी खुद की ऐसा धारणा नहीं है।
अकबर ने कहा, तेरा मतलब?
तानसेन ने कहा, शायद आप समझ पाएं, न समझ पाएं, लेकिन मेरे गुरु अभी जीवित हैं। और मैंने उस व्यक्ति को देखा है। उसके सामने मैं पैरों की धूल भी नहीं हूं।
अकबर को बड़ी तीव्र आकांक्षा जगी। उसने कहा, तो फिर गुरु को निमंत्रण दो। जो भी शर्तें होंगी, पूरी कर देंगे। विशेष आयोजन किया जाए।
तानसेन ने कहा, इसीलिए मैंने कभी गुरु का नाम आपके सामने नहीं लिया। क्योंकि निमंत्रण पर वे नहीं गाते हैं। गाते हैं, तब कोई सुन ले, बात और।
फर्माइशी नहीं हैं, दरबारी नहीं हैं। वे आएंगे नहीं। उन्हें लाने का कोई उपाय नहीं है। हम वर्षों उनके चरणों में रहे, लेकिन हमारी आकांक्षा रही हो कि वे गाएं, कभी उन्होंने गाया नहीं। चोरी-चोरी हमें सुनना पड़ा है। इसीलिए मैंने कभी नाम नहीं लिया, क्योंकि आप समझ ही न पाएंगे।
अकबर को थोड़ी चोट भी लगी। कहा, कौन है यह आदमी? नाम तो बताओ! बुला लेंगे। तुम फिक्र छोड़ो।
क्योंकि अकबर जैसे लोग जानते ही नहीं कि धन के पार भी कोई चीज है, पद-आकांक्षा के पार भी कोई चीज है। अकबर जैसे व्यक्तियों को ऐसे व्यक्तियों से मिलना करीब-करीब असंभव है, जिन्हें लोभित न किया जा सके, जिन्हें प्रलोभन न दिया जा सके। अकबर की तो समझ यही होगी कि हरेक व्यक्ति खरीदा जा सकता है। थोड़ा कम-ज्यादा मूल्य होगा। कोई दस हजार मांगता है, कोई दस लाख मांगेगा, बस! फर्क मात्रा का होगा, गुण का नहीं हो सकता।
उसने कहा, तू फिक्र छोड़, तानसेन। मुझे तू नाम बता।
नाम पूछा तो तानसेन को बताना पड़ा। कहा, हरिदास। फकीर हैं।
तानसेन की बात सुन कर अकबर हंसने लगा। कहा, फकीर हैं! बुला लेंगे, पकड़वा लेंगे। धन जो भी खर्च होगा, करवा देंगे। पूरी राजधानी सजाई जाएगी।
तानसेन की आंख से आंसू बहने लगे। उसने कहा, आप समझे ही नहीं बात।
इसीलिए मैं चुप था और आपकी प्रशंसा भी सुन लेता था कि मुझसे बड़ा कोई गायक नहीं। मैं जानता हूं कि बड़ा अभी जीवित है। यह बात--मैंने अपने गुरु को देखा है--यह बात मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि मुझसे बड़ा कोई गायक नहीं है।
लेकिन अगर आपका मुझ पर थोड़ा भी प्रेम है, तो भूल कर भी मेरे गुरु को परेशान न करें। अगर सुनना ही है, सच्ची आकांक्षा उठी है, तो फिर मैं इंतजाम करूंगा। चोरी-चोरी चलना होगा। वे यमुना के किनारे रहते हैं आगरा में। अक्सर वे तीन बजे रात मस्ती में नाचते हैं, गाते हैं। तो मैं पता लगा लूं। तो हम छुप जाएंगे झोपड़ी के बाहर और सुन लेंगे।
शायद ही किसी सम्राट ने किसी को इस तरह सुना हो। अकबर गया। वह आदमी बहुमूल्य था अकबर भी। उसको भी बात तो समझ में आई कि यह भी हो तो सकता ही है कि ऐसा कोई व्यक्ति हो जो पक्षियों की तरह गाता हो। देख लेना चाहिए। वह अगर तैमूरलंग और नेपोलियन और सिकंदर जैसा अगर होता तो उसकी समझ में न आता। वह बुरे लोगों की दुनिया में भला आदमी था। वह गया। रात दो बजे दोनों छिप गए झोपड़े के बाहर।
तीन बजे एक अपूर्व संगीत का जन्म हुआ। अकबर के आंसू थमते नहीं हैं। वह रोता ही रहा। बात ही कुछ हृदय के गहरे तक पहुंच गई। जैसे तीर चुभ गया। जैसे पहली दफा संगीत जाना। जैसे अब तक जो सुना था वे केवल झूठी छायाएं थीं। जैसे पहली दफा असली संगीत जाना। अब तक जो जाना था वे कार्बन-कापियां थीं।
पहली दफा असली संगीत का अनुभव हुआ। अब तक जो जाना था वह दूर से सुनी गई ध्वनि थी। आज पहली दफा पास स्पर्श हुआ। सुनने वाला न रहा अकबर। खो गया।
ताली बजाने की भी हिम्मत न आ सकी। क्योंकि उससे भी बाधा पड़ेगी। और ताली

बेहूदी मालूम पड़ी। इतने बड़े संगीत के लिए ताली नहीं बजाई जा सकती। यह कोई राजनेता का व्याख्यान नहीं है कि ताली बजा दी। क्योंकि ताली बजाने वाला मूढ़ मालूम पड़ेगा। उससे पता चलेगा कि वह समझा ही नहीं; अन्यथा चुप होता, मौन होता।
चुपचाप, पैर की आवाज न हो जाए, वे भाग कर रथ में बैठ कर वापस लौट गए। रास्ते भर अकबर चुप रहा। तानसेन भी थोड़ा बेचैन हुआ कि वह कुछ बोला नहीं। एक शब्द नहीं कहा। कभी ऐसी घड़ी होती है कि शब्द बोलना नासमझी का सबूत होता है। कभी ऐसी घड़ी होती है, प्रशंसा छोटी मालूम पड़ती है। कभी यह कहना कि बहुत खूब, बहुत छोटी बुद्धि का सबूत होता है। कभी चुप रहना ही एकमात्र प्रशंसा होती है। जितनी बड़ी घटना हो उतनी ही शब्द में समाती नहीं।
पर आंसू बहते रहे। सीढ़ियों पर महल की, अंदर महल के जाते वक्त उसने इतना ही कहा, तानसेन! तुम सही हो। मैं सोचता था तुमसे बड़ा कोई गवैया नहीं। अब मैं सोचता हूं कि तुम अपने गुरु जैसा क्यों नहीं गा सकते? तुम तो मीलों फासले पर हो, बहुत दूर हो। जल्दी करो, अन्यथा जीवन ऐसे ही बीत जाएगा। इतना ही मैं तुमसे पूछना चाहता हूं कि इतना फर्क क्यों है? और मैं जानता हूं कि तुम कुशल हो। और मैं जानता हूं कि तुम सब भांति योग्य हो। फिर इतना फासला क्यों?
तानसेन ने कहा, फासला बहुत साफ है। मैं गाता हूं ताकि कुछ पा सकूं, वे गाते हैं क्योंकि उन्होंने कुछ पा लिया है। मेरे गाने में आकांक्षा है पाने की--पुरस्कार, धन, संपदा, यश, प्रतिष्ठा, सफलता। अन्यथा क्यों आपके दरबार में होता? मैं दरबारी हूं। वे पक्षी हैं खुले आकाश के। मैं पिंजड़े में बंद तोता हूं। उनका गीत खुले आकाश का गीत है। मेरे गीत में मेरे पिंजड़े की छाया पड़ेगी ही। मैं बंधन में हूं। अभी वासना नहीं मिटी। इसलिए जो गाता हूं वह कंठ से ही आता है, हृदय से नहीं आता। उन्होंने किसी के लिए गाया नहीं है, गाने के लिए गाया है। मस्ती में गाया है। किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। भीतर से आया है। उनकी गीत की घटना सामाजिक नहीं है, नितांत वैयक्तिक है। उनके एकांत का आविर्भाव है। मेरी घटना सामाजिक है। मैं तैयार करता हूं, फिक्र करता हूं। जब मैं गा रहा हूं तब भी चिंता मन में यही बनी रहती है कि प्रशंसा मिलेगी, नहीं मिलेगी? प्रतिस्पर्धा है, ईर्ष्या है, जलन है, लोभ है, वासना है। इन सबके बीच कैसे उस महासंगीत का जन्म हो सकता है? वैसा संगीत तो केवल संतों के जीवन में ही होता है। आप ठीक कहते हैं। मीलों नहीं, कोसों की दूरी है। मुझसे ज्यादा भलीभांति कोई भी नहीं जानता कि दूरी कितनी बड़ी है। जब तक भीतर की वासना न गिर जाए वह दूरी मिट न सकेगी। दूरी मिटाने से न मिटेगी। दूरी तो मैं ही बदलूंगा तो ही मिटेगी। मैं ही मरूंगा तो ही मिटेगी। नये का आविर्भाव होगा तो मिटेगी। धर्म भीतर से पैदा हुआ संगीत है। स्वभावतः नीति उसके साथ बहती चली आती है। लेकिन नीति के साथ धर्म बहता हुआ नहीं चला आता।
ऐसा समझो कि तुम सुंदर हो तो तुम्हारा आचरण सुंदर स्वभावतः हो जाता है। तुम ज्योतिर्मय हो तो तुम्हारे कृत्यों में भी ज्योति झलकती है, दीये जलते हैं।
तुम ऊपर से सुंदर बनने की कोशिश कर रहे हो। तुमने खूब आभूषण पहन लिए हैं, खूब सुंदर वस्त्र पहन लिए हैं, खूब सजा-संवार लिया है। ज्यादा से ज्यादा तुम असौंदर्य को थोड़ा सा ढांक लोगे, सुंदर नहीं हो जाओगे। ढंकी कुरूपता सुंदर नहीं हो जाती। ढंकी कुरूपता और भी कुरूप हो जाती है। उघड़ा रूप शायद कभी सुंदर भी हो जाए। अगर तुम उघाड़ ही दो अपने को--कुरूप हो तो कुरूप सही; जैसे हो वैसे हो; परमात्मा ने ऐसा तुम्हें बनाया; जैसा रखता है वैसे रहोगे--तो शायद तुम्हारी इस सहजता से तुम्हारी कुरूपता भी बह जाए। सहज तुम्हारे स्वीकार से शायद सौंदर्य का आविर्भाव हो जाए।
लेकिन तुम ढांकते हो, छिपाते हो। उस छिपाने से घाव मिटते नहीं, बढ़ते हैं। घाव धीरे-धीरे नासूर हो जाते हैं, नासूर धीरे-धीरे कैंसर बन जाते हैं। पूरे प्राणों में महामारी फैल जाती है।
नीति चेष्टा है समादर की। नीति का विकृततम रूप राजनीति है। वह अत्यंत रुग्ण दशा है नीति की। तब व्यक्ति अपने को छोड़ ही दिया। अब कोई के लिए हंसता है, किसी के लिए रोता है। सारा व्यवहार बाहर हो गया।

एक यहूदी फकीर हुआ, रबी लिएव। वह बीस वर्षों तक अपने गुरु के पास रहा। लोगों ने उससे पूछा कि इतना लंबा समय तू गुरु के पास क्या देखता रहा?
तो लिएव ने कहा, मंदिर में उनका आचरण अदभुत था, लेकिन उसे मैं देखने न गया था। भीड़ में उनके सौंदर्य की क्या चर्चा करें! लेकिन उस पर मेरी आंख न थी। वे बोलते थे तो फूल झरते थे, लेकिन उसकी मुझे तलाश न थी। शास्त्रों की उनकी व्याख्याएं अनूठी हैं, अपूर्व हैं। पृथ्वी पर कभी-कभी ऐसे व्याख्याकार पैदा हुए। लेकिन नहीं, उनको भी मैं सुनने न गया था। मैं तो देखने गया था कि मेरा गुरु अपने एकांत में कैसा व्यवहार करता है। कैसे वह जब कोई भी देखने वाला नहीं होता तो अपने जूते के बंद खोलता है। और कैसे जब कोई भी देखने वाला नहीं होता तो अपने जूते के बंद बांधता है। मैं वह देखने गया था। निश्चित ही बीस वर्ष लग गए, लेकिन समय खोया नहीं। बहुत कुछ पाकर लौटा हूं। मैं गुरु को उसके एकांत में देखने गया था--शुद्धतम! जहां दूसरे की छाया भी नहीं पड़ती। जहां दूसरे के आधार पर आचरण करने का कोई प्रश्न भी नहीं उठता। मैं गुरु को उसकी नींद में सोता हुआ देखने गया था कि उसकी नींद में वह बड़बड़ाता तो नहीं। सपने तो नहीं सताते उसे। चौंक कर डर तो नहीं जाता कभी। मैं उसे ही देखने गया था। उसकी छायाएं-प्रतिबिंबों को नहीं, जो लोगों की आंख में बनते हैं। वे सुंदर थे रूप। कोई उनका मुकाबला नहीं। लेकिन वह मेरी खोज न थी, इसलिए मुझे देर लगी। अगर मंदिर में उसके रूप को देखना था, एक दिन में बात हो जाती। बाजार में उसके रूप को देखना था, दो दिन में बात हो जाती। उसके वचन सुनने थे, तीसरे दिन पूरा हो जाता। लेकिन मैं उसके शून्य को सुनने गया था, उसके अंतर्नाद को। जहां वह अकेला है; बिल्कुल अकेला है। जहां किसी की भी कोई छाया नहीं पड़ती। जहां परमात्मा भी नहीं है।
क्योंकि मंदिर में जब तुम परमात्मा के सामने खड़े हो, तब परमात्मा और तुम्हारी मौजूदगी, दो की मौजूदगी है। तुम ऐसा व्यवहार करोगे जो प्रार्थना के योग्य है। लेकिन जहां तुम बिल्कुल अकेले हो अपने स्नानगृह में, जहां तुम दर्पण के सामने खुद ही खड़े हो, कोई भी देखने वाला नहीं, वहां तुम्हारा सच्चा रूप प्रकट होता है।
नीति नहीं है लक्ष्य; धर्म है लक्ष्य। धर्म का अर्थ हैः व्यक्ति का अपने एकांत में अपने से ही व्यवहार। इस व्याख्या को याद रखो। एकांत के साथ तुम जो व्यवहार करते हो वहीं तुम्हारे धर्म का पता चलता है कि तुम धार्मिक हो या नहीं।
निश्चित ही उसके पीछे नीति के सभी रथ अपने आप चले आते हैं; उन्हें लाना नहीं पड़ता। वे दौड़े चले आते हैं, वे अपने से ही भागे चले आते हैं। पर वे न भी आएं तो भी धार्मिक व्यक्ति को उनके कारण कोई चिंता नहीं होती। और अगर धर्म की गहनता बढ़ती जाए, तो जैसे नीति का विकृततम रूप राजनीति है, वैसे धर्म का प्रगाढ़तम, विकसिततम रूप निर्वाण है, मोक्ष है, मुक्ति है।
ये दो अलग यात्राएं हैं।
नीति को भूल कर धर्म मत समझना; अन्यथा तुम खोटे सिक्के पर राजी हो गए।
उस सिक्के से इस संसार में बहुत कुछ मिलेगा, लेकिन उस सिक्के से नदी के उस पार न जा सकोगे। वह इसी पार चलता है। नदी में पार जाना तो दूर, नाव में भी न बैठ सकोगे। क्योंकि वह मांझी कहेगा, यह सिक्का उस तरफ चलता ही नहीं। यह इसी किनारे चलता है। तुम इसे यहीं चलाओ।
ये जो वचन आज हम दादू के समझने जा रहे हैं, वे इसी रहस्य के संबंध में हैं।
ऊपरि आलम सब करै, साधु जन घट मांहि।
ऊपर से दिखावा सभी लोग करते हैं। ऊपर-ऊपर सभी लोग सजाते हैं। ऊपर-ऊपर सभी लोग सुंदर बनने की चेष्टा में संलग्न होते हैं।
ऊपरि आलम सब करै...
सारा संसार यही कर रहा है--ऊपर-ऊपर। क्योंकि दूसरों को तो तुम्हारी परिधि ही दिखाई पड़ती है। तुम्हारा केंद्र तो सिवाय तुम्हारे कौन देख सकेगा? वहां तो तुम्हारा ही एकांत प्रवेश है। किसी और को भी वहां प्रवेश का उपाय नहीं है। तुम्हारे आत्यंतिक हृदय के केंद्र पर तो तुम्हीं जा सकोगे। लेकिन तुम्हारी देह तो सभी को दिखाई पड़ेगी।

तुमने ध्यान किया या नहीं, यह किसी को दिखाई नहीं पड़ेगा। तुमने स्नान किया या नहीं, यह तो सभी को दिखाई पड़ जाएगा। तुमने भीतर के सौंदर्य को निखारा या नहीं, इसको देखने वाली आंखें तुम कहां खोज सकोगे! लेकिन तुमने स्नान किया है, सुगंधित होकर घर से निकले हो, ताजे कपड़े पहने हैं, यह तो अंधे को भी समझ में आ जाएगा। धीरे-धीरे तुम यह भूल ही जाते हो कि एक तुम्हारा ऐसा रूप भी है जिसे तुम ही जानोगे। और एक तुम्हारा रूप है जो बाहर से दिखाई पड़ता है। अगर तुम बाहर के ही रूप को संवारने में लगे रहे, तो तुमने दूसरों की आंखों को भला तृप्ति दी हो, तुम अपनी जीवन की खोज से वंचित हो जाओगे। तुम दूसरों को ही समझाते रहे कि मैं सुंदर हूं। और तुम सुंदर न हो पाओगे। क्योंकि यह सवाल किसी को समझाने का नहीं है। तुम सुंदर हो तो तुम सुंदर हो, किसी को समझाने की बात नहीं है। कोई समझ ले, उसका सौभाग्य; न समझे, उसका दुर्भाग्य। समझ ले तो वह भी यात्रा पर निकल जाएगा। न समझे तो जहां पड़ा है वहीं पड़ा रहेगा और सड़ जाएगा। लेकिन तुम्हें दूसरे को समझाने की आकांक्षा नहीं है।
लेकिन साधारणतः हमारी अपने संबंध में कोई दृष्टि ही नहीं होती। हम अपने संबंध में भी दूसरों की दृष्टि को ही जुटाते हैं। अगर लोग तुम्हें अच्छा कहते हैं तो तुम अपने को अच्छा मानते हो। अगर लोग बुरा कहते हैं तो तुम अपने को बुरा मानते हो। जैसे कि तुम्हारी अपने से सीधी कोई पहचान ही नहीं है। जो लोग कहते हैं वही तुम अपने को मानते हो।
यही तो तकलीफ है। इसीलिए तो तुम इतने भयभीत हो लोगों से कि कहीं लोगों
का मन न बदल जाए। कहीं ऐसा न हो कि वे तुम्हें चुनाव में मत न दें। कहीं ऐसा न हो कि वे तुम्हारे संबंध में कुछ और सोचने लगें। तुम पूरे वक्त शंकित, चिंतित, व्यथित, उनकी आंख में तुम्हारी प्रतिमा सुंदर बनी रहे इसके लिए बेचैन हो।
और दूसरों की आंखों में बनी तुम्हारी प्रतिमाएं पानी पर बने प्रतिबिंब से ज्यादा मूल्यवान नहीं हैं। आंख भी बस पानी है। उस पर बने प्रतिबिंब हैं। जरा में डगमगा जाते हैं। कुछ भरोसा है? आज किसी का मन ठीक था, उसने तुम्हें कहा, सुंदर हो। कल उसका मन ठीक नहीं है और उसने कहा कि तुमसे ज्यादा कुरूप कोई व्यक्ति नहीं। हट जाओ! तुम्हें देख कर भी मुझे घृणा पैदा होती है।
तुम जानते हो, रोज यह घटता है। किसी दिन तुम किसी को कहते हो, मैं प्रेम करता हूं। तेरे बिना न जी सकूंगा। और एक दिन ऐसा आता है, तुम कहते हो कि मेरी इतनी घृणा है तुझसे कि तेरे साथ न जी सकूंगा। अब अलग ही जीने का उपाय है।
लोगों के मन तो धुएं की तरह बदलते रहते हैं। आकाश में बादलों के बने हुए आकार जैसे हैं लोगों के मन। तुम पूरी तरह देख भी नहीं पाए कि बदलाहट शुरू हो गई। नदी की धाराओं की तरह हैं लोगों के मन। बह रहे हैं; कुछ भी थिर नहीं है। उसमें तुम अपना प्रतिबिंब झांक रहे हो। एक मछली उछल जाती है, प्रतिबिंब डांवाडोल हो जाता है। दूसरे के मन में एक विचार उछल जाता है, प्रतिबिंब डांवाडोल हो जाता है।
झील शांत हो, चांद दिखाई पड़ता है। जरा सी लहर आ जाए हवा की, टुकड़े- टुकड़े हो जाते हैं चांद के। अगर चांद भी झील पर ही भरोसा करता हो, तो रोता- रोता मरेगा कि यह मेरी क्या गति हो गई! हजार टुकड़े हो गया! अभी तो सब ठीक था। यह झील ने मन क्यों बदल लिया?
कोई झील चांद के लिए मन को नहीं बदल रही है। झील की अपनी मुसीबतें हैं। झील को चांद से क्या लेना-देना है? शायद झील को पता भी न हो कि चांद का प्रतिबिंब बन रहा है।
तुम जिन आंखों के लिए बड़ा भरोसा किए हो, उन आंखों को शायद तुम्हारी कोई खबर भी न हो; शायद चिंता भी न हो। लेकिन तुम्हारी चिंता यही है कि सभी आंखों में मेरा प्रतिबिंब अच्छा बना रहे। एक प्रतिमा हो आदर्श की। लोग सम्मान दें, आदर दें।
जीवन बहुत छोटा है। लोगों के मन बड़े प्रवाहमान हैं। इस भांति तो तुम
खो जाओगे। झील में देखते-देखते तुम्हारा चांद ही नष्ट हो जाएगा। अपने को देखो। झील से क्या प्रयोजन है? भीतर की अखंडता को खोजो। फिर झीलें कुछ भी

कहें। कम से कम तुम्हें तो व्यथित नहीं होना चाहिए। तुम तो जानते हो, मैं अखंड हूं। झील के कहने से क्या फर्क पड़ता है?
लेकिन जरा सी झील के मन में शंका आती है और तुम शंकित हो जाते हो। बात जाहिर है। तुम स्वयं से अपरिचित हो। आत्म-अज्ञानी व्यक्ति दूसरों की आंख में अपनी पहचान खोजता है कि मैं कौन हूं? वह अपना तादात्म्य खोज रहा है कि मैं अपने को क्या समझूं?
अमरीका की बहुत प्रसिद्ध अभिनेत्री हुई, ग्रेटा गार्बो। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मुझे पता ही न था कि मैं सुंदर हूं। वह एक छोटे से गांव में एक नाईबाड़े पर लोगों की दाढ़ी पर साबुन लगाने का काम करती थी। दो पैसा प्रति दाढ़ी उसे मिल जाता था। दिन भर वह अपना साबुन लगाती रहती थी। न कभी किसी ने उस पर ध्यान दिया था, न कभी उसने सोचा था कि मैं सुंदर हूं। गरीब लड़की थी। एक अमरीकी फिल्म डायरेक्टर गांव में आया हुआ था। कुछ शूटिंग के लिए जगह देखने आया होगा। वह भी अपनी दाढ़ी बनवाने गया। और जब ग्रेटा गार्बो ने उसकी दाढ़ी पर साबुन लगाया तो उसने ऐसे ही सहज कहा, जैसी कि अमरीकियों की आदत होती है--उसको कोई बहुत ज्यादा मूल्य मत देना कि अमरीकी क्या कहते हैं। वह औपचारिक था। उसने ऐसे ही दर्पण में देख कर कहा, हाऊ ब्यूटीफुल! कितनी सुंदर!
यह सिर्फ उपचार था। लेकिन ग्रेटा गार्बो का जीवन बदल गया। उसे पहली दफा अपने सौंदर्य का बोध आया।
झील में देख कर चांद को पता चला। मगर यह बड़ा खतरनाक सौदा है। क्योंकि
और भी झीलें हैं। किसी और झील में देख कर शक हो जाएगा कि सुंदर नहीं हूं। तुम कभी विचार करना कि तुम अपने संबंध में जो भी जानते हो वह सब दूसरों की आंखों में देखे गए प्रतिबिंबों की कतरन को जोड़ कर बनाया गया प्रतिरूप है, या तुम अपने संबंध में सीधा कुछ जानते हो? कौन क्या कहता है तुम्हारे संबंध में, उस पर तुम निर्भर हो। छोटे-छोटे बच्चों पर निर्भर होते हो। छोटा बच्चा है, मां उस पर निर्भर होती है कि वह कहे कि तुझसे अच्छी मां कोई भी नहीं। छोटा सा बच्चा! उससे भी राजनीति का खेल शुरू हो जाता है। और बच्चा अगर कह दे, तू कुछ भी नहीं है--किसी नाराजगी के क्षण में--तू हमारी मां भी नहीं है! तो मां का भी दिल टूट जाता है। आंसू आ जाते हैं कि अपना ही बेटा ऐसा कह रहा है। तो उस पर भी निर्भर हैं।
आदमियों को तो छोड़ दें, कुत्ता पाल रखा है। वह आप आते हैं दफ्तर से तो पूंछ हिलाता है, चित्त प्रसन्न होता है। कुत्ते की पूंछ में प्रतिबिंब देखते हैं अपना! कोई कुत्ता, आप पूंछ हिलाते रहो, फिक्र नहीं करता। मगर आप फिक्र करते हो। कुत्ते समझ गए राजनीति। समझ गए आदमी की मूढ़ता कि यह गरीब आदमी है, इसका कोई हिसाब नहीं। जरा पूंछ हिला दो, यह राजी हो जाता है। यह बड़ा प्रसन्न हो जाता है। इसे लगता है जैसे सम्राट हो गए।
कुत्ते पालने का यही तो सुख है। कुत्ता भरोसे-योग्य है। कभी भी आओ, डांटो-डपटो, नाराज होओ, भगा दो उसे, फिर वापस खड़ा है, फिर पूंछ हिला रहा है। वह तुम्हें फुसला ही लेगा। वह तुम्हें बता ही देगा कि तुम सिकंदर हो। तुम बड़े महान हो। कुत्ते राजनीति समझ गए; आदमी की मूढ़ता समझ गए।
जितना ही आत्म-अज्ञान होगा, उतना ही हम आत्मज्ञान की खोज करते हैं दूसरों के विचारों में--कौन मेरे संबंध में क्या कह रहा है। अगर लोग अच्छा कह रहे हैं, तो मैं अच्छा हूं इसीलिए अच्छा कह रहे हैं। अगर लोग बुरा कह रहे हैं, तब? तब स्वभावतः भीतर शक होता है, मैं बुरा होऊंगा। तो किस तरह लोगों को राजी करूं कि वे सदा मुझे अच्छा कहते रहें!
ऊपरि आलम सब करै, साधु जन घट मांहि।
सिर्फ साधु भीतर की यात्रा पर निकलता है। वह भीतर के घट मांहि--वहां खोजता है कि मैं कौन हूं। वह वहां मनन, चिंतन और ध्यान करता है कि मेरी प्रतिमा क्या है? मैं हूं कौन? वह अपने से पूछता है, किसी और से नहीं कि मैं कौन हूं। वह तुम्हारे घर के सामने भीख मांगता हुआ खड़ा नहीं होता कि थोड़ा मुझे आत्मज्ञान की भीख दे दो! कि थोड़ा मुझे बता दो कि मैं कौन हूं! जरा कह दो!
कितने लोग मिमियाते हैं एक-दूसरे के सामने कि जरा कह दो कि तुमसे ज्यादा ईमानदार और कोई भी नहीं। हृदय के कमल खिल जाएंगे। कि जरा कह दो कि

तुम्हारी जैसी कोकिल कंठ आवाज कहीं नहीं सुनी। प्राण-प्राण पुलकित हो जाएंगे। कि जरा कह दो कि तुम्हारी आंखों में झीलों की शांति है; कि तुम्हारी आंखों में हिमालय का सौंदर्य है। और श्वास-श्वास सुगंधित हो जाएगी।
हर आदमी एक-दूसरे के सामने भीख मांगता खड़ा है कि कह दो। और बदले में वह कहने को तैयार है कि नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं। आपके सामने क्या हूं? पैर की धूल हूं! एक लेन-देन है। एक पारस्परिक समझौता है। हम एक-दूसरे को सहारा दे रहे हैं। हम एक-दूसरे की पीठ थपथपा रहे हैं। जिसकी तुम पीठ थपथपा रहे हो, वह तुम्हारी थपथपा रहा है। वह भी तभी तक थपथपाएगा जब तक तुम थपथपा रहे हो। ऐसे हम एक-दूसरे को धोखा देने में साझीदार हैं।
इस धोखे का नाम माया है, प्रपंच है। इस धोखे का नाम संसार है।
संसार का अर्थ तुम यह मत समझना कि वृक्ष, आकाश के तारे, समुद्र, पहाड़। इनसे संसार का कोई लेना-देना नहीं। ये तो परमात्मा के हिस्से हैं। संसार तो उस धोखे का नाम है जो आदमी-आदमी ने अपने बीच निर्मित किया है। उसका परमात्मा से कोई संबंध नहीं है। परमात्मा ने सृष्टि तो बनाई है, संसार नहीं बनाया।
इस भेद को तुम्हें शायद थोड़ी कठिनाई हो, क्योंकि तुम सदा दोनों को एक
ही मानते रहे हो। संसार आदमी ने बनाया है। उसका स्रष्टा आदमी है। सृष्टि परमात्मा की है, लेकिन संसार आदमी का है। संसार उस प्रपंच का नाम है जो आदमी अपने बीच में खेल रहे हैं। उस खेल का नाम है जो आदमी-आदमी आपस में खेल रहे हैं।
तुम जरा गौर करना अपने ही संबंध में, तो तुम पाओगे कि चौबीस घंटे जाने- अनजाने तुम यही कर रहे हो। एक खेल खेल रहे हो। रास्ते पर कोई आदमी है, तुम झुक कर नमस्कार करते हो। नमस्कार के लिए नहीं, तुम देखते हो कि वह नमस्कार करता है कि नहीं। अगर न करे नमस्कार, बड़ी पीड़ा हो जाती है।
सूफी फकीर हसन एक गांव से गुजर रहा था अपने शिष्यों के साथ। एक आदमी रास्ते में मिला, उसने झुक कर नमस्कार किया, जैसी कि हसन की आदत थी। जाने- माने को, अनजाने को, अपरिचित को, सभी को झुक कर नमस्कार करता था। क्योंकि सभी के भीतर वह तो छिपा ही है जो नमस्कार के योग्य है। ऊपर की पहचान का क्या फर्क पड़ता है? वे तो लेबल हैं। भीतर तो वही एक है। उसने झुक कर नमस्कार किया। लेकिन वह आदमी अकड़ा हुआ था। वह कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं था, गांव का जमींदार था, धनपति था। ऐसे हर किसी को नमस्कार करने लगे! वह अपना चला गया बिना देखे। उसने ध्यान भी न दिया।
हसन के शिष्यों को चोट लगी। एक शिष्य ने कहा कि यह तो जरा ज्यादती की बात हो गई। इस आदमी को रास्ते पर लगाना चाहिए। इसने अपने को समझा क्या है! हसन ने कहा, उसे देख कर तो मुझे दया आई; तुझे भी देख कर दया आती है। वह आदमी तो रुग्ण है।
हसन ने कहा, पागलो! अगर कोई आदमी लंगड़ा कर चलता है तो तुम्हें दया आती है, क्योंकि उसका पैर टूटा हुआ है। इस आदमी की पूरी आत्मा टूटी हुई है और तुमको दया नहीं आती, क्रोध आता है? यह बिल्कुल लंगड़ा है भीतर से। यह कितना दुख नहीं पा रहा होगा! अब और तुम्हें दुख देने की जरूरत है इसको? यह ऐसे ही बहुत दुख पा रहा होगा। जो नमस्कार तक करने में असमर्थ हो गया है, उसकी पीड़ा का कोई अंत है! यह तभी हो सकता है जब कोई भीतर के परमात्मा को बिल्कुल भूल गया हो। क्योंकि जब भीतर का परमात्मा याद आता है तो दूसरे का परमात्मा तत्क्षण दिखाई पड़ता है। उस पर नाराज होने की जरूरत नहीं है, पागलो, उसके लिए प्रार्थना करना आज। और तुझ पर भी मुझे दया आती है। नमस्कार इसलिए थोड़े ही की जाती है कि कोई लौटाए! और जहां लौटाने का भाव हो वहां तो नमस्कार भी सौदा हो गया। नमस्कार तो हमने की, यह हमारा निवेदन है कि खूब सुंदर हो। कि परमात्मा किस ढंग में जा रहा है। हमने तो परमात्मा को नमस्कार की। परमात्मा किसी ढंग में हो, हम उसे पहचान ही लेंगे। रुग्ण हो, स्वस्थ हो, जागा हो, सोया हो, हम पहचान ही लेंगे। हमने तो अपनी पहचान जतलाने के लिए नमस्कार की कि पहचान गए। उसने नहीं लौटाई, यह उसकी बात है, यह उसकी पीड़ा है। तुम क्यों नाराज हो? निश्चित ही तेरे मन में आकांक्षा होगीः नमस्कार की जाए तो लौटाई जाए।

नमस्कार जैसा पवित्र कृत्य भी बाजार में बिक गया है। वह भी पारस्परिक व्यवसाय का हिस्सा हो गया है। हम उन्हीं को नमस्कार करते हैं जिनसे हम आश्वस्त हैं कि वे लौटाएंगे उत्तर। नहीं तो हम भी बच कर निकल जाते हैं। क्योंकि यह बात बड़ी बेचैनी की मालूम पड़ती है कि हम झुके और तुम न झुके! ऊपरि आलम सब करै, साधु जन घट मांहि।
साधु भीतर की साधता है। वह अपनी खोज पर निकलता है, लेकिन दूसरों के माध्यम से नहीं। वह सीधा ही खोज पर जाता है। यह भी क्या पागलपन है कि मैं अपना कान पूरा सिर घुमा कर पकडूं! नाहक हाथ को कष्ट देना है। जो कान सीधा ही पकड़ा जा सकता है उसके लिए पूरे सिर का चक्कर हाथ को लगवाने की क्या जरूरत है? मैं अपने को जानूं तुम्हारे द्वारा, यह बात ही फिजूल है। मैं सीधा ही अपने को जान सकता हूं। मैं अपने भीतर विराजमान ही हूं। आंख बंद करनी है और अपने को देखना है। आंख बंद करनी है और अपने से पूछना है कि मैं कौन हूं। तुमसे क्यों पूछूं? और बड़ा मजा यह है कि तुम्हें खुद अपना पता नहीं, तुम्हें मेरा क्या पता होगा! तुम मुझे कैसे पहचानोगे? तुम अभी अपने को ही नहीं पहचान पाए। यह तो ऐसा हुआ, दो भिखमंगे एक-दूसरे के सामने हाथ फैलाए खड़े हों भीख की आशा में। और दोनों भिखमंगे हैं। दोनों मांग सकते हैं, दे नहीं सकते हैं।
दो अज्ञानी जब एक-दूसरे को ज्ञान का भरोसा दिलाने लगते हैं तो संसार पैदा होता है। न मुझे पता है मैं कौन हूं, न तुम्हें पता है तुम कौन हो। मैं तुम्हें समझाता हूं कि तुम कौन हो, तुम मुझे समझाते हो कि मैं कौन हूं। मैंने सुना है, एक शिकारी तीन दिन तक जंगल में भटका रहा। थक मरा, लहूलुहान हो गया सब शरीर, कांटे ही कांटे छिद गए। भूखा-प्यासा; रास्ता न मिले; बौखला गया। करीब-करीब विक्षिप्त हालत में हो गया। चौथे दिन सुबह सूरज के उगते ही उसने देखा कि अरे... ! एक आदमी दिखाई पड़ा उसे एक वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ। वह भागा खुशी से कि अंत हुआ इस झंझट का। जाकर उस आदमी को गले लगा लिया।
लेकिन वह आदमी वैसा ही खड़ा रहा, जैसे ठूंठ हो। यह जरा बेचैन हुआ। उस आदमी ने कहा, ज्यादा खुश मत होओ, मैं सात दिन से भटका हुआ हूं। तुम प्रसन्न हो रहे हो कि रास्ता मिल गया? इसलिए नाच रहे हो, कूद रहे हो? हम खुद ही भटके हैं। ज्यादा से ज्यादा इतना ही होगा, हम दोनों साथ-साथ भटकेंगे अब। और कोई ज्यादा लाभ नहीं हो सकता।
लेकिन तुमने कभी ख्याल किया, अकेले भटकने से साथ-साथ भटकना अच्छा लगता है। कम से कम कोई साथ तो है। कोई सहारा तो है। किसी से बात तो कर लेंगे। अपनी पीड़ा तो रो लेंगे, दुख तो रो लेंगे। इसीलिए तो लोग दुख रोते हैं। मिला नहीं कोई कि उन्होंने दुख रोना शुरू नहीं किया। वह दूसरा भी सुनता है कि तुम रुकोगे तो हम शुरू करेंगे।
दुख ही दुख है। अज्ञान ही अज्ञान है। लेकिन भीड़-भाड़ हो जाती है तो भरोसा आ जाता है। इसीलिए तो आदमी के मन में भीड़ के साथ संबंधित होने की बड़ी आकांक्षा होती है।
तुम थोड़ा सोचो, तुम हिंदू हो तो तुम बीस-तीस करोड़ लोगों की भीड़ के हिस्से हो। अकेले होते तो बहुत डर लगता। अकेले होते तो कांटा चुभता। लेकिन तुम हिंदू हो। तीस करोड़ लोग थोड़े ही भूल में हो सकते हैं! तुम अकेले शायद भूल में होते। बाकी तीस करोड़ भी यही सोच रहे हैं।

तुम मुसलमान हो; अस्सी करोड़ आदमी थोड़े ही भूल में हो सकते हैं सारी दुनिया में। या तुम ईसाई हो; पूरे एक अरब आदमी ईसाई हैं। हां, तुम अकेले भूल में हो सकते हो, लेकिन एक अरब आदमी! और बाकी एक अरब भी यही सोच रहे हैं कि मैं भूल में भला होऊं, लेकिन शेष एक अरब आदमी थोड़े ही भूल में हो सकते हैं। कोई ऐसी नासमझी थोड़े ही दुनिया में होती है।
इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के मन में भीड़ से संबंधित होने की बड़ी गहरी आकांक्षा है। वह अपने अज्ञान को छिपाने के लिए रास्ता है। इसलिए लोग हजार उपाय खोजते हैंः हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं। उनसे तृप्ति नहीं होती तो रोटेरियन हो गए, लायंस क्लब के सदस्य हो गए। और भी कई तरह की मूढ़ताएं हैं। कुछ न कुछ हो गए। मगर उसमें सम्मिलित हो जाने से बड़ा अच्छा लगता है।

मेरे एक परिचित ने बंबई में अभी एक नया क्लब खड़ा कर लियाः जायंट्स इंटरनेशनल। छोटे-छोटे आदमी! वे खुद भी छोटे आदमी हैं। जायंट्स इंटरनेशनल! अब उसमें लोग सम्मिलित हो रहे हैं। क्योंकि जब जायंट्स के साथ सम्मिलित हो गए तो तुम भी जायंट हो गए। और कोई छोटी-मोटी संस्था नहीं है, अंतर्राष्ट्रीय! अब उसकी शाखाएं खुल रही हैं। पूना में भी खुल गई है।
सभी जगह छोटे कद के आदमी मिल जाएंगे जिनको जायंट होने की इच्छा है। अकेले तो नहीं कह सकते कि हम जायंट हैं, लेकिन इंटरनेशनल, अंतर्राष्ट्रीय संघ के साथ हैं, जरूर हैं। अकेले नहीं हो सकते तो एक-दूसरे के कंधे पर खड़े हो जाएंगे। लंबी कतार बनाएंगे। स्वर्ग तक पहुंच जाएंगे। अकेले का हाथ न पहुंचता होगा, सब के हाथों के साथ तो पहुंच जाएगा।
ये आदमी की रुग्ण चित्त की दशाएं हैं। कहीं भी समूह खोजता है-- बिलांगिंग। ऐसा कुछ हो जिससे पता चले कि मैं किसी के साथ हूं, अकेला नहीं हूं। नारे खोजता है। सड़कों पर भीड़ें निकलती हैं, प्रोसेशन निकलते हैं, जुलूस निकलते हैं सारी दुनिया में। कौन उनमें सम्मिलित होता है? किसलिए उनमें सम्मिलित होता है? कोई बहुत गहरा सुख होगा।
वह सुख यही हैः भीड़ के साथ तुम अकेले नहीं रह जाते। और जब भीड़ जोर से नारा लगाती है, तो जोर की आवाज तुम्हारे भी भय और शंकाओं को गिरा देती है। और तुम्हें भी लगता है कि ठीक ही होंगे ये लोग। जब इतने जोर से कह रहे हैं तो गलत बात कोई कहीं इतने जोर से कहता है! तुम भी जोर से आवाज देते हो। अकेले तो तुम कभी जोर से आवाज न दे सके थे, डरते थे कि गलती न हो जाए। अब दस हजार आदमी साथ हैं।
तुमने कभी ख्याल किया कि दस हजार लोग नारा लगाते जाते हों, तुम्हारे पैर में भी थिरकन होने लगती है, हृदय में जोश आ जाता है--
सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजू-ए-कातिल में है।।
बड़ा जोश भरता है। सारे दुनिया की राजनीति और सारे दुनिया की मूढ़ताएं तुम्हारी भीड़ की तलाश के कारण चलती हैं। अन्यथा कौन पागल होगा!
मैंने--एक नगर में मैं बहुत वर्ष तक रहा, तो मैंने बहुत गौर से अध्ययन किया तो मैं बड़ा हैरान हुआ, करीब-करीब वे ही लोग हरेक के जुलूस में जाते हैं। पहले तो मैं सोचता था कि अलग-अलग लोग जाते होंगे। मेरे खुद एक परिचित, वे सभी राजनैतिक पार्टियों के सदस्य हैं। मैंने उनसे पूछा, तुम यह क्या करते हो?
उन्होंने कहा, अपने को इससे क्या मतलब! मजा आता है।
जनसंघ में भी जाते हैं, कांग्रेस में भी जाते हैं, कम्युनिस्टों से भी उन्हें एतराज नहीं। सर्वधर्म समभावी हैं। सब में सम्मिलित हैं। और हर जुलूस में हाजिर हैं वे। तुम उनको सदा झंडे के पास पाओगे! और नारा कोई भी हो, वे लगाने को राजी हैं।
नारे से मतलब नहीं है। वह जो लगाने का मजा है, वह जो बल मालूम पड़ता है
कि दस हजार आदमी मेरे साथ नारा लगा रहे हैं, उसका मजा है। आदमी पागल है। तुम्हारी राजधानियां पागलों से भरी हैं। तुम्हारे नेता तुमसे ज्यादा रुग्ण हैं। तुम्हें तो कभी-कभी संदेह भी पकड़ता है, उन्हें संदेह भी नहीं पकड़ता। वे मान कर ही चलते हैं कि उनके द्वारा जगत का उद्धार होना है। तुम्हें तो थोड़ा संदेह भी पकड़ता है कि होगा जगत का उद्धार कि नहीं। क्योंकि अपना ही उद्धार तो हो नहीं पा रहा है। तो जिसको ख्याल है कि जगत का उद्धार मेरे द्वारा होगा, वह बिल्कुल ही पागल है। उसने बिल्कुल होश ही खो दिया है। अब वह नशे में है।
भीड़ बड़ा नशा देती है। भीड़ से बड़ी कोई शराब नहीं। इसलिए भीड़ ने जितने बड़े पाप किए हैं, इक्के-दुक्के व्यक्तियों ने नहीं किए। मुसलमानों की भीड़ मंदिर को जला देती है, हिंदुओं के घरों में आग लगा देती है। हिंदुओं की भीड़ मुसलमानों को नष्ट कर देती है, मस्जिद को गिरा देती है।
तुम एक-एक मुसलमान से पूछो, जिसने मंदिर को जलाया। वह भी कहेगा कि नहीं। उससे पूछो, अकेले तुम कर सकते थे, अगर भीड़ न होती? तो वह भी सोचता है। हजार प्रश्न उठते हैं कि इसको क्या फायदा है मंदिर को जलाने से? और मंदिर में भी तो आखिर परमात्मा ही है, अल्लाह ही है।

तुम हिंदू से पूछो अकेले में कि तुमने यह जो मुसलमानों की हत्या कर दी, आग लगा दी, यह तुम अकेले लगा सकते थे? तुम्हें ख्याल न आता कि छोटा बच्चा इसमें जलेगा, औरत इसमें जलेगी, बीमार बूढ़ा घर में पड़ा है वह जलेगा? तुम्हें ख्याल न आता? तुम इन सब बातों को भूल जाते, आग लगा देते? वह भी कहेगा कि नहीं, जरा मुश्किल होता। केरोसिन इतनी आसानी से नहीं फेंक पाता। वह तो भीड़ थी। मैं कुछ था ही नहीं।
भीड़ में तुम्हारा दायित्व समाप्त हो जाता है। तब तुम्हारी कोई रिस्पांसिबिलिटी नहीं है। तुम भीड़ के एक हिस्से हो। ध्यान रखना, भीड़ से सावधान रहना, अन्यथा तुम्हारे जीवन में साधुत्व का दीया कभी भी न जल सकेगा।
ऊपरि आलम सब करै, साधु जन घट मांहि।
चलो भीतर की तरफ, एकांत की तरफ, अकेले की तरफ। क्योंकि वहीं सत्य है और वहीं से द्वार परमात्मा का है। तुम्हारे ही घट में बसा है वह, जिसे तुम न मालूम घट-घट में खोज रहे हो।
दादू ऐतां अंतरा, ताथैं बनती नाहिं।।
यह वचन बड़ा अदभुत है!
दादू ऐतां अंतरा, ताथैं बनती नाहिं।।
साधु में और असाधु में, सांसारिक में इतना ही अंतर है। इसलिए बनती नहीं दोनों में।
साधु की समाज से कभी नहीं बनती। और अगर तुम कहीं ऐसा साधु पाओ जिसकी समाज से बनती है, तो समझना कि वह साधु न होगा। साधु की समाज से बन कैसे सकती है! असंभव है। क्योंकि साधु की यात्रा ही उलटी है। वह भीड़ को छोड़ कर चलता है।
कबीर ने कहा हैः सिंहों के नहीं लेहड़े, साधु की नहीं जमात।
सिंह कोई भीड़ और जुलूस और प्रोसेशन तो निकालते नहीं। साधु की क्या कोई जमात है! उसने तो जान लिया, अकेला आया हूं, अकेला जाना है, अकेला हूं। ये दो अकेलेपन के बीच में साथ झूठ है, प्रपंच है। आया अकेला, जाऊंगा अकेला, बीच में साथ कैसे हो जाएगा? अकेला होना मेरा स्वभाव है। जन्मा अकेला, मरूंगा अकेला, तो साथ होना धोखा है।
इस साथ होने का नाम संसार है। वह संसार आदमी की ईजाद है। वह तुमने- हमने बनाया है। वह हम-तुम ने मिल कर बनाया है। वह एक सपना है--साथ होने का सपना! पति है, पत्नी है, बेटा है, मां है, भाई है, मित्र हैं, सहधर्मी हैं, गुरुभाई हैं--हजार रास्ते हैं आदमी के। साथ हूं, अकेला नहीं हूं। जन्मे तुम अकेले थे, मरते वक्त अकेले हो जाओगे, बीच की दो घड़ी को तुमने साथ का संसार बसाया।
नहीं, साधु उसमें भरोसा नहीं करता। साधु कहता है, जैसा आया था, जैसा जाऊंगा, वैसा ही रहूंगा। अकेला हूं। अकेला होना मेरा स्वभाव है। अपने को साधूंगा। उस साधने से जो भी जीवन बन जाएगा, स्वीकार करूंगा। दूसरों की आंखों में न झांकूंगा। सम्मान और समादर मेरे लिए मूल्यवान नहीं है। क्योंकि मौत सब छीन लेगी।
तो समाज जिस चीज को मूल्य देता है, साधु मूल्य नहीं देता। साधु जिस चीज को मूल्य देता है, समाज की समझ के बाहर है।
दादू ऐतां अंतरा...
इतना अंतर है दोनों में। छोटा ही अंतर है ऐसे तो। एक अपनी तरफ चल पड़ा, दूसरा दूसरों की तरफ चल रहा है। चल दोनों रहे हैं, दिशा का जरा सा भेद है।
जरा तुम भी करवट ले लो तो साधु की तरफ चल पड़ोगे।
दादू ऐतां अंतरा, ताथैं बनती नाहिं।।
इसलिए साधु सदा विद्रोही है, बगावती है। साधु सरकारी नहीं हो सकता।
और हो जाए तो सावधान हो जाना। जब साधु सरकारी होता है तो वह एजेंट होता है।
तब उसका काम कुल इतना होता है कि वह राज्य की सेवा करे, लोगों को सांत्वना दे, लोगों को समझाए। लोगों को भड़का न दे। वह राज्य और लोगों के बीच मलहम-पट्टी बन जाए। वह सदा लोगों को समझाता रहे, ताकि क्रांति की कोई संभावना जगने न पाए। इसीलिए तो कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफीम का नशा कहा। उसे सच्चे साधुओं का पता नहीं था। उसने सरकारी साधुओं को ही साधु होना समझ

लिया। तो उसने धर्म को अफीम का नशा कहा कि यह लोगों को बेहोश करने की तरकीब है।
तुम गरीब हो, तो सरकारी साधु तुमसे कहेगा, भाग्य के कारण गरीब हो। तुम
कर ही क्या सकते हो? अगर बुरे कर्म किए तो आगे भी गरीब रहोगे। अब अच्छे कर्म कर लो ताकि आगे अमीर हो जाओ। अगर तुम दुखी हो, पीड़ित हो, तो साधु सांत्वना देगा। वह कहेगा कि धीरज रखो, भरोसा रखो, गड़बड़ मत करो। क्योंकि गड़बड़ से तो और गड़बड़ी हो जाएगी।
ध्यान रखना, असली साधु संतोष की संभावना बनाएगा। झूठा साधु, सरकारी साधु सांत्वना देगा। सांत्वना और संतोष में जमीन-आसमान का भेद है। संतोष तो वैसी दशा का नाम है, जहां तुम इतने आह्लादित हो गए कि बाहर के दुख दुख न रहे। छोटी-मोटी पीड़ाएं गिर गईं। उनका कोई मूल्य न रहा। तुम्हारे पास कपड़े फटे-पुराने हैं या हीरे-जवाहरातों से जड़े हैं, बहुत फर्क न रहा। तुम भीतर ऐसे हीरे-जवाहरातों से जड़ गए कि अब बाहर तो सब कूड़ा-करकट हो गया। संतोष तो आनंद-अनुभव का फल है। सांत्वना, केवल अपने को समझाना है ताकि कुछ गड़बड़ न हो, तुम घिसते-पिसते समाज के साथ चलते रहो। जैसा है, ठीक है।
साधु और समाज की बन नहीं पाती। महावीर और समाज की नहीं बनी। बुद्ध और समाज की नहीं बनी। जीसस और समाज की नहीं बनी। लेकिन अब अच्छी तरह बन रही है। मरे हुए जीसस की ईसाइयों से ठीक से बन रही है। जिंदा जीसस की नहीं बनी थी। जिंदा महावीर की न बनी थी। मरे महावीर की जैनियों के साथ खूब मौज से छन रही है। कोई अड़चन नहीं है।
क्योंकि जब साधु मुर्दा हो जाता है तब तुम्हें तो बदल ही नहीं सकता। तुम ही उसको बदल डालते हो। तुम उसकी ऐसी व्याख्या कर लेते हो जो तुम्हारे अनुकूल है। जब साधु जिंदा होता है तब तो तुम व्याख्या न कर सकोगे उसकी। तब तो वह जीवित है। वह तुम्हें बिगाड़ने न देगा। वह तुम्हें अपने मतलब न निकालने देगा। वह तुम्हें अपनी भ्रांति में डूबने न देगा। वह तुम्हें सोने न देगा, वह जगाता ही रहेगा। वह तुम्हें चौंकाता ही रहेगा। तुम कितने ही नाराज होओ। वह तुम्हें हिलाता रहेगा कि जागो, तुम फिर सो गए। लेकिन जब साधु मर गया, तुम मजे से सो जाते हो। नींद में तुम सपना देखते हो कि तुम जागे हुए हो। अब कोई डर न रहा। अब सब निश्चिंत है। साधु मरा हुआ है, तुम सोए हुए हो। साधु जिंदा है, तुम्हें सोने नहीं देता। जगा कर रहेगा।
इसीलिए मरे गुरुओं की पूजा हजारों साल तक चलती है। जिंदा गुरुओं को पत्थर। जिंदा गुरुओं को गालियां। जिंदा गुरु को अपमान, मरे हुए गुरु को सम्मान। यह तुम्हारा गणित है।
अगर महावीर वापस लौट आएं तो जैनी सबसे पहले उनको इनकार करेंगे। किसी
को अड़चन न होगी। शायद दूसरों में कुछ लोग मिल भी जाएं, जो कहें कि हो सकता है ठीक आदमी हो; लेकिन जैनी सबसे पहले इनकार करेंगे। क्योंकि उनकी तो नींद बिल्कुल खराब कर देगा यह आदमी।
दोस्तोवस्की ने जीसस को अपनी एक कहानी में वापस लौटाया है। दोस्तोवस्की का एक उपन्यास हैः ब्रदर्स कर्माझोव। बड़ा बहुमूल्य है। अठारह सौ साल बीत गए हैं। और जीसस ने सोचा कि अब तो आधी दुनिया ईसाई हो गई, अब मैं वापस जाऊं। अब मेरा स्वागत हो सकेगा। मैं जरा समय के पहले पहुंच गया था। लोग तैयार ही न थे। अब तो गांव-गांव मेरे चर्च हैं। घर-घर बाइबिल है। कंठ-कंठ में मेरा क्रास लटका है। लाखों मेरे पंडित-पुरोहित हैं। अरबों की संख्या हो गई है मेरे मानने वालों की। अब वक्त आया ठीक। मौसम अब है। अब मुझे जाना चाहिए।
तो वे उतरे बेथलहम के छोटे से गांव में, जहां उनका पहले जन्म हुआ था। उन्होंने रविवार का दिन चुना। क्योंकि बाकी दिन तो ईसाई ईसाई होते नहीं, रविवार के दिन ही होते हैं। छह दिन तो कोई ईसाई होता नहीं। बाजार में कौन ईसाई है, कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है! सब चोर हैं, सब शोषक हैं। छठवें दिन काम-धंधा बंद करके, साफ-सुथरे कपड़े पहन कर लोग चर्च पहुंच जाते हैं, ईसाई हो जाते हैं, परमात्मा का गीत गाते हैं।
जीसस रविवार के दिन बेथलहम के बाजार में एक वृक्ष के नीचे आकर खड़े हो
गए चर्च के सामने ही। सोचा था, अब तो लोग पहचान लेंगे। पहले तो जब मैं आया था, मुझे चिल्ला-चिल्ला कर कहना पड़ा कि मैं परमात्मा का संदेशवाहक हूं।

फिर भी लोगों ने माना नहीं। अब तो लोग खुद ही पहचान लेंगे। अब तो किसी को बताना नहीं है। वे चुपचाप खड़े रहे।
भीड़ इकट्ठी हो गई बाजार में। आवारा लड़के पत्थर फेंकने लगे, लोग हंसने लगे। किसी आदमी ने खिलखिला कर कहा कि रूप तो बिल्कुल जीसस जैसा ही बनाया है। मगर जल्दी करो, भाग जाओ यहां से। अगर पुलिस को पता चल गया, मुसीबत में पड़ोगे। और फिर जल्दी ही पुरोहित आने वाला है। चर्च की प्रार्थना पूरी होने के करीब है। अगर पुरोहित को पता चल गया तो झंझट में पड़ोगे। हथकड़ी पड़ जाएंगी। क्योंकि ऐसा नाटक नहीं चलेगा।
जीसस ने कहा, मैं नाटक नहीं कर रहा हूं। मैं जीसस हूं!
लोगों ने कहा, वाह खूब रही! नाटक भी खूब कर रहे हो और दिमाग भी खराब मालूम होता है। भाग जाओ समय रहते!
जीसस थोड़े डरे भी, चिंतित भी हुए कि यह मामला क्या है! लेकिन सोचा कि शायद ये लोग ईसाई नहीं हैं। ईसाई तो चर्च गए हुए हैं।
चर्च से भीड़ आई तो भीड़ ने तो फौरन जीसस को बहुत डांटा-डपटा। वहां पूजा करके आ रहे थे। वहां जीसस सूली पर लटके हैं मुर्दा! यहां जिंदा आदमी खड़ा है। बहुत डांटा-डपटा कि यह ठीक नहीं है। यह अपमान है हमारे भगवान का। उतरो नीचे वृक्ष के और ये कपड़े बदलो।
पर जीसस ने इधर-उधर देखा कि शायद पुरोहित तो पहचान लेगा। वर्षों अध्ययन किया है, आंखें फोड़ी हैं बाइबिल पर। मेरे ही गुणगान किए हैं। वह तो कम से कम पहचान लेगा। ये लोग तो श्रावक हैं। ये शायद न पहचान पाएं।
तब पुरोहित आया। लोगों ने जल्दी रास्ता दे दिया, झुक-झुक कर नमस्कार किया। ईसा को बड़ी हैरानी हुई। कोई मुझे झुक कर नमस्कार नहीं कर रहा है। मेरे पुरोहित को, जिसके गले में मेरा क्रास लटका है, उसको लोग झुक-झुक कर नमस्कार किए।
पुरोहित नीचे आया और उसने कहा कि नीचे उतर! यह शरारत यहां न चलेगी।
तब तो जीसस को बड़ा धक्का लगा कि यह तो मुझे पहचानता नहीं। मेरा ही नौकर, मेरा ही पुजारी! वे नीचे उतर गए। लोगों ने उन्हें घेर लिया और चर्च की तरफ ले गए। चर्च में अंदर जाकर जीसस को एक कोठरी में बंद कर दिया। आधी रात... जीसस सोचते रहे कि यह क्या फिर से फांसी लगेगी? यह तो सब मामला वैसा ही का वैसा है। कुछ भी बदला नहीं।
इस दुनिया में कभी कुछ बदलता नहीं। सब वैसा ही का वैसा है। महावीर आते हैं, बुद्ध आते हैं, जीसस आते हैं, चले जाते हैं। लोगों के अज्ञान पर लकीर भी नहीं खिंचती। वे फिर अपनी नींद में लीन हो जाते हैं। थोड़ी देर डगमगा गए थे, थोड़ी गड़बड़ की इन लोगों ने। वे कहते हैं, अब चलो सब शांति है। फिर से सो जाओ।
आधी रात जीसस जागे हैं, अंधेरे में बैठे हैं, सोचते हैं कि यह तो व्यर्थ हुआ। और तब तो मैं सोचता था कि यहूदी हैं जिन्होंने मुझे सूली दी। अब तो ये ईसाई हैं। अपने ही लोग अब मुझे मारेंगे? यह तो और भी बेहूदी बात हो गई। तब तो कुछ समझ में भी आता था कि विपरीत थे, दूसरे धर्मीय थे। अब तो अपने धर्म के लोग हैं।
तब आधी रात द्वार खुला, पुरोहित भीतर आया दीया लेकर, दीया उसने रखा, गिर पड़ा जीसस के चरणों में। जीसस ने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? सुबह तो तुमने ऐसा दुर्व्यवहार किया!
उसने कहा, आपसे साफ बात कह दूं। मैं पहचान गया। आंखें ऐसे ही व्यर्थ खराब नहीं की हैं। जीवन भर तुम्हारे ही गीत गाने में बिताया, तुम्हें न पहचानूंगा? लेकिन बाजार में पहचानने की बात मत करो। भीड़-भाड़ में नहीं पहचान सकता हूं। और तुमसे हमारी इतनी ही प्रार्थना है कि आपकी कोई भी जरूरत नहीं है। काम सब ठीक चल रहा है। हम अच्छी तरह चला रहे हैं। तुम्हारे आने से फिर उपद्रव होगा। क्योंकि तुम सदा के उपद्रवी हो। बगावत तुम्हारे खून में है।
उस पुरोहित ने जरूर बड़ी महत्वपूर्ण बातें कहीं।
तुम न आओ। नहीं तो तुम्हें फिर फांसी लगेगी। और हमें पीड़ा होगी तुम्हें फांसी देने में, लेकिन देनी पड़ेगी। क्योंकि या तो तुम बचोगे या चर्च बचेगा। दोनों साथ नहीं बच सकते। अगर तुम बचे तो चर्च नष्ट हो जाएगा।

यह हमने जो अठारह सौ साल में इतना फैलाव किया है, यह जो इतना बड़ा हमने विस्तार किया है, सब मिट्टी में मिला दोगे तुम। तुम्हारी शिक्षाएं ठीक हैं प्रवचन देने के लिए; मानने के लिए बड़ी खतरनाक हैं। और हमने इतना धन, इतनी संपदा, इतने चर्च सब खड़े किए हैं। यह कोई तुम्हारी शिक्षा मान कर नहीं चल सकता था कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे उसके सामने तुम दूसरा गाल कर दो। अगर ऐसा हम करते तो यह सब लुट जाए। इसके लिए ताकत चाहिए। तुम्हारी शिक्षा बड़ी सुंदर है, लेकिन संसार के लिए नहीं है। वह साधुपुरुषों के लिए है। हमने तुम्हें पहचान लिया था सुबह भी, लेकिन मजबूरी है। हमें मजबूर मत करो। तुम्हारी कृपा होगी, तुम यहीं से विदा हो जाओ। यह बात आगे न बढ़े। अन्यथा अपने ही लोगों के हाथ तुम्हें सूली झेलने की तैयारी हो तो तुम्हारी मर्जी।
यही होगा। यह कहानी बिल्कुल सही है। महावीर आएं, जैनी पहली दफा उनको सबसे पहले पुलिसथाने में खबर करेंगे कि यह आदमी गड़बड़ है। यह हमारे महावीर की नकल कर रहा है। बिल्कुल नग्न खड़ा है। और नग्न खड़ा होना तो बिल्कुल अशोभन है। इसको बंद करो।
अगर कृष्ण कहीं बांसुरी बजाने लगें खड़े होकर, तो तुम क्या करोगे? मोर-मुकुट लगाए हुए! बड़ी हंसी-मजाक हो जाएगी। पुलिस कहेगी, इस शक्ल-सूरत में रास्ते पर नहीं खड़े हो सकते। ट्रैफिक को बाधा पड़ती है। तुम्हें देख कर भीड़ इकट्ठी होती है। यह सड़क है, कोई नाटक-गृह नहीं। यह नौटंकी यहां मत करो। और अगर गोपियां नाचने लगें, तो पुलिस कहेगी, यह नाच गणपति में नहीं चलेगा। यह यहां नहीं हो सकता। यहां सज्जन लोग रहते हैं, सुसंस्कृत लोग रहते हैं। जीवित गुरु के साथ तुमने सदा दुर्व्यवहार किया है। तुम्हारी मजबूरी है। जीवित गुरु का स्वभाव वैसा है।
दादू ऐतां अंतरा...
क्योंकि तुम अलग जा रहे हो बाहर की तरफ, वह भीतर की तरफ जा रहा है। तुम पूरब जाते हो, वह पश्चिम जाता है। तुम्हारी पीठ एक-दूसरे की तरफ है। तुम्हारा मेल नहीं हो पाता। और तुम्हें उसके भीतर की तरफ जाने से बड़ी पीड़ा होती है कि अगर यह आदमी सही है तो हम गलत हैं। तो अपने को बचाने के लिए तुम उस आदमी को गलत सिद्ध करने की सब चेष्टाएं करते हो। वह तुम्हारी आत्मरक्षा का उपाय है।
... ताथैं बनती नाहिं।
इसलिए बनती नहीं है साधु में और समाज में। और जब बन जाए, तब या तो साधु मुर्दा होगा, मर चुका होगा या साधु ही न होगा।
झूठा सांचा कर लिया, विष अमृत जाना।
दादू कहते हैं, सब करके देख लिया। ऐसा नहीं है कि बिना कुछ किए भीतर की तरफ मुड़ गए। कौन मुड़ा है? बाहर का अनुभव करना ही पड़ेगा।
झूठा सांचा कर लिया...
सब झूठ-सांच, सब कर लिया।
... विष अमृत जाना।
विष को भी अमृत मान कर पी लिया। वह भी सब करके देख लिया है।
दुख को सुख सबके कहै, ऐसा जगत दिवाना।।
और पागलों की भीड़ ने हमसे भी कहा कि दुख ही सुख है। हमने भी उसको सुख माना।
दुख को सुख सबके कहै...
सबके कहने से हमने भी मान लिया कि ठीक है। क्योंकि और तो कोई जानना भी
न था। दूसरों का ही मानना था। बच्चा पैदा होता है, उसे कुछ पता भी नहीं है। जिसको मां सुख कहती है, बाप सुख कहता है, उसी को सुख वह भी कहता है। न मां- बाप को पता है कि सुख क्या है। उनके मां-बाप ने जो कहा था उसी को वे दोहराए चले जाते हैं।
यह बच्चा बड़ा होगा, स्कूल जाएगा, पढ़ेगा, गुरुओं से मिलेगा। वे जिसको सुख-दुख कहेंगे उन्हीं को यह भी मानेगा। वे सब कह रहे हैं--सफलता में सुख है। कोई भी नहीं कहता कि सुख में सफलता है। सारा समाज कहे चला जाता है-- सफलता में सुख है। तो सफलता का दीवानापन पैदा होता है। दौड़ो, सफल होओ। सफल नहीं हुए तो दुखी हो जाओगे। और कोई देखता भी नहीं कि जो सफल हो गए हैं वे

सुखी हैं? बड़े पदों पर पहुंच गए हैं, बड़े धन के ढेर लगा लिए हैं, वे सुखी हैं?
इतनी फुरसत कहां है देखने की! क्योंकि इतनी देर भी तुम रुक कर देखो तो दूसरे निकल जाएंगे। दौड़ भारी है। संघर्ष कीमती है। प्रतिस्पर्धा प्रतिपल है। सोते-जागते भागना है। रुकना नहीं है। रुके तो तुम हारे। दूसरे थोड़े ही रुके रहेंगे! ऐसा तुम सोच-विचार करने लगो रुक कर तो उतने में तुम पिछड़ ही जाओगे। फिर दिल्ली तुम कभी न पहुंच पाओगे। भागो! यह सोचना वगैरह पीछे कर लेना। जब राष्ट्रपति होकर बैठ जाओ, तब सोच लेना कि सफलता में सुख है या नहीं।
लेकिन तब तक बहुत देर हो गई होती है। तब तक तुम्हारी वही हालत हो जाती
है जैसी कहानी है--कि एक बंदर की पूंछ कट गई थी। तब तुम्हारी पूंछ कट गई। अब तुम किसी से यह कहो कि पूंछ कटने में सुख नहीं है, तो तुम मूढ़। अब तो तुमको यही समझाना पड़ता है कि पूंछ कटने में बड़ा आनंद आता है। ऐसा आनंद, जिसका कोई हिसाब ही नहीं। ताकि दूसरे भी कटाएं। अब तुम्हारी तो कट ही गई। अब इस बात को कहने से सार क्या है? कोई सार नहीं है। अब तो चुपचाप इसको झेल लेना ही उचित है। जिंदगी भी गई, और अब लोगों के मन में से यह भाव भी चला जाए कि तुम असफल हुए जिंदगी भर दौड़ कर।
सभी सफल लोगों की तकलीफ यही है कि उनकी पूंछ कट गई है। दुखी वे बहुत हैं। मैं उन्हें निकट से जानता हूं। उनके दुख का कोई अंत नहीं। तुमसे ज्यादा दुखी हैं। लेकिन इस बात की घोषणा नहीं की जा सकती। जब बाहर निकलते हैं तो चेहरे पर मुस्कुराहट लेकर, प्रसन्नता की गंध फैलाते हुए निकलते हैं, ताकि लोगों को दिखाई पड़े कि वे सफल हो गए और सुखी हो गए। और पुरानी भ्रांति को बल मिलता है।
दादू कहते हैंः दुख को सुख सबके कहै...
दुख ही दुख था। सुख कुछ था नहीं, लेकिन सबने कहा इसलिए उसको भी माना।
अब समझ में आया कि जगत भी कैसा दीवाना! कि लोग कैसे पागल!
लेकिन किसी का कोई कसूर नहीं है। क्योंकि हर आदमी यहां आता है, जगत पहले से तैयार पाता है। तुम आए तब तीन अरब आदमी जमीन पर संसार बना कर खड़े ही थे। उनका जाल तैयार था। तुम उसी जाल में गिरते हो। तुम अकेले, तीन अरब लोगों का जाल--तुम लड़ भी क्या सकते हो! छोटा बच्चा लड़ेगा भी कैसे! वह उसी जाल में दीक्षित होता है, शिक्षित होता है। स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय उसी जाल के द्वारा चलाए जा रहे हैं। शास्त्र, शास्त्रों की व्याख्याएं, साहित्य उसी जाल के द्वारा रचे जा रहे हैं। स्वभावतः छोटा बच्चा कुछ भी न जानते हुए अपनी कोरी स्लेट पर वही लिख लेता है जो उपलब्ध है। बहुत मुश्किल से कभी-कभी इतने हिम्मतवर लोग होते हैं जो लौट कर देखते हैं और पहचानते हैं कि--
झूठा सांचा कर लिया, विष अमृत जाना।
दुख को सुख सबके कहै, ऐसा जगत दिवाना।।
और तब इतनी हिम्मत रखते हैं कि अब इतने आगे बढ़ आए इस पागलपन में, इसे कैसे छोड़ें, डर लगता है। यही तो सहारा है। यह गया तो बिल्कुल खाली हो गए। इतनी हिम्मत समझने की, फिर इतनी हिम्मत इसके बाहर हो जाने की।
इसलिए धर्म दुस्साहस है। उससे बड़ा कोई साहस नहीं। चांद पर जाने में कोई बड़ा साहस नहीं। प्रशिक्षण की जरूरत है। हिमालय चढ़ जाने में कोई बड़ा साहस नहीं। लेकिन धार्मिक होना बड़े से बड़ा दुस्साहस है। क्योंकि उसका अर्थ है इस बात की स्वीकृति कि विष को अभी तक अमृत जाना था, दुख को सुख जाना था, झूठ को सच माना था। इस बात को मानने के साहस का अर्थ है कि मैं अब तक मूर्ख था, मूढ़ था, अज्ञानी था। यही तो पीड़ा है। तुम पचास साल के हो गए, साठ साल के हो गए, साठ साल की जिंदगी तुमने मूढ़ता में बिताई? तो तुम्हारा अहंकार कहां टिकेगा?
अहंकार कहता है, अब जो हो गया, हो गया। अब किसी को कहो मत। अब चुप ही रहो। ऐसे तो लुट ही गए। अब कहने से भी क्या सार है? अब और लोगों को पता चल जाए कि मूढ़ थे तुम, और लोग हंसेंगे। कुछ ऐसा नहीं कि वे समझ लेंगे कि तुम ज्ञानी हो गए। वे कहेंगे, अब तुम पक्के मूढ़ हो। साठ साल क्या बेकार गंवाते रहे? पहले क्यों न जागे अगर बड़े समझदार थे?

तो जब आदमी को पता चलता है कि जीवन व्यर्थ गया, तब भी वह कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। जो ऐसी हिम्मत जुटाता है उसी को मैं संन्यासी कहता हूं। संन्यास इसी बात की घोषणा है कि अब मैं कहता हूं घोषणापूर्वक कि अब तक जो मैंने सुख जाना था वह दुख था। अब तक मैंने जो अमृत जाना था वह विष था। अब तक जिसको मैंने बुद्धिमत्ता कहा था वह मूढ़ता थी। और जिन पर मैंने भरोसा किया था वे दीवाने थे, पागल थे। और मैं पागलों का एक हिस्सा था। अब मैं उससे उठता हूं, अलग होता हूं। इसका जो भी परिणाम हो।
सांचे का साहब धनी, समरथ सिरजनहार।
पाखंड की यह पिर्थवी, परपंच का संसार।।
अगर तुम इतना भी सत्य अहसास कर लो कि तुम अब तक भटकते रहे, तो मंजिल करीब आ गई। क्योंकि जिसको यह समझ में आ गया कि मैं अब तक भटकता रहा, उसे मंजिल की झलक मिल गई। अन्यथा समझ में आ ही नहीं सकता। जिसे यह दिखाई पड़ गया कि झूठ झूठ है, उसे सत्य की पहली प्रतीति हो गई। अन्यथा तुम तौलोगे कैसे कि झूठ झूठ है? जिसको समझ में आया कि यह विष है, अमृत नहीं, उसको अमृत की भनक पड़ गई। उसके कानों में खबर आ गई। उसके रोओं ने अनुभव कर लिया। उसके भीतर कोई जाग गया, जिसने कहा कि यह सब व्यर्थ है।
व्यर्थ का बोध सार्थक की शुरुआत है। असत्य की प्रतीति सत्य की तरफ पहला कदम है। अज्ञानी होने का अहसास ज्ञान की क्रांति की शुरुआत है। सांचे का साहब धनी...
और जिसने सच की तरफ यात्रा शुरू कर दी, परमात्मा उसका मालिक है।
... समरथ सिरजनहार।
और जिसने सब बनाया, जिसका सब है, उसके ही तुम हो। वह समर्थ है। तुमने
अब अपनी नाव उसी के हाथ में छोड़ दी। अब तुम कहते हो--जहां तू ले जाए। अब तक तो हमने ले जाने की कोशिश की, सिर्फ भटके। किनारे से पास तो न आए, उलटे दूर गए। अब तक हम अपनी नाव को खुद ही खे रहे थे। रामकृष्ण ने कहा है, नाव को खेने के दो ढंग हैं। एक तो है, खुद खेना पतवार से, अपनी ताकत से। और एक है, पाल को खुला छोड़ देना और उसकी हवाओं के सहारे।
अब तक तुम अपनी ही पतवार से खे रहे हो। अपने पर बड़ा भरोसा है कि मैं ठीक हूं, मैं जानता हूं। सच क्या है, मुझे पता है। सुख क्या है, मुझे पता है। ऐसे तुम अपनी पतवार से नाव खे रहे हो। पहुंचे तुम कहीं नहीं। किनारे से दूर होते गए हो। जितने सफल हुए हो, उतने असफल हुए हो। और जितना तुमने सोचा कि सुख करीब आया, उतना तुमने दुख के महागर्त में अपने को पाया। तुम समझे कि पहाड़ चढ़े, जब आंख खुली तो पाया कि गड्ढे में पड़े हो। सपनों में पहाड़ चढ़े हो भला, यथार्थ में गड्ढों में गिरते गए हो। तुम्हारे जीवन की निष्पत्ति नरक के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।
सांचे का साहब धनी, समरथ सिरजनहार।
पाखंड की यह पिर्थवी, परपंच का संसार।।
यह जो आदमियों ने बना रखा है संसार, यह तो सब झूठ का है। ये तो झूठे खेल इसमें चल रहे हैं। पारस्परिक असत्य के संबंध चल रहे हैं। जो नहीं है वैसा मान कर हम चल रहे हैं।
एक स्त्री को तुम विवाह कर लाए, सात चक्कर लगा लिए अग्नि के। वह तुम्हारी हो गई सात चक्कर लगाने से? कल तक कोई भी न थी, आज सब कुछ हो गई सात चक्कर लगाने से! सत्तर लगाओ तो भी क्या होगा? चक्कर लगाने से किसी का अपना होने से क्या संबंध है? लेकिन एक भ्रांति पैदा हो गई कि मेरी है। सहारा मिला। उसको भी सहारा मिला कि तुम उसके हो। अब तुम एक-दूसरे पर भरोसा कर सकते हो। एक-दूसरे के कंधे पर हाथ का सहारा ले सकते हो। अब तुम सोच सकते हो कि कोई तुम्हारा है।
यह परपंच है। कोई किसी का नहीं है। तुम अपने ही हो जाओ तो काफी है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम पत्नियों को छोड़ कर भाग जाओ। उनका कोई कसूर नहीं है। मैं यह कह रहा हूं, तुम जहां हो वहीं जागो। पत्नी को छोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। सिर्फ मेरा भाव छूट जाए कि यह मेरी; कि मैं इसका। तो तुम दोनों परमात्मा के हो। अभी तुम पत्नी के हो, पत्नी तुम्हारी है। तुमने एक अलग दुनिया बना ली परमात्मा के जगत से। तुमने अपना एक घर-संसार बना

लिया। तुम्हारे बच्चे हैं, तुम्हारी धन-दौलत, तुम्हारी तिजोड़ी, बैंक-बैलेंस। तुमने अलग ही तोड़ लिया अपने को। तुम अब समष्टि के हिस्से नहीं हो। भागने से कुछ भी न होगा, जागने से होगा। जागने का मतलब यह है कि तुम अचानक जाग कर देखते हो, यह भी कैसा सपना देख रहा हूं! कौन मेरा है! अकेला आया, अकेला जाऊंगा, अकेला हूं। पत्नी कितने ही पास हो, तो भी फासला अनंत है। कोई भागने का सवाल नहीं है। खुद जागो, उसे भी जगाओ कि हम दोनों परमात्मा के हैं। यह जो बीच में हमने एक अपनी दुनिया बना ली थी, एक निजी संसार बना लिया था, वह झूठ है, वह प्रपंच है।
पाखंड की यह पिर्थवी...
पाखंड को पृथ्वी कह रहे हैं दादू, पृथ्वी को पाखंड नहीं कह रहे हैं। इसको समझ लेना।
पाखंड की यह पिर्थवी...
वे इस पृथ्वी को पाखंड नहीं कह रहे हैं। पृथ्वी तो बड़ी सच्ची है, उसको
तो पाखंड का कोई भी पता नहीं। लेकिन जिस पृथ्वी पर तुम रह रहे हो, वह पाखंड की है। तुमने एक जमीन का टुकड़ा घेर लिया, बागुड़ लगा दी, कहते हो, मेरी। यह जो "मेरी" पृथ्वी है, यह पाखंड हो गई। सब उसका है। तुम्हारा क्या है? तुम यहां नहीं थे, तब भी पृथ्वी थी। तुम नहीं रहोगे, तब भी पृथ्वी रहेगी। आदमियत न थी, तब भी थी पूरी; आदमियत खो जाएगी किसी दिन, तब भी रहेगी। पक्षी ऐसे ही गीत गाएंगे, वृक्ष ऐसे ही हरे होंगे, हवाएं ऐसी ही चलेंगी। किसी को तुम्हारे न होने का पता भी न चलेगा। तुम थे कि तुम नहीं थे, कोई अंतर न आएगा। यह जगत की कथा ऐसी ही चलती रहेगी।
नहीं, यह पृथ्वी तुम्हारी नहीं है। लेकिन तुमने एक और पृथ्वी बना ली है--भारत! यह पाखंड। पाकिस्तान! यह पाखंड। पृथ्वी उसकी है, खंड तुम कैसे करते हो? कहां तुम रेखा खींचते हो पाकिस्तान की? किस आधार पर खींचते हो? तुम्हारी रेखा तुम्हारे पागलपन की खबर देती है, लेकिन पृथ्वी के बंटने की कोई खबर नहीं देती। पृथ्वी को पता ही नहीं कहां पाकिस्तान शुरू होता है, कहां हिंदुस्तान शुरू होता है।
मैंने सुना है, जब भारत और पाकिस्तान बंटा, तो एक पागलखाना था। राजनेता बंटवारे में लगे थे, उनको किसी को ख्याल ही न रहा कि पागलखाना कहां जाए। वह बिल्कुल सीमा पर था। आधा इस तरफ, आधा उस तरफ। पागलखाने की फिक्र भी किसको थी! कौन उत्सुक था उसको लेने के लिए! कोई भी ले ले। इसलिए किसी ने ज्यादा चिंता न की। सब बंटवारा हो गया तब पता चला उसका तय नहीं हुआ पागलखाने का। उसको कहां जाना, क्या करना। तो जैसा बड़े पागलखाने में हुआ था कि हिंदुओं से पूछ लो, मुसलमानों से पूछ लो; ऐसा ही लोगों ने कहा, उस छोटे पागलखाने में भी यही नियम का उपयोग करो, पागलों से पूछ लो--कहां जाना?
अब पागलों को यही पता होता कहां जाना तो पागल क्यों होते! पागलों से पूछा तो पागलों ने कहा, हमें तो कहीं नहीं जाना। हमें तो यहीं रहना है। उनको बहुत समझाया कि तुम समझो।
मगर पागल सीधे-सादे थे, जैसे कि पागल सीधे-सादे होते हैं। वे तुम्हारे राजनीतिज्ञों जैसे तिरछे नहीं थे। उनकी समझ में ही न आए। वे बड़े सोच-विचार में पड़े। उन्होंने बड़ा विचार किया, रात सोएं न, एक-दूसरे से समझाएं कि मामला क्या है! अधिकारी कहते हैं कि जाना कहीं भी नहीं है, रहोगे तुम यहीं; फिर भी कहां जाना है? पाकिस्तान में जाना है कि हिंदुस्तान में जाना है? उनको बात बेबूझ हो गई। यह तो बड़ी पहेली हो गई। कहते हैं कि जाना कहीं
भी नहीं है, रहोगे यहीं, और फिर भी पूछते हैं--कहां जाना है? जब जाना ही नहीं कहीं तो पूछना क्या! अगर पूछना ही है तो झूठा आश्वासन क्यों देते हैं कि यहीं रहोगे। इसमें जरूर कोई जालसाजी है।
आखिर कोई निर्णय न हो सका तो अधिकारियों ने कहा, अब वही करो जो बड़े पागलखाने में किया--बीच से एक दीवाल खींच दो, ठीक बीच से। इस तरफ हिंदुस्तान हो जाएगा, उस तरफ पाकिस्तान हो जाएगा।
बीच में दीवाल खींच दी। जिन पागलों की कोठरियां उस तरफ पड़ गईं, वे पाकिस्तान में हो गए। जिन पागलों की कोठरियां इस तरफ पड़ गईं, वे हिंदुस्तान में हो गए।

मैंने सुना है कि अभी भी पागल भरोसा नहीं कर पाए कि हुआ क्या! क्योंकि
वे हैं तो वहीं। वे कभी-कभी दीवाल पर चढ़ जाते हैं और एक-दूसरे से बात करते हैं कि मामला क्या है? हम हैं वहीं। तुम भी वहीं, हम भी वहीं। बीच में एक दीवाल खींच दी, तुम पाकिस्तानी हो गए, हम हिंदुस्तानी हो गए। तुम हमारे दुश्मन हो गए, हम तुम्हारे दुश्मन हो गए। अधिकारी आ जाते हैं तो दीवालों से उतर कर अपनी कोठरियों में छिप जाते हैं। क्योंकि अधिकारी यह बरदाश्त नहीं करते कि पाकिस्तान- हिंदुस्तान की सीधी कोई वार्ता हो; कि पाकिस्तानी-हिंदुस्तानी मिलें। नहीं; उन्होंने पुलिस के आदमी खड़े कर रखे हैं।
आदमी की बुद्धि बंटी है; जमीन तो बंटी नहीं है। जिस पृथ्वी को दादू कह रहे हैं पाखंड, वह तुम्हारी बुद्धि की बंटी हुई पृथ्वी है। वह तुम्हारे ख्यालों की पृथ्वी है। वास्तविक पृथ्वी, जिस पर तुम खड़े हो, वह तो अनबंटी परमात्मा की है।
और... परपंच का संसार।
संसार प्रपंच नहीं है, प्रपंच संसार है। वे तुमने जो खेल बना रखे हैं प्रपंच के--पति के, पत्नी के, भाई के, बहन के, दोस्त के, दुश्मन के। हजार तरह के खेल तुमने खेल रखे हैं। ग्राहक, दुकानदार, मालिक, नौकर--न मालूम कितने खेल हैं जो आदमी खेल रहा है। तुम कभी चौबीस घंटे निरीक्षण करो--तुम कितने खेल खेलते हो।
तुम कमरे में बैठे अखबार पढ़ रहे हो, नौकर आता है, तुम ऐसे अखबार पढ़ते रहते हो जैसे कोई मनुष्य प्रविष्ट नहीं हुआ। क्योंकि यह कोई मनुष्य थोड़े ही है, नौकर है। इसका आना-जाना, ध्यान नहीं देना पड़ता। तुम अखबार से आंख भी नहीं उठाते। तुम ऐसा मान कर चलते हो जैसे कुत्ता-बिल्ली गई हो। कुत्ता- बिल्ली भी जाए तो आदमी थोड़ा चौंक कर देखता है। नौकर है!
नौकर कोई आदमी थोड़े ही है। यह किसी का पति थोड़े ही है, किसी का बाप थोड़े ही है। इसके हृदय में थोड़े ही हृदय धड़कता है। इसकी श्वास में थोड़े ही श्वास चलती है। यह नौकर है! एक लेबल है। तुम लेबल के इस तरफ खड़े हो। उस तरफ के आदमी को तुम देखते भी नहीं।
क्योंकि देखने में खतरा है। अगर तुम देखो खेल के बाहर झांक कर, तो हो सकता है इसकी पत्नी बीमार हो, और जो तनख्वाह तुम दे रहे हो, यह मरने के लिए काफी हो, जीने के लिए काफी न हो। इसका बच्चा भूखा हो। अगर तुम आदमी देखो तो तुम झंझट में पड़ोगे। आदमी देखना ही नहीं है। बड़ा लेबल लगा दिया--कि नौकर। उस तरफ छिपा दिया आदमी को। अब हमारा नौकर से लेना-देना है। सौ रुपये महीना देना है वह ले लो। काम करना है वह काम कर दो। काम का तुम्हारा संबंध, पैसे हमें तुम्हें दे देने हैं, इससे ज्यादा कोई नाता नहीं। इससे ज्यादा न हम तुममें देखेंगे, न तुम हममें देखने की कोशिश करना।
फिर तुम्हारा मालिक आता है, जिसके तुम नौकर हो। उछल कर खड़े हो जाते हो। यह मालिक है। पूंछ हिलाने लगते हो। कुर्सी पर बिठाते हो, आगत-स्वागत करते हो। यह भी वैसा ही आदमी है। लेकिन लेबल इस पर दूसरा है। वह जो आदमी था, नौकर था। अब तुम नौकर हो। यह तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार करेगा जैसा तुमने अपने नौकर के साथ व्यवहार किया था।
यह खेल है। यह नाटक चल रहा है। तुम्हारी पत्नी है, तुम्हारा बेटा है। अगर तुम्हारा बेटा बीमार है तो परेशान हो। पड़ोसी का बीमार है तो कोई अंतर नहीं पड़ता। यह सिर्फ खेल है। तुम्हें पक्का पता है कि तुम्हारा बेटा तुम्हारा बेटा है? हो सकता है पड़ोसी का हो। किसको क्या पता है? लेकिन लेबल बांध लिए तो हिसाब सीधा हो गया।
फिर खेल की सीमा बना ली है। नियम हैं खेल के, उस हिसाब से चलते हैं। जैसे रास्ते पर चलने का नियम है, बाएं चलो। अमरीका में नियम है, दाएं चलो। वह भी काम देता है, यह भी काम देता है। दोनों खेल के नियम हैं। जरूरी हैं।
क्योंकि इतना भीड़-भड़क्का है, अगर सभी लोग सीधे रास्ते पर चलने लगें, जहां जिनको जाना हो, तो चलने में मुश्किल होगी, अड़चन होगी। टहलने वालों को तो कोई अड़चन न होगी, जिनको कहीं पहुंचना है उनको बड़ी मुसीबत हो जाएगी। तो नियम बना लिए हैं, खेल बना लिए हैं।

प्रपंच का अर्थ है, जीवन की वास्तविकता के ऊपर आदमी ने जो अपने नियम थोप दिए हैं। और जिनके आस-पास वह जीता है और जिनके आर-पार कभी नहीं देखता। रास्ते पर तुम जा रहे हो... गोगोल की एक छोटी कहानी है कि दो पुलिस के आदमी रास्ते से गुजर रहे हैं। एक आवारा कुत्ते को एक आदमी टांग पकड़े खड़ा है। भीड़ इकट्ठी हो गई है। भीड़ तो सदा ऐसी चीजें देखने को बिल्कुल आतुर है। कुछ खास नहीं घट रहा है वहां, लेकिन बड़ा चमत्कार हो रहा है जैसे! वह एक आवारा कुत्ते को पकड़े है। वह आदमी भी आवारा। वह कुत्ते को मार डालने की कोशिश कर रहा है, क्योंकि कुत्ते ने उसे काट खाया है। दो पुलिसवाले भी भीड़ में आकर खड़े हो गए।
पुलिसवाले तो जानते ही हैं कि कुत्ते उनके जानी दुश्मन हैं। कुत्तों
का कुछ नाता है। वे कुछ यूनिफार्म के खिलाफ हैं। पुलिसवाला, पोस्टमैन, संन्यासी--वे बड़े खिलाफ हैं। यूनिफार्म जहां दिखी कि कुत्ता एकदम चौंकता है। वह बगावती है, यूनिफार्म का दुश्मन है। तो कुत्ते पुलिसवालों को रात चलने तो नहीं देते आसानी से।
तो एक पुलिसवाले ने कहा, मार ही डाल इस कुत्ते को। शैतान है यह कुत्ता। रात हमको भी तकलीफ देता है। इसकी झंझट खतम करो।
दूसरे पुलिसवाले ने थोड़ी देर गौर से देखा और पहले के कान में कहा कि
यह पुलिस कमिश्नर का कुत्ता है। यह कोई साधारण कुत्ता नहीं है, पागल। हम भी फंसेंगे।
वह दूसरा, जो कह रहा था मार ही डाल, एकदम लपका और गर्दन पकड़ ली उस आदमी
की और कहा, आवारे आदमी! किसके कुत्ते को मार रहा है? उस कुत्ते को उठा लिया कंधे में, पुचकारा। और उस आदमी को हथकड़ी डाल दी और कहा, इसको ले चलो।
पर दूसरे आदमी ने, दूसरे पुलिसवाले ने फिर से कहा कि नहीं भाई, भूल हो गई। लगता पुलिस कमिश्नर जैसा है, लेकिन है नहीं। यह तो कोई आवारा कुत्ता है।
फौरन उसने कुत्ते को नीचे पटका--कि गंदे कर दिए सब कपड़े! नहाना पड़ेगा!
और उस आदमी को छोड़ा और कहा, पकड़ इस कुत्ते को। मार डाल इसको यहीं, इसी वक्त। लेकिन वह पुलिसवाले ने फिर कहा कि भाई, मुझे संदेह होता है। झंझट है लेना। हो न हो, कहीं पुलिस कमिश्नर का ही न हो।
फिर बात बदल गई। यह प्रपंच है! फिर पकड़ ली गई गर्दन उस आदमी की और कहा
कि आवारा! आवारा कुत्ता तू है असल में। चल थाने! तू किस कुत्ते को मार रहा है? वह कुत्ता कंधे पर उठा लिया गया। फिर पुलिसवाला उसको पुचकार रहा है। कुत्ते से किसी को मतलब नहीं है, उस आदमी से किसी को मतलब नहीं है। वह कुत्ता पुलिस कमिश्नर का है तो सब बदल जाता है।
तुम भी ख्याल करो; अपनी जिंदगी में तुम रोज ऐसी घटनाएं पाओगे। पुलिस कमिश्नर का कुत्ता--बात ही और है। मिनिस्टर साहब का साला--बात ही और है। अब इससे क्या लेना-देना है किसी का! कुत्ता हो कि साला हो, इससे क्या लेना- देना है! नहीं लेकिन, फौरन बदल जाती है बात। अभी यह आदमी बिल्कुल आवारा दिख रहा था, लेकिन तत्क्षण पता चला कि मिनिस्टर साहब का साला है, तो तुम झुक गए। लेकिन तभी किसी ने कान में कहा कि यह भूतपूर्व मिनिस्टर का है। बात खतम हो गई। मरने दो, जाने दो। लेना-देना क्या है भूतपूर्व मिनिस्टर से! हिंदुस्तान में और नहीं तो कम से कम एक हजार भूत-प्रेत की तरह भूतपूर्व मिनिस्टर हैं। अब उनके कितने--एक हजार भूतपूर्व मिनिस्टरों के कितने साले! उनमें कई तो ऐसे हैं कि जब वे मिनिस्टर हुए तभी उन्होंने दावा किया था कि हम तुम्हारे साले हैं। और जब वे मिनिस्टर नहीं रहे, उन्होंने भी दावे छोड़ दिए। अब वे किसी दूसरे के साले हैं। ऐसे कुछ लोगों को मैं जानता हूं कि जो मिनिस्टर ताकत में होता है उसके वे रिश्तेदार होते हैं। यह स्वाभाविक है। यह प्रपंच है। यहां न आदमियों से किसी को मतलब है, न सत्य से किसी को मतलब है। यहां एक खेल है, एक सपना है। तुम्हारा लोभ, तुम्हारा लाभ, तुम्हारा अहंकार जिससे तृप्त हो।
दादू पाखंड पीव न पाइए...
अगर इस तरह के पाखंड में जीए, धोखेधड़ी में जीए, तो उस प्यारे को न पा सकोगे।
दादू पाखंड पीव न पाइए, जे अंतर सांच न होई।

अगर भीतर का सत्य न पाया हो, तो इस बाहर के प्रपंच से तुम उसे न पा सकोगे।
ऊपर थैं क्यों ही रहौ, भीतर के मल धोई।।
ऊपर से कैसे ही रहो, परमात्मा तुम्हारे भीतर के मलों के संबंध में पूछेगा। तुमने दिन में पांच बार स्नान किया था या नहीं, तिलक-चंदन-वंदन लगाया था या नहीं, चोटी धरी थी या नहीं, जनेऊ पहना था या नहीं... परमात्मा पागल नहीं है, वह तुम्हारी इन चीजों की शिनाख्त न करेगा--कि जनेऊ कहां है? चोटी कितनी लंबी है? गांठ लगी है कि नहीं? तिलक कौन सा लगाते हो? परमात्मा तुम्हारे भीतर की पूछेगा--कि भीतर के मल धोए? भीतर जागे, मूर्च्छा मिटाई? अहंकार हटाया, होश साधा?
ऊपर थैं क्यों ही रहौ, भीतर के मल धोई।।
तो बाहर से जैसे रहना हो, रहो। संसार में रहना हो, संसार में रहो, मैं कहता हूं। भीतर से संन्यासी रहो। दुकान पर बैठना हो, दुकान पर बैठो; भीतर से मंदिर मत छोड़ो। बाजार में
जीना हो, बाजार में जीओ; लेकिन भीतर के ध्यान का धागा हाथ में सधा रहे।
जे पहुंचे ते कहि गए...
जो भी पहुंचे उन्होंने यही कहा है।
... तिनकी एकै बात।
उनकी एक ही बात है।
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जात।।
जो भी सयाने हुए, जो जागे, जिन्होंने जीवन को जाना, उनका एक ही मत है, उनकी एक ही जाति है। महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट की एक ही जाति है।
तुम्हारी जाति हजार हैं। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, लाओत्से की बात एक है। तुम्हारे पंडितों की बातें अनेक हैं।
जे पहुंचे ते कहि गए, तिनकी एकै बात।
वह बात यही हैः भीतर का मल धो डालो। भीतर समर्पण को उपलब्ध होओ।
अहंकार को छोड़ो। भीतर सचाई को पाओ। दूसरों को दिखाने के लिए आचरण को बदलने की चिंता मत करो, अंतस को रूपांतरित करो। वह आचरण तो अपने आप बदल जाएगा।
आचरण अंतस की छाया है, परिणाम है।
सबै सयाने एकमत...
एक ही उनका मत है। छोटी सी उनकी बात है।
... उनकी एकै जात।।
उनकी जाति एक है।
पृथ्वी में दो तरह के लोग हैंः सयाने, प्रौढ़, जागे हुए; और सोए हुए, अप्रौढ़, बचकाने। सयाने और बचकाने, ऐसी दो जातियां हैं दुनिया में। बचकानों की हजारों जातियां हैं--पंथ, संप्रदाय, मत, शास्त्र। सयानों
का एक ही मत है, एक ही जाति है। क्योंकि एक ही वक्तव्य है उनका--कि तुम मिटो तो परमात्मा हो जाए। तुम्हारा होना--प्रपंच, पाखंड। तुम्हारा मिटना-- परमात्मा के आगमन के लिए द्वार। तुम खोओ ताकि परमात्मा मिल जाए। बूंद जब सागर में डूब जाती है तो सागर हो जाती है।
आज इतना ही।

सबै सयाने एकमत
दसवां प्रवचन

नीतिः कागज का फूल

पहला प्रश्नः आचरणवादी (बिहेवियरिस्ट) मनस्विदों का ख्याल है कि यदि ढंग से आचरण का प्रशिक्षण दिया जाए तो आदमी को बदल कर बेहतर बनाया जा सकता है। कृपया बताएं कि यह ख्याल कहां तक सही है।

आचरणवादी मनस्विद मनुष्य को एक यंत्र से ज्यादा नहीं मानते। मनुष्य में कोई आत्मा नहीं है। इसलिए मनुष्य का सारा आचरण संस्कार मात्र है। अगर ठीक आचरण को पुरस्कृत किया जाए तो वह बढ़ेगा। गलत आचरण को दंडित किया जाए तो वह घटेगा।
जैसे कोई व्यक्ति सिगरेट पीता है, नहीं छोड़ पाता है, तो आचरणवादी मनोवैज्ञानिक कहता है कि जब भी वह सिगरेट पीए तभी उसे बिजली का शॉक दिया जाए। जब-जब सिगरेट पीएगा तभी-तभी बिजली का शॉक लगेगा। वह उसके रोएं-रोएं को कंपा देगा। थोड़े दिनों में हाथ में सिगरेट उठाते ही घबड़ाहट और कंपन शुरू हो जाएगा। क्योंकि बिजली का धक्का और धूम्रपान संयुक्त हो जाएंगे। उनका एसोसिएशन हो जाएगा। उसके मन में दोनों बातें जुड़ जाएंगी। सिगरेट पीना असंभव हो जाएगा।
यह बात ठीक है। लेकिन मनुष्य शायद समाज के ज्यादा अनुकूल बनाया जा सके, समाज जैसा चाहता है वैसा मनुष्य से करवाया जा सके, राज्य के हाथ में आचरणवादी मनोवैज्ञानिक बड़ी महत्वपूर्ण शक्ति दे देंगे; जो न हथियारों से मिलती है, न पुलिस अदालतों से मिलती है। मनुष्य और भी पंगु हो जाएगा, श्रेष्ठ नहीं। मनुष्य का आचरण शायद समाज के अनुकूल हो जाए, शायद अपराध कम हों, कारागृह में लोग कम हों; लेकिन संतत्व का आविर्भाव सदा के लिए समाप्त हो जाएगा।
वह जो श्रेष्ठ मनुष्य है, उसकी श्रेष्ठता कहां है? उसके आचरण में नहीं, उसके बोध में है। उसकी श्रेष्ठता, वह क्या करता है, इसमें नहीं है। वह क्या है, इसमें है।
यह तो मनुष्य का सर्वाधिक पतन हुआ। उसके साथ व्यवहार यंत्र का हो गया। यंत्र कुशल हो सकता है, अकुशल हो सकता है। श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ का कोई सवाल न रहा। तुम्हारा बिजली का पंखा ठीक चलता है, गलत चलता है। ठीक चलने का मतलब है कुशलता से चलता है। गलत चलने का मतलब है कि कुशलता से नहीं चलता, शोरगुल करता है, आवाज करता है, हवा ठीक से नहीं फेंकता। लेकिन बिजली के पंखे को शुभ और अशुभ थोड़े ही कहा जा सकता है; श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ थोड़े ही कहा जा सकता है। तकनीकी दृष्टि से कुशल-अकुशल का भेद हो सकता है।
पावलफ, स्किनर और उनके अनुयायी सारी दुनिया में इस बात की हवा पैदा कर रहे हैं कि धर्म असफल हो गया, आदमी को बदल नहीं पाया। हम आदमी को बदल देंगे।
वे आदमी को बदलेंगे इस भांति, जैसे कोई किसी मरीज को स्वस्थ कर दे मार कर। बीमारी तो मिटे ही मिटे, बीमार भी मिट जाए।
यदि मुझसे पूछते हो तो मैं कहूंगा, आदमी बुरा रहे तो भी ठीक है, अपराध करे तो भी ठीक है; उसके पास कम से कम आत्मा तो है। आज अपराध करता है, कल चाहेगा तो नहीं करेगा। लेकिन जीवन में जो भी परिवर्तन जबरदस्ती आते हैं, वे मनुष्य की आत्मा का हनन, आत्मा को नष्ट करते हैं। जीवन में केवल वे ही परिवर्तन स्वागत-योग्य हैं, जो स्वेच्छा से आते हैं, जो तुम्हारे बोध और समझ का परिणाम होते हैं।
पर मनोवैज्ञानिक जो कह रहे हैं, वह कोई नई बात नहीं है। समाज ने अब तक यही किया है। और तुम्हारे तथाकथित धर्मों ने भी यही किया है। उसे थोड़ा समझना चाहिए।
धर्म कहते हैं, तुम अच्छा करोगे तो स्वर्ग में पुरस्कार होगा; तुम बुरा करोगे तो नरक में दंड पाओगे। यह भी बिजली का धक्का ही है। थोड़ा सूक्ष्म है, पर बहुत भेद नहीं है।

बाप की आज्ञा नहीं मानता बेटा, तो बाप मारता है। मानता है तो मिठाई देता है, पैसे देता है कि जाकर बाजार में कुछ भी खरीदना हो खरीद लो, खिलौने खरीद लाओ। यह भी व्यवहारवादी मनोविज्ञान ही है। क्योंकि जब बेटे ने कुछ अनुकूल नहीं किया, तुमने मारा। मार कर तुमने किसी आचरण के साथ भय का संबंध जोड़ दिया। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक इसी को और जरा कुशलता से करता है। क्योंकि चांटा कितना गहरा जाएगा? वह कहता है, बिजली का धक्का गहरा जाता है। चांटे से कुछ भी न होगा। लेकिन होता है कुछ।
समाज में भी तुम्हें जो अच्छे और बुरे लोग दिखाई पड़ते हैं उनमें अच्छे और बुरे संस्कार का ही अधिकतर भेद होता है। अच्छे घर में कोई पला है; अहंकार के साथ बात जोड़ दी गई है कि तुम कुलीन हो। तुमने अगर ऐसा व्यवहार किया तो परिवार, प्रतिष्ठा, समाज--तुमने अगर ऐसा व्यवहार किया तो तुम्हारा अहंकार दीन होगा, तुम्हारी प्रतिमा खंडित होगी। और समाज सब भांति दंड देता है गलत करने वाले को--अदालत है, मुकदमे हैं, प्रतिष्ठा है, सब नष्ट हो जाती है।
यह भी व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक का ही ख्याल है।
इसलिए मेरा सारा जोर इस बात पर है कि तुम कभी अपने को किसी और के द्वारा जबरदस्ती किसी सांचे में ढाले जाना स्वीकार मत करना। उसी भांति तुम आत्मा को खोते हो। आत्मा का एक ही अर्थ है, तुम्हारी स्वतंत्रता।
स्वतंत्रता का एक ही अर्थ है, तुम्हारे बुरे और भले होने की स्वतंत्रता। तुम चाहो तो बुरे हो सको, चाहो तो भले हो सको। यह चाह तुम्हारी ही हो। इस पर कोई बाहरी नियंत्रण न हो। तो ही तुम्हारे भीतर आत्मा का आविर्भाव होता है, विकास होता है।
यह भी हो सकता है कि मनुष्य की जाति को, पूरी पृथ्वी को अपराधों से मुक्त कर दिया जाए। यह भी हो सकता है कि सारे बुरे काम करने वाले लोग जबरदस्ती बदल दिए जाएं। लेकिन उससे लाभ न होगा। पृथ्वी सूनी हो जाएगी। यंत्र दिखाई पड़ेंगे--मानव यंत्र। मनुष्य खो जाएगा। मनुष्य की गरिमा खो जाएगी। वह अच्छी पृथ्वी भी मुर्दा होगी, जीवंत न होगी।
तुम जीवंत हो तुम्हारी भीतरी स्वतंत्रता के कारण, तुम्हारे चुनाव की क्षमता के कारण। तुम बुरे हो तो अपनी मर्जी से हो। तुम भले हो तो अपनी मर्जी से हो। तुम्हारी मर्जी के ऊपर कोई भी मर्जी थोपी जाए, वह तुम्हें नष्ट करेगी।
इसलिए बहुत बड़ा खतरा व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक से पैदा हुआ है। क्योंकि उसने बड़े सूक्ष्म इंतजाम खोज रखे हैं।
स्किनर ने विद्युत के इलेक्ट्रोड बनाए हैं। वे मस्तिष्क के भीतर रखे
जा सकते हैं। किसी न किसी दिन कोई चीन, कोई रूस, कोई तानाशाही हुकूमत उनका उपयोग करेगी। यह असंभव है, जब भी कोई चीज ईजाद कर ली जाती है तो उसके उपयोग से बचना बहुत असंभव है। और जब उपयोग इतना ज्यादा लाभदायी हो राज्य के लिए, समाज के लिए। छोटा बच्चा पैदा होगा तभी एक छोटा सा आपरेशन--मां-बाप को पता भी न चलेगा--उस बच्चे के मस्तिष्क में एक छोटा सा इलेक्ट्रोड डाल दिया जाएगा। वह जीवन भर काम करेगा।
उस इलेक्ट्रोड के डाले जाने के बाद, दूर दिल्ली में बैठा हुआ राजनीतिज्ञ तुम्हें संचालित कर सकता है। जैसे रेडियो दिल्ली से संचालित होता है, तुम घर बैठे सुनते हो, ऐसा राजनीतिज्ञ दिल्ली से बैठ कर तुम्हारे मस्तिष्क को संचालित कर सकता है। वह तुमसे कहे कि अच्छे हो जाओ, सिगरेट मत पीओ, शराब मत पीओ; तुम न पी सकोगे। तुम्हें लगेगा, तुम्हारे भीतर की आत्मा तुमसे कह रही है कि सिगरेट मत पीओ, शराब मत पीओ। वह तुमसे कहे कि जाओ, मुसलमानों की हत्या कर दो या हिंदुओं को मार डालो। तो तुम कहोगे, यह अंतरात्मा की आवाज है। और यह आवाज इतनी प्रबल होगी कि तुम इससे लड़ न पाओगे। यह सिर्फ विद्युत यंत्र तुम्हारे भीतर काम कर रहा है। और तुम्हें संचालित किया जा सकता है।
व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक इस पृथ्वी पर इस समय सबसे ज्यादा खतरनाक प्रस्तावना लेकर मौजूद हैं। उन्होंने सब चीजें खोज ली हैं। वे कहते हैं, अब आदमी को बुरा होने की कोई जरूरत नहीं। असल में वे यह कहते हैं, अब आदमी को आदमी होने की कोई जरूरत नहीं। तुम थोड़ा सोचो कि तुम अगर जाकर मंदिर में

पूजा कर लोगे क्योंकि तुम्हारे भीतर मस्तिष्क को दिल्ली से संचालित किया गया है और मंदिर में पूजा करने का आदेश मिला है, तुम्हारी पूजा का क्या मूल्य होगा? दो कौड़ी की भी नहीं होगी तुम्हारी पूजा। उससे तो बेहतर था तुमने कभी पूजा न की होती। कम से कम तुम तुम तो थे। अब तुम तुम नहीं हो। अब आत्मा नहीं है, अब दिल्ली तुम्हारी आत्मा है। अब तुम अपने मालिक नहीं हो, अब राज्य तुम्हारा मालिक है। और तुम्हें पता भी न चलेगा। मनोवैज्ञानिकों ने शामक तत्व खोजे हैं--ट्रैंक्वेलाइजर्स। बहुत सूक्ष्म अब उनकी खोज हो गई है। उनका कहना है, कोई जरूरत नहीं है कि लोग उपद्रव करें, लड़ाई-झगड़ा करें, उनको समझाओ और भाषण दो, व्याख्यान दो, इस सबकी कोई जरूरत नहीं है। वह जो नगर का जलस्रोत है उसमें शामक द्रव्य मिला दो। पूरा गांव पानी तो पीएगा। किसी को पता भी नहीं चलेगा, लेकिन वह शामक द्रव्य तुम्हें भीतर से लड़ने की वृत्ति को शून्य कर देगा। लड़ने का भाव ही न होगा। तुम सुस्त पड़ जाओगे। तुम्हें पता भी न चलेगा। क्रोध पैदा न होगा। क्योंकि क्रोध को रासायनिक रूप से रोका जा सकता है।
या जब राज्य की इच्छा होगी कि अब हिंदुस्तानियों को चीनियों से लड़ाना है; कि चीनियों को रूसियों से लड़ाना है; तब वह तत्व बंद कर देगा और उसका विपरीत तत्व पानी में मिला देगा। तब तुम एकदम खूंखार जंगली जानवर की तरह हो जाओगे। तब तुम पागल की तरह लड़ोगे। अगर तुम्हें लड़ने का मौका न मिलेगा तो तुम खुद की आत्महत्या कर लोगे या घर को आग लगा दोगे। तुम चाहोगे कि कहीं कोई युद्ध हो जाए। तुम एकदम दीवाने हो उठोगे मरने-मारने को।
ये खतरनाक ईजादें हैं। मेरे देखे एटम बम से भी ज्यादा खतरनाक ईजादें हैं। क्योंकि एटम बम तुम्हारे शरीर को ही मार सकता है। ये खोजें तुम्हारी आत्मा को ही नष्ट कर देंगी। आदमी तब यंत्रवत होगा।
नहीं; व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक जो कहते हैं उससे मनुष्य श्रेष्ठ नहीं बनाया जाएगा, उससे मनुष्य मनुष्य ही न रह जाएगा। श्रेष्ठता तो स्वतंत्रता के सोपानों से उपलब्ध होती है। तुम मुझसे अगर परिभाषा पूछो श्रेष्ठता की, तो एक ही परिभाषा मेरे पास हैः तुम जितने स्वतंत्र हो उतने श्रेष्ठ हो। तुम अगर परिपूर्ण स्वतंत्र हो तो तुम परम श्रेष्ठ हो। इसलिए हमने परम श्रेष्ठ को मुक्त कहा है। और परम श्रेष्ठता की अवस्था को मोक्ष कहा है।
मोक्ष का अर्थ है, तुम्हारी स्वतंत्रता इतनी आत्यंतिक है कि जगत की कोई भी शक्ति तुम्हारी स्वतंत्रता को रत्ती भर भी छीन नहीं सकती। तुम अपनी आत्मा के पूरे-पूरे मालिक हो गए हो। तुम्हारी मालकियत आखिरी है। इस पर अब कोई दावा नहीं है। लाख उपाय किया जाए, तुम्हें संचालित नहीं किया जा सकता। तुम अपने ही प्रकाश में जीने लगे हो। तुम अपने दीये हो गए हो। कोई दूसरा तुम्हें चलाता नहीं। तुम अपने प्राणों से चलते हो या अपने प्राणों से रुकते हो। तुम्हारी अंतर्वीणा पर किसी और की अंगुलियां नहीं हैं अब। तुम्हारी वीणा से तुम्हारा ही गीत पैदा होता है। तुम्हारे पैर तुम्हारी अपनी ही धुन पर नाचते हैं, किसी सरकार के युद्ध के बाजे पर नहीं, बैंड-बाजे पर नहीं। न किसी समाज के आधार पर। तुम अपनी अंतःप्रज्ञा, अपने बोध, अपने भीतर के प्रकाश से चलते हो।
माना कि वह प्रकाश सूरज जैसा नहीं है, छोटे दीये जैसा है। पर उतना काफी है। चलने के लिए कोई सूरज नहीं चाहिए। चलने के लिए तो छोटा दीया काफी है। चार कदम जमीन दिखाई पड़ जाए, बस इतना काफी है। जब तुम चार कदम चल लोगे, आगे चार कदम जमीन दिखाई पड़ने लगेगी। कोई आदमी एक कदम से ज्यादा एक बार में तो चलता नहीं। एक कदम भी साफ-साफ दिखाई पड़ता रहे तो पर्याप्त है। और एक-एक कदम चल कर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
बुद्ध का आखिरी वचन इस पृथ्वी पर विदा होते वक्त स्मरण रखने योग्य है। वह वचन हैः अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बनो!
तुम्हारी श्रेष्ठता तुम्हारी स्वतंत्रता से आविर्भूत होगी। हां, तुम्हारा आचरण दूसरे संचालित कर सकते हैं। इसलिए मैंने आचरण को नीति से ज्यादा जगह नहीं दी है। अंतस धर्म है; आचरण नीति है। नीति तुम्हें समाज के योग्य बना देती हो, परमात्मा के योग्य नहीं बनाती।

एक और नीति है जो तुम परमात्मा के योग्य बनते हो तब तुम्हारे जीवन में प्रकट होती है। उस नीति का संगीत और! उस नीति का आनंद और! उस नीति की सुगंध स्वतंत्रता की है।
तो स्वतंत्रता को तुम कसौटी मानो। मोक्ष को लक्ष्य मानो। और इंच-इंच तुम्हें अपनी स्वतंत्रता को बढ़ाते जाना है। एक चेष्टा ध्यान में रखो कि तुम स्वयं ही होने को पैदा हुए हो, किसी और की प्रतिलिपि नहीं। किसी और को मान कर चलने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। तुम्हारी नियति तुम्हारे भीतर छिपी है। अगर तुम्हें अपनी नियति पानी है तो स्वयं होने की उदघोषणा करते रहना। झुकना मत जबरदस्ती के सामने। गुलाम मत बनना। न किसी को गुलाम बनाना, न किसी के गुलाम बनना। अपनी स्वतंत्रता को बचाना और दूसरे की स्वतंत्रता की रक्षा करना। तो ही तुम्हारे भीतर श्रेष्ठ मनुष्य का जन्म होगा। अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

दूसरा प्रश्नः आरोपित दिखाऊ नीति से क्या समाज का काम चल जाता है? क्या उसे धर्म से उदभूत नीति की और संतों की आवश्यकता नहीं रहती है?

थोड़ा जटिल सवाल है। थोड़े सूक्ष्म में उतरना पड़े। नाजुक है बात। काफी होश से समझेंगे तो समझ में आ सकेगी।
संत समाज की आवश्यकता नहीं है। समाज संत के बिना मजे से जी लेता है।
सच तो यह है, संत के कारण समाज ठीक से नहीं जी पाता। संत एक बेचैनी पैदा करता है। संत दूसरे लोक का स्वप्न तुम्हें दे देता है। संत में तुम मूर्तिमान देख लेते हो अपना भविष्य। तुम व्याकुल हो जाते हो। तुम भी वैसे होने की अभीप्सा से भर जाते हो।
बुद्ध न होते, महावीर न होते, कृष्ण न होते, क्राइस्ट न होते, कबीर, दादू न होते--तुम अपनी दुकान पर मजे में होते। इन्होंने अड़चन पैदा कर दी। इन्होंने तुम्हारे भीतर एक स्वर जगा दिया, जो पूरा होना मुश्किल मालूम होता है। और जिसे बिना पूरा किए तुम्हें चैन भी नहीं मिल सकता। इन्होंने तुम्हें बेचैन किया। इन्होंने एक प्यास उठाई।
तुम भले थे अपने घर। बच्चे थे, पत्नी थी, सब ठीक चलता था। तुम्हें पता
ही न था कि और भी होने का कोई ढंग है। तुम अपनी दुकान पर बैठे थे। ग्राहक थे, तिजोड़ी भरती थी। सब ठीक चलता था। सब ठीक ही था। तुम्हें पता ही न था कि तुम कंकड़-पत्थर बीनने में जीवन बिता रहे हो, हीरों के खजाने भी पास हैं। संत के बिना समाज मजे से चलता है, कोई अड़चन नहीं है। संत के कारण ही अड़चन होती है। यह तो पहली बात समझ लो। क्योंकि संत तुम्हारे बीच अचानक तुम्हें चौंका देता है, जगा देता है। तुम नींद में खोए थे। तुम एक मधुर स्वप्न देखते थे कि तुम सम्राट हो; कि बड़ा तुम्हारा साम्राज्य है; कि स्वर्ण के तुम्हारे महल हैं। और संत तुम्हें बीच में जगा देता है, नींद तोड़ता है, सपना भी टूट जाता है। तुम संत पर नाराज होते हो। तुमने कभी किसी संत को माफ नहीं किया।
हां, संत जब मर जाता है, तुम उसकी पूजा करते हो। वह पूजा भी भुलाने का उपाय है। वह पूजा भी यह कहने का ढंग है कि तुम अलग ही तरह के व्यक्ति हो। अवतार हो। तुम बने ही और ढंग से। हम साधारण दीन-हीन मनुष्य हैं। हम तुम्हारे जैसे नहीं हो सकते। हम तो सिर्फ तुम्हारी पूजा कर सकते हैं। बस इतनी पूजा से ही तुम्हारा आशीर्वाद हो जाए और कुछ हो जाए तो ठीक। ज्यादा हमसे तुम अपेक्षा मत करना।
जिंदा संतों को तुम मारते हो, मुर्दा संतों की तुम मूर्तियां बनाते हो। क्योंकि मुर्दा संत तुम्हारी नींद को नहीं तोड़ते। उनसे तुम्हें कोई बेचैनी नहीं होती। मुर्दा संत तुम्हारी नींद के हिस्से हो जाते हैं। शायद मुर्दा संतों को तुम अपने सपनों में सजावट बना लेते हो। मुर्दा संतों को तुम अपने सपनों में ही एक हिस्सा बना लेते हो। तुम संत होने के भी सपने देखने लगते हो। तुम्हारी पूजा-अर्चना चल पड़ती है, धूप जलने लगती है, दीये जल जाते हैं। मंदिर सजते-संवरते जाते हैं। तुम्हारे जीवन में कभी मंदिर का कोई अवतरण नहीं होता।

लेकिन जिंदा संत तुम्हें चौंकाता है, तुम्हारी नींद को तोड़ता है। उससे तुम नाराज होते हो। तुमने जीसस को सूली दी, तुमने महावीर पर पत्थर फेंके, तुमने सुकरात को जहर पिलाया। और यह तुम्हारा सदा का व्यवहार रहा है। और मैं जानता हूं कि उसका कारण साफ है। कारण यह है कि यही लोग हैं जिन्होंने तुम्हारे जीवन की चैन छीन ली। यही लोग हैं जिन्होंने तुम्हें चौंकाया और एक झलक दिखा दी दूर के लोक की। अब कभी भी, लाख तुम उपाय करो, तुम ठीक से न सो पाओगे। तुम सोओगे और वह धुन बजती रहेगी। कोई दूर की पुकार पुकारती रहेगी। अब तुम्हारी नींद पुरानी जैसी न हो पाएगी। कुछ भी तुम उपाय करो--मारो पत्थर, जहर दो, गोली लगाओ, सूली पर चढ़ा दो--लेकिन तुम भूल न पाओगे। जीसस तुम्हारा पीछा करेंगे। सूली पर लटके हुए पीछा करेंगे। रह-रह कर तुम्हें याद आएगी। तुम्हें बेचैनी होगी।
संत के बिना समाज मजे से जीता है। संत आवश्यक नहीं है। हो भी नहीं सकते आवश्यक; क्योंकि संत की कोई उपयोगिता नहीं है। वह तो जीवन का परम काव्य है। कविता की कोई उपयोगिता है? कविता के बिना जिंदगी नहीं होगी, ऐसा तुम सोचते हो? क्या अड़चन आएगी? न हो कविता तो संसार के किस रास्ते पर कौन सी अड़चन पड़ेगी? कवि खो जाएं संसार से तो दुकान के व्यवहार में, घर के व्यवहार में, गृहस्थी में, संसार में, प्रपंच में कौन सा नुकसान हो जाएगा? कवियों के होने से कौन सी सहायता मिल रही है?
संगीत खो जाए संसार से तो क्या फर्क पड़ेगा नोटों की दुनिया में? संगीत
को ढाल कर रुपये तो बनाए भी नहीं जा सकते। रुपये को पिघला कर भी संगीत पैदा नहीं होता।
नहीं; जीवन में कुछ चीजें हैं जो उपयोगी हैं और कुछ चीजें हैं जो गैर-उपयोगी हैं। सार्थकता उनकी भला हो, लेकिन उपयोग कुछ भी नहीं है।
तो संत तो शुद्ध काव्य है, शुद्ध संगीत है। इतना शुद्ध कि उसको उठाने
के लिए वीणा की भी जरूरत नहीं है। और इतना शुद्ध काव्य कि उसके लिए शब्द भी आवश्यक नहीं हैं। शून्य में ही उसकी गूंज है। संत तो आखिरी बात है मनुष्य के बाबत, शिखर है गौरीशंकर का। उसका उपयोग क्या है? बाजार में बेचोगे? क्या करोगे गौरीशंकर का? क्या उपयोग है? दूर से दर्शन कर लो। सुंदर है, महिमावान है, उसके हिम से लदे शिखर थोड़ी देर को आंखों को मोह लेते हैं। फिर तुम वापस अपने बाजार में लौट जाते हो। गौरीशंकर न हो, बंबई में कुछ फर्क पड़ेगा? गौरीशंकर के होने से बंबई में क्या फर्क पड़ रहा है? कोई फर्क न पड़ेगा।
संतों के न होने से संसार में कोई फर्क न पड़ेगा। संत की कोई उपयोगिता नहीं। न बेच सकते, न खरीद सकते। न उसके रुपये ढाल सकते। न उससे तोपें बना सकते, न बम के गोले बना सकते। वह न युद्ध के काम का है, न शांति के काम का है। किसी काम का नहीं है।
फिर संत का क्या उपयोग है?
वह एक महिमा है, एक सौंदर्य है, एक संगीत है। उसे देख कर तुम्हारे भीतर सपने जगते हैं। उसे देख कर तुम्हारे भीतर एक अभीप्सा उठती है। उसे देख कर तुम्हारे भीतर छिपा हुआ अंकुर कसमसाता है और तुम्हारे बीज को तोड़ कर बाहर आना चाहता है। उसे देख कर तुम्हारे भीतर पहली दफा यह ख्याल उठता हैः अगर हड्डी-मांस-मज्जा के बीच इस तरह की घटना घटती है, ऐसा महिमा का रूप प्रकट होता है, तो मैं चूक रहा हूं। सभी कुछ मेरे पास भी है। यह घटना से मैं वंचित रह गया हूं। जीवन को मैं उसके पूरे शिखर पर न ले जा सका। मैं बाजार की गलियों-गलियारों में ही भटकता रहा, मंदिर तक मेरी पहुंच न हो पाई। मैंने बहुत द्वार खटखटाए, लेकिन सब द्वार संसार के थे। मैंने वह द्वार नहीं खटखटाया, जहां ऐसी महिमा का आविर्भाव होता है। कोई उपयोग नहीं है जिसका, लेकिन जिसके बिना पूरा जीवन निरुपयोगी है।
संतत्व का कोई उपयोग नहीं है, लेकिन संतत्व के बिना सारा जीवन गैर-उपयोगी है। संतत्व इस लोक की घटना नहीं है। इस लोक में किसी परा-लोक का अवतरण है। जैसे अंधेरे में एक किरण उतर आए। उस अंधेरे में उस किरण का कोई संबंध नहीं है; विजातीय है, विदेशी है।
संत सदा विदेशी है। वह तुम्हारे देश का कभी भी नहीं है। वह परदेशी है, अजनबी है। वह तुम्हारे बीच होता जरूर है, लेकिन तुम्हारे बीच से नहीं है।

इसलिए तुम सदा उसके साथ बेचैनी भी अनुभव करते हो। न वह तुम्हारी भाषा समझता, न तुम उसकी भाषा समझते। न वह तुम्हारे ढंगों को राजी होता, न तुम उसके ढंगों को राजी होते।
लेकिन फिर भी तुम उसके सान्निध्य में अनुभव करते हो--कुछ हुआ है। कुछ हुआ है, जो जब तक तुम्हें न हो जाएगा तब तक तुम्हें बेचैनी पकड़ी रहेगी। कुछ घटना घटी है--अनबूझ है, अज्ञात है। पकड़ में नहीं आती। मुट्ठी बांधते हो, छूट-छूट जाती है। परिभाषा में नहीं बंधती; शब्दों के आंटने में नहीं अंटती। लेकिन कुछ हुआ है। उसका संस्पर्श तुम्हें होता है। तुम्हारे प्राण भीतर पुलकित होते हैं, डांवाडोल होते हैं। ऐसा ही कुछ तुम्हारे जीवन में भी हो, तभी तुम्हारे जीवन की उदासी, तभी तुम्हारे जीवन की ऊब, तभी तुम्हारे जीवन पर जम गई राख झड़ेगी। तुम्हारे भीतर का अंगारा निखरेगा, ज्योतिर्मय का जन्म होगा।
संत आवश्यक नहीं है, क्योंकि उसकी कोई उपयोगिता नहीं है। वह कोई कमोडिटी नहीं है। अर्थशास्त्र में उसकी कहीं कोई जगह नहीं है। राजनीति में उसके लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। बाजार में उसे तुम कहां बिठाओगे? वह जहां जाएगा तुम्हारे संसार में, वहीं अजनबी होगा। उसका तुम कोई भी उपयोग नहीं कर सकते। लेकिन फिर भी, तुम उसे देखते ही तत्क्षण पहचान लोगे कि यही तुम्हारे भीतर भी होना चाहिए, अन्यथा तुम्हारा जीवन व्यर्थ गया।
इसलिए तो संतों के पास जाने से लोग डरते हैं। बुद्धपुरुष गांव से गुजर जाते हैं। तुम अपनी तराजू लिए दुकान पर बैठे रहते हो, कूड़ा-करकट तौलते रहते हो। बुद्धपुरुष तुम्हारे द्वार से निकल जाते हैं। तुम्हें फुरसत नहीं होती, तुम अपने ग्राहक से बात करते रहते हो। बुद्धपुरुष तुम्हारे द्वार पर दस्तक भी दे जाते हैं। तुम कहते हो, आगे बढ़ जाओ, क्योंकि अभी फुरसत नहीं है।
तुम बचे हो। तुम्हारे बचने का कारण भी साफ है। तुम्हें अनजाने ही एक बात का अहसास है कि ऐसे लोगों के पास जाना खतरनाक हो सकता है। खतरनाक है! तुम्हारा अहसास बिल्कुल सही है। खतरनाक है, क्योंकि तुम फिर वही न हो सकोगे जो तुम थे। तुम्हारी नींद सदा के लिए छिन जाएगी। तुमने जिसे सुख माना था, वह दुख दिखाई पड़ने लगेगा। और तुमने जिस लोक के संबंध में कभी सोचा भी न था, वही लोक तुम्हारे जीवन का केंद्र बन जाएगा, उसी की तरफ तुम चुंबक की तरह खिंचे हुए चलने लगोगे।
नहीं, समाज संत के बिना मजे से चलता है। कोई जरूरत नहीं है। लेकिन संत
के बिना समाज बिल्कुल मुर्दा है। हो या न हो, बराबर है। संत के होने में ही तुम्हारा भविष्य पहली दफा झलकता है। जैसे बिजली कौंध जाए अंधेरी रात में और रास्ता तुम्हें आगे तक का दिखाई पड़ जाए। फिर बिजली खो जाती है। अब तुम्हें रास्ता दिखाई नहीं पड़ता, तुम अंधेरे में फिर खड़े हो। लेकिन अब तुम वही नहीं हो जो बिजली कौंधने के पहले थे। रास्ते की झलक मिली है। अब अगर तुम न चल पाओ रास्ते पर तो तुम्हारी अपनी भूल होगी। तुम अपने को क्षमा न कर पाओगे अब। रास्ता है। टटोलने की बात है। थोड़ा खोजने की बात है।
संतत्व इस जगत में परमात्मा की अभिव्यक्ति है।
परमात्मा का क्या उपयोग हो सकता है? तुमने कभी सोचा कि परमात्मा का क्या उपयोग हो सकता है? परमात्मा से ज्यादा निरुपयोगी कोई चीज है संसार में? किसी भी तो काम का नहीं है। लेकिन जो परम उपयोगी है वह निरुपयोगी दिखाई पड़ेगा। क्योंकि उसका उपयोग वस्तुओं के अर्थ में नहीं है; उसका उपयोग आत्मा के अर्थ में है।
ऐसा समझने की कोशिश करो, तुम्हारे जीवन में भी कुछ भीतरी चीजें हैं जिनका कोई उपयोग नहीं है। प्रेम के बिना क्या अड़चन आ जाएगी? प्रेम के कारण ही अड़चन आती है। अगर प्रेम बिल्कुल न हो तुम्हारे जीवन में तो तुम जितने कुशल व्यवसायी हो सकोगे, क्या प्रेम के रहते हो सकोगे? कभी ग्राहक पर प्रेम आ जाएगा। कभी जिसकी तुम जेब काट रहे थे उस पर प्रेम आ जाएगा। कभी किसी ऐसे पर प्रेम आ जाएगा, तुम अपने धन को लुटा देना चाहोगे।
नहीं, प्रेम गड़बड़ ही करता है। उससे कुछ हल नहीं होता। कुछ मिलता नहीं है, कुछ खोता है। इसीलिए तो जो होशियार लोग हैं वे प्रेम नहीं करते। जो बहुत कुशल हैं, वस्तुतः संसारी हैं, वे प्रेम से सदा चार कदम दूर रहते हैं।

वे ऐसी झंझट में नहीं पड़ते। विवाह कर लेते होंगे, प्रेम नहीं करते। क्योंकि विवाह तो सिक्कों की दुनिया की बात है। वह अर्थशास्त्र का हिस्सा है। वह तो वहीं है जहां बाजार है। इसीलिए तो विवाह करने वाला खुद नहीं सोचता। क्योंकि जवान आदमी है! बाजार के संबंध में अभी बहुत कुशल नहीं है। उसका बाप सोचता है, उसकी मां सोचती है। वे ज्यादा कुशल हैं। बाजार उन्होंने काफी देखा है। संसार देखा है।
अनुभवी जिनको तुम कहते हो--अनुभव का मतलब ही क्या है तुम्हारी दुनिया में? कुछ ठीकरे उन्होंने ज्यादा इकट्ठे कर लिए हैं, तिजोड़ी उनके पास थोड़ी बड़ी है। सपने उन्होंने ज्यादा देर तक देखे हैं, नींद उनकी लंबी है। पचास-साठ साल, सत्तर साल रह चुके हैं। बाजार का रोआं-रोआं परिचित है। वे विवाह तय करते हैं। उसमें भी कहीं भूल-चूक न हो जाए, तो पंडित और ज्योतिषी की भी सलाह ले लेते हैं कि चांद-तारे भी इस धंधे में सहयोगी हैं या नहीं! कहीं चांद-तारे विपरीत तो नहीं हैं! सब बिठा लेते हैं हिसाब। विवाह हिसाब से होता है, गणित से। ज्योतिष गणित है। गणित और हिसाबी आदमी विवाह का इंतजाम करता है।
स्वभावतः बच्चे कैसे यह इंतजाम कर सकते हैं? बच्चों से डर है। बच्चे प्रेम में पड़ सकते हैं।
इसलिए जो बहुत कुशल जातियां हैं, जैसे हिंदू, वे बाल-विवाह करते थे। प्रेम के होने के पहले ही, प्रेम की संभावना के पहले ही विवाह कर दो। दस साल, बारह साल--बहुत! क्योंकि चौदह साल के बाद खतरा शुरू होगा। अगर कहीं एक दफा प्रेम की किरण उतर गई, तो विवाह सदा के लिए फीका हो जाएगा। उसे उतरने ही मत दो। इसके पहले कि असली सिक्के का कोई अनुभव हो, नकली सिक्के को हाथ में रख दो। इसके पहले कि असली सिक्के की आकांक्षा जगे, नकली सिक्के की सांत्वना में डुबा दो। प्रेम को मार ही डालो। प्रेम का कोई उपयोग तो नहीं है।
इसलिए बड़े-बूढ़े प्रेम पर हंसते हैं। वे कहते हैं, करोगे क्या प्रेम का? कुल देखो, धन देखो, दहेज देखो। प्रेम का क्या करोगे? प्रेम से कहीं पेट भरता है? कि प्यासे हो तो प्यास बुझती है? कि भूखे हो तो रोटी मिलती है? प्रेम का क्या करोगे? पागल हो गए हो? समझ से काम लो। विवाह साथ देता है। प्रेम बिल्कुल गैर-जरूरी बात है। उसके बिना मजे से चल जाता है। क्या अड़चन है? करोड़ों-करोड़ों लोग बिना प्रेम के जी रहे हैं। कौन सी अड़चन आ गई है? हां, जिन्होंने प्रेम किया--कोई मजनू, कोई फरिहाद, कोई लैला, कोई शीरी-- वे तकलीफ में हैं। उन्होंने समझदारों की न मानी। अपनी नासमझी में उतर गए। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, उन्होंने सब खो दिया हो तो भी उन्होंने कुछ पाया। बाजार बिल्कुल लुट गया हो, दुकान बिल्कुल नष्ट हो गई हो, दिवाला निकल गया हो, कुछ भी न मिला हो संसार के अर्थों में, लेकिन प्रेम की एक किरण भी मिली, तो प्रार्थना की खबर मिली, तो परमात्मा का इशारा मिला।
गणित सीखने का फायदा है। कविता करने का क्या फायदा है? कवि होकर क्या
हो जाएगा? उसे तुम भंजा न सकोगे। गुनगुनाते रहो भला, लेकिन गुनगुनाने से कहीं जीवन चला है! रास्ता चलना है तो रास्ते के हिसाब को मानना पड़ेगा। गणित सीखो, इंजीनियरिंग सीखो, व्यवसाय सीखो। कविता का क्या करोगे? गद्य में जीओ। उसकी जीवन में जरूरत है। पद्य का क्या उपयोग है?
लेकिन जिसने जीवन में पद्य न जाना, उसे परमात्मा की खबर ही न मिलेगी। पुराने प्राचीन शास्त्र सभी पद्य में हैं। इशारा है वह कि परमात्मा का रास्ता गद्य का नहीं है, पद्य का है। उपयोग का नहीं है, आनंद का है।
सुबह तुम घूमने निकलते हो। तब तुम कहां जा रहे हो? कहीं पहुंचना है? कहीं भी नहीं पहुंचना है। वही रास्ता है जिससे तुम रोज दफ्तर जाते हो, सुबह घूमने जाते हो। कभी रात आकाश खुला होता है, तारों से भरा होता है, तब तुम घूमने निकल पड़े हो। एक गीत गुनगुनाते हो, मस्ती से चलते हो। उसी रास्ते से तुम दफ्तर और दुकान भी जाते हो, तब तुम्हारी मस्ती कहां खो जाती है? रास्ता वही, वृक्ष वही, तुम वही; सब कुछ वही है। लेकिन जब तुम दफ्तर जा रहे हो तब रास्ते का काव्य समाप्त हो गया। तब रास्ता गद्य है, पद्य नहीं। तब तुम मतलब से जा रहे हो। तब एक स्वार्थ है। तब एक लक्ष्य है। तब फलाकांक्षा है। तुम कुछ पाने जा रहे हो। तुम्हें इस रास्ते के किनारे खड़े

वृक्षों से कोई लेना-देना नहीं है। आकाश में तारे होंगे, होंगे। तुमसे कोई संबंध नहीं है। तुम्हारी नजर रुपयों पर लगी है। तुम दफ्तर की तरफ भागे जा रहे हो।
फिर किसी दिन इसी रास्ते पर तुम हो--तुम भी वही, चांद-तारे वही, वृक्ष वही, सूरज वही, सब वही--लेकिन तुम टहलने निकले हो। तुम कहीं जा नहीं रहे हो। तुम सिर्फ मौज में हो। तुम श्वास लेने का आनंद ले रहे हो। तुम चलने का मजा ले रहे हो। चलने में एक लय है, एक नाच है, एक नृत्य है। तुम नाचते हुए निकले हो। सब कुछ बदल जाता है।
जीवन को देखने के दो ढंग हैंः एक गद्य, एक पद्य। गद्य का उपयोग है। अगर ग्राहक से बात करनी हो तो कविता में मत करना। सीधा-साफ गद्य जरूरी है। लेकिन अगर प्रेमी से बात करनी हो तो गद्य काम आएगा? नहीं आएगा। वहां सीधी- सादी बात की कोई जगह नहीं है। वहां पद्य काम आएगा। जिसमें इशारे तो होते हैं, लेकिन बड़े धुंधले होते हैं; चांद-तारों की तरह होते हैं। जिसमें रोशनी तो होती है, लेकिन ऐसी नहीं होती कि आंखें चौंधिया जाएं। लुभाती है, बुलाती है। साफ भी होता है और रहस्य भी होता है। प्रेम की बात कहनी हो तो कविता में ही कही जा सकती है। लेकिन कविता का कोई उपयोग नहीं है। तुम्हारे जीवन में अगर उपयोग ही उपयोग है, तो तुम मुर्दा हो। तुम्हारे जीवन में अगर उपयोग के साथ-साथ, समानांतर उसकी भी धारा चल रही है, जिसका उपयोग तो नहीं है, महिमा बहुत है--प्रेम की। कभी तुम घूमने भी जाते हो--बेमतलब। कभी तुम राह पर किसी अजनबी से भी नमस्कार कर लेते हो--अकारण। न इससे नौकरी चाहनी है, न इससे पैसा मांगना है, न इससे कुछ लेना-देना है। इससे कोई पहचान भी नहीं है। पर हाथ जोड़ने का आनंद ही काफी है। अपरिचित के सामने झुकने का मजा काफी है। अजनबी को अपना बना लेने का आनंद काफी है। क्षण भर को अजनबी से अजनबीपन मिट जाए। दो अनजान मिले, झुके, एक-दूसरे में झांके--पर्याप्त है। एक गीत का जन्म हो गया। अगर तुम्हारे जीवन में उपयोग के साथ-साथ अनुपयोगी लेकिन सार्थक, अनुपयोगी लेकिन महिमावान, अनुपयोगी इस जगत की दृष्टि में लेकिन उस परमात्मा की दृष्टि में जिसकी परम सार्थकता है, वह भी चल रहा है, तो मैं तुम्हें संन्यासी कहता हूं।
तुम कहोगे, जब अनुपयोगी इतना महिमावान है, तो फिर हम उपयोगी को छोड़ कर हिमालय क्यों न चले जाएं?
वह पुराने संन्यासियों ने किया था। मैं उस पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि मेरा मानना है कि वह जो अनुपयोगी है, उसके सहारे तुम जी न सकोगे। उसके बिना तुम जी सकते हो, तुम्हारे जीवन में काव्य न होगा। उसके सहारे तुम जी न सकोगे। काव्य होगा, लेकिन तुम मर जाओगे।
ऐसा ही समझो कि कविता से कोई पेट तो नहीं भरता। अगर भूखा आदमी कविता करता रहे, कितने दिन करेगा? आज नहीं कल मरेगा। और जब मरेगा तो कविता भी सूख जाएगी। लेकिन ध्यान रखना, पेट भर लेना ही कविता नहीं है। तुम कितना ही पेट भर लो, इससे कविता का कोई जन्म न हो जाएगा। तुम बिल्कुल भरे पेट बैठे रहो, तो भी इससे कविता का जन्म न होगा। तुम बैठे रहोगे, बैठे-बैठे मर जाओगे। रोटी जरूरी है, काफी नहीं है। आवश्यक है, पर्याप्त नहीं है। रोटी चाहिए ताकि कविता का जन्म हो सके। रोटी की भी सार्थकता यही है कि गैर-सार्थक पैदा हो जाए। शरीर चाहिए ताकि आत्मा का अनुभव हो सके। संसार चाहिए ताकि संन्यास का फूल खिल सके। इसलिए मैं हिमालय के पक्ष में नहीं हूं। मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारे इसी जीवन में समानांतर तुम एक और द्वार खोल लो। जैसे रेल की दो पटरियों पर ट्रेन दौड़ती है। दोनों समानांतर चलती हैं। कहीं मिलती नहीं पटरियां। मिल नहीं सकतीं। समानांतर हैं। मिलाने की कोई जरूरत नहीं। तुम्हारे जीवन की दो पटरियां हों--एक गद्य की, एक पद्य की। गद्य बाजार के लिए, गद्य गणित के लिए, गद्य रोटी-रोजी के लिए। पद्य अपने लिए, प्रेम के लिए, प्रार्थना के लिए, परमात्मा के लिए। संसार और परमात्मा दोनों तुम्हारे जीवन में साथ-साथ चलें, तो ही तुम संतुलित हो। मैं कहूंगा, तो ही तुम संयमी हो।
दुनिया में दो तरह के असंयमी हैं। एक, जिन्होंने रोटी को सब समझ लिया। दूसरे, जिन्होंने कविता को सब समझ लिया। वे दोनों असंयमी हैं। वे एक पटरी

पर गाड़ी को दौड़ाने की कोशिश कर रहे हैं। दुर्घटना होती है; यात्रा नहीं होती।
समाज का कामचलाऊ ऊपरी नीति से काम चल जाता है। उसे भीतरी नीति की जरूरत भी नहीं है। समाज को तुम्हारी आत्मा से प्रयोजन भी नहीं है। वह तुम्हारा प्रयोजन होगा, समाज को क्या प्रयोजन? समाज को तुम्हारे व्यवहार से प्रयोजन है।
तुम किसी से मिलने गए, तुम अच्छी तरह से मिले, नमस्कार की, प्रेमपूर्ण बातें कीं, सज्जन का व्यवहार किया, बात खतम हो गई। तुम भीतर सज्जन हो या नहीं, इससे उस आदमी को क्या लेना-देना! समाज के लिए नीति तो ऐसी है जैसे कार में स्प्रिंग लगे होते हैं। स्प्रिंग लगे हों कार में, तो रास्ते के गड्ढों की चोट नहीं पड़ती बैठे हुए यात्री को। स्प्रिंग चोट को सम्हाल लेते हैं। या जैसे ट्रेन के दो डब्बों के बीच में बफर लगे होते हैं। कभी कोई गड़बड़ हो जाए, अचानक इंजन को खड़ा होना पड़े, तो डब्बे टकरा नहीं जाते, एक-दूसरे पर चढ़ नहीं जाते। बीच के बफर धक्के को झेल लेते हैं।
समाज के लिए नीति तो बफर है, स्प्रिंग है। जब दो व्यक्ति मिलते हैं, अगर दोनों नैतिक ढंग से मिलें तो धक्का नहीं लगता। नहीं तो डब्बे टकरा जाएं। तुम अगर गाली देते ही से किसी को नमस्कार करो, तो धक्का लगेगा। गाली तुम्हें भीतर देनी हो, देते रहो। देते ही हो तुम। जिसको भी तुमने नमस्कार किया है, भीतर जरूर गाली दी है। क्योंकि तुम क्षमा कैसे करोगे इस आदमी को? आज ऐसी नौबत आ गई कि नमस्कार करना पड़ा।
मैंने सुना है, एक साधारण सिपाही युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखाया और उसको पुरस्कार देने के लिए राज्य ने उसे कैप्टन बना दिया। जो उसका बड़ा सेनापति था, वह भी उससे बड़ा प्रसन्न था उसकी बहादुरी के कारण, उसने उसे अपना बॉडीगार्ड बना लिया। जब वे रास्ते पर चलते तो वह बड़ा सेनापति बड़ा हैरान होता, जब भी कोई सिपाही रास्ते पर मिलता और ठोंक कर सलाम करता, तो वह जो कैप्टन था इसके साथ जो कभी सिपाही रह चुका था, वह मन में कहताः वही तुम्हारे लिए! दि सेम फॉर यू। यह क्या मामला है? बार-बार, जब भी कोई नमस्कार करता, वह धीरे से कहताः दि सेम फॉर यू! वही तुम्हारे लिए। उसने पूछा कि यह मामला क्या है? यह किस तरह की आदत है? यह कौन सा ढंग है? यह बार-बार तुम क्या कहते हो?
उसने कहा, आपको मालूम नहीं। मैं सिपाही रह चुका हूं। ये सब गाली दे रहे हैं। भीतर गाली दे रहे हैं, ऊपर नमस्कार ठोंक रहे हैं। मैं जानता हूं, क्योंकि मैं भी सिपाही रह चुका हूं। तो मैं इनसे कहता हूं, वही तुम्हारे लिए। जो भीतर तुम कह रहे हो, वही! ऊपर की कौन फिक्र करता है?
जिसको भी तुम्हें नमस्कार करनी पड़ती है उसको तुम गाली दोगे ही। मगर गाली से क्या लेना-देना है! बाहर-बाहर तालमेल ठीक बैठ जाता है। बफर काम करते हैं।
नीति उपयोगी है। इसलिए तो दुकानों पर तख्ती लगी हैः ऑनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पॉलिसी। पॉलिसी है वह। उसको तुम ज्यादा मत समझना। ईमानदारी, दुकानदार के लिए राजनैतिक कुशलता है, होशियारी है। उसके आधार पर वह धंधा चलाता है। अगर बेईमानी फैल जाए तो धंधा मुश्किल हो जाए। चोर भी जब आपस में संगठन बनाते हैं तो एक-दूसरे की चोरी नहीं करते। दस डाकू अगर हमला करके जाएं और आपस में एक-दूसरे की चोरी करने लगें तो संगठन नहीं चल सकता। डाकू आपस में ईमानदार होते हैं। ऑनेस्टी इ.ज दि बेस्ट पॉलिसी!
दुकानदार भी सब आपस में ईमानदारी रखते हैं, नहीं तो बाजार खराब हो जाए। ग्राहक को लूटो, लेकिन दुकानदारों को तो मत लूटो। चोर-चोर सगे बंधु होते हैं। वहां भी नीति चलती है। बुरे से बुरे लोगों के बीच भी संबंध बनाने के लिए नीति की जरूरत पड़ती है। दो चोरों को भी अगर संबंध बनाना हो, समाज बनाना हो, तो उन्हें कुछ नियम निर्धारित करने पड़ेंगे। चोरों का भी कोड ऑफ कंडक्ट होता है। उनका भी एक व्यवहार शास्त्र होता है--कैसे व्यवहार करना। चोर भी आपस में झूठ नहीं बोलते। नहीं तो काम ही मुश्किल हो जाएगा। समाज के लिए नीति का अर्थ तुम्हारी आत्मा से नहीं है, तुम्हारे व्यवहार से है। तुम भीतर गाली देते हो, देते रहो। तुम भीतर छुरा चला रहे हो, चलाते रहो। ऊपर तुम कुशलता से बात करो, मुस्कुराओ, व्यवहार ढंग का करो,

बात खतम हो गई। समाज को तुम्हारे ऊपर से लेना-देना है। इसलिए समाज कहता है, तुम सज्जन हो जाओ; धार्मिक होने से हमें कुछ प्रयोजन नहीं है। धार्मिक होना तुम जानो। इस झंझट में हम नहीं पड़ते। तुम नास्तिक हो, भले रहो। ईश्वर को नहीं मानते, मत मानो। सिर्फ व्यवहार-कुशलता चाहिए।
तो धर्म की कोई जरूरत समाज को नहीं है। धर्म वैयक्तिक आवश्यकता है; भीतर की जरूरत है; व्यक्ति की जरूरत है। समाज तो बिना धर्म के चल सकता है। व्यक्ति नहीं चल पाएगा। व्यक्ति लड़खड़ा जाएगा, मर जाएगा, टूट जाएगा।
तो कामचलाऊ नीति, आचरणगत नीति समाज के लिए काफी है। उससे ज्यादा की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर तुम भी उसी पर राजी हो गए तो तुम्हारे भीतर रेगिस्तान रह जाएगा। तुम्हारे भीतर कभी वृक्ष हरे न होंगे। तुम्हारे भीतर कभी फूल न खिलेंगे। तुम्हारे भीतर मरूद्यान की संभावना ही समाप्त हो गई। तुम दूसरों के साथ कितने ही व्यवहार-कुशल हो जाओ, तुम अपने साथ नासमझी में पड़े रहोगे। आत्म-अज्ञान तुम्हारा गहरा रहेगा।
इसलिए मैं कहता हूं, नीति सामाजिक व्यवहार-कुशलता है। धर्म तुम्हारी आत्मा की भूख है।
नास्तिक समाज भी नैतिक होते हैं। रूस भी नैतिक है। शायद धार्मिक समाजों से थोड़ा ज्यादा ही नैतिक है। क्योंकि धर्म की तो कोई बात ही न बची। अब तो नीति पर ही पूरा भरोसा करना पड़ेगा। इसलिए नीति को खूब जोर से ठोंका- पीटा गया है। तो रूस की नैतिकता तुम्हारी नैतिकता से ज्यादा है। लेकिन धर्म का कोई सवाल नहीं है। धर्म तो अफीम का नशा है। नीति की जरूरत है।
मैं तुमसे कह रहा हूं कि नीति की बाहर की जरूरत को तुम्हें पूरा करना
हो करना, लेकिन ध्यान रखना, वह बाहर की जरूरत है। वह तुम्हारे भीतर का अंतर्नाद नहीं है। उसी को सब मत समझ कर समाप्त हो जाना। व्यवहार-कुशल रहना; मैं नहीं कहता हूं कि अकारण जाकर लोगों से झगड़ने लगना, कि गलत व्यवहार करने लगना; बिल्कुल ठीक व्यवहार करना। रास्ते पर बाएं चलने का नियम हो तो बाएं ही चलना। कोई मतलब नहीं है दाएं चलने से, बीच में चलने से, उपद्रव खड़ा करने से। तुम भी मुसीबत में पड़ोगे। नीति को मानना, लेकिन जानना कि बस सभी नीतियां रास्ते पर बाएं चलने के नियम जैसी हैं। खेल के नियम हैं। इतनी भीड़-भाड़ है, उनको मानना जरूरी है।
लेकिन इतना मत समझ लेना कि तुम नैतिक हो गए तो तुम धार्मिक हो गए। कि तुम रास्ते पर सदा बाएं चलते हो; पुलिसवाला न भी खड़ा हो, लेकिन अगर लाइट कहती है कि रुक जाओ, तो तुम रुके रहते हो; किसी को गाली नहीं देते, किसी को धोखा नहीं देते, सब तरह से अपने को सम्हाल कर रखते हो; इसको ही तुम सब मत समझ लेना। इससे तुम्हारे भीतर की समाधि थोड़े ही जन्मेगी! रास्ते पर बाएं चलने से ध्यान का क्या संबंध है? किसी को गाली न देने से, किसी को चोट न पहुंचाने से तुम्हारे भीतर समाधि कैसे पैदा हो जाएगी?
अगर ऐसा होता, तब तो जो जंगलों में भाग गए, वे लोग ठीक हैं। वे भागे इसीलिए। उन्होंने देखा कि यहां रहेंगे तो झंझट होगी ही। किसी न किसी से टकरा ही जाएंगे। भाग जाओ एकांत में। न होगा कोई दूसरा, न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। जब दूसरा ही न होगा तो अनीति हम कैसे करेंगे? आखिर झूठ भी बोलने के लिए कोई तो चाहिए जिससे झूठ बोलो। धोखा देने के लिए भी कोई तो चाहिए जिसको धोखा दो। धोखा एकांत में किसको दोगे? कोई अपनी ही जेब थोड़े ही काट लोगे। क्या करोगे? इसलिए तो लोग एकांत में भागे। एकांत में भागने का आकर्षण इसलिए आया कि उन्होंने देखा कि यहां रहेंगे तो झंझट कुछ न कुछ होगी ही। भाग जाओ एकांत में। जहां न रास्ते हैं, न रास्तों पर लगे प्रकाश हैं। न रुकना पड़ता है, न बाएं चलना पड़ता है। जहां से चलो वही रास्ता है। जैसे चलो-- कोई कहने वाला नहीं।
लेकिन सिर्फ जंगल में भाग जाने से तुम धार्मिक न हो जाओगे। हां, यह बात सच है कि नैतिक होने की जरूरत न रह जाएगी। अनैतिक होने का बोध न होगा। न कोई गाली देगा, न क्रोध आएगा। न कोई प्रलोभन होगा, न कोई वासना जगेगी। लेकिन तुम भीतर तो वही रहोगे जो हो। हजार साल जंगल में रह कर लौटोगे बाजार में, फिर पाओगे कि तुम वही के वही हो।
मैंने सुना है कि एक संन्यासी तीस वर्ष हिमालय में रहा। क्रोध था जीवन में, घृणा थी, ईर्ष्या थी, दंभ था। उन्हीं के कारण भाग गया था। तीस साल

किसी का भी पता न चला। न क्रोध आया, न अहंकार का पता चला। अहंकार के लिए भी दूसरे की मौजूदगी जरूरी है। अगर तुम अकेले अपने कमरे में बैठे हो, निरहंकारी होते हो। दूसरा आदमी कमरे में आया, अहंकार उठा। अहंकार भी अकेले में कैसे उठेगा? उसे दूसरों का सहारा चाहिए। अहंकार लंगड़ा है। दूसरों के कंधों की बैसाखी चाहिए। पता ही नहीं चला अहंकार का तीस साल में। उसे लगा, मैं परम शांत हो गया। सब ठीक हो गया। अब मैं उतर सकता हूं। वापस जा सकता हूं।
वह उतर कर आया। हरिद्वार में उतरा। वहां मेला भरा हुआ था। तीस साल जो एकांत में रहा, हिमालय की शांति में रहा, वह अचानक बाजार में आ गया। किसी आदमी का पैर उसके पैर पर पड़ गया। वह भूल गया तीस साल। वे लंबे तीस साल, शांति, मौन, एकांत--सब गया। उसका पैर पड़ते ही उसने उसकी गर्दन पकड़ ली और उसने कहा, समझा क्या है? किसके पैर पर पैर रख रहा है?
जब उसने उसकी गर्दन दबाई तब उसे याद आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं! इसी को बचने के लिए तो मैं तीस साल भाग कर हिमालय गया था। ये तो पानी में गए तीस साल। उतरा नहीं बाजार में कि वापस वही का वही हूं।
जंगल में जाने से कुछ भी न होगा। नीति की जरूरत न रह जाएगी, अनीति का पता न चलेगा, लेकिन धर्म थोड़े ही पैदा हो जाएगा! सच तो यह है कि लोगों के बीच रह कर तुम्हें निरंतर अपनी स्थिति का पता चलता रहता है। तुम्हारी साधना के साथ-साथ परीक्षा भी चलती रहती है। तुम कभी धोखे में नहीं पड़ सकते भीड़ में रह कर। क्योंकि भीड़ तुम्हें जताती रहेगी। भीड़ ऐसे मौके देगी कि तुम्हें पता चल जाए कि क्रोध है या नहीं है। नहीं होगा तो ही नहीं होगा। होगा तो भीड़ निकाल ही लेगी। भीड़ बड़ी कुशल है। कोई धक्का मार देगा, कोई पैर पर पैर रख देगा, कोई अकड़ कर देख लेगा, तुम नमस्कार करोगे, कोई जवाब न देगा। कुछ न कुछ हो जाएगा। आदमी न करेंगे कुछ तो कोई दूसरा कर देगा। केले के छिलके पर पैर फिसल जाएगा। केला ही शरारत कर देगा। चारों खाने चित्त गिर जाओगे, लोग हंस देंगे। उसी वक्त तुम्हें साफ हो जाएगा कि स्थिति कहां है। चित्त में पीड़ा उठ आएगी। बदला लेने का भाव उठ आएगा। सबके रास्तों पर केले के छिलके फैला देने की आकांक्षा पैदा हो जाएगी। सबको चारों खाने चित्त करके दिखलाने का विचार, योजना बनने लगेगी।
नहीं, जीवन प्रतिपल साधना और परीक्षा दोनों है। वह अध्ययन भी है और परीक्षण भी। वहां से भागना मत। वहीं रहना। वहां प्रतिपल कसौटी हो रही है-- तुम्हारा सोना कितना पक्का, कितना मजबूत, कितना शुद्ध!
और सोने को शुद्ध करना हो तो नीति को काफी मत समझ लेना। नीति केवल दूसरे से संबंध है, धर्म अपने से। नीति दूसरे से संबंध है, धर्म अपने से। नीति दूसरे के साथ व्यवहार है, धर्म अपने से। धर्म है अपने एकांत में होने का ढंग--शांत, प्रफुल्ल, आनंदित, नृत्य करते हुए, अकारण उत्सव मनाते हुए। अपने भीतर अगर तुम निरंतर उत्सव को मना रहे हो, तो तुम धार्मिक हो।
और मैं तुमसे कहता हूं कि जिसके भीतर उत्सव है, उसके बाहर तो नीति अपने आप आ जाएगी। उसे साधनी न पड़ेगी, थोपनी न पड़ेगी। और जिसके भीतर उत्सव नहीं है, उसे नीति थोपनी पड़ेगी। थोपी हुई नीति कागज के फूल हैं। धर्म से आविर्भूत नीति असली फूल हैं।

तीसरा प्रश्नः भगवान महावीर और महात्मा गांधी की अहिंसा में फर्क क्या है?

यही, जो मैं समझा रहा था। गांधी की अहिंसा नैतिक है। और नैतिक भी कभी- कभी; अधिक तो राजनैतिक है। नैतिक भी बहुत ऊंचाइयों पर; अन्यथा तो राजनैतिक है।
महावीर की अहिंसा धार्मिक है। महावीर के भीतर कुछ घटा है। उससे उनके आचरण में अहिंसा है। गांधी आचरण में कुछ घटा रहे हैं, इस आशा में ताकि भीतर कुछ घट जाए।
गांधी वैसे ईमानदार आदमी थे। और जो भी कर रहे थे वह भला गलत हो, लेकिन उन्होंने किया बड़ी निष्ठा से। उनकी निष्ठा में कोई संदेह नहीं है।

ऐसे ही जैसे कोई आदमी निष्ठापूर्वक रेत में से तेल निकालने की कोशिश
कर रहा हो। उसकी निष्ठा में मैं शक नहीं करता। वह बड़े भाव से कर रहा है। बड़ा आयोजन किया है। जीवन लगा दिया है। लेकिन फिर भी मैं क्या कर सकता हूं! मैं यही कहूंगा कि रेत से तेल नहीं निकलता। तुम्हारी निष्ठा ठीक है, लेकिन निष्ठा क्या करेगी? यह तेल निकलेगा नहीं।
नैतिक, निष्ठावान, ईमानदार आदमी हैं। लुई फिशर ने गांधी के संबंध में
एक लेख लिखा। और उसमें लिखा कि गांधी एक धार्मिक पुरुष हैं, जिन्होंने पूरे जीवन राजनैतिक होने की चेष्टा की है। गांधी ने तत्क्षण जवाब दिया कि यह बात उलटी है। मैं एक राजनैतिक व्यक्ति हूं, जिसने जीवन भर धार्मिक होने की चेष्टा की है।
उनकी ईमानदारी सौ टका है। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है कि वे कभी भी अपने संबंध में झूठ नहीं बोले हैं। लेकिन इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वे राजनैतिक व्यक्ति हैं और उन्होंने जीवन भर धार्मिक होने की चेष्टा की है। इसमें मैं इतना और जोड़ देना चाहता हूं कि वह चेष्टा असफल हुई है। वे धार्मिक हो नहीं पाए। वे राजनीतिज्ञ ही विदा हो गए हैं।
फर्क नाजुक है। तो कई बार तो ऐसा लगता है, महावीर की अहिंसा तुम्हें दिखाई ही न पड़ेगी, गांधी की दिखाई पड़ेगी। क्योंकि गांधी की अहिंसा का बड़ा विस्तार हैः आंदोलन हैं, क्रांति है, सारे विश्व पर इतिहास पर छाप है। महावीर की कौन सी छाप है? होगा, कोई चींटी न मरी होगी, वे सम्हल कर चले होंगे। चींटी कोई इतिहास लिखती है! कि उन्होंने पानी छान कर पीया होगा, कुछ कीटाणु न मरे होंगे। उन कीटाणुओं ने कोई शोरगुल मचाया? महावीर ने उस्तरे से अपने बाल न बनाए, क्योंकि कहीं कोई जूं पड़ गया हो और उस्तरे में दब कर मर जाए। उन्होंने बाल उखाड़े। वे केश-लुंच करते थे। साल भर में बाल उखाड़ डालते थे। लेकिन क्या अगर कोई जूं बच गया होगा बालों में इस भांति, वह कोई आत्मकथा लिखेगा कि इस महावीर ने हम पर बड़ी अहिंसा की?
महावीर की अहिंसा का कोई इतिहास थोड़े ही है! भीतर की घटना है। जिनके भीतर घटेगी वे ही पहचान सकते हैं। गांधी की अहिंसा तो हजारों साल तक याद रहेगी। उसके प्रमाण हैं। महावीर की अहिंसा का क्या प्रमाण है? इतना ही हम कह सकते हैं कि उन्होंने हिंसा नहीं की। अहिंसा की, ऐसा हम क्या कह सकते हैं?
इसको थोड़ा समझ लें। महावीर के जीवन को अगर हम गौर से देखें तो इतना ही
कह सकते हैं कि उन्होंने हिंसा नहीं की। गांधी ने अहिंसा की। गांधी के कृत्य में अहिंसा है। महावीर के होने में अहिंसा है। और होना भीतर है, कृत्य बाहर है।
इसलिए गांधी की अहिंसा बहुत दफे डगमगा जाती है। क्योंकि वह नीति है,
या राजनीति है। जीवन भर... जब जर्मनी ने फ्रांस और इंग्लैंड पर हमला किया दूसरे महायुद्ध में, तो गांधी ने पत्र लिखे इंग्लैंड और फ्रांस के नेताओं के नाम कि तुम समर्पण कर दो, हथियार डाल दो। लड़ो मत। देखें, कैसे तुम जीते जाओगे! हिटलर को निमंत्रण कर दो। उससे कहो, आ जाओ। वह रहना चाहे तो रहे तुम्हारी बस्तियों में। गांव खाली कर दो, मकान दे दो।
अहिंसक आदमी की सलाह! इंग्लैंड के नेता सिर्फ हंसे। क्योंकि इस बकवास में कौन भरोसा करे! और उन्होंने ठीक ही किया कि वे हंसे। क्योंकि जब भारत और पाकिस्तान का झगड़ा शुरू हुआ और कश्मीर में उपद्रव हुआ, तो गांधी ने सेनाओं को आशीर्वाद दिया कि जाओ। तब वे भूल गए कि उन्होंने इंग्लैंड को क्या सलाह दी थी हिटलर के समय। तब वे राजी आशीर्वाद देने को सेनाओं को। आकाश में उड़ते भारतीय वायुसेना के विमानों को देख कर वे प्रसन्न हुए। वे बमों से भरे हुए जा रहे हैं। किसी ने पूछा कि क्या आपका आशीर्वाद है इन विमानों के लिए? उन्होंने कहा, पूरा आशीर्वाद है। अगर पाकिस्तान सीधे- सीधे नहीं मानता तो युद्ध के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।
हिटलर हमला करे इंग्लैंड पर तो हथियार छोड़ दो। पाकिस्तान हमला करे कश्मीर पर तो हथियारों को आशीर्वाद दो! राजनीति है। यह कोई महावीर की अहिंसा नहीं है। यह कुशल राजनीतिज्ञ की बात है। जब जैसी जरूरत पड़े तब वह अपनी नीति बदल लेगा। जब जैसी जरूरत हो, जिस चीज से लाभ हो।

इस बात से लाभ था भारत को। क्योंकि अंग्रेजों से भगतसिंह की तरह लड़ना
तो पागलपन था। भगतसिंह होंगे बड़े शहीद, लेकिन दिमाग खराब। क्योंकि उस तरह कहीं कुछ हो सकता था! हल कुछ भी न था। ऐसे कोई बंदूक चला देने से और बम फेंक देने से धारासभा में कुछ मुल्क आजाद नहीं हो सकता था। आदमी हिम्मतवर थे। अपने को मिटाने को तैयार थे, बस! इससे कोई आजादी नहीं आ सकती थी। गांधी कुशल राजनीतिज्ञ थे। भगतसिंह नासमझ छोकरा; गांधी कुशल बुद्धिमान राजनीतिज्ञ। भगतसिंह ने अपने को मिटा लिया, गांधी ने पूरे मुल्क को बचाया। मगर उसमें कुशलता है राजनीति की। सारा खेल राजनीति का है।
एक बात गांधी को समझ में आ गई कि अंग्रेजों से लड़ कर तो जीतने का कोई उपाय नहीं है। और गांधी को यह भी समझ में आ गया कि अगर कोई भी संभावना कभी जीतने की है तो वह कुछ ऐसी विधि से जीतने की है कि अंग्रेज उसका प्रतिकार न कर पाएं। अहिंसा का कोई प्रतिकार करना अंग्रेजों की समझ के बाहर था। अब अहिंसा का प्रतिकार कैसे करो?
एक ही उपाय था कि गांधी अनशन करें तो वाइसराय भी अनशन करे। उसके लिए बड़ी तैयारी चाहिए। अहिंसा का प्रतिकार कैसे करो? एक आदमी छुरा लेकर लड़ने आए तो तुम बड़ा छुरा लेकर आ जाओ। लेकिन एक आदमी उपवास करे, अब तुम क्या करो? वाइसराय कोई महात्मा नहीं है। उपवास का भी बड़ा अभ्यास करना पड़ता है। गांधी ने चालीस साल अभ्यास किया तब वे कर सकते थे। या इंग्लैंड का बादशाह उपवास करे। तो उपवासों में टक्कर हो। फिर जिसका उपवास टिक जाए ज्यादा लंबा, वह जीत जाए।
ऐसा हुआ, मैंने सुना कि एक शरारती आदमी ने एक सज्जन आदमी के घर के सामने बिस्तर फैला दिया। और उसने कहा कि हम अनशन करते हैं, नहीं तो तुम्हारी लड़की से शादी करो। अहिंसात्मक आंदोलन कर दिया। आदमी घबड़ाया। गांव के लुच्चे-लफंगे, जिनको लोग राजनैतिक कहते हैं, वे सब इकट्ठे हो गए। उन्होंने कहा, यह आदमी ठीक कहता है। इसमें खराबी क्या है? और यह अहिंसात्मक आंदोलन कर रहा है। कुछ बुरा भी नहीं कर रहा है। सर्वोदयी है। यह कहता है, हम मर जाएंगे, या शादी करो। हम अपना जीवन देने को... किसी को डरा- धमका तो रहा नहीं है। किसी को छुरा नहीं बता रहा है। पुलिस भी कुछ नहीं कर सकती। पुलिस भी खड़ी हो गई। पुलिस भी क्या करे? यह किसी को मारने की धमकी दे, छुरा लाए, कुछ करे... यह तो बेचारा यह कह रहा है कि हम मर जाएंगे। सत्याग्रह कर रहे हैं।
दो दिन में तो पूरा गांव उसके पक्ष में हो गया। क्योंकि कोई फिक्र ही नहीं करता कि तुम किसलिए सत्याग्रह कर रहे हो। लोगों ने कहा, बेचारा सात्विक पुरुष है, सज्जन आदमी है! कुछ बुरी बात भी नहीं कह रहा है। शादी किसी से तो करोगे। आखिर इसमें क्या खराबी है? जिद छोड़ो अपनी। अकड़ छोड़ो। वह आदमी बहुत घबड़ा गया। वह भागा एक पुराने नेता के पास गया। उसने कहा
कि हम क्या करें? उन्होंने कहा, कुछ करना नहीं है। तुम एक काम करो, गांव में एक वेश्या है बूढ़ी, कुरूप, उसको देख कर आदमी डरते हैं। उसको तुम लिवा लाओ। दो-चार रुपये लेगी। उसको बिठा दो इस आदमी के खिलाफ कि हम तुझसे विवाह करेंगे, नहीं तो अनशन करेंगे।
वह उस औरत को लिवा लाया। उसने भी बिस्तर लगा दिया। वह आदमी बोला, क्या बात है? उस स्त्री ने कहा कि हम तुमसे विवाह करेंगे। अन्यथा मर जाएंगे। उसी रात अपना बिस्तर लेकर वह भाग गया। क्योंकि अनशन से अनशन ही हारता है।
अब गांधी को हराना मुश्किल हो गया। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की समझ में
ही न आया कि अब करें क्या! यह आदमी मरने को तैयार है। मारने की बात ही नहीं करता। मारने की करता तो ठिकाने लगा देते। यह मरने की बात करता है।
और यह भी ध्यान रखना कि अगर ब्रिटिश लोगों की जगह जर्मन होते, जापानी होते, तो गांधी सफल नहीं हो सकते थे। ब्रिटिश कौम की अपनी एक शालीनता है, अपना संस्कार है। वैसी कौम पृथ्वी पर बहुत कम हैं। एक नीतिमत्ता है। यह बात तो उनको समझ में आ गई कि यह आदमी अपने को ही सताता है, अब इसको मारना क्या! लेकिन अगर हिटलर होता या जापानी होते, तो वे कहते, ठीक है, मजे से मर जाओ। कोई फिक्र ही न करता। पता ही न चलता गांधी कब मर जाते।

लेकिन ब्रिटेन धीरे-धीरे छोड़ दिया। यह बात अशोभन लगी कि जो लोग मरने
को तैयार हैं उनको मारा जाए। इसमें गांधी की सफलता जितनी है उतनी ही ब्रिटिश नीतिमत्ता की भी सफलता है। यह पचास-पचास प्रतिशत है। पचास प्रतिशत गांधी का आंदोलन है, पचास प्रतिशत ब्रिटिश जाति की शालीनता है। इसलिए यह आंदोलन सफल हुआ। लेकिन गांधी समझ गए कि लड़ कर कोई उपाय नहीं है। उन्होंने एक नई तरकीब ईजाद कर ली। लेकिन अहिंसा एक राजनैतिक उपाय थी। इसीलिए चर्चिल के खिलाफ और ब्रिटेन के खिलाफ तो अहिंसा जीत गई, लेकिन जिन्ना के खिलाफ न जीत सकी। लाख उपाय किए गांधी ने, लेकिन जिन्ना को न जीत सके। क्या मामला है? क्योंकि जिन्ना को समझ में है साफ कि ये सब राजनैतिक दांव-पेंच हैं। इसलिए जिन्ना पर इसका कोई परिणाम न पड़ा। न मुसलमानों पर कोई परिणाम पड़ा। पाकिस्तान बंट कर रहा।
न परिणाम पड़ने का कारण है, क्योंकि जिन्ना भलीभांति जानता है कि राजनैतिक दांव-पेंच है यह। इसमें अहिंसा कुछ भी नहीं है। इसमें कोई बड़ा प्रेम नहीं है, यह सिर्फ होशियारी है।
पर गांधी आदमी ईमानदार हैं। उन्होंने जो भी किया, सदा--इससे हित होगा--
इस आकांक्षा से किया। पर वह कृत्य से गहरा नहीं है। उनके अस्तित्व में नहीं है अहिंसा। इसको अगर तुम उनका जीवन गौर से देखो तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि उनके अस्तित्व में अहिंसा नहीं है। छोटी-छोटी बात पर वे हिंसक हो उठते थे।
कस्तूरबा ने दूसरों का पाखाना साफ करने से मना कर दिया। तो गांधी इतने नाराज हो गए कि गर्भवती कस्तूरबा को आधी रात घर के बाहर निकाल दिया। दरवाजा बंद करके धक्का देकर बाहर कर दिया। आठ महीने का गर्भ! पाखाना साफ करना पड़ेगा।
पाखाना साफ करना या न करना, किसी और के द्वारा थोपी जाने वाली बात नहीं होनी चाहिए। यह कस्तूरबा का अपना निर्णय होना चाहिए। अगर उसे ठीक नहीं लगता तो गांधी कौन हैं? लेकिन पति, स्वामी! ये सब हिंसा की धारणाएं हैं। और इस पत्नी को बाहर निकाल देना गर्भ की ऐसी अवस्था में जब कि खतरा हो सकता है।
गांधी के बच्चे... गांधी ने चालीस साल की उम्र में ब्रह्मचर्य का नियम
ले लिया। तब तक उनके तो कई बच्चे पैदा हो चुके थे। चालीस साल का मतलब आधी उम्र तो जा ही चुकी। चालीस साल की उम्र में ब्रह्मचर्य का व्रत लेना कोई बहुत महत्वपूर्ण बात नहीं है। चालीस साल की उम्र तक अगर किसी ने कामवासना का भोग किया है तो सहज ही ब्रह्मचर्य का निर्णय ले लेगा। कोई मूढ़ ही होगा जो उसके बाद भी ब्रह्मचर्य का निर्णय न ले। यह तो सहज स्वाभाविक होना चाहिए। इस उम्र के अनुभव के बाद उन्होंने निर्णय ले लिया। लेकिन लड़के उनके थे, हरिदास था, वह अठारह साल का है; वे उसको भी कहते हैं कि तू ब्रह्मचर्य का निर्णय ले। कसम खा ब्रह्मचर्य की।
यह हिंसा है। तुम चालीस साल में निर्णय लिए, पांच-सात बच्चों के बाप होने के बाद। तुम इस लड़के को अठारह साल की उम्र में कहते हो कि तू ब्रह्मचर्य का निर्णय ले। यह निर्णय भी कैसे ले? इसे अभी कामवासना का भी पता नहीं है।
यह आग्रह इतना जबरदस्त हो गया--कि तू ब्रह्मचर्य का निर्णय ले--कि हरिदास भाग गया। उसने भाग कर शादी कर ली। जब उसने शादी कर ली तो गांधी ने उसका निष्कासन कर दिया कि अब उससे मेरा कोई संबंध नहीं।
आखिर शादी ऐसा क्या पाप है? गांधी ने खुद की। सारी दुनिया करेगी। लेकिन यह जिद क्या है और जबरदस्ती क्या है? अगर इस व्यक्ति को ब्रह्मचर्य की तरफ नहीं जाना तो तुम कौन हो? सिर्फ बाप होने के कारण! यह हिंसा है। और इस हिंसा ने हरिदास को बरबाद कर दिया। जब गांधी ने इनकार कर दिया, वह असहाय हो गया। न उसके पास पैसा, न भोजन, न रहने का मकान--और शादी कर ली। तो वह उधार लेने लगा यहां-वहां से। वह जुआ खेलने लगा। वह उधारी पर ही जीने लगा। जब उसने काफी उधारी कर ली और अदालत में मुकदमा पहुंचा, तो गांधी ने अखबारों में वक्तव्य दे दिया कि मैं अब उसका पिता नहीं हूं, न वह मेरा बेटा है। फिर वह शराब पीने लगा। जब उधारी न चुकी तो अब और क्या करे! चोरी करने लगा, शराब पीने लगा। वह बरबाद होता चला गया। वह हालत यहां पहुंच गई कि वह

अपना चेहरा दिखाने योग्य किसी को न रहा। क्रोध में वह मुसलमान हो गया। उसने अपना नाम हरिदास से अब्दुल्ला कर लिया।
मरते वक्त, जब गांधी मरे, गांधी की जब मृत्यु हुई, तब हरिदास सम्मिलित हुआ था उस जुलूस में दिल्ली में। लेकिन ऐसा समझा जाता है कि अनुयायियों ने उसे पास नहीं पहुंचने दिया। और ऐसा समझा जाता है--हकदार वही था बड़े बेटे की तरह कि गांधी की चिता में आग देता, लेकिन उसको चिता में आग नहीं दी जाने दी गई।
अब यह हद की बात हो गई। बेहूदी हो गई। चाहे वह शराब पीता हो, चाहे मुसलमान हो, इससे क्या फर्क पड़ता है! बड़ा बेटा वही था। लेकिन गांधी का जीवन भर का विरोध इतना था कि अनुयायियों को भी पता था कि इसको पास नहीं आने देना। लाश के पास भी देखने नहीं आने दिया गया। वह भीड़ में दूर हजारों आदमियों में छिपा हुआ गया। दूर से खड़े होकर उसने बाप को जलते देखा। वह अग्नि नहीं दे सका।
ये सब हिंसाएं हैं। अहिंसक व्यक्ति के ये लक्षण नहीं। और अगर तुम गांधी के पूरे जीवन को गौर से देखोगे तो तुम बहुत चकित हो जाओगे कि छोटे- छोटे मामलों में बहुत हिंसा है, बड़े-बड़े मामलों में बड़ी अहिंसा है।
यह बड़ी सोचने की बात है। बड़े मामले में अहिंसक होना बहुत आसान है। छोटे मामले में अहिंसक होना मुश्किल है। क्योंकि छोटा मामला इतना छोटा होता है कि इसके पहले कि तुम सजग होओ, वह हो गया होता है। बड़े मामले में तो सोच-विचार की सुविधा होती है। ब्रिटिश गवर्नमेंट से लड़ना है, अहिंसा से लड़ सकते हो, योजना बना सकते हो। लेकिन किसी ने तुम्हारे पैर पर पैर रख दिया, वह एक क्षण में हो गई बात। उस वक्त क्रोध आ गया तो आ गया। उसके लिए कोई योजना नहीं बनाई जा सकती। असल में, छोटी बातों से ही पता चलता है कि आदमी अहिंसक है या हिंसक। बड़ी बातों का कोई हिसाब नहीं है। बड़ी बातें व्यर्थ हैं। छोटी बातें ही सार्थक हैं।
गांधी के जीवन को छोटे-छोटे हिसाब से अगर जांचने चलोगे तो बड़े चकित हो जाओगे। बहुत हैरान होओगे। लेकिन वे आदमी ईमानदार थे, इसमें मुझे रत्ती भर संदेह नहीं है। वे तुम्हारे और तथाकथित साधुओं से ज्यादा ईमानदार थे। लेकिन उनकी ईमानदारी भ्रांत दिशा में थी। वे अहिंसक न हो पाए, न हो सकते थे। क्योंकि सारी चेष्टा अहिंसा को एक हथियार की तरह उपयोग करने के लिए थी। उन्होंने अहिंसा का हथियार बनाया। लड़ना तो था। लड़ने में हिंसा छिपी थी। लेकिन लड़ने का और कोई उपाय न था, तो उन्होंने अहिंसा का हथियार बनाया। अहिंसा भी हिंसा में नियोजित हो गई।
महावीर की बात बिल्कुल भिन्न है। महावीर की कोई नीति नहीं है, कोई राजनीति नहीं है। महावीर की अहिंसा समाधि से उत्पन्न है। उन्होंने स्वयं को जाना। स्वयं को जान कर पाया कि सबके भीतर वही है, एक ही है। इसलिए अब दूसरे को चोट पहुंचानी अपने को ही चोट पहुंचानी है। कोई पराया न रहा, तो प्रेम का सहज आविर्भाव हुआ। कोई दूसरा न रहा, तो दुख पहुंचाने की बात गिर गई। महावीर की अहिंसा धार्मिक; गांधी की अहिंसा कभी-कभी नैतिक, अधिकतर राजनैतिक है।

चौथा प्रश्नः कल शिविर में ध्यान के प्रयोग करते हुए कुछ क्षणों के लिए परम शांति की अनुभूति हुई। तो क्या वह विशेष विधि मेरे अनुकूल आई? और क्या मैं उसे जारी रखूं?

निश्चय ही। अनुकूल जब कुछ आता है तभी शांति की झलक मिलती है। जब कोई तालमेल बैठ जाता है विधि का और तुम्हारा, तभी शांति मिलती है।
शांति को कसौटी समझो। जिस विधि से तुम्हें शांति मिले उसमें और गहरे,
और गहरे उतरो। शांति शुरुआत है। धीरे-धीरे शांति सघन होगी, आनंद में रूपांतरित होगी।

पांचवां प्रश्नः जीवन में अनुभव कर-कर के देखना उचित है या देख-देख कर करना उचित है?

देख-देख कर करोगे तो ही अनुभव कर-कर के देखना संभव हो पाएगा। देख-देख
कर करोगे तो ही अनुभव होगा। अनुभव से गुजर जाना अनुभव हो जाना नहीं है। क्रोध तुमने बहुत बार किया। अनुभव से तो गुजरे, लेकिन अनुभव हुआ कि नहीं? अनुभव तो तब होगा जब तुम देख-देख कर क्रोध से गुजरोगे।
तो अनुभव से गुजरना एक बात है, अनुभव का हो जाना बिल्कुल दूसरी बात है। अनुभव हो जाने का मतलब है कि तुमने अनुभव को देखा भर आंख; पहचाना। उस पहचान में ही क्रांति हो जाएगी। फिर तुम क्रोध दुबारा न कर सकोगे। अगर अनुभव से ही गुजरे हो तो क्रोध बार-बार करोगे। अगर अनुभव हो गया देख कर, क्रोध को पहचान कर तुम गुजरे, क्रोध समाप्त हो जाएगा। ऐसा नहीं कि तुम पश्चात्ताप करोगे। नहीं; बस क्रोध गिर जाएगा। पश्चात्ताप भी नहीं होगा। जो बात ठीक से देख ली, उससे मुक्ति हो जाती है। अनदेखे अनुभव ही पीछा करते हैं। उनको फिर-फिर उनसे गुजरना पड़ता है। अंधेरा ही पीछा करता है, रोशनी पीछा नहीं करती। रोशनी मुक्ति है।
तुम ठीक से किसी भी अनुभव को देख लो। अगर वह अनुभव फिर से दोहरे, तो समझना कि देखने में भूल रह गई। फिर से गौर करना! अगर वह अनुभव फिर न दोहरे, तो समझना कि अब दर्शन पूरा हुआ। दृष्टि उपलब्ध हुई।
दर्शन क्रांति है। और उसके अतिरिक्त और कोई क्रांति नहीं है।
आज इतना ही।